बुन्देलखण्ड गौरव
श्री पण्डित गोरेलाल शास्त्री स्मृति ग्रन्थ

सम्पादन निर्देशक :

डॉ. भागचन्द जैन 'भागेन्दु'

निदेशक, राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एव सशोधन सस्थान
श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)

●

सम्पादक :

डॉ. श्रीयांशकुमार सिंघई

अध्यक्ष, जैनदर्शन विभाग,
केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ, जयपुर

●

सम्पादक मण्डल :

डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन

श्रावस्ती (उ प्र)

पण्डित विजयकुमार जैन, साहित्याचार्य

श्री महावीरजी (राज)

कमलकुमार जैन

छतरपुर (म प्र)

●

प्रकाशक :

श्री पण्डित गोरेलाल शास्त्री स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन समिति

छतरपुर (मध्यप्रदेश)

संरक्षक :

- स्वस्तिश्री कर्मयोगी भट्टारक चारुकीर्तिजी, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)

प्रेरणा स्रोत :

- न्यायाचार्य पण्डित डॉ दरबारीलाल कोठिया, बीना (म प्र)
- प्रो डॉ खुशालचन्द गोरावाला, वाराणसी (उ प्र)
- प्रो डॉ राजाराम जैन, आरा (बिहार)
- प्रो डॉ भागचन्द जैन भास्कर, नागपुर (महाराष्ट्र)
- प्राचार्य श्री कुन्दनलाल जैन, देहली

स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन संयोजन समिति :

- पं विजयकुमार साहित्याचार्य, श्रीमहावीरजी (राज)
- डॉ नरेन्द्रकुमार जैन, श्रावस्ती (उ प्र)
- श्री लक्ष्मणप्रसाद जैन, बडामलहरा (म प्र)
- श्री प्रेमचन्द जैन कोलोनाइजर, छतरपुर (म प्र)
- श्री चन्द्रभान जैन, घुवारा टीकमगढ (म प्र)
- श्री कमलकुमार जैन, छतरपुर (म प्र)

वीर निर्वाण संवत् 2525 (सन् 1999)

सहयोग 350/–

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान

- श्री कमलकुमार जैन,
  अनेकान्त भवन, सरई रोड , छतरपुर (म प्र)
- श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, द्रोणगिरि, छतरपुर (म प्र)

प्रमुख सहयोगी संस्थायें

- श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि ट्रस्ट, सेंधपा, छतरपुर (म प्र)
- श्री एस डी जे एस आई मेनेजिग कमेटी, श्रवणबेलगोला, बैंगलोर (कर्नाटक)
- श्री सन्मति विद्या मन्दिर, छतरपुर (म प्र)

मुद्रक

अखिल बसल
प्रिन्टोमैटिक्स, स्टेशन रोड
दुर्गापुरा, जयपुर (राज)
फोन 721819, 722274

विषय सूची

साहित्य सृजन एवं समीक्षा

पण्डितजी का साधना स्थल : सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि

श्रद्धा सुमन एवं शुभकामनायें

□□□

प्रकाशकीय

समाज मे विद्वान् का अस्तित्व सर्वाधिक महत्त्व रखता है। क्योकि समाज की समृद्धि के लिये वह मार्गदृष्टा तो होता ही है, समृद्धि से सुखी हो पाने के लिये सामाजिको को सदाचार का पाठ भी पढाता है जिसके लिये विद्वानो का उपकार इतना बहुमूल्य होता है कि उसे न तो भुलाया जा सकता है और न ही उसका ऋण उतारा जा सकता है। फिर भी विद्वज्जनो के उपकारो से लाभान्वित होती समाज का यह कर्तव्य होता है कि वह विद्वानो के प्रति अपने बहुमान को व्यक्त करे अर्थात् विद्वानो का सम्मान-अभिनन्दन आदि करे ही। ऐसा हर जागरुक समाज मे होता भी है। इस दृष्टि से जैन समाज जागरुक समाज रही है, है भी। इसलिये उसने भी यथायोग्य अपने विद्वानो का सम्मान-अभिनन्दन आदि किये है, अब भी कर रही है। इस अनुक्रम मे बुन्देलखण्ड की द्रोण प्रान्तीय जैन समाज भी अपने परम उपकारक गुरुवर्य एव बुन्देलखण्ड के गौरव पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि का सार्वजनिक सम्मान करने के अपने कर्तव्य को कैसे भुला सकती थी। आदरणीय पण्डितजी जब 1964 मे अपनी सुदीर्घकालीन सेवाओ से निर्वृत्ति लेकर दशलक्षण पर्व मे प्रवचन हेतु इम्फाल गये थे तो उनके आने पर समाज ने उनका सार्वजनिक अभिनन्दन करने एव अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का उपक्रम प्रारम्भ किया था। पण्डितजी को इसकी भनक समाचारपत्रो से लगी तो उन्होने बडी दृढता से उसे रोका परिणामत अभिनन्दन ग्रन्थ तो नहीं छपा किन्तु पण्डितजी के वापिस आने पर उन्हे बताये बिना समाज ने अखिल भारतीय विद्वत् परिषद् के तत्कालीन अध्यक्ष श्री पण्डित दयाचरजी व्याकरणाचार्य, बीना की अध्यक्षता मे पण्डितजी का सार्वजनिक अभिनन्दन किया ही। अति विनम्र स्वभाव के कारण पण्डितजी उस समारोह मे गये अवश्य पर उन्हे अभिनन्दन के कारण कोई उत्साह नहीं था। उन्होने अभिनन्दन के बाद जब अपने विचार व्यक्त किये तो उससे उनकी निस्पृहता, कर्त्तव्यशीलता और विषयभोगो से उदासीनता ही परिपक्व प्रतीत हुई। इस अभिनन्दन से कोई बडा नहीं होता अपितु जिनवाणी के अनुसार सार्थक साधना करने मे ही बढप्पन है यदि साधना सफल हो तो इससे बडा अभिनन्दन और क्या होगा। मै ऐसा ही अभिनन्दन चाहता हूँ।

पण्डितजी उदासीन होकर स्वाध्याय और सयम साधना मे अग्रसर होते रहे वे लगभग 25 वर्ष त्यागी व्रतियो मुनिराजो के साथ रहे। उदासीन आश्रम मे ही उन्होने अपना साधनामय जीवन व्यतीत किया। आयु के अन्त समय समाधिमरण की भावना से परिपूर्ण एव अत्यन्त सावधानीपूर्वक गृहीत व्रतो को पालते हुये शान्त परिणामो से 29 3 91 को उनका स्वर्गवास हुआ।

पण्डितजी के निधन के बाद आयोजित श्रद्धाञ्जलि सभा मे प्रान्तीय समाज, स्नातको, परिवारजनो, रिश्तेदारो ने विचार व्यक्त कर श्रद्धासुमन समर्पित किये। सभी की राय थी कि पण्डितजी के कार्यों का मूल्याकन करने के लिये स्मृति ग्रन्थ निकाला जाये। डॉ दरबारीलालजी कोठिया बीना (म प्र), डॉ राजारामजी जैन आरा (बिहार), श्री कुन्दनलालजी जैन देहली, प्रो भागचन्दजी भागेन्दु आदि विद्वानो ने भी स्मृति ग्रन्थ निकालने की विशेष प्रेरणा की। डॉ कोठिया ने तो यहाँ तक लिखा कि स्व पण्डित गोरेलालजी शास्त्री की सेवाये स्व क्षुल्लक चिदानन्दजी से कम नहीं हैं। पण्डितजी के परिवारजनो एव शिष्यजनो की प्रबल भावना तो थी ही अत सामग्री सकलन एव अर्थसग्रह कैसे हो की योजना बनती रही तथा जब 29 3 92 को श्री धर्मचन्द मोदी की अगुवाई मे श्री सिघई जवाहरलालजी बडामलहरा की अध्यक्षता मे प्रथम स्मृति दिवस का आयोजन हुआ तो सर्वसम्मति से स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन का निर्णय ले लिया गया। श्री वैद्य दामोदरदासजी घौरा के सयोजन मे अर्थसग्रह समिति बनी उपस्थित लोगो ने अर्थ सहयोग की भावनाये भी

व्यक्त की। प्रमुख विद्वानो ने इस निर्णय की सराहना कर हमे उत्साहित किया। वाराणसी से प्रो खुशालचन्दजी गोरावाला ने अपने पत्र मे लिखा "पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के स्मृति ग्रन्थ को मै अवश्य लिखूँगा क्योकि एक निष्ठा, मौन सेवा एव ख्यातिलाभ पूजोपेक्षा के दर्शन तो उन्हीं मूल साधको मे होते हैं जो स्वय धूल मे रहकर शाखाओ रो सभी को फलफूल देते है। गुरुवर पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी के परम शिष्यो मे पण्डित दयाचन्दजी, पन्नालालजी के बाद पण्डित गोरेलालजी ही थे।"

पण्डितजी के स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन का स्वागत तो सभी तरफ से हुआ किन्तु समर्पित भाव से काम सभालने वाले व्यक्ति के अभाव मे काम आगे नहीं बढ पाया समय भी बहुत बीत गया जिससे स्नातको को चिन्ता होना स्वाभाविक था। अत कई स्नातको एव सबधियो ने मुझ पर दबाव बनाया और कहा कि आप पण्डितजी के पुत्र तो है ही शिष्य भी हैं अत प्रकाशन का दायित्व अब तुम्हे ही सभालना है। अन्यथा स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन का निर्णय साकार नहीं हो सकेगा। सबके आग्रह एव पिताजी के प्रति अपनी निष्ठा के कारण हृदयाघात की अस्वस्थता मे भी मैने पिताजी की पुण्यतिथि 29 3 97 पर सकल्प कर निश्चय किया कि अगली पुण्यतिथि 29 3 98 तक ग्रन्थ का लोकार्पण हो जाये।

मैने अपने सकल्पानुसार तत्काल साधारण पत्राचार प्रारम्भ किया जो आश्वासन मिले उससे उत्साहित हुआ। कार्य को और गति मिले इसलिये विधिवत् श्री पण्डित विजयकुमारजी साहित्याचार्य, श्री महावीरजी, श्री नरेन्द्रकुमार जैन, अध्यक्ष सस्कृत विभाग, महामाया राजकीय महाविद्यालय श्रावस्ती और मैं (कमलकुमार जैन छतरपुर) इन तीन सदस्यो की सयोजन समिति तथा श्री लक्ष्मणप्रसाद जैन पूर्व प्राचार्य, बडामलहरा, श्री चन्द्रभानजी घोरा एव श्री प्रेमचन्दजी कालोनाइजर छतरपुर इन व्यक्तियो की अर्थ सग्रह समिति का गठन किया गया। सभी की सलाह से पण्डितजी के बारे मे सक्षिप्त जानकारी हेतु फोल्डर छापा गया विद्वानो, समाज सेवियो, श्रेष्ठिजनो व स्नातको से सस्मरण, श्रद्धासुमन आलेख आदि मगाये गये। अर्थ सग्रह हेतु स्थान-स्थान पर भ्रमण किया। पण्डितजी के परिवारजनो, रिश्तेदारो एव स्नातको से अर्थ सहयोग प्राप्त करने की प्रमुखता रही। अन्य लोगो ने भी स्वेच्छा से सहयोग किया। अर्थसग्रह हेतु मैंने श्री डॉ नरेन्द्रकुमारजी जैन, श्रावस्ती (उ प्र) के साथ बडामलहरा, भँगवा सिमरिया, घोरा, मढावरा, शाहगढ आदि स्थानो पर जाकर प्रयास किया तो सर्वत्र आशा से अधिक सहयोग मिला। श्री लक्ष्मणप्रसादजी बडामलहरा, श्री चन्द्रभानजी घौरा, श्री सुन्दरलालजी ककरवाहा, श्री शीलचन्दजी शिक्षक द्रोणगिरि ने सक्रिय होकर अपना पूर्ण सहयोग हमे दिया। स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन के लिये अर्थसग्रह अत्यन्त आवश्यक प्रक्रिया थी क्योकि इसके बिना स्मृति ग्रन्थ निकालना असभव था। हमे प्रसन्नता है कि यह कार्य अत्यन्त सरलता से हुआ जिसके भी पास गये उसने पण्डितजी के व्यक्तित्व से अभिभूत-कृतार्थ हो सहर्ष अपनी राशि लिखाई, प्रदान की। हम उन सभी महानुभावो, सस्थाओ आदि के आभारी है जिन्होने अर्थदान देकर इस ग्रन्थ के प्रकाशन को सफल बनाया। यहाँ सभी को व्यक्तिश धन्यवाद ज्ञापन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। सस्थाओ मे प्रबन्ध समिति श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र ट्रस्ट द्रोणगिरि,, श्री कर्मयोगी भट्टारक चारुकीर्तिजी श्रवणबेलगोल मठ एव श्री एस डी जे एम आई मेनेजिग कमेटी श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) तथा श्रीमती प्रमोद जैन सचालिका सन्मति विद्या मदिर छतरपुर का उल्लेख किये बिना मैं नहीं रह सकता क्योकि इनका अर्थ सहयोग तो है ही भावनात्मक लगाव और उत्तरदायित्व भी रहा है। सचमुच स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन का दायित्व यदि इन्हे दिया जाता तो उसे यह सहर्ष पूरा करते। परम सम्माननीय भट्टारक कर्मयोगी श्री स्वामी चारुकीर्तिजी ने इस ग्रन्थ का सरक्षक होना स्वीकार कर पण्डितजी जैसे सुयोग्य साधक एव उदासीनवृत्ति सम्पन्न विद्वानो का गौरव बढाया है एतदर्थ हम श्री भट्टारकजी के अत्यन्त आभारी हैं।

सामग्री सकलन एव अर्थसग्रह से भी कठिन कार्य था सामग्री को ग्रन्थ के क्रमानुसार व्यवस्थित करना, जो मुझ जैसे अनुभवहीन को तो बहुत मुश्किल था। मुझे खुशी है कि इस कार्य मे माननीय डॉ भागचन्दजी भागेन्दु, दमोह का मार्गदर्शन मिला। भाई श्री डा नरेन्द्रकुमारजी श्रावस्ती, श्री लक्ष्मणप्रसादजी प्रशान्त सागर, श्री डॉ श्रीयाशकुमारजी सिघई, जयपुर एव श्री डॉ ऋषभचन्दजी फौजदार वैशाली के योगदान को यहाँ विस्मृत नहीं किया जा सकता। मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्री अजितकुमारजी ने पण्डितजी की अलभ्य हो गई रचनाओ को तलाशने का महत्वपूर्ण कार्य किया है यद्यपि अभी जैन गारी सग्रह को ढूढने मे पूर्ण सफलता नहीं मिली है, जो चिन्ता की बात है। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती प्रभा जैन, पुत्र श्री निरजन, राजीव, पकज एव बहू श्रीमती अवधेश ने हर तरह से अनुकूलताये मुझे दी। जिससे हृदयाघात जैसी रुग्णावस्था मे भी मै स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन का श्रम कर पाया हूँ। अत इनके प्रति भी आभार ज्ञापित करने मे मुझे प्रसन्नता हो रही है।

जयपुर मे मेरी पुत्री श्रीमती प्रमिला एव पुत्र पीयूष रह रहे है। अत जयपुर से ही ग्रन्थ के प्रकाशन का निर्णय मैने लिया। मुझे पूर्ण सतोष है कि हमारे दामाद श्री डॉ श्रीयाशकुमार सिघई, अध्यक्ष जैनदर्शन विभाग, केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ जयपुर, ने सारी सामग्री को पढकर उसमे आवश्यक सशोधन-परिवर्तन कर सम्पादन से लेकर प्रूफरीडिग तक का सारा कार्य सम्पादित किया है। बिटिया प्रमिला ने हमारी सारी व्यवस्थाओ का ध्यान तो रखा ही ग्रन्थ समय पर निकल सके इसका भी पूरा-पूरा प्रयास किया है। बी एड करने त्रिचूर (केरल) चले जाने पर भी पीयूष का योगदान प्रेस का निर्णय करने मे रहा ही है। श्री अखिल बसल, प्रिन्टोमैटिक्स, जयपुर ने ग्रन्थ को आकर्षक बनाने एव सुन्दर शुद्ध मुद्रण के कार्य को निभाया है अत वे भी धन्यवाद के पात्र है।

हम अपने सकल्प को समय पर तो पूरा नहीं कर पाये पर सतोष है कि विलम्ब बहुत अधिक नहीं हो पाया और हम 1998 मे ही इसका लोकार्पण कर स्नातको, सामाजिको की भावना को पूरा कर पा रहे है। मै यहाँ पण्डितजी के उन स्नातको का उल्लेख किये बिना नहीं रह पा रहा हूँ जिन्होने पण्डितजी के अभिनन्दन ग्रन्थ या स्मृति ग्रन्थ विषयक कार्य को पूरा करने के प्रयास किये थे किन्तु ग्रन्थ छपने के पूर्व ही उनका स्वर्गवास हो गया। उनमे कुछ है – श्री डॉ नरेन्द्र विद्यार्थी छतरपुर, श्री वैद्य दामोदरसादजी घौरा, श्री रतनचन्दजी जैन कानपुर एवं श्री शीतलप्रसादजी फौजदार बडामलहरा इनके अलावा भी बहुत से शिष्य है, जो स्मृति ग्रन्थ को देखना चाहते थे, जिनका अकल्पित वियोग हुआ है। ऐसे सभी स्नातको को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के अलावा अब कोई उपाय मेरे पास नहीं है। ग्रन्थ तो वे देख नहीं पाये भवितव्यता के आगे किसका वश है।

अंत मे मै पुन उन सभी का आभार स्वीकार कर उन्हे प्रणाम करता हूँ, जिन्होने प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से हमे सहयोग देकर प्रेरित व उत्साहित किया है। सभी का मगल हो, समाज समृद्ध होवे और विद्वज्जनो एव मुनिवरो का सहारा बना रहे, इस भावना के साथ विराम लेता हूँ।

विनम्र

कमलकुमार जैन, सयोजक

छपते—छपते

डॉ भागचन्द जैन भागेन्दु, दमोह द्वारा स्मृति ग्रन्थं प्रकाशन हेतु 501/– का सहयोग प्राप्त हुआ।
एतदर्थ धन्यवाद – प्रकाशक

सम्पादकीय

सम्पूर्ण विश्व मे मानव जीवन के अन्तर्गत सामाजिक अवधारणा का अपना मूल्य है। मूल्य भी इतना कि उसके बिना मानव जीवन की कल्पना ही नहीं हो सकती। मनुष्य सचमुच ही नितान्त सामाजिक प्राणी है, जो अपनी अभिरुचियो और सस्कारो के बल पर परस्पर साथ–साथ रहा करते है, सगठित होते हैं और हर क्षेत्र मे विकास की ओर अग्रसर होना चाहते है। उनके अपने दायरो में यह संगठन ही समाज कहलाता है। सगठित लोगो की अभिरुचियों, सस्कारो आदि की भिन्नता के कारण ही भिन्न–भिन्न समाजो की सृष्टि होती है। समाज भिन्न–भिन्न भले हो पर उद्देश्य तो सबका एक ही प्रतीत होता है, वह है – "परस्पर एकजुट – सगठित रहकर अपने सामजिक, सास्कृतिक एव आभ्युदयिक कर्त्तव्यो–उत्तरदायित्वो का निर्वाह करना"। इस प्रकार हर समाज का अपना औचित्य एव महत्त्व है।

मेरा मानना है कि समाज की सजीवनी का स्रोत बुद्धिजीवी विद्वान् होता है। समूचे शरीर मे जो महत्त्व मस्तिष्क का है ठीक वही महत्त्व समाज मे बुद्धिजीवी विद्वान् का होता है। जैसे मस्तिष्क विहीन शरीर का जीवन बेकार या बोझिल होता है वैसे ही विद्वान् विहीन समाज का अस्तित्व भी भार स्वरूप और जीवन मूल्यो के पतन का कारण होता है। अपना अहित या पतन कौन चाहता है ? कोई नहीं, समाज भी नहीं। इसलिये हर समाज या सामाजिक का कर्त्तव्य है कि वह अपने मस्तिष्क की सुरक्षा के ही समान विद्वानो–बुद्धिजीवियो का सरक्षण करे। इतिहास साक्षी है कि जिस समाज ने विद्वानो–बुद्धिजीवियो का समादर कर उनके ज्ञान वैभव एव सदाचार सस्कारो का सदुपयोग किया है वह सदैव ही उत्कर्षोन्मुख रहा है यह बात आज भी अनुभव की कसौटी पर खरी उतरती है।

भारतीय सस्कृति की मूल धारा मे विश्व बन्धुत्व, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शान्ति, सदाचार, परोपकार आदि का समावेश है। जैन सस्कृति और उसके धार्मिक परिवेश ने इन सभी मूल्यो को उत्कर्षोन्मुख ही नहीं किया अपितु उनके उत्कर्ष को ही अपना जीवन साबित कर दिया है। जिओ और जीने दो की सांस्कृतिक धारा इसका प्राण है तो 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' का मत्र इसके जीवन को लोकोपकारी और व्यावहारिक धरातल प्रदान कर देता है। जैन सस्कृति विश्व बन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत तो है ही, समता–समानता के सिद्धान्त को भी उजागर करती है। जिससे भोगविलासिता शून्य शान्ति को प्राप्त करने का मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है। जैन सस्कृति का अनुसर्ता गृहस्थ हो या साधु उसे अपने–अपने दायरो मे सावधानतया अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह (अमूर्च्छित भाव) को अपनाना ही होता है। अहिंसादि इन पाचो मूल्यों के बिना न तो जैन सस्कृति सरक्षित–सुरक्षित रह सकती है और न ही कोई धर्मानुसर्ता अपने अभियान मे सफल हो पाता है। यदि कहा जाय कि अहिसा, सत्य आदि के बिना जैनत्व की कल्पना गधे के सींग के समान है तो यह कथन सो फीसदी सही है क्योकि जैनत्व जहॉ है वहॉ अहिसा सत्य आदि का होना आवश्यक हो जाता है। जैनत्व का अनुसरण किये बिना कोई भी सचमुच का जैन नहीं हो सकता है। जैन होने के लिये जीवन मे अहिसा, सत्य आदि मूल्यो का समावेश अत्यत जरुरी है इस प्रकार जेन सस्कृति और जैनधर्म का अनुपालन–अनुसरण करने वाली जैन समाज भारतीय सास्कृतिक धारा का अभिन्न व एक

महत्त्वाधायी अग है, यह प्रतीति असदिग्ध हो जाती है।

आज भी जैन समाज का अपना गौरव है कुछ आपवादिक सन्दर्भों को छोड दे तो भौतिक व अध्यात्मिक मूल्यो की प्रास्थिति और सरक्षण यहॉ है। समाज के इस गौरव को बनाये—बचाये रखने मे जैन मुनियो एव विद्वानो का महनीय योगदान है। पूज्य मुनिवरो ने यदि सामाजिको को व्रताचरण की ओर उन्मुख किया है तो जैन विद्वानो ने उनके अज्ञानान्धकार को दूर किया है। दोनो ने ही समाज को सदाचार और सद्ज्ञान की मजबूती प्रदान की है। धन्य है वे मुनिवर और विद्वान् जिनकी स्व—पर कल्याणकारी साधना से समाज उपकृत होता है। उपकार को भूल पाना सभ्य सामाजिको के लिये सभव नहीं होता अत एव उनकी प्रेरणा से समाज अपने उपकारी का यथोचित बहुमान—सम्मान, सत्कार—जयकार आदि अवश्य ही किया करती है। ऐसा करना समाज का कर्त्तव्य भी होता है। यह प्रसन्नता की बात है कि जैन समाज ने सदा ही अपने उपकारी मुनिवरो की पूजा—उपासना और विद्वज्जनो का समादर—अभिनन्दन आदि किया है। प्रस्तुत स्मृति ग्रथ का प्रकाशन भी समाज की ओर से किया गया एक ऐसा ही कर्त्तव्य प्रस्तुत हुआ है जिसके द्वारा सामाजिको ने अपनी आस्था के केन्द्र गुरुवर्य पण्डित गोरेलालजी शास्त्री, द्रोणगिरि को अपने श्रद्धा सुमन समर्पित किये है और उनके व्यक्तित्व को उजागर कर जैनत्व, विद्याव्यसनता, सदाचारशीलता और व्रत—चारित्र की गरिमा से नई पीढी या अधुनातन जैन समाज को परिचित कराने का महनीय पुण्य कार्य किया है।

पडित गोरेलालजी शास्त्री बुन्देलखण्ड की माटी के ऐसे सपूत साबित हुये है जिन पर बुन्देलखण्ड ही क्यो समूचा राष्ट्र एव जैन समाज ही क्यो समूची मानव जाति गौरव का अनुभव कर सकती है। पण्डितजी के अवदान का मूल्य कोई कैसे चुका सकता है। क्या विद्या का दान देने वाले से कोई उऋण हो सकता है? नहीं, कदापि नहीं।

जब हमारा देश स्वतत्र हुआ था तब तक पूज्य पडितजी ने अनपढ समाज और अबोध बालको को विद्यादान देने मे अध्यापक जीवन के लगभग 20 वर्ष पूरे कर लिये थे तथा उनके द्वारा दी गई शिक्षा किताबी ज्ञान मात्र नहीं थी गुरुकुल शैली मे छात्रो से दिन—रात जुडे रहकर उनके जीवन को पारस बनाने वाली थी। वे आजीवन अध्ययन अध्यापन के कर्त्तव्य मे नि स्वार्थ भाव से लगे रहे धनार्जन का लोभ उन्हे था ही नहीं, यशस्कामना से तो वे कोसो दूर रहे। उनका सारा जीवन समाज सेवा और विद्यादान के पुनीत कर्त्तव्य से परिनिष्ठित रहा है। वे प्रात स्मरणीय परमपूज्य क्षुल्लक श्री गणेशप्रसादजी वर्णी के उन प्रमुख अनुयायियो—शिष्यो मे से थे जिन्होने वर्णीजी के आदेश—उपदेश का फायदा अपने जीवन की प्रयोगशाला मे प्रयोग करके उठाया। पूज्य वर्णीजी के आदेश—निर्देश से उन्होने लगभग 36 वर्ष तक उनके ही द्वारा सस्थापित श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय, द्रोणगिरि मे अध्यापन कर ज्ञानदान के व्रत का निर्वाह किया।

पडितजी का पूरा जीवन अनुकरणीय माना जा सकता है। उन्होने बालवय मे प्रतिकूलताओ के बीच ज्ञानार्जन का मार्ग खोज लिया और सुयोग्य विद्वान् बनकर आजीवन समाज सेवा, ज्ञानदान आदि के कार्य करते हुये सद्गृहस्थ की भूमिका मे श्रावक के कर्त्तव्यो का निर्वाह किया। अपने श्रावकीय कर्त्तव्य निर्वहण मे उनकी सच्चे देवशास्त्र गुरु के प्रति निष्ठा खूब फली—फूली वे नियमित देवपूजन, स्वाध्याय,

सामायिक एव धार्मिक व्रतो का परिपालन करते थे। जब बुढापा आने लगा तो सावधान हो गये आजीविका सबधी सेवा कार्यों से निर्वृत्ति ले ली और उदासीन–अनासक्त भाव से घर छोडे बिना भी त्यागियो–व्रतियो के साथ रहने लगे। मनुष्य जीवन का अत भला तो सब भला की उक्ति का अनुसरण कर यथाशक्य सयम की साधना के लिये लगभग 25 वर्ष वे उदासीन आश्रम मे रहे और साधना–मय जीवन जीकर उन्होने बुढापे को बोझ नहीं बनने दिया। 80–85 वर्ष की उम्र मे भी उनकी जीवन शैली अत्यत आदर्श व स्वाधीन रही, कहीं कोई शैथिल्य धार्मिक चर्या मे नहीं आने पाया। अत समय तक वे जागरुक रहे तथा धर्मानुराग और लिये गये व्रतो को उन्होने नहीं छोडा।

आज पडित गोरेलाल जी शास्त्री भले न हो पर उनका महनीय व्यक्तित्व तो लोगो के स्मृति पटल पर है, जो ज्ञान एव चारित्र की साधनामय गरिमा–महिमा को उजागर करने मे समर्थ है। यह स्मृति ग्रथ उनके व्यक्तित्व को स्थायित्व प्रदान कर सकेगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

पडित श्री गोरेलालजी शास्त्री पुरानी पीढी के उन सुयोग्य विद्वानो मे से एक थे जिन्होने जिनवाणी की आराधना स्व–पर कल्याणार्थ की पण्डितजी ने जिनवाणी के रहस्य को तो अपने जीवन मे उतारा ही साथ ही साथ अपना मूल्याकन करते हुये अन्तरोन्मुखी आत्म साधना के कर्त्तव्य को प्रमाद व शैथिल्य के विकारी बैक्टीरिया से भी बचाया। उनकी पावन स्मृति को चिरजीवी बनाने के अभिप्राय से उनके शिष्यो व सामाजिको ने पडित जी के व्यक्तित्व पर एक स्मृति ग्रथ प्रकाशित करने का निर्णय लिया था, प्रक्रिया भी चली उसे सफल बनाने की प्रकाशक सामग्री का सकलन हुआ, समितियॉ बनीं, अर्थसग्रह भी हुआ, सभी कुछ सहजता–सरलता से होता रहा, यहॉ तक मेरी भूमिका नगण्य रही। स्मृति ग्रथ के लिये मुझे भी पडित जी और जैन तत्त्व के बारे मे कुछ लिखना है – यह निर्देश था। तदनुसार ही स्मृति ग्रथ के लिये लिखूगा – ऐसा मैने मन बनाया था अपने मन की भावना के अनुरूप मैने लिखा भी है मुझे यह कल्पना नहीं थी कि इस ग्रथ का सम्पादन भी मुझे करना होगा। हुआ यह कि श्री कमलकुमार जी जैन छतरपुर, जो मेरे श्वसुर साहब है, हृदयाघात की बीमारी से पीडित–अस्वस्थ थे। उन्होने सोचा ग्रथ जयपुर से ही छप जायेगा तथा वहॉ आवश्यक चिकित्सकीय परीक्षण–जॉच वगैरह होकर इलाज भी हो सकेगा इसलिये वे सारी सामग्री लेकर जयपुर आ गये।

ग्रथ के प्रकाशन के लिये प्रेस आदि तय करने के लिये प्रयत्न हुआ। तथा सारी सामग्री देख–सम्पादित कर प्रेस मे देने, छपाने का दायित्व मुझे सौपा गया। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रथ के सम्पादन का गुरुत्तर उत्तरदायित्व मुझे दिया गया।

जो सामग्री मुझे दी गयी थी उसमे से चयन करना मुझे कठिन लग रहा था काफी विचार–विमर्श के बाद यह निष्कर्ष रहा कि पडितजी से सम्बन्धित सामग्री ही प्रस्तुत ग्रथ मे देनी चाहिये। इसके दो हेतु थे पहला यह कि जिस सामग्री का योगदान पडित जी के व्यक्तित्व कर्तृत्व का स्मरण कराने मे हो उसे ही स्मृति ग्रथ मे छापना समीचीन है। तथा दूसरा है – सीमित अर्थससाधन का होना। आशा है कि प्रबुद्धजन हमारे इस निर्णय से सहमत होगे तथा जिस सामग्री को ग्रंथ मे प्रकाशित करने मे हम असमर्थ रहे है उसके विद्वान् लेखकगण हमे अवश्य ही क्षमा कर कृतार्थ करेगे। पण्डितजी की स्मृति को तरोताजा करने हेतु हमने यहॉ

केवल पण्डितजी तथा उनके प्रेरक आदर्श एव कार्य स्थल विषयक चित्रो को ही देना उचित समझा है। लेखको, परिवारजनो–परिचितो के चित्र प्रकाशन करने मे भी हम असमर्थ रहे है।

मुझे ज्ञात हुआ है कि पडित श्री गोरेलालजी शास्त्री के स्मृति ग्रथ को प्रकाशित करने के लिये प्रमुख प्रेरणा स्रोत वयोवृद्ध विद्वान् एव पडित जी के निकटतम सम्पर्की माननीय न्यायाचार्य डॉ दरबारीलाल जी कोठिया बीना (पूर्व रीडर जैन बौद्ध विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी) तथा प्रो॰ खुशालचद्र जी गोरावाला वाराणसी रहे है। मैं उनकी इस स्तुत्य प्रेरणा के लिये उनका आभारी तो हूँ ही उन्हे सादर प्रणाम भी करता हूँ क्योकि यदि यह ग्रथ नहीं छपता तो स्व॰ पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के बारे मे मै अनभिज्ञ ही रहता यद्यपि वे मेरे बाबा ससुर सा॰ थे तथापि मुझे उनके इस विशाल व्यक्तित्व का अनुमान नहीं था।

डॉ॰ भागचद्र भागेन्दु, पूर्व अध्यक्ष, सस्कृत विभाग शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय दमोह, जो अभी राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन शोध सस्थान श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) के निदेशक है, ने अपना महत्त्वपूर्ण समय देकर इस ग्रथ के लिये प्राप्त सामग्री को व्यवस्थित–वर्गीकृत करने व सम्पादन करने मे महत्त्वपूर्ण निर्देश देकर हमे कृतार्थ किया है। विद्वानो के अभिनन्दन–स्मृति ग्रथो का सम्पादन करने मे आपके असीम अनुभव का लाभ हमे मिला है जिसके बल पर ही यह ग्रथ इस उपयोगी स्वरूप मे आप तक पहुँच पा रहा है। मुझे इसकी खुशी है कि आदरणीय डॉ॰ साहब का आशीर्वाद मुझे मिला। डॉ॰ नरेन्द्रकुमार जैन अध्यक्ष, सस्कृत विभाग राजकीय महामाया महिला महाविद्यालय श्रावस्ती (उ॰ प्र॰) का योगदान भी भुलाया नहीं जा सकता है उन्होने इस ग्रथ के लिये बनायी गयी सयोजन समिति मे रहकर अर्थ सग्रह व सम्पादन मे अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया है। यहॉ मै पूज्य पडित जी के तृतीय पुत्र श्री कमल कुमार जी जैन का उल्लेख भी अवश्य करना चाहूँगा जिन्होने अपने पिताजी के अनन्य उपकारो की भावना से भरकर सामग्री सकलन, अर्थसग्रह आदि का कार्य रुग्णावस्था मे किया। उनके ही श्रम एव लगन के परिणाम स्वरूप यह ग्रथ हमे उपलब्ध हो पा रहा है।

इस प्रकार प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से जिन–जिन का भी सहयोग मुझे मिला उनके आशीर्वाद व निर्देश से ही प्रस्तुत ग्रथ को मैं सुरुचि पूर्ण, सुन्दर, प्रवाहशील व उपयोगी बनाने मे सक्षम हो पाया हूँ तथापि मेरे प्रमादवश अज्ञानवश जो त्रुटिया इसमे हो विद्वज्जन उन्हे सुधारने की प्रेरणा व मार्गदर्शन प्रदान कर मुझे क्षमा करेगे, ऐसी मुझे आशा है। मेरा विश्वास है कि यह स्मृति ग्रथ स्व॰ पडित गोरेलाल जी शास्त्री की याद (स्मृति) को ताजा करेगा तथा हमे, आपको व सभी को रत्नत्रय की प्राप्ति के लिये प्रेरक होगा, जो हमारे लिये हितकारी है, और है पण्डित श्री गोरेलालजी शास्त्री के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि। शुभमस्तु।

विनीत

अष्टान्हिका पर्व
अक्टूबर 1998

— डॉ॰ श्रीयाशकुमार सिंघई
अध्यक्ष, जैनदर्शन विभाग
केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ जयपुर

□□□

आशीर्वाद

स्व. पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि का पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी द्वारा चलाए गए शिक्षा मिशन को सफल बनाने में बहुत बड़ा योगदान है। उन्होंने बुन्देलखण्ड प्रान्त में व्याप्त अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए अनेक शैक्षणिक, सामाजिक, आध्यात्मिक एवं सार्वजनिक कार्य अत्यन्त परिश्रम, निष्ठा और समर्पण भाव से किए हैं। समाज में व्याप्त कुरीतियों, विसंगतियों और मनोमालिन्य को दूर करने में भी उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह किया है।

अतः पण्डित गोरेलालजी की स्मृति में प्रकाशित हो रहे ग्रन्थ की सफलता के लिए मैं अपने मंगलाशीष प्रेषित करता हूँ।

– चारुकीर्ति भट्टारक स्वामीजी

पण्डित श्री गोरेलालजी शास्त्री के प्रेरणास्रोत आध्यात्मिक सन्त पूज्यश्री गणेशप्रसादजी वर्णी

स्वर्गीय पण्डित श्री गोरेलालजी शास्त्री

सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि की पुरानी धर्मशाला जिसमे विद्यालय का शुभारम्भ हुआ
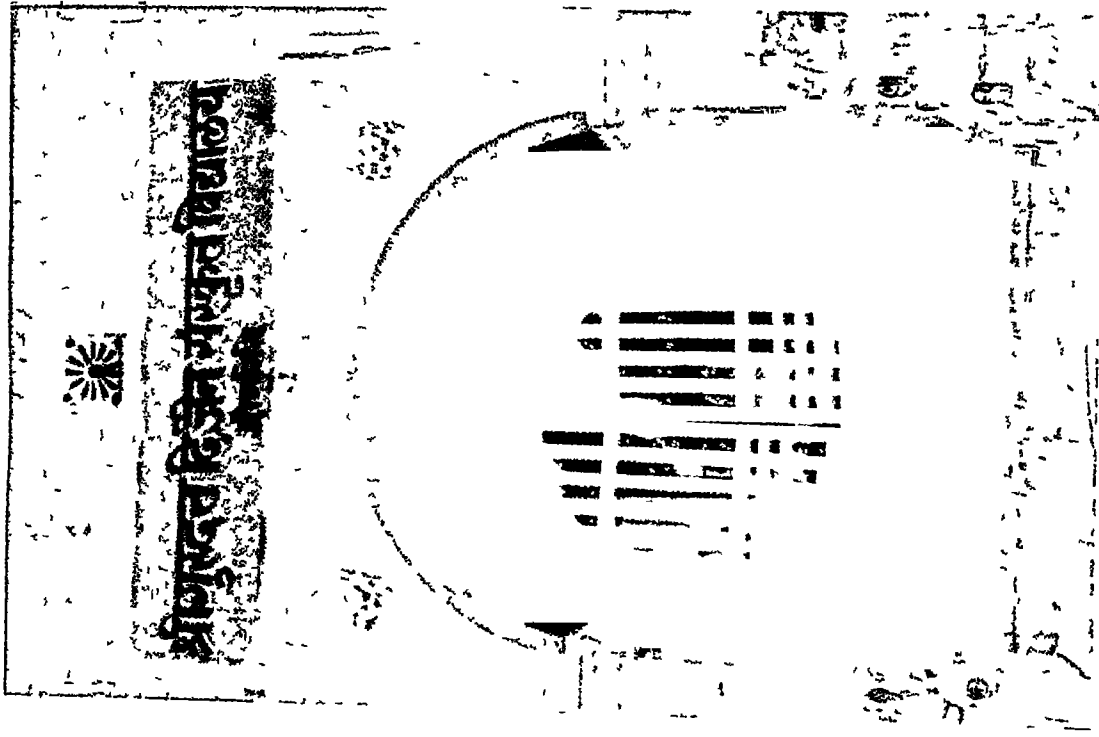
द्रोणगिरि विद्यालय का स्वतत्र भवन

ग्राम स्थित आदिनाथ जिनालय जिसमे पण्डितजी नियमित दर्शन पूजन करते रहे

स्वर्गीय पण्डित श्री गोरेलालजी का पारिवारिक गृह

स्व क्षुल्लक श्री चिदानन्दजी

ब्रह्मचारी श्री दयासिन्धुजी

स्वर्गीय पण्डित श्री गोरेलालजी
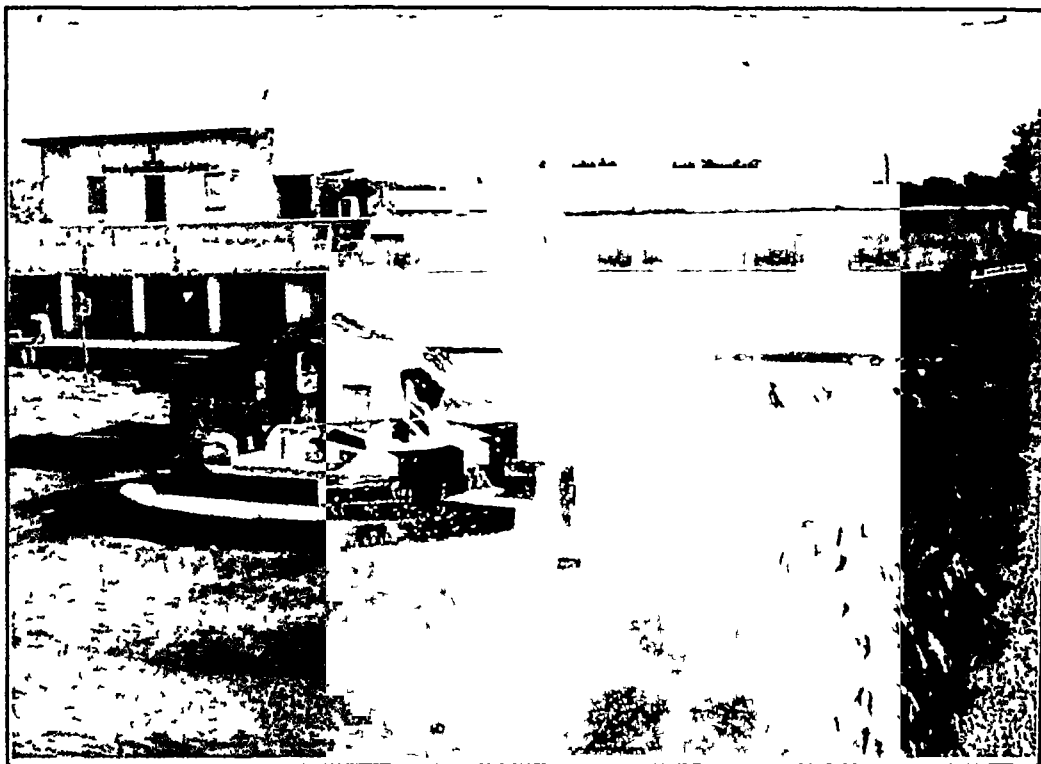
श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम द्रोणगिरि
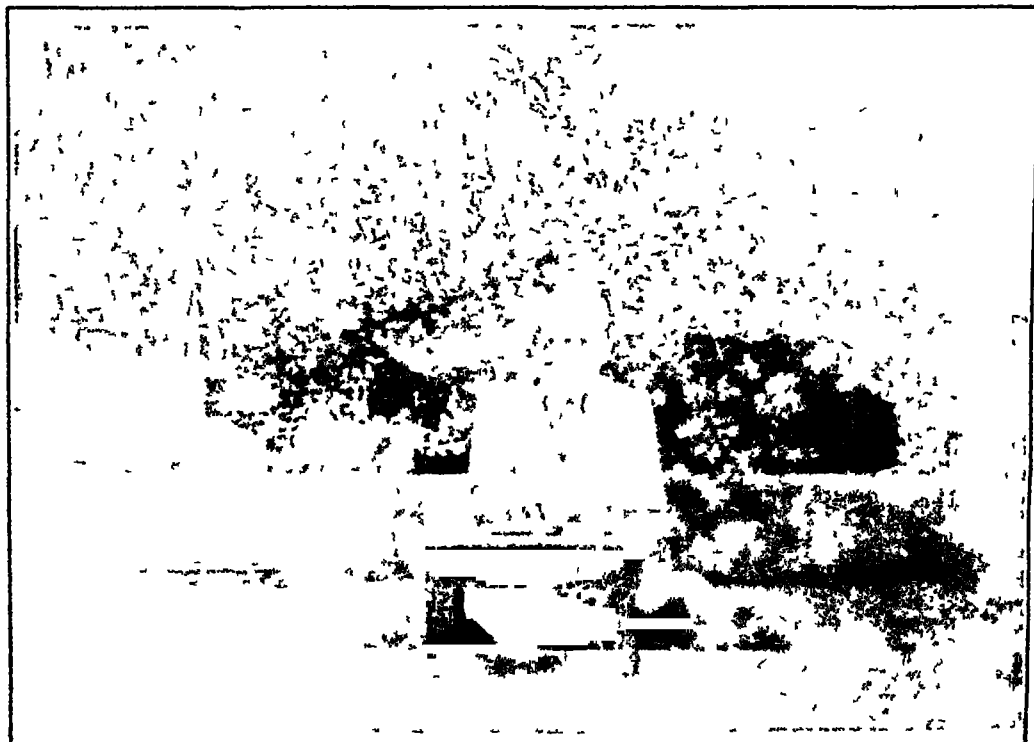
उदासीन आश्रम म स्वाध्याय करते हुये पण्डित श्री गारेलालजी
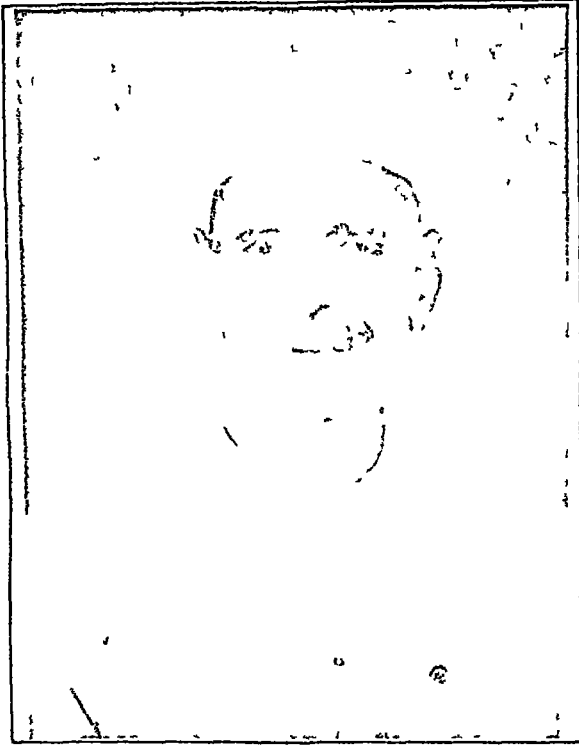
स्व पण्डित श्री गोरेलालजी

पण्डित श्री गोरेलालजी की धर्मपत्नी श्रीमती पूना बाई
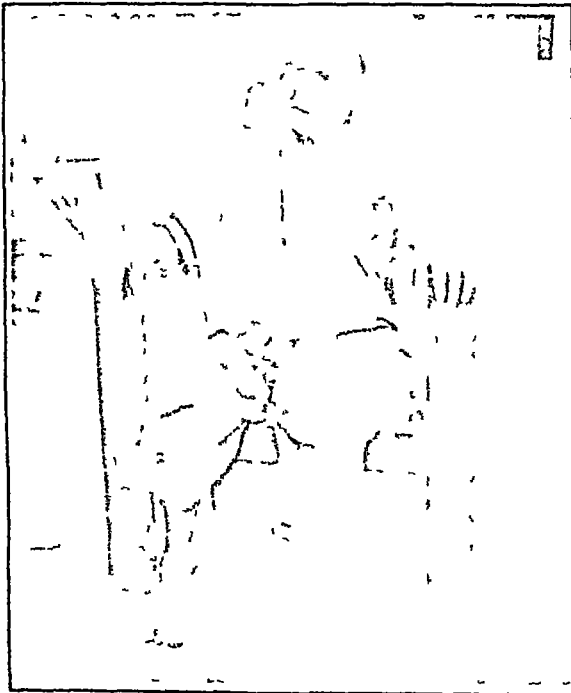
पण्डित श्री गोरलालजी की बडी बहिन
श्रीमती मथुराबाई
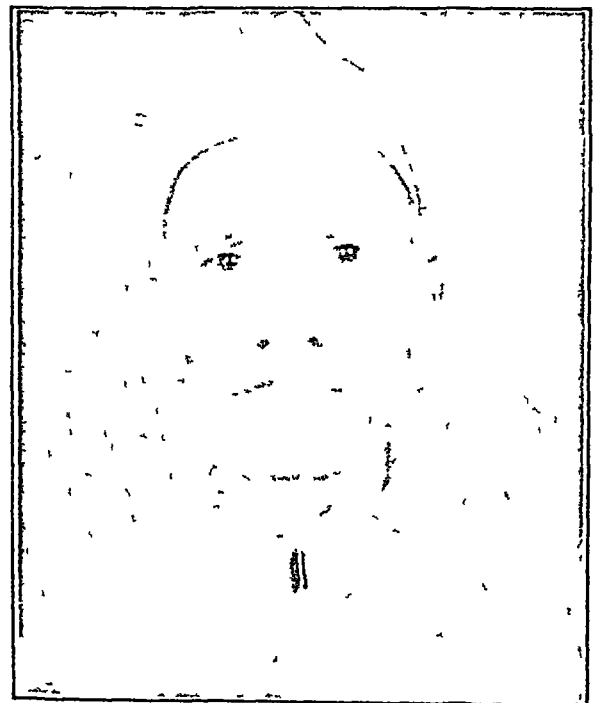
पण्डित श्री गोरेलालजी के विद्यागुरु
एव समधी स्वर्गीय पण्डित शीलचन्दजी

पण्डितजी की परिचर्या मे ब्रह्मचारिणी रामबाईजी

पण्डितजी की परिचर्या मे उनके परिवारजन

पण्डितजी की परिचर्या मे श्रीमती नन्नीबाईजी

1950 मे विद्यालय के शिक्षक एव अन्य सहयोगियो के साथ पण्डितजी
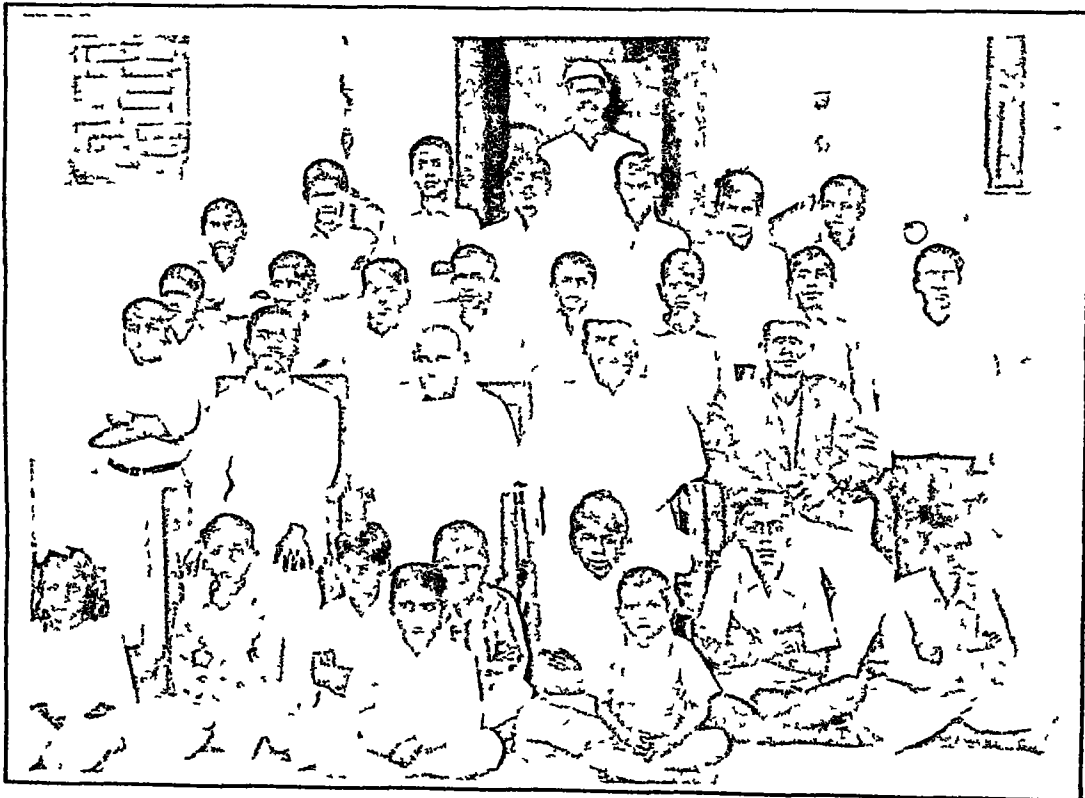
1972 मे विद्यालय परिवार के साथ पण्डितजी
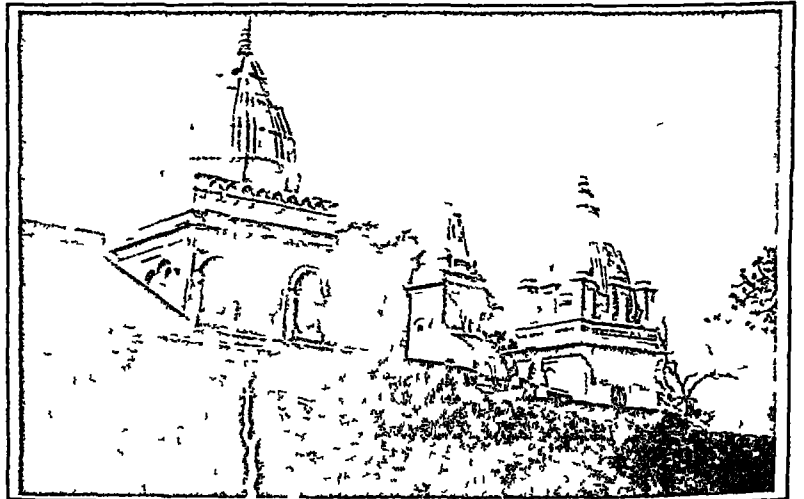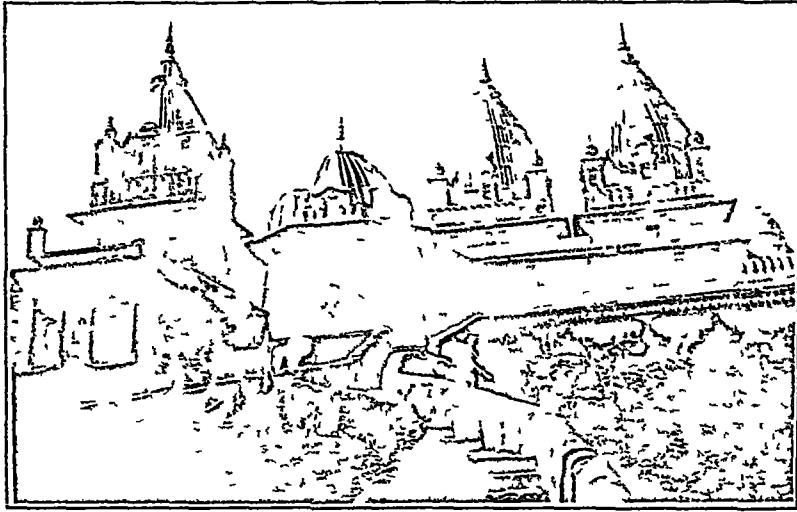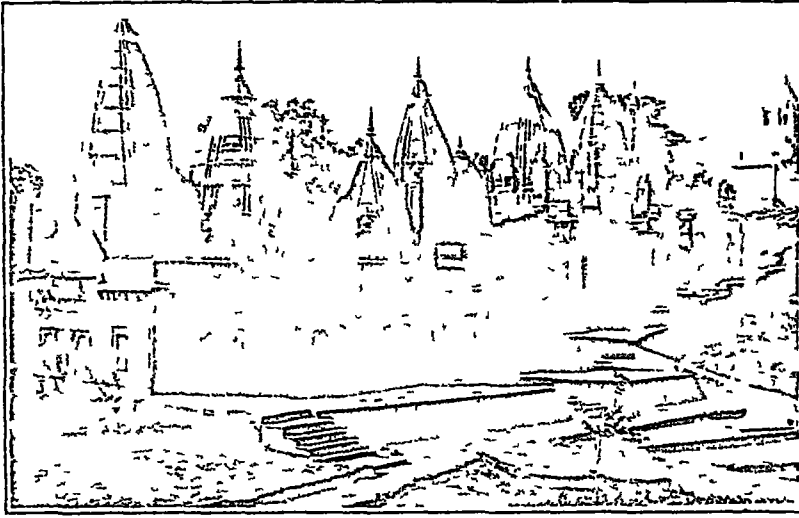
सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पर्वत पर स्थित जिनालये की अनुपम छटा

सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पर सम्पन्न पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव 1977 के अवसर पर प्रतिष्ठाचार्य मण्डल मे पण्डित श्री गोरेलालजी
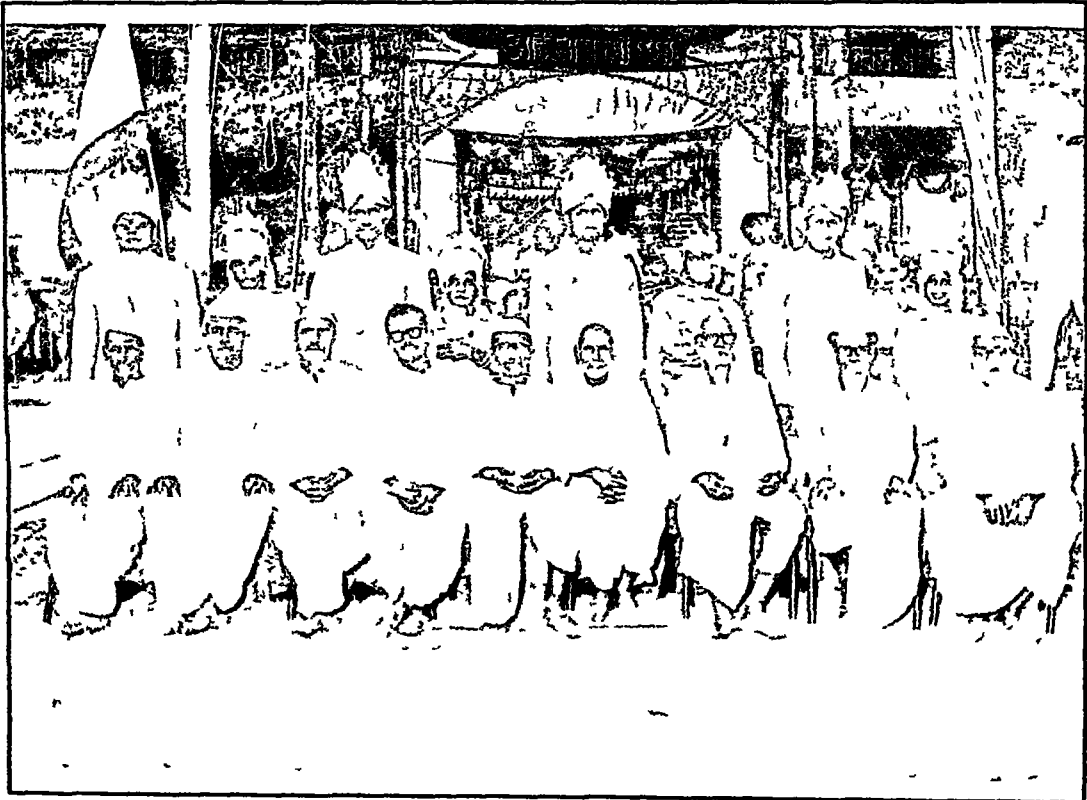
इन्द्र इन्द्राणियो एव विद्वानो के मध्य पण्डित श्री गोरेलालजी

विद्यालय के स्वर्ण जयन्ती समारोह मे श्रीमत सेठ भगवानदासजी पण्डितजी का अभिनन्दन करते हुये

अभिनन्दन के पश्चात् अपने विचारो को अभिव्यक्त करते हुये पण्डितजी

श्री पार्श्वनाथाय नमः ।

श्रीपार्श्वनाथ दि० जैन शांति निकेतन

(उदासीन आश्रम)

मु० पो०—ईसरी बाजार, (हजारीबाग)

पत्र संख्या ______ तारीख २४-१-१९६१।

श्रीमान् पं० गोरेलालजी महोदय

योग्य कल्याणभाजन हो।

पत्र मिला समाचार जाने। आपने
मेले के समय बहुत पुरुषार्थ किया
और उसका फल साक्षात् मिला- आगे
भी विद्यालय की योजना बनाई जो
बहुत अच्छा है। हमें प्रसन्नता हुई
इसका श्रेय आपको ही है।
ब्र० नाथूराम कहां हैं। वहां हो तो
आशीर्वाद कह देना।

आपके यहां का ब्र० गुणभद्र
यहीं है। हमारा स्वास्थ्य
वृद्धावस्था के अनुकूल है।

नोट—
विद्यालय की
उन्नति आगे
वृद्धि को प्राप्त हो
यही शुभ भावना है।

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

श्रीयुत महाराज पं. गोविन्दलालजी साहब योग्य
इच्छाकार विशुद्धि:

पत्र आया समाचार जाने — आप का अनुमान
सत्य है अतः अभी आप निश्चय लगाइए — यदि प्रशस्त होवे
दीजिए — उस प्रान्त में वहीं तो विद्यालय है तथा
आप उस प्रान्त की व्यवस्था जानते हैं — मेरी समझ
में तो आता है वहां कोई व्यक्ति या लिखित सिवाय
उनके लिए — सर्व छात्रों को आशीर्वाद
तथा पं. विजयकुमार जी से दर्शन विशुद्धि:

आ. शु. चि.
गणेशवर्णी

व्यक्तित्व
आकलन

मेरा जीवन मेरे शब्दों में

– पण्डित गोरेलाल शास्त्री

मेरा जन्म श्रावण शुक्ला 15 वि स. 1962 मे ग्राम सेंधपा मे हुआ। यह स्थान सम्पूर्ण भारत वर्ष में द्रोणगिरि के नाम से प्रसिद्ध है। गुरुदत्तादि मुनिवरो की साधना एवं निर्वाण स्थली होने के कारण साहित्य मे इसे सिद्धक्षेत्र का गौरव प्राप्त है। गिरिराज पर 28 जिनालय एवं मुनिवरो के लिए साधना–निर्वाण स्थली स्वरूप एक गुफा है।

सेंधपा द्रोणगिरि मे मेरा परिवार दो पीढियो से रहता है। हमारे बब्बा सिंघई वसुलाल थे। उनकी दो सन्ताने थीं। भूरेलाल एव गनपतलाल। मेरे पिता भूरेलाल की चार सन्ताने सर्वश्री बिहारीलाल, बल्देवप्रसाद, मै (गोरेलाल) एव बहिन मथुराबाई थीं। तथा काका श्री गनपतलालजी की दो सन्ताने, श्री मनप्यारे एवं श्री कालूराम थीं। ये दोनो भाई द्रोणगिरि छोडकर सागर चले गए। हमारे पिताजी का पूरा परिवार अपनी जन्मभूमि द्रोणगिरि में ही रह गया।

मेरी माँ रूपाबाई अत्यन्त सरल, परिश्रमी और सादगीपूर्ण थीं जो पास के गांव सतपारा की थीं। यद्यपि यह मेरा दुर्भाग्य रहा कि मुझे अपने माता–पिता का अधिक स्नेह नहीं मिला। मेरे बचपन मे ही माँ एव पिता का स्वर्गवास हो गया था। मेरा लालन पालन मेरे ज्येष्ठ भ्राता बिहारीलाल ने किया। उस समय सस्ते का जमाना था, खर्च सीमित थे परिवार मे सम्पन्नता नहीं थी। बजी भौरी कर छोटे से धन्धे से परिवार का पालन पोषण करते थे। पढ़ने के लिए कोई व्यवस्थित स्कूल नहीं थे। इससे मेरे परिवार मे अशिक्षा थी। मैने गाव के ही श्री नन्हेलाल माली से पाटी पर अक्षरज्ञान सीखा था।

मेरे बड़े भाई, मझले भाई अनपढ थे। बालिका शिक्षा तो उस समय थी नहीं इससे बहिन मथुराबाई भी अनपढ रहीं। मेरी पढने की रुचि प्रारम्भ से ही थी, लेकिन साधन नहीं थे। सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि मे प्राय दर्शनार्थ बाहर से यात्री आते रहते थे। तीर्थक्षेत्र की व्यवस्था के लिए प्रान्तीय समाज की एक समिति थी जिसके सभापति उस समय दानी, उदारमना सेठ श्री चन्द्रभानजी बमराना वाले थे। इन्होने साढूमल में धार्मिक शिक्षा हेतु जैन पाठशाला प्रारम्भ की थी। सेठ साहब तीर्थक्षेत्र की समय–समय पर व्यवस्थाओं के लिए होने वाली समिति की बैठको मे भाग लेने द्रोणगिरि अपनी बग्घी से आया करते थे। वि स 1977 मे द्रोणगिरि मे बैठक मे सम्मिलित होने के लिए सेठ साहब आये उस समय मेरी आयु 15 वर्ष के लगभग थी। सेठ साहब की दृष्टि मुझ पर पडी और उन्होने मुझसे पढने के लिए पूछा। मेरी इच्छा तो थी ही, साधन नहीं थे। मैनें तुरन्त हाँ कर दी उन्होने साढूमल विद्यालय मे भर्ती करने की बात की। बडे भाई साहब से जब मैनें पूंछा तो उन्होने मना कर दिया लेकिन मुझे अपनी तरक्की का मौका मिला और मै बिना पूछे ही घर से चलकर काठन नदी से दो तीन मील आगे निकल आया। मीटिग समाप्त कर सेठ साहब अपनी बग्घी पर सवार होकर चल दिए और तीन मील चलकर मुझे देखकर बग्घी को रोका और बडी प्रसन्नता से मुझे बग्घी मे बैठालकर आगे बढे। रास्ते मे सेठ साहब से चर्चा होती गई मै उस समय बहुत सकोची था बात भी कम करता था। सेठजी मुझसे बहुत प्रभावित थे। साढूमल पहुचकर उन्होने मुझे जैन पाठशाला मे भर्ती कर दिया उस समय मेरी आयु 15 वर्ष की थी। वैशाख वदी 9 वि स 1977 को मेरा प्रवेश हुआ और श्री पण्डित घनश्यामदासजी मेरे प्रथम गुरु बने। साढूमल मे मेर साथी छात्रो मे श्री प हीरालालजी, पन्नालालजी, गोपालदासजी, अमृतलालजी आदि थे। मैने साढूमल मे मनोयोग से अध्ययन किया मुझे एक–दो बार पढने

पर ही प्राय याद हो जाता था। उस समय विद्यालय में छात्रो के बीच प्रतियोगिताएं होती थीं, स्तोत्र, मोक्षशास्त्र आदि को कंठस्थ सुनाने पर पारितोषिक मिलता था। मैं प्राय. प्रतियोगिताओं मे भाग लेता और पारितोषिक प्राप्त करता था। यहाँ दो वर्ष अध्ययन करने के पश्चात् क्षेत्रपाल दिगम्बर जैन विद्यालय, ललितपुर मे डेढ़ वर्ष अध्ययन किया। यहाँ मेरे साथी पं. फूलचन्दजी, सिद्धान्तशास्त्री थे। मैं इन्हे व्याकरण पढाया करता था। मेरे अन्य साथियों मे पं. राजधरलालजी, व्याकरणाचार्य थे। इसके बाद श्री हुकमचन्द दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर में दो वर्ष अध्ययन किया। मेरे समय जैन सिद्धान्त के मनीषी विद्वान् श्री पं. जीवन्धरजी न्यायतीर्थ प्राचार्य तथा श्री पं. शम्भूनाथजी व्याकरणाचार्य थे। यहाँ दो वर्ष अध्ययन कर शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। अध्ययन कर मैं वापिस द्रोणगिरि आ गया। मैने अपना अध्ययन स्वयं की क्षमता पर किया। पढने मे रुचि होने के कारण प्राय कक्षाओं मे प्रथम आने के कारण अपने गुरुजनों का कृपापात्र रहा हूँ। इससे अध्ययन के समय खर्चपूर्ति की व्यवस्था होती रहती थी।

मेरे ज्येष्ठ भ्राता की शादी बौकना, मझले भाई की शादी कर्री तथा मेरी शादी सिमरिया हुई थी। ये सभी ग्राम द्रोणगिरि के आस पास हैं। मेरी बड़ी भाभी, मझले भाई और भाभी का स्वर्गवास कम आयु में हो गया था। इनके कोई सन्तान न थी मेरी एक बहिन थी मथुराबाई। जिसका विवाह भी पास के ग्राम बरमा में शाह धर्मदासजी, जो बाद मे बड़ामलहरा आ गए थे, से हुई थी।

द्रोणगिरि मे बड़े भाई, मैं और मेरा परिवार ही शेष था। बड़े भाई साहब अनपढ लेकिन व्यापार में दक्ष थे। स्वभाव से बहुत कड़े थे लेकिन हृदय बहुत कोमल था। मेरी पत्नी पूनाबाई भी अनपढ थी। पत्नी के दो भाई और दो बहिनें थीं। भाईयो मे सेठ प्यारेलालजी एव सेठ लखमीचन्दजी तथा बहिनो में पत्नी के अलावा सुशीलाबाई और नन्नीबाई थीं। सुशीलाबाई की शादी बरायठा के एक सम्पन्न परिवार में हुई थी लेकिन दाम्पत्य सुख ज्यादा समय का नहीं रहा। कच्ची उम्र मे ही उसके पति (मेरे साढू भाई) का निधन हो जाने के कारण सुशीला का जीवन अन्धकारमय हो गया। मैने भविष्य की सुरक्षा हेतु समझा बुझाकर सागर महिलाश्रम में भर्ती करा दिया और मैं देखभाल करता रहा। वह नार्मल कक्षा पास करने पर शिक्षा विभाग मे शिक्षिका बन गयी जिसके कारण उसका जीवन स्वावलम्बी बन गया। वे इस उपकार के लिए जीवनभर कृतज्ञ रहीं। तथा शासकीय सेवा से जुलाई 1987 मे सेवा निवृत्त हो गईं।

पूज्य वर्णीजी से मेरा बचपन से ही परिचय हो गया था वे प्राय द्रोणगिरि आते रहते थे। वि स 1983 (सन् 1926) में जब मै इन्दौर से अध्ययन कर वापिस द्रोणगिरि आया तो इन्दौर से सर सेठ हुकमचन्दजी का पत्र स्वय के जिनालय मे प्रवचन कार्य करने हेतु बुलावा (नियुक्ति पत्र) के रूप मे आया था। पढने का समुचित उपयोग और इन्दौर जैसे नगर मे बसने का मौका तथा स्वयं के उत्कर्ष के अनेको साधन उपलब्ध होगे, यह सोचकर इन्दौर जाने का मन बनाया, लेकिन समाज, रिश्तेदारों और घरवालो के विशेष आग्रहवश इन्दौर नहीं जा पाया। इसी बीच सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि मे एक पाठशाला को प्रारम्भ करने का प्रयास चला। वैशाख सुदी 7 वि स. 1985 (सन् 1928) को पूज्य वर्णीजी ने पाठशाला की स्थापना की और मुझे अल्प वेतन मे ही उस पाठशाला के सचालन का जिम्मा सौंपा। प्रान्तीय समाज का आग्रह और पूज्य वर्णीजी का आदेश स्वीकार कर पाठशाला का सचालन प्रारम्भ किया। पाठशाला का शुभारम्भ 4–5 छात्रो से हुआ। ग्राम मे कोई स्कूल न होने के कारण ग्राम के जैन–जैनेतर समाज के छात्रो ने पाठशाला मे प्रवेश लिया। धीरे–धीरे पाठशाला मे प्रान्तीय समाज के छात्र प्रवेश लेने लगे और कुछ समय बाद यह पाठशाला एक अच्छे सस्कृत विद्यालय के रूप मे सचालित होने लगी। बनारस की सस्कृत प्रथमा की परीक्षा उत्तीर्ण कर

यहाँ के छात्र गणेशवर्णी विद्यालय, सागर और स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी जाने लगे। इसप्रकार विद्यालय ने छात्रो को शिक्षित कर सैकडो विद्वान्, समाजसेवी, उद्योगपति, व्यापारी समाज को दिए। विद्यालय के स्थापना काल सन् 1928 से सन् 1964 तक विद्यालय का सफल संचालन किया। पूज्य वर्णीजी ने विद्यालय की स्थापना की और जहाँ भी रहे पत्रो द्वारा प्रगति की जानकारी लेते रहे और मुझे विद्यालय संचालित करते रहने की प्रेरणा देते रहे।

पूज्य वर्णीजी ने वि स 2001 सन् 1944 में द्रोणगिरि विद्यालय की एक शाखा बड़ामलहरा में गुरुकुल के रूप मे प्रारम्भ की और उसके संचालन का भार श्री मोहनलालजी शास्त्री बरायठा को सौंपा। सन् 1949 से 1953 तक मुझे भी गुरुकुल मलहरा का कार्य संभालना पड़ा।

सन् 1928 मे जब द्रोणगिरि विद्यालय में पढाना प्रारम्भ किया उस समय क्षेत्र का कार्य फौजदार परिवार संभालता था। मेरी नियुक्ति होने पर विद्यालय के कार्य के साथ–साथ तीर्थक्षेत्र का कार्य भी मुझे सौप दिया। छात्रो को पढाना, विद्यालय की व्यवस्था देखने के साथ ही तीर्थक्षेत्र की व्यवस्था, यात्रियों की सुविधा, जीर्णोद्धार का कार्य और सभी संस्थाओ के आय–व्यय रखना मेरा दायित्व हो गया। मेरे सर्विस काल मे जैन जाति भूषण दानवीर श्रीमान् सिघई कुन्दनलाल जी सागर एवं बाबू बालचन्दजी मलैया सागर क्षेत्र, विद्यालय एव गुरुकुल के सभापति व मंत्री थे। सिंघईजी के स्वर्गवास के बाद श्री सिंघई धर्मदास ड्योढिया मलहरा सभापति बने।

जैन सस्थाओ मे दिनरात पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी से अल्प वेतन मे कार्य करने वालों को संस्था के पदाधिकारियो द्वारा सम्मान मिलना तो कम देखा गया लेकिन मै इस सम्बन्ध मे अपवाद रहा हूँ। सन् 1928 से 1964 तक सम्मानपूर्वक विद्यालय सचालन एव क्षेत्र का विकास करने का अवसर मुझे मिला।

1928 मे जब मैनें विद्यालय मे शिक्षण कार्य प्रारम्भ किया था उस समय मात्र सामने की धर्मशाला ही थी। मेरे कार्यकाल मे कुंआवाली धर्मशाला का निर्माण हुआ। जिसे विद्यालय के छात्रावास व भोजनशाला के रूप मे उपयोग किया गया। विद्यालय की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण 1949 से 1953 तक द्रोणगिरि विद्यालय को गुरुकुल बड़ामलहरा में मिला लिया गया तथा मुझे भी वहाँ भेज दिया।

1953 मे गोम्मटेश्वर का महामस्तकाभिषेक था। उस समय द्रोणगिरि यात्रा के लिए बहुत तीर्थ यात्री आए थे। यात्रियो के ठहरने की व्यवस्था मे कमी आने लगी। इसी सन्दर्भ मे अप्रैल में जूट किंग दानवीर गजराजजी गगवाल कलकत्ता के नेतृत्व मे 500 यात्रियो का सघ स्पेशल ट्रेन से आया। सागर स्टेशन पर ट्रेन रुकी और बसो द्वारा यात्री तीर्थ यात्रा हेतु आए। उसी समय मैने उनसे धर्मशाला के लिए भूमि की आवश्यकता बताई और भूमि क्रय हेतु आर्थिक सहयोग मागा, उन्होने तुरन्त भूमि क्रय करने की स्वीकृति दी उसी भूमि पर वर्तमान मे विद्यमान विशाल धर्मशाला का निर्माण कराया गया था। यद्यपि उस समय धर्मशाला के निर्माण मे काफी परेशानी आई लेकिन मैने अपनी नीति और विवेक–व्यवहार से उन्हें हल किया।

द्रोणगिरि क्षेत्र की धर्मशाला हेतु मैने अपनी स्वयं की भूमि देकर दो अन्य भूमियों को भी क्रय किया। खेती की भूमि एव चौबीसी का विशाल मैदान बहुत कम दामो में क्षेत्र को खरीदा। क्षेत्र के विकास के लिए उस समय क्रय की गई भूमियाँ आज महत्वपूर्ण है। मैंने क्षेत्र के विकास को सर्वोपरि माना।

सन् 1955 का गजरथ, जिसने बुन्देलखण्ड मे गजरथ परम्परा को प्रारम्भ किया, के लिये आर्थिक सहयोग जुटाने, तथा उसको निर्विघ्न सम्पन्न कराने मे मेरी अहम् भूमिका रही है। उस समय बुन्देलखण्ड

डाकुओ से पीडित था। यात्रियो मे भय व्याप्त था। मूरतसिह जो द्रोणगिरि के ही थे, मेरे छात्र होने के कारण मुझे सम्मान देते थे। उनसे गजरथ के समय सुरक्षा का पूर्ण आश्वासन मिला जिसके कारण गजरथ मे सुरक्षा की समस्या नहीं आई और बहुत अधिक यात्री इस अवसर पर द्रोणगिरि आए।

द्रोणगिरि मे तीर्थ यात्रा के सन्दर्भ मे प्राय. आचार्यो, मुनियो का विहार होता रहा है। मेरे समय मे आचार्य शान्तिसागरजी महाराज, आचार्य धर्मसागरजी, आचार्य शिवसागरजी, आचार्य सन्मतिसागरजी, आचार्य महावीरकीर्तिजी, आचार्य विमलसागरजी आदि महाराजो का ससघ पदार्पण हुआ जिनकी व्यवस्था करने का सौभाग्य मुझे मिला। मै आचार्य विद्यासागरजी महाराज से प्रभावित हूँ। 1977 के द्रोणगिरि गजरथ, 1981 के खजुराहो गजरथ, रेशन्दीगिरि वर्षायोग एव 1983 मे द्रोणगिरि पर शीत वास के समय मे पूज्य आचार्यश्री के सान्निध्य मे रहने का, उनके प्रवचनो को सुनने का लाभ मुझे मिला। 1959 मे आध्यात्मिक सत श्री कानजीस्वामी भी बुन्देलखण्ड की तीर्थ यात्रा करते हुए द्रोणगिरि विशाल तीर्थ यात्रा सघ के साथ आए थे उन्होने तीन दिन प्रवास कर प्रान्त की जनता को प्रवचन का लाभ दिया। सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि दिगम्बर आम्नाय का क्षेत्र है।

मेरे समय भारत मे अग्रेजी शासन था। यह क्षेत्र बिजावर स्टेट का रहा। इधर स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु आन्दोलन कम हुए हैं। यदा कदा विरोध स्वरूप आवाजे उठती अवश्य रहीं। तीर्थक्षेत्र को बिजावर स्टेट से सुविधाएँ प्राप्त होती थीं। गिरिराज पर शिकार करने की पाबन्दी रियासत की ओर से थी, वार्षिक मेला मे सुरक्षा और साधन उपलब्ध कराये जाते थे।

1955 के गजरथ के बाद गुरुकुल मलहरा को लौकिक शिक्षा हेतु जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय मे परिवर्तित किया गया इसके प्रथम प्राचार्य श्री सिघई हुकमचन्दजी गदयाना वाले रहे जो मिलनसार, योग्य, कर्मठ, अनुशासन प्रिय थे। इन्होने गुरुकुल भवन के पीछे पहाडी पर भवन निर्माण कराया। उस समय डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी विधायक थे, यह हमारे प्रिय छात्र रहे है, इन्होने शासन से सस्था को सहयोग दिलाया। 1962 मे श्री हुकमचन्दजी बी. एड करने छतरपुर चले गए इसी बीच उन्हे शासकीय सेवा मिली और शासकीय महाविद्यालय टीकमगढ मे कार्य करने लगे। स्कूल के प्राचार्य श्री डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी बने। असामाजिक तत्त्वो द्वारा स्कूल के प्रति अशोभनीय वातावरण पैदा करने के कारण द्रोणगिरि क्षेत्रीय प्रबन्ध समिति ने स्कूल को 1965 मे बन्द कर दिया।

मैनें 1964 मे क्षेत्र एव विकास से पूर्णरूप से अवकाश ग्रहण किया और दशलक्षण पर्व मे प्रवचन हेतु मणिपुर समाज के आमत्रण पर वहाँ गया। जहाँ समाज के विशेष आग्रह पर 3 वर्ष रहना पडा।

बुन्देलखण्ड सामाजिक कुरीतियो, कुरूढियो से ग्रसित रहा है, जिसके लिए पूज्य वर्णीजी ने समाज को उठाने के लिए विशेष प्रयत्न किया, उन्हीं की प्रेरणा से मुझे सामाजिक कार्य करने का उत्साह हुआ, प्रेरणा मिली। मैंने बाल विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, मरणभोज, दाजनी प्रथा को समाप्त करने के लिए सघर्ष किया। मुझे इस सघर्ष मे सफलता भी मिली।

समाज मे छोटे–छोटे अपराधो पर किसी को भी जाति से बहिष्कृत कर देना उस समय आम बात थी। उसके लिए जिन मदिर बन्द कर जिनेन्द्र देव की अर्चना वन्दना से वचित कर देने मे समाज के व्यक्ति अपने अहम् की पूर्ति समझते थे। मुझे इसमे सघर्ष भी करना पड़ा और जाति से बहिष्कृत को जाति में मिलाकर उसकी सम्मानजनक स्थिति बनाई। दर्शन पूजन से वंचित लोगो को दर्शन पूजन का अधिकार दिलाया। सामाजिक आपसी विवादो को मिल बैठकर आपस मे सौहार्दपूर्ण वातावरण तैयार कराकर

निपटाया। 1950 मे स्थापित द्रोण प्रान्तीय सेवा परिषद् ने बहुत कार्य किए। इस सस्था की उस समय अदालत जैसी मान्यता थी और सभी लोग उसके निर्णयो को स्वीकार करते थे।

मेरे कार्यकाल मे 1962–63 मे प्रयाग महिला विद्यापीठ का परीक्षा केन्द्र द्रोणगिरि विद्यालय मे बना। इसके माध्यम से विद्याविनोदिनी की परीक्षा पासकर अनेक जैन जैनेतर महिलाएँ शासकीय सेवा मे लग गईं। 15 वर्ष तक ग्राम पचायत सेधपा का निर्विरोध सरपच रहने के कारण मुझे सार्वजनिक क्षेत्र मे कार्य करने का अवसर मिला। मुझे प्रसन्नता है कि सभी के सहयोग से उस समय स्कूल, पचायत व सामुदायिक भवनो, कुऑ आदि का निर्माण हुआ।

सरकारी सस्थाओ से भी मै जुडा रहा। जन सामान्य की समस्याओ का समाधान होने पर मुझे खुशी होती थी। ग्राम एव आस पास की कोई भी ऐसी पचायत नहीं थी जिसमे मुझे न जाना पडता हो लोग बुलाकर ले जाते थे इसका कारण मेरी न्यायप्रियता थी।

1964 से मैने अपना समय सयम की साधना मे लगाया। जैन सिद्धान्त ग्रन्थो का अध्ययन, स्वाध्याय, चिन्तन तो चलता ही था अब श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम के व्रतियो को भी अध्ययन कराने का मौका मिला। पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज की प्रेरणा ने मुझे आश्रम मे रहने की प्रेरणा मिली। फलस्वरूप 1970 से मै पूर्णरूप से आश्रम मे रहने लगा। आश्रम का भवन और स्वतत्र ट्रस्ट बनाने तथा उसके लिए स्थायी फण्ड इकट्ठा करने मे श्री ब्र दयासिन्धुजी के साथ मेरा भी सहयोग रहा। इस आश्रम मे अनेक व्रती रहे है। मुनि, क्षुल्लक, ऐलक भी सिद्धान्त ग्रन्थो के अध्ययन स्वाध्याय हेतु वर्षायोग करते रहे है। श्री ब्र राजारामजी भोपाल, श्री प मुन्नालालजी राधेलीय न्यायतीर्थ सागर, श्री प धन्नालालजी ग्वालियर, प ताराचन्दजी सागर, श्री ब्र बाबूलाजी वेटिया जबलपुर आदि पबुद्ध त्यागी विद्वान् प्राय आश्रम मे रहकर सिद्धान्त ग्रन्थो का स्वाध्याय करते थे।

अध्ययन, अध्यापन, स्वाध्याय, चिन्तन मे प्राय मेरा समय व्यतीत होता था। काव्य रचना मे मेरी विशेष रुचि थी। अत आध्यात्मिक भजन, जैन गारी सग्रह, बारह भावना, द्रोणगिरि पूजन, सुमन सचय आदि कुछ लघु रचनाएँ मैने लिखीं। स्वान्त सुखाय ही इन रचनाओ का सृजन है। लिखते समय ख्यातिलाभ का उद्देश्य बिल्कुल नहीं रहा। परिवार मे चार पुत्र और एक पुत्री हैं। पुत्रो मे तृतीय पुत्र कमलकुमार एम ए शास्त्री शासकीय सेवा करते हुए सामाजिक कार्यों मे अपना समय व्यतीत करते है। इसकी मुझे प्रसन्नता है।

यह सब मैनें अपनी स्मृति के आधार पर कतिपय महानुभावो की प्रेरणा से लिखा है। मैने जो भी शिक्षा के क्षेत्र में, क्षेत्रीय विकास मे, सामाजिक–सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य किए है अपना कर्तव्य समझकर स्वत. की प्रेरणा से ही किए हैं। जिसके उपलक्ष मे मैने कभी भी कोई सम्मान–प्रशसा नहीं चाही। स्वय की प्रशंसा के भय से अनेकों महत्वपूर्ण संस्मरणो को भी नहीं लिखा है। भगवान् जिनेन्द्र की शरण पाकर समाज के लोग सदाचारी बनें तथा स्वाध्याय, संयम–साधना से अपना कल्याण करें – इस भावना से अब विराम लेता हूँ।

• उदासीनाश्रम द्रोणगिरि

सामाजिक सुधार के सन्दर्भ में पण्डितजी के साथ एक साक्षात्कार वार्ता

— पण्डित लक्ष्मणप्रसाद "प्रशान्त"

समाज सेवा के क्षेत्र मे पण्डितजी द्वारा किए गए योगदान को लक्षित कर श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम द्रोणगिरि मे दिनाक 19 12 88 को मैने (लक्ष्मणप्रसाद प्रशान्त ने) पण्डित श्री गोरेलालजी से जो वार्ता की उसे यहाँ साक्षात्कार वार्ता के रूप मे ज्यो की त्यो पाठको के लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ।

प्रशान्त — पूज्य गुरुदेव मेरी बहुत समय से यह आकांक्षा रही कि आपने अपने जीवन मे जो समाज की सेवा की है। अनेक सामाजिक कार्यक्रमो मे तो मै भी आपके साथ सहभागी—प्रत्यक्षदर्शी भी रहा हूँ। उसके बारे मे आपसे कुछ पूछू।

पण्डितजी — हॉ, हॉ, पूछो ! जब तक समय है बतायेगे।

प्रशान्त — पण्डितजी हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि आपके समय सामाजिक स्थिति कैसी थी?

पण्डितजी — जहॉ तक हमारे समय की सामाजिक स्थिति का प्रश्न है वह बहुत अच्छी तो नहीं थी। समाज मे आपसी मनमुटाव व अहकार का बोलवाला था। प्रभावशाली व्यक्ति कमजोर वर्गों को सम्मानजनक दृष्टि से नहीं देखते थे।

प्रशान्त — आपने सामाजिक क्षेत्र मे कार्य करना कबसे प्रारम्भ किया ?

पण्डितजी — लगभग 1940 के करीब जब मुझे सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं लगी तब मुझे लगा कि सामाजिक सुधार के लिए कुछ करना चाहिए।

प्रशान्त — आपको सामाजिक सुधार की प्रेरणा किससे प्राप्त हुई ?

पण्डितजी — सामाजिक क्षेत्र मे मुझे कार्य करने की प्रेरणा पूज्य वर्णीजी से प्राप्त हुई जिन्होनें समाज मे व्याप्त अशिक्षा और कुरीतियो को दूर करने का अथक प्रयास किया है।

प्रशान्त — सामाजिक उत्थान के लिए आपने क्या किया ?

पण्डितजी — समाज मे अनेक कुरीतियॉ, कुरुढियॉ व्याप्त थीं। समाज मे मृत्युभोज, बाल विवाह, अनमेल विवाहो की बहुतायत थी। सबका मूल कारण अशिक्षा ही थी। अत शिक्षा का प्रकाश फैलाने का प्रयास मैने किया तथा समाज मे आपसी चर्चा कर कुरीतियो को मिटाने मे भी प्रयत्नशील रहा।

प्रशान्त — पण्डितजी हमे कुछ—कुछ ऐसा स्मरण है कि किसी देहात मे एक कन्या का विवाह एक वृद्ध से हो रहा था जिसका आपने विरोध भी किया था लेकिन उसमे आपको सफलता नहीं मिली। क्या कारण था ?

पण्डितजी — हा गुंजनया ग्राम की बात है, एक अनाथ काशीबाई नाम की लड़की का विवाह कुछ स्वार्थी व्यक्तियो की साजिश से वृद्ध के साथ तय कर दिया गया था। विरोध करने के बाद भी अर्थ के सामने वह विवाह नहीं रुक सका फिर भी इस विवाह को रोकने के लिए प्रयास किया गया, यहॉ तक कि विवाह रोकने के लिए बिजावर मजिस्ट्रेट को भी आवेदन किया गया, जो स्वार्थी तत्त्वो के कारण व्यर्थ ही गया।

प्रशान्त — इस असफलता का आपके ऊपर क्या प्रभाव पड़ा ?

पण्डितजी —इस असफलता से मुझे गहरा आघात लगा जिससे व्यथित होकर मैंने अपने उद्‌गारो को कविता के रूप में व्यक्त किया। पंक्तियॉं इसप्रकार हैं —

री अभागिन काशीबाई, तुम पर कैसा जुल्म हुआ।
माता पिता भाई नहीं कोई, ऐसा विधि ने जुल्म किया।।
मोहनलाल भवानी दुर्जन कनई सिंघई और बारेलाल।
इन पंचो ने मिलकर तुझको आज कर दिया है बेहाल।।

प्रशान्त —पण्डितजी समाज मे दस्सा लोगों की स्थिति बहुत नाजुक रही है। उन्हे समाज मे उचित आदर की तो बात क्या ? मदिर में दर्शन पूजन का भी अधिकार उन्हे नहीं था। इस विषय मे आपके क्या विचार हैं ?

पण्डितजी —हमारी दृष्टि से जिन मदिर, जिनेन्द्र अर्चना से वे व्यक्ति वंचित नहीं होना चाहिए जो आचारवान् हैं तथा समाज में अपनी स्थिति बनाए रखना चाहते हैं। अज्ञानवश यदि किसी व्यक्ति से कोई गल्ती हो जाती है और यदि कोई समाज उसका बहिष्कार करता है और यह पीढी दर पीढी चलता रहता है तो मै इसको उचित नहीं मानता और धार्मिक अधिकारो से वंचित करना तो और भी अधिक न्यायसंगत नहीं है। ऐसे व्यक्तियों को धार्मिक अधिकार मिलना चाहिए।

प्रशान्त — क्या आपने सामाजिक संगठनो के माध्यम से भी सामाजिक चेतना जाग्रत करने का प्रयत्न किया है ?

पण्डितजी — हां ! किया है। प्रशान्तजी एक संस्था द्रोण प्रान्तीय सेवा परिषद् जिसकी स्थापना 1948—49 मे हुई थी। जिसके आप मंत्री थे और मैं अध्यक्ष था। उसके माध्यम से अनेको सामाजिक समस्याओ का निराकरण हुआ। द्रोणगिरि मे इसके लिए परिषद् की दो—दो, तीन—तीन दिन तक बैठकें चलती थीं। जिनमें विभिन्न स्थानों से आए हुए मामलो को दोंनों पक्षो की राय से हल किया जाता था। कुछ मसले तो ऐसे होते थे जो सम्बन्धित ग्रामो मे ही हल किए जाते थे। इसके लिए हम, आप तथा परिषद् के सभी पदाधिकारीगण उस गांव में जाकर समस्या का निराकरण करते थे। इस परिषद् के माध्यम से सन् 1955 तक महत्वपूर्ण समस्याओं का समाधान हुआ। परिषद् ने इस प्रान्त मे सामाजिक जागृति पैदा की है। जब इस सेवा परिषद् के कार्यकर्ता छिन्न भिन्न हो गए और गतिविधियॉं समाप्तप्राय हो गईं तब 1961 मे "द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा संघ" की स्थापना हुई जिसके माध्यम से भी सामाजिक चेतना जागृत होती रही।

प्रशान्त —आपने सार्वजनिक क्षेत्र मे भी कार्य किया इस बारे मे आप क्या कहना चाहते हैं ?

पण्डितजी —हॉं, मैं लगभग 15 वर्ष निर्विरोध ग्राम का सरपंच रहा। उस समय ग्राम के विकास मे मैंने अपना योगदान किया। स्कूल, पंचायत भवन, सामुदायिक विकास भवन आदि का निर्माण हुआ। ग्राम की पंचायतो मे मुझे समस्या के समाधान हेतु जाना पड़ता था अपनी न्यायप्रियता के बल पर मैं समाधान भी सुझाता था। प्राय: लोग मान लेते थे।

प्रशान्त —पण्डितजी हमने सुना है कि गांवों मे बलिप्रथा भी प्रचलित थी ?

पण्डितजी —हां यह सच है, ग्राम में अशिक्षित पिछड़ी जातियों में मनौती के रूप मे बलिप्रथा का

प्रचलन था। इस सम्बन्ध मे एक प्रकरण मुझे स्मरण है जब ग्राम का एक हरिजन भोपलिया बकरे की बलि चढाने गाजे बाजे के साथ माता के मदिर जा रहा था। मैने वहा पहुंचकर उसे बलि चढाने से रोका लेकिन जब धर्मान्ध व्यक्ति को कुछ समझ मे नहीं आया तो उसे अनेक प्रकार से समझाया गया और बलि चढ़ाने से रोका।

प्रशान्त – क्या आपने कुछ साहित्य भी लिखा है ?

पण्डितजी – हा मैने आध्यात्मिक एव लोकोपयोगी कविताएं, भजन आदि लिखे हैं। यह सब मैंनें लोक ख्याति के लिए नहीं स्वान्त सुखाय लिखा है।

प्रशान्त – आपके द्वारा जो रचनाएँ की गईं हैं क्या उनके नाम बताएगे?

पण्डितजी – मेरे द्वारा बारह भावना, सुमन सचय, द्रोणगिरि पूजन, जैन गारी सग्रह और भजनो की रचना हुई है।

प्रशान्त – बारह भावना आपकी किसप्रकार की रचना है ?

पण्डितजी – बारह भावना एक आध्यात्मिक वैराग्यवर्धक रचना है जो सुरुचिपूर्वक पढी जाती है।

प्रशान्त – क्या आपने बालको के लिए भी कुछ लिखा है ?

पण्डितजी – हा सुमन सचय लिखा है। इसमे दोहो के द्वारा वर्णमाला के अक्षरो का ज्ञान कराया है। इसमे एक सौ एक नीतिपरक दोहे भी है जो अत्यन्त सरल व शिक्षाप्रद है।

प्रशान्त – महिलाओ के लिए भी कुछ रचनाए हुईं है क्या ?

पण्डितजी – विवाह–शादियो मे जब मैनें देखा कि महिलाओ द्वारा अशोभनीय निरर्थक गीत गाए जाते हैं तो उस समय मैने धार्मिक एव शिक्षाप्रद गारियो की आवश्यकता महसूस की और उसकी पूर्ति हेतु शिक्षाप्रद, उपयोगी व लय से गाई जाने वाली गारियो के रचने का प्रयास किया जो जैन गारी भाग–1 व भाग–2 के रूप मे प्रकाशित है।

प्रशान्त – क्षेत्र और विद्यालय से सेवा निवृत्त होने के बाद आपने कौनसा मार्ग अपनाया ?

पण्डितजी – 1964 मे क्षेत्र और विद्यालय की अनवरत सेवा करने के बाद मैनें पूर्णतया अवकाश लिया और अपने कल्याण के लिए आत्म साधना की ओर अपना मन लगाया।

प्रशान्त – क्या आप धार्मिक प्रचार की भावना से मध्यप्रदेश के अलावा अन्य प्रान्तो मे भी गए ?

पण्डितजी – हा, क्षेत्र और विद्यालय की सेवा से अवकाश लेने के बाद मेरा विचार मध्यप्रदेश के अलावा कुछ अन्य प्रान्तो मे धर्म प्रचार हेतु भ्रमण करने की ओर गया और इसी बीच दशलक्षण पर्व पर प्रवचन हेतु इम्फाल (मणिपुर) की जैन समाज का आग्रहपूर्ण निमंत्रण प्राप्त हुआ। मै दशलक्षण पर्व पर वहा प्रवचन हेतु चला गया।

प्रशान्त – दशलक्षण पर्व मे आपको इम्फाल की जैन समाज का व्यवहार कैसा लगा ?

पण्डितजी – समाज ने दस दिन तक मेरे सुबह शाम एव रात्रि के प्रवचनो को मनोयोगपूर्वक सुना। समाज ने मेरे प्रवचनो से क्या लाभ लिया यह तो वहा की समाज जाने किन्तु यह बात निश्चित थी कि दशलक्षण पर्व के बाद जब मेरा वहा से चलने का मन हुआ तो समाज ने बड़े आग्रह से मुझे यह कहते हुए कुछ समय को रोकने का विशेष आग्रह किया कि आपने जो दस दिनो मे हमे धार्मिक लाभ दिया है वह आगे

भी बना रहे और हम लोग आपके प्रवचनो का लाभ लेते रहे तो यह हमारा सौभाग्य होगा। मै बहुत संकोची था और धार्मिक लाभ देने की दृष्टि से समाज के विशेष आग्रह को देखकर मैंनें वहां कुछ समय ओर रहने का निर्णय कर लिया।

प्रशान्त —आपको वहां का जलवायु कैसा लगा?

पण्डितजी —वहा का जलवायु यद्यपि बहुत अच्छा तो नहीं था किन्तु कुछ समय रहने पर वहां की जलवायु मे रहने का आदी हो गया था।

प्रशान्त —आसाम तेल का भण्डार माना जाता है। वहां के पानी मे तेल का मिश्रण रहता है जो हरएक को अनुकूल नहीं होता क्या आपको वह पानी अनुकूल लगा?

पण्डितजी —नहीं, वहॉ का पानी तेल मिश्रित होने के कारण मुझे रुचिकर नहीं लगता था। लेकिन वहॉ प्राय वर्षा होती रहती थी और मेरा जहॉ निवास था वहॉं छत पर बर्तन रख दिया करता था जिससे बर्तनो मे वर्षा का पानी एकत्रित हो जाता था, उस पानी का उपयोग मै पीने के लिए करता था। इससे असुविधा नहीं हुई।

प्रशान्त —क्या वहां आप प्रवचन के अलावा अपने समय का सदुपयोग करने के लिए अन्य कार्य भी करते थे?

पण्डितजी — मेरा वहां मुख्य कार्य तो प्रवचन करना ही था लेकिन समाज ने मेरे समय का सदुपयोग करने के उद्देश्य से वहां जैन समाज द्वारा सचालित जैन मिडिल स्कूल मे तीन पीरियड बालको को संस्कृत पढाता था। मणिपुर इम्फाल में प्राय. महिला समाज धार्मिक प्रवृत्ति की थीं जिसके कारण वहा व्रत विधानों का कार्य भी मुझे करना पडता था।

प्रशान्त — इम्फाल मे जब आपका मन रम गया तो फिर अपनी जन्मभूमि में वापिस आने का मन कैसे हुआ?

पण्डितजी —अपने प्रान्त से और अपने सम्पर्क वालो से अधिक दूर रहने के कारण मुझे इम्फाल के वातावरण ने तो बहुत प्रभावित नहीं किया, लेकिन सकोची होने के कारण वहा की समाज का आग्रह नहीं टाल सका, जिसके फलस्वरूप 3 वर्ष का समय मुझे व्यतीत करना पडा। लेकिन मुझे अपने प्रान्त का, समाज का बराबर स्मरण आता रहा और समाज के, घरवालो के, रिश्तेदारो के वापिस आने के लिए बराबर पत्र आते रहे जिसकारण 3 वर्ष तक रहने के बाद घर आने का निर्णय मैंने कर लिया।

प्रशान्त —आपने अपना शेष जीवन सयम से व्यतीत करने का जो संकल्प लिया, उसके प्रेरणास्रोत कौन रहे?

पण्डितजी —हमारे जीवन को आदर्श एवं सयमी बनाने मे पूज्य वर्णीजी की प्रमुख भूमिका रही है। उन्होने मुझे बराबर पत्रो द्वारा कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी तथा क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज ने भी मुझे साधना की ओर प्रेरित किया व श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम मे रहने का आग्रह किया। मैंने इसे अपनी साधना का प्रमुख स्थल बनाया और आत्मसाधना के साथ इसके विकास मे ब्रह्मचारी दयासिन्धु के साथ कुछ कार्य कर स्थायी भवन निर्माण, ध्रुव फण्ड की स्थापना तथा ट्रस्ट की स्थापना मे भी योगदान किया। आदत कहॉ जाती है इससे यह सब भी सहज हुआ।

प्रशान्त –आपने अपने जीवन मे बहुत से आचार्यों, मुनियो, आध्यात्मिक सतो का सत्सग किया होगा, आपको सर्वाधिक किन्होने प्रभावित किया ?

पण्डितजी –हमने अपने जीवन मे बहुत से आचार्यों, सन्तो का दर्शन किया। मेरा जन्म पावन भूमि द्रोणगिरि मे ही हुआ तथा द्रोणगिरि विद्यालय में अध्यापन कार्य एव सिद्धक्षेत्र का लम्बे समय तक कार्य सम्हालने का सौभाग्य प्राप्त होने से मुझे अनेको दिगम्बराचार्यों, मुनिवरो आदि का समागम सुलभ होता रहा है क्योकि तीर्थक्षेत्र की वन्दनार्थ मुनिजनो का यहा आना स्वाभाविक ही था उन्हे आहार देने का भी लाभ मुझे मिलता रहा है। दर्शन–प्रवचन का फायदा तो था ही। चारित्र चक्रवर्ती शान्तिसागरजी, आचार्य सूर्यसागरजी, आचार्य विमलसागरजी, आचार्य देशभूषणजी, आचार्य विद्यासागरजी आदि मुनिवृन्दो का स्मरण मुझे बराबर है। आचार्य विद्यासागरजी के सान्निध्य मे तो कई महीनो रहा। शीतकालीन एवं ग्रीष्मकालीन वाचनाओ मे रहकर धार्मिक बोधिलाभ तो मुझे मिला ही उनकी साधना से भी मैं बहुत प्रभावित रहा।

प्रशान्त – पण्डितजी मैंने आपका बहुत समय लिया है। मुझे खुशी है कि इस भेटवार्ता मे जो जानकारी मुझे मिली वह आपसे पढते समय व कार्य करते समय नहीं पा सका था। आज मैं आपके व्यक्तित्त्व से बहुत प्रभावित हूँ। मेरे प्रणाम स्वीकार करे और मुझे आशीर्वाद प्रदान करे। जय जिनेन्द्र !

□□□

आशागर्तः प्रति प्राणि यस्मिन् विश्मणूपमम्।
तत्कियद् कियदायाति वृथा वै विषयैषिता॥

भावार्थ - प्रत्येक प्राणी में आशारूपी गड्ढा इतना गहरा है कि उसमें पूरा विश्व अणु के समान है, फिर वह किसके हिस्से में कितना-कितना आयेगा। अतः विषयों की चाह व्यर्थ है।

आचार्य गुणभद्र, आत्मानुशासन

पुण्यश्लोक-पण्डित गोरेलालजी शास्त्री

— पण्डित विजयकुमार साहित्याचार्य

"सरस्वती के वरद पुत्र पण्डित श्री गोरेलाल,
द्रोण प्रान्त की सामाजिकता के जीवन गोरेलाल।
सिद्धक्षेत्र श्री द्रोणगिरि का उन्नायक यह लाल,
त्यागी व्रती ब्रह्मचारी शास्त्री श्री गोरेलाल।।"

ऊपर की पक्तियो में जिनके जीवन की रेखाएं खीचीं गई है, उन्हीं पण्डित, त्यागी, गृह विरत ब्रह्मचारी श्री गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि के जीवन को सक्षेप मे अकित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। संस्कृत के निम्न पद मे उनके व्यक्तित्व की झाकी मिलती है—

"वदन प्रसादसदन सदयं हृदय सुधामुचो वाच ।
करणं परोपकरणं येषा केषां न ते वन्द्या ।।"

जिनका मुख प्रसन्नता का घर हो, हृदय दया से ओत प्रोत हो, वचन अमृत झराने वाले, प्रिय एव हितकारी हो, जिनका कार्य सदा परोपकार ही हो वे पुरुष किनके वन्दनीय आदर योग्य नहीं होते, सभी के आदर पात्र होते हैं। पण्डितजी मे ये सभी गुण थे, अत वे प्रान्तीय समाज द्वारा वन्दनीय—सम्माननीय रहे।

अनचाहे मन से आज हमे भूतकालिक क्रिया पदो का प्रयोग उनके लिए करना पडता है। उनका देह 86 वर्षों तक लौकिक क्रियाकलापो मे रहकर 29 मार्च 1991 को पचभूतो मे बिखर गया, पर वे आज है और आगे भी सदा रहेगे। क्योकि कहा गया है —

"जयन्ति ते सुकृतिन महाभागा यशस्विन
नास्ति येषा यशस्काये जरामरणजं भयम् ।।"

परोपकारी पुण्यवान, यशस्वी पुरुष सदा जयवन्त—जीवन्त रहते हैं, उनके यशरूपी शरीर मे न बुढापा आता है न ही वह कभी मरता है। श्री पण्डितजी भी ऐसे ही पुरुष रत्न थे।

जीवन

लौकिक जीवन धर्म की शीतल छाया मे बीते, इस अभिप्राय से सिघई भूरेलालजी जैन ने गुरुदत्तादि मुनीन्द्रो की निर्वाण भूमि परम पावन द्रोणगिरिजी (सेधपा ग्राम) को अपना निवास बनाया। यहा उन्होनें तीन पुत्रो एव एक पुत्री को प्राप्त किया। अपने भाईयो श्री बिहारीलालजी एवं श्री बल्देवप्रसादजी के बाद श्री गोरेलालजी थे। आपको अपने माता पिता का अधिक लाड प्यार नहीं मिला। ग्रामीण जीवन, रजवाडो के अन्धकारमय शासन, चतुर्दिक शिक्षा के साधनो का अभाव, गृहस्थोचित धार्मिक क्रियाओ के निर्वाह के साथ पेट पालना मात्र उस समय का जीवन लक्ष्य था। व्यक्तिगत विपन्नावस्था से शिक्षा के प्रति उपेक्षा उस समय आम बात थी, यही बात पण्डितजी के सम्बन्ध मे भी थी। जब भी जाग जाएं तब भाग्य भी बलवान् होता है, सयोग भी उसी के अनुसार मिलता है।

शिक्षा

गाव के श्री नन्हेलालजी मालाकार के चरणो मे बैठकर उनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। श्री नन्हेलालजी जैनेतर होते हुए भी जैनधर्म के ज्ञानी थे। जैन मंदिरो की सेवा से मालाकार लोग आधे जैन तो वैसे ही बन

जाते हैं फिर भी नन्हेलालजी प्रतिभा सम्पन्न थे। कवित्व की प्रतिभा उनमे थी, साथ ही जैनधर्म के प्रारम्भिक तत्वज्ञानी भी थे। जैनाचार को उन्होनें जीवन मे अपना लिया था। उनसे ही किशोरावस्था प्राप्त बालक गोरेलाल ने अक्षरारम्भ से गिनती–पहाड़ो के साथ मंगल पाठ व देवशास्त्र गुरु पूजन सीखी और यहीं शिक्षा समाप्त करनी पड़ी, कारण इससे आगे शिक्षा प्राप्त करने के उस समय साधन ही नहीं थे। श्री पण्डितजी के पितृश्री का वियोग उनकी बाल्यावस्था मे हो जाने के कारण परिवार पालन का भार बड़े भाईयो पर आ पडा था, अतएव आपको भी उनका सहयोग करना आवश्यक हो गया था। परन्तु गार्हस्थिक झझटो मे फस जाने पर भी ज्ञान प्राप्ति की भावना का अकुर पूरी तरह नहीं सूखा था। "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" की सूक्ति के अनुसार ऐसा सयोग हुआ कि श्री सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के वार्षिक मेला के अवसर पर क्षेत्र के अध्यक्ष श्री चन्द्रभानजी वमराना वाले पधारे। जिन्होने बालक गोरेलाल की चाल ढाल को देखकर उसमे होनहार होने के लक्षण देखे। विद्या प्राप्ति की लालसा देखी।

आरोग्यबुद्धिविनयोद्यमशास्त्ररागा,
पचान्तरा पठनसिद्धिकरा भवन्ति।
आचार्यपुस्तकनिवाससहायवस्त्रा,
बाह्यास्तु पच पठन परिवर्धयन्ति।।

आरोग्य, बुद्धि, विनय, उद्यम एव शास्त्र विद्या प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा होने पर ये पाचो विद्या पढने के अतरग साधन हैं तथा आचार्य पुस्तक, निवास, सहायक और वस्त्र ये बहिरग साधन हैं। सो बालक गोरेलाल मे अतरग साधन तो पाचो विद्यमान थे, जब अतरग साधन हो तो बहिरंग साधन भी जुट ही जाते हैं। सेठ साहब श्री चन्द्रभानजी वमराना ने स्वय ही कहा – अच्छा हो कि यह बालक उच्च धार्मिक शिक्षा प्राप्त करे। सेठ साहब ऐसे सहायक रूप मे मिले कि अन्य बाह्य साधनो का भी सब सयोग मिल गया। पर अनुकूल संयोग मिलने पर भाईयो के मोह ने बाधा डालनी चाही।

सेठ साहब द्वारा स्वयं साढूमल के विद्यालय मे प्रवेश के लिए कहने पर बड़े भाईयो ने मोहवश घर से बाहर जाने की अनुमति नहीं दी। इससे बालक गोरेलाल का आल्हाद विषाद मे बदल गया, पर विद्याध्ययन की उत्कंठा तो तीव्रतम थी। अत सेठ साहब से सलाह कर घर वालो को बिना बताए ही सेठ साहब के रवाना होने से पूर्व साढूमल की दिशा मे पैदल निकल गए एव दो मील चलकर सेठ साहब की प्रतीक्षा करने लगे। उनके आने पर उन्हीं की गाड़ी मे बड़े उत्साहपूर्वक साढूमल चले गए और विद्यालय मे प्रविष्ट होकर सानन्द विद्याध्ययन मे सलग्न हो गए। घरवालो के मोह को उनके प्रेरणा भरे अध्यवसाय ने विफल कर दिया। वस्तुत: अतरग की उत्कट अभिरुचि ने बाहरी सब साधन मिला दिए। उस समय साढूमल के श्री महावीर दिगम्बर जैन विद्यालय मे श्री पण्डित घनश्यामदासजी प्रधानाध्यापक थे, जो छात्रो को व्युत्पन्न बनाने मे अत्यधिक परिश्रम करते थे। बालक गोरेलाल की प्रज्ञा न्यायशास्त्र मे बड़ी पैनी थी। एक बार समाज के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित श्री बशीधरजी न्यायालकार ने विद्यालय के तीन प्रतिभाशाली छात्रो पर टिप्पणी देते हुए कहा था कि विद्यार्थी गोरेलाल की बुद्धि न्यायशास्त्र मे अत्यन्त तीक्ष्ण है। साढूमल विद्यालय के बाद आपने अल्पकाल तक नाभिनन्दन दिगम्बर जैन विद्यालय क्षेत्रपाल ललितपुर एव तत्पश्चात् सर सेठ हुकमचन्द दि जैन महाविद्यालय जवेरी बाग इन्दौर मे भी शिक्षा प्राप्त की। उस युग मे परीक्षा मे उत्तीर्ण होने की अपेक्षा व्युत्पन्न बनाने का अधिक प्रयत्न किया जाता था। विद्यार्थी रूप में जब श्री गोरेलाल

जी श्री दि जैन विद्यालय ललितपुर मे अध्ययन करते थे, उस समय उनके सहपाठी पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री थे। श्री गोरेलालजी व्याकरण में व्युत्पन्न थे अत प. फूलचन्दजी को ये व्याकरण समझाया करते थे। श्री राजधरलालजी व्याकरणाचार्य भी इनके सहपाठी थे।

विवाह एवं परिवार

श्री पण्डित गोरेलालजी का विवाह द्रोणगिरि (सेंधपा) से सोलह मील दूर सिमरिया नामक ग्राम मे सेठ परिवार मे श्री सेठ गुमानप्रसादजी की सुपुत्री पूनाबाई से सम्पन्न हुआ। सद्गृहस्थ बनकर पण्डितजी ने अपनी निजी गृहस्थी से भी अधिक विद्यालय परिवार पर ही ध्यान दिया। आदरणीया बाईजी गृहस्थी के निर्माण में पूरी कुशल थीं उन्होनें अपनी सेवाओ से पूज्य प जी को घर की चिन्ताओ से सदा मुक्त रखा। पण्डितजी के सुख मे ही उनका सुख रहा। पण्डितजी ने विद्यालय मे ही सारा समय लगाया। दिन हो या रात पर बाईजी को कभी कोई शिकायत नहीं रही। आपने चार पुत्रो एवं एक पुत्री को जन्म दिया जिनके नाम हैं – श्री अजितकुमार जैन, श्री विमलकुमार जैन, श्री कमलकुमार जैन श्री रतनचन्दजैन एव श्रीमती काशीबाई। श्री कमलकुमारजी एम ए (इतिहास) बी एड व शास्त्री हैं। राजकीय शिक्षा विभाग मे सेवारत होने के साथ ही वे सामाजिक, साहित्यिक कार्यों मे सलग्न रहते है। अतिशय क्षेत्र श्री खजुराहो के वर्षों तक मत्री रहे तथा 1977 से दिगम्बर जैन केन्द्रीय महासमिति से भी सम्बद्ध हैं। मध्यप्रदेश तीर्थक्षेत्र कमेटी इन्दौर के कई वर्षों तक मत्री रहे हैं।

मातृभूमि के आकर्षण ने अन्यत्र नहीं जाने दिया

एक प्रसग बरवश स्मरण आ रहा है कि पण्डित श्री गोरेलालजी की अन्तिम शिक्षा सर सेठ हुकमचन्द दि जैन सस्कृत महाविद्यालय इन्दौर मे हुई। उस समय पण्डितजी सर सेठ हुकमचन्दजी के सम्पर्क मे आये, इनकी विद्वत्ता और व्यवहार से सेठ साहब प्रभावित थे। जब पण्डितजी अध्ययन समाप्त कर अपने घर द्रोणगिरि वापिस आये तो इन्हे सेठ साहब का एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमे उन्होने प्रवचन स्वाध्याय का लाभ लेने के लिए प जी को अपने पास बुलाया और इस निमित्त उन्हे एक हवेली रहने के लिए, दूध के लिए एक गाय और 100 रुपए मासिक पारिश्रमिक देने का सकेत किया। कार्य मात्र बगीचे मे स्वाध्याय प्रवचन करना था। घर मे अन्य कोई कार्य न होने के कारण पण्डितजी इस पत्र के आधार पर वहा जाने के लिए तैयार हो गए और अपने परिवार सहित बैलगाडी से प्रस्थान कर दिया। उस समय साधनो का अभाव था, इससे बैलगाड़ी से हीरापुर तक जाना था वहा से बस द्वारा इन्दौर को प्रस्थान करना था। पण्डितजी ने जैसे ही यहा से प्रस्थान किया, पण्डितजी के बहनोई श्री शाह धर्मदासजी बरमा को पता लगा, ये बहुत दुखी थे। पण्डितजी के यहा से जाने पर इन्होने सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के तत्कालीन मत्री श्री देवीदासजी हीरापुर एव प दुलीचन्दजी बाजना को खबर की और इन तीनो महानुभावो ने पण्डितजी को जाने से रोका, और रोका ही नहीं, उन्हे क्षेत्र की सम्पूर्ण व्यवस्था का दायित्व सभालने का आग्रह किया तथा भविष्य मे इस क्षेत्र पर एक विद्यालय चलाने का भी सोचा। क्योकि उस समय इस प्रान्त मे शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। इन लोगों का आग्रह और पण्डितजी का जन्मभूमि से लगाव उन्हे इन्दौर नहीं ले जा पाया। यह पण्डितजी की निर्लोभता ही थी कि उतनी भारी सुविधाओ को छोडकर उन्होने पावनभूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि की सेवा का सकल्प लिया और उस समय मात्र 15 रुपए प्रतिमाह के अल्प वेतन पर कार्य करना स्वीकार किया। पण्डितजी यदि

उस समय इन्दौर चले गए होते तो शायद सम्पन्न परिवारो मे उनकी गिनती होती। धन का लोभ पं जी को नहीं था। यह प्रान्त का सौभाग्य था कि पण्डितजी ने अपना जीवन द्रोणगिरि को समर्पित किया। सन् 1928 मे संस्कृत विद्यालय पूज्य वर्णीजी द्वारा स्थापित हुआ जिसमे जैन जैनेतर हजारो बालको ने शिक्षा प्राप्त की। आजकल समाज मे जो विद्वान् है उनमे से कई इसी विद्यालय मे तराशे गए है।

कार्यक्षेत्र

पण्डितजी श्री गोरेलालजी ने अपनी सेवाए विद्यालय को अर्पित कर दी थीं। पूज्य वर्णीजी के प्रयत्नो को स्थायित्व देने के लिए नवयुवक पण्डितजी ने अपने आपको पूरी तरह ज्ञानयज्ञ अर्थात् विद्यालय विकास मे लगा दिया था। श्री सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि की व्यवस्था को उन्होने जिम्मेदारी से सभाला था। इसप्रकार उनका कार्यक्षेत्र सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि ही रहा।

कर्तव्यशीलता

पण्डितजी की कर्तव्यशीलता का अनुमान इससे ही लगाया जा सकता है कि उन्होनें सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि एव गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय को परिवार से भी अधिक माना। क्षेत्र एव विद्यालय की उन्नति मे उन्होने अपनी अनोखी सूझ–बूझ व अदम्य उत्साह के साथ ग्राम के सामान्यजनो एव सामाजिकजनो के प्रति आत्मीयता का ऐसा व्यवहार किया कि थोडे ही दिनो मे पूरा प्रान्त उन्हे अपना दिशा दर्शक एव सरक्षक मानने लगा। चाहे ग्राम की कोई समस्या हो या प्रान्तवर्ती जैन समाज की। उनके बिना कुछ हो ही नहीं सकता था। विद्यालय के विद्यार्थियो को तो आप उनके माता पिता से भी अधिक थे। विद्यार्थियो के जीवन के सर्वांगीण विकास मे चौबीसो घटे लगे रहना इनकी आदत बन गई थी। क्षेत्र के विकास मे भी इनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता है। सभी जानते हैं कि द्रोणगिरि क्षेत्र एव सम्बन्धित सस्था विद्यालय के विकास मे पण्डितजी ने अपने को सर्वतोभावेन लगा दिया था। वहा की उन्नति के वे प्रतीक पुरुष बन गए थे। इस समय मेरे मन मे जो हृदयोद्गार है उन्हे लिख रहा हूँ –

यह है पुण्य नाम जिसने विद्या दीप जलाया,
प्रतिभा बीजो को श्रमजल से सींचा और उगाया।
नयी चेतना भर समाज को जिसने सदा जगाया,
गिरे हुओ को नयी दिशा दे आगे सदा बढाया।।
जीवन के प्रात मे जिम्मने अपना मार्ग बनाया,
यौवन मे सोत्साह सरस्वती को आराध्य बनाया।
अधकार मे दीपक बन जिसने प्रकाश फैलाया,
पण्डित गोरेलाल शास्त्री पावन नाम कहाया।।
दीपक जो जल जलकर सबको नव प्रकाश देता है,
परहित मे ही मानो अपना सब कुछ खो देता है।
यो नि शेष किया सब जीवन जल जलकर जिसने प्रतिपल,
विद्यार्थी हित हेतु समर्पित था उनका सजीवन बल।।

गुरुदत्त दिगम्बर विद्यालय के पण्डितजी ही थे जीवन,
सिद्धभूमि द्रोणगिरि शिखर को दे डाला था निज तन—मन,
जो कुरीतिया थीं समाज मे चुन—चुन दूर किया था।
पण्डित गोरेलाल उसी से पावन नाम बना था।।

उत्साह शक्ति के धनी पण्डितजी सिद्धक्षेत्र के प्रबन्धक, गुरुदत्त दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय के प्रधानाचार्य एव छात्रावास के प्रबन्धक थे। विद्यालय के लेखाकार भी वही थे। क्षेत्रीय मंदिरो, धर्मशाला भवनो के निर्माणकारक भी वही थे। विद्यालयीन छात्रो के सर्वांगीण विकास मे ही उनका जीवन व्यतीत होता था। छात्रो के प्रति आत्मीय भाव इतना था कि चार बजे सबेरे उठकर छात्रो को दिनचर्या पालन कराने मे लग जाते थे। प्रात कालीन प्रार्थना, मत्रजाप, फिर पाठन कार्य करते थे। सात बजते ही सभी छात्रो को शौच, दन्त धौवन, स्नान कराने काठिन नदी ले जाते पुन देवदर्शन, अभिषेक पूजन मे स्वय सम्मिलित होते। 9 बजे अध्यापन, 10 बजे भोजन व्यवस्था स्वय देखते। जिस दिन भोजन बनाने वाले बीमार होते या छुट्टी पर होते तो स्वय भोजन भी बना देते थे। साढे दस बजे से साढे चार बजे तक विद्यालय मे अध्ययन कराते, पाच बजे भोजन के बाद छात्र घूमने ,खेलने चले जाते थे। पुन सात बजे सामूहिक सायकालीन प्रार्थना मे स्वय उपस्थित रहते थे। मदिरजी मे सामूहिक देवदर्शन व स्तुति पठन, जाप के बाद रात्रिकालीन शास्त्र सभा होती। पण्डितजी शास्त्र पढते थे। प्रवचन के बाद पाठ भी पढाते थे। अधिकतर पण्डितजी विद्यालय मे ही सो जाते थे। पण्डितजी के यज्ञोपवीत मे चाबियो का गुच्छा लटकता रहता था जिसकी आवाज सुनकर सभी छात्र चौकन्ने हो जाते थे। पण्डितजी निज बच्चो से भी अधिक ध्यान छात्रावासी बच्चो का रखते थे। हर दूसरे दिन मौसम के अनुसार कोई न कोई फल आदि बॅटवाते थे। 10 दिन मे 5 छटाक घी विद्यालय की ओर से सबको मिला करता था। 15 दिन मे एक बार पक्का भोजन जैसे पूरी हलवा,खीर पूडी आदि बनता था। यात्रीगण से भी पण्डितजी विद्यालय छात्रो का निमत्रण कराते थे। पर्व त्यौहार पर तो पर्व का भोजन बनता ही था। शीतकाल मे व्यायाम आसने आदि पण्डितजी स्वय अपनी देखरेख मे कराते तथा स्वयं भी करते थे। प्रात भ्रमण तो नियमावली मे था ही। मै पण्डितजी का 7 वर्ष तक शिष्य रहा हू। वे नदी स्नान करके सहस्त्रनाम, स्वयभू स्तोत्र, भक्तामर, कल्याण मन्दिर आदि स्तोत्र पढते हुए आया करते थे। बडे ऊँचे स्वर मे स्फुट उच्चारण मे पढे गए स्तोत्रो से छात्रो को प्रेरणा मिलती थी। आज मै भी बहुत दिनो से उनकी उसी प्रेरणा से सस्कृत स्तवनो का नियमित पाठ करने का आदी हू। यह सब उसी समय मे उत्पन्न रुचि का परिणाम है। जब छुट्टियो मे पाठशाला के विद्यार्थी अपने अपने गाव मे जाते तो ग्रामवासी लोग उन विद्यार्थियो की धार्मिक चर्चाओ से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। छात्रगण प्रत्येक अष्टमी एवं चतुर्दशी को सिद्धक्षेत्र की वन्दना को सामूहिक रूप से जाते, प्राय एकासन रखते व सामायिक करते थे। सभी छात्र सामूहिक अभिषेक पूजन तो करते ही थे। सामग्री धोने व अभिषेक करने का चार—चार छात्रो का क्रम बंधा हुआ था। उन्हे थालो मे पूजन सामग्री सजाना व चढाने के बर्तनो को सातियो से चर्चना, वेदिका पर सामग्री व चढाने का थाल लगाकर पूजन करना आदि प्रायोगिक रूप से सिखाया जाता था। सभी छात्र पक्तिबद्ध होकर क्रमश एक लय मे समवेत स्वर से सस्कृत स्थापना सहित पूजन पढते थे तो बाहर से आने वाले लोग या वन्दनार्थ यात्रा पर आए लोग आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता व्यक्त करते थे। ग्राम

स्थित आदिनाथ जिनालय में लगभग तीन फुट प्रमाण आदिनाथ भगवान् की दिव्य प्रतिमा का अभिषेक प्रासुक जलधारा से होता तो सभी आनन्द मुग्ध हो जाया करते थे। इसप्रकार हम पण्डितजी की कर्तव्यशीलता का सहज अनुमान कर सकते हैं।

वात्सल्यवान् पण्डितजी

छात्रो के प्रति पण्डितजी का वात्सल्य अगाध था। किसी भी छात्र के बीमार होने पर पण्डितजी स्वय उसकी परिचर्या करते थे। कभी–कभी छात्र आपस मे झगडने के कारण भोजन नहीं करते तो पण्डितजी स्वय उन्हे मनाते थे। मैंने तो अनेक बार पण्डितजी के घर पर भोजन किया है। जिससे मुझे पूज्य माँ जी के वात्सल्य का लाभ भी मिलता रहा है।

क्षेत्र सेवा

गुरुदत्तादि मुनीश्वरो की निर्वाणभूमि द्रोणगिरि जी को प्राकृत शोभा का वरदान मिला है। काठिन और चन्द्रभागा (श्यामरी) नदियो के भीतरी भाग मे सगम स्थल पर बसा हुआ सेधपा ग्राम एव दक्षिण मे पावन निर्वाण भूमि द्रोणगिरि पर्वत चारो तरफ दूर–दूर तक बिखरे हुए खेतो और जगलो से भरपूर है। पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी को यह बहुत भाता था। उन्होने इसे लघु सम्मेदशिखर कहा था। विपन्न प्रान्त मे इसकी स्थिति होने से अन्य तीर्थक्षेत्रो जैसी प्रगति इस क्षेत्र की नहीं हो पाई है। परन्तु आज भी यहा जो कुछ भी रूप दिखाई देता है वह पण्डितजी की अथक सेवा का प्रतिफल है। चाहे क्षेत्रीय मदिरो का जीर्णोद्धार हो या ग्रामवर्ती धर्मशालाओ या अनोखी चौबीसी का निर्माण हो सभी मे आपका सराहनीय योगदान रहा है। विद्यालय के स्थापना काल से 1964 तक 35–36 वर्ष के लम्बे काल तक क्षेत्र, विद्यालय तथा पण्डितजी एकाकार रहे।

समाजसेवा के क्षेत्र में पण्डितजी

समाज सेवा का कार्य अत्यन्त कठिन होता है। उदारमना, परोपकारी लोग ही एतदर्थ संलग्न हुआ करते हैं। मेरी दृष्टि मे समाज की सेवा हेतु समर्पित विद्वान् थे पण्डित श्री गोरेलालजी। उन्होने सदा सघर्षो मे अपने मार्ग का निर्माण किया था। उनकी विद्वता भी सघर्षों के बीच उनकी दीर्घ कर्मठता का ही परिणाम थी। उस समय आज जैसे शिक्षा केन्द्रो की सुलभता तो थी नहीं। गुरुवर्य प गोपालदासजी वरैया, पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी, प मोतीलालजी वर्णी आदि के प्रयत्नो से सस्कृत एव जैन विद्या के दीप स्वरूप कतिपय विद्यालय महाविद्यालय ही उस समय थे। श्री सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि (सेधपा) मे भी पूज्य वर्णीजी के सद्प्रयत्नो से स्थापित गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय था। बुन्देलखण्ड मे तीर्थक्षेत्र धर्मात्माओ की धर्मभावना को तो दृढ करते ही हैं वे जैन आचार–विचार की शिक्षा के केन्द्र होने के कारण समाज की गरिमा के भी केन्द्र रहे हैं। पहिले तीर्थक्षेत्रो से ही समाज के रीति रिवाज (नियमोपनियम) निर्धारित होते रहे हैं। सामाजिक झगड़ो का समाधान भी यहीं सभव हो जाता था। तीर्थक्षेत्र पर हुए निर्णयो को समाज बड़े आदर और गौरव के साथ स्वीकार करता था। यह थी तीर्थक्षेत्रो के प्रति समाज की निष्ठा। फिर पण्डितजी उससे अछूते कैसे रह सकते थे। समाज सेवा तो उनके जीवन का ध्येय था। पूज्य पण्डितजी के चरणो मे बैठकर उनके विद्यार्थी के रूप मे मैंने उनके समाज सुधार सबधी कार्यों को देखा था। आज जब स्मृति के आधार पर आकलन होता है तो सहज ही यह उद्गार व्यक्त होने लगते हैं –

जो कुरीतियां थीं समाज में उनके रहे प्रहर्ता,
आंधी तूफानों में तुम थे नव निर्माण प्रकर्ता
यह समाज वसुधा थी बजर उर्वर उसे बनाया,
ऊजड होती जन बगिया को तुमने हरा बनाया।।

बाधाये बाधक क्यो बनती रहे सदा जब साधक,
हॅस–हॅस सब कुछ झेला है तुम नव समाज आराधक।
देकर के अपनत्व परायों को आत्मीय बनाया,
जगा–जगा लोगो को तुमने नव उत्साह जगाया।।

कितने अंधियारों में तुमने नव प्रकाश है बांटा,
मलहम लगा सहानुभूति की औरों .का दुख बांटा।
स्वयं पिया विष पर समाज को अमृत ही बस बांटा,
बिखरा पथ पर फूल स्वयं के लिए शूल ही छांटा।।

कैसा ही कठिन समय हो, जेठ की तपती दुपहरी हो, वर्षाकाल की झरी हो, उफनती हुई काठिन व श्यामरी नदी हो, शीतकाल की ठंडी रात हो, रात का घना अंधेरा हो या प्रातःकाल का झुटपुटा, देहाती समाज में कोई भी समस्या हुई, पण्डितजी भूख प्यास भूलकर समस्या के समाधान पर्यन्त वहां रहकर उसे बड़ी गुरुता एवं दीर्घदर्शिता के साथ निपटा देते थे तथा टूटे हुए दिलों को मैत्री धागे में बांधकर ही लौटते थे। सामाजिकता के नाम पर उस समय प्रान्त में पण्डितजी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता था। जैन समाज की पंचायत हो या आम लोगो की पंचायत, तब तक वह पंचायत नहीं कही जाती थी जब तक पण्डितजी उसमे नहीं पहुंच जाते थे। प्रान्त के गहन अंधकारमय वातावरण में "काला अक्षर भैंस बराबर" की उक्ति को चरितार्थ करने वाले अशिक्षित समाज मे तथा स्वय को पचों का राज़ा–सरपच मानने वाले अहंमन्यी लोग जिन्हे अपनी धन सम्पदा का गर्व रहता था उनके बीच में भी पण्डितजी अपने उदार विचारो तथा नए सामाजिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाले दूरदृष्टा ऐसे एकाकी व्यक्ति थे, जिनके विचारो को ही प्रमुखता मिलती थी। कभी–कभी अहकारी लोगो के बीच पण्डितजी को बुरी तरह निपटना पडता था पर अत मे वे सबको अनुकूल बनाकर अपना अनुगामी बना भी लेते थे। उस समय धार्मिक उत्सव जैसे विमानोत्सव, वेदी प्रतिष्ठा, जलयात्रोत्सव तथा जैनेतरो के धनुष यज्ञ, गगाजली पूजन, भागवत कथा आदि समारोहो पर पण्डितजी को विशेष रूप से आमन्त्रित किया जाता था क्योकि उनके बिना समस्या का सुलझना, पंचायत का निर्णय हो पाना असंभव सा था। समाज मे उस समय बाल विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय, दस्साओं की समस्या एव तथाकथित दोषो पर जाति बहिष्कार आदि की दूषित प्रथाएं थीं। इनके अतिरिक्त कुछ वैवाहिक नेगों के कुसस्कार भी थे। पण्डितजी के हृदय मे इन कुरीतियो से समाज को बचाने की तीव्र लगन थी। वे समाज को पुष्ट एवं परिष्कृत देखना चाहते थे। जब भी पण्डितजी किसी जगह पचायत मे जाते तो पंचायत के निर्णय की हम सब छात्रो को उसीप्रकार प्रतीक्षा रहती थी जैसी चुनाव के बाद उसके फल की होती है।

एक घटना जो आज भी मेरे मन में ताजी हो उठती है-

गुंजनया ग्राम मे एक अनाथ बालिका थी कोई 8–9 वर्ष की कुछ लोगो ने साजिश कर एक वृद्ध से उसका विवाह तय कर दिया। श्री पण्डितजी के क्रान्तिकारी हृदय ने उसका तीव्र विरोध किया पर अंधे स्वार्थ ने उस बालिका के जीवन को अधकार मे फैंक दिया। पण्डितजी ने इस बालिका के प्रति होने वाले अन्याय से दुखी होकर कोई 60–70 छन्दो मे एक कविता लिखी जिसमे उक्त घटना के लिए जिम्मेदार लोगो के प्रति क्षोभ भरा तीव्र आक्षेप था। कविता का प्रथम छन्द था –

री अभागिनी काशीबाई तुझ पर कैसा जुल्म हुआ।
मात–पिता भाई नहि कोई, कैसा विधि का जुल्म हुआ।।

कविता मे कुछ आगे उन अन्यायी व्यक्तियो के निर्भीकतापूर्वक नाम भी उल्लिखित हैं –

मोहनलाल, भुवानी, दुर्जन, कन्हई सिघई और बारेलाल।
इन पचो ने मिलकर तुझको आज कर दिया है बेहाल।।

उस समय प्रान्त के अशिक्षित और अधकार मे रहने वाले समाज मे ऐसा आपसी मनमुटाव, ईर्ष्या, द्वेष व कलह था कि एक दूसरे की टाग खींचने मे ही उन्हे आत्म तुष्टि होती थी। झूठे दोष लगाकर जातिच्युत कर देना, सामाजिक बहिष्कार कर देना, पूजा दर्शन से वचित कर देना आदि चौधराहट के भूखे लोगो का प्रतिदिन का काम था। प्रान्त मे ऐसी समस्याए प्राय आया ही करतीं थीं। पण्डितजी वहा जाकर स्थिति का गभीरता से अध्ययन करते, जैन–जैनेतर सामाजिक जनो का मन टटोलते, उनकी सलाह लेते, स्थिति को पूरी तरह अवगत कर उभयपक्ष के व्यक्तियो के अभिप्रायो को परखते, पुन समस्या के उचित एव न्यायपूर्ण समाधान के लिए वातावरण तैयार कर अपने निर्णय को सबसे मान्य कराते। इसप्रकार पण्डितजी की तत्परता से समाज मे कुरीतियो का अत होने लगता व उनके नवीन विचारो से भी समाज अवगत होता था क्योकि पण्डितजी जहा भी जाते थे, वहाँ शास्त्र प्रवचन मे समाज परिष्कार संबधी विचार भी अवश्य रखते थे।

धार्मिक चेतना की जागृति द्वारा सामाजिक चेतना का प्रसार

श्री पण्डितजी को समाज के द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले हरएक धार्मिक उत्सव मे सम्मिलित होना ही पडता था। वे द्रोणगिरि विद्यालय के छात्रो को भी निमत्रण पर ले जाते। पहले से ही उत्सवकर्ता व्यक्तियो को भी प्रेरित करते थे कि विद्यालय को भी गौरव के साथ निमन्त्रित करो। विद्यालय के छात्रो को लेने के लिए गाड़ी भेजी जाती थी तथा पहुॅचने पर दूर से ही उनकी अगवानी की जाती थी। विदाई भी आदर के साथ की जाती थी। विद्यार्थियो से समारोह की शोभा मे चार चांद लग जाते थे। प्रभातफेरी, झण्डा गायन, भजन व उपदेशो से उत्सव मे जान आ जाती थी। विद्यार्थी भी बड़े उत्साह से सेवाकार्य करते और उत्सव को सफल बनाते थे। धार्मिक एव समाजोत्थान सम्बन्धी गीत भी पण्डितजी स्वय लिखा करते थे। जिन्हे विद्यार्थी बड़े उल्लास से गाया करते थे। इनका एक प्रभातफेरी गीत था, जो दूर–दूर तक गाया जाता था। उसकी कुछ पक्तियां इसप्रकार हैं –

जागो उठो सपूतो, किस नींद सो रहे हो।
कुछ भी फिकर नहीं है, सर्वस्व खो रहे हो।।

मिथ्यात्व अंधकूप में, पड करके मेरे मित्रो।
क्यों आपसी कलह पर तुम व्यर्थ लड़ रहे हो।।

पूरा गीत बड़ा ही प्रेरक एवं उद्बोधक है। इसमें समाजोत्थान सम्बन्धी क्रान्तिकारी विचार समाहित हैं।

पण्डितजी ने धार्मिक उत्सवों में विद्यालय के बालकों द्वारा समाज की नयी पीढी मे नवीन विचारो को प्रचारित किया था। जिसके अनेक लाभ भी परिलक्षित हुए। यथा –

(1) समाज के पुराने लोग कुरीतियों को छोड़ने लगते थे।

(2) धार्मिक भावनाओ से ओतप्रोत होकर समाज धार्मिक परिवेश के निर्माण की आधारशिला स्थापित करने मे सक्षम हो सका।

(3) विद्यालय एव विद्यार्थियो के प्रति गौरवमयी अपनत्त्व की भावना उत्पन्न हुई।

(4) विद्यालय की आर्थिक स्थिति मे सुधार हुआ।

(5) समाज एकता के सूत्र मे बंध सका।

उदात्त भावना

द्रोणगिरि विद्यालय मे अपना पूरा समय लगा देने वाले श्री पण्डितजी की सेवाओ का स्मरण कर आज भी हम उनकी उदात्त भावनाओ की सीमा नहीं नाप सकते है। कितना आदर और कितना भय श्री पण्डितजी के प्रति विद्यार्थियो मे था, इसका अनुमान "उनके जनेऊ (यज्ञोपवीत) मे बधी चाबियो की खनक सुनकर ही हम लोग चौकन्ने शान्त बैठ जाते थे" – से लगाया जा सकता है। पण्डितजी ने विद्यालय के विद्यार्थियो और अपने पुत्रो मे किसी तरह का भेद माना ही नहीं, बल्कि पुत्रो से भी अधिक प्यार विद्यार्थियो को दिया। वे इस सिद्धान्त को मानने वाले थे –

लालयेत् पंचवर्षाणि दशवर्षाणि च ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे बाल मित्रमिवाचरेत्।।

पांच वर्ष तक लालन (लाड–प्यार) दश वर्ष तक बच्चो मे आने वाली खोटो के निराकरण हेतु ताडन तथा सोलह वर्ष का हो जाने पर मित्र की भाति समझाने मात्र का व्यवहार करना चाहिए। पण्डितजी जहा अनुशासन का पालन कराने मे कठोर थे वहीं भीतर से अत्यन्त करुणावान् भी थे। सस्कृत की यह उक्ति उनमे पूरी तरह घटित होती है –

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि।
महतां खलु चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति।।

समझाने के मूड मे कभी–कभी पण्डितजी विद्यार्थियो से कहा करते थे –

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवा।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुका।।

रूप, जवानी तथा ऊँचे कुल मे उत्पन्न होने पर भी विद्यारहित मनुष्य वैसे ही शोभा नहीं पाते जैसे गंध रहित टेसू का फूल।

अध्ययनशीलता

क्षेत्र, विद्यालय, समाज और गांवो के कर्तव्यो का बोझ ढोते हुए भी इनकी रुचि सदैव जिनवाणी के रसास्वादन मे रही। जैनधर्म के चारो अनुयोगों के ग्रन्थों का इन्होंने गहरा अध्ययन किया था। यही कारण है कि ग्रामीण क्षेत्र मे रहते हुए भी निष्णात मर्मज्ञ जैन विद्वान के रूप में वे पूरे प्रान्त में प्रख्यात रहे। प्रत्येक सामाजिक, धार्मिक समारोहो मे समाज आपकी विद्वत्ता का लाभ उठाता था। सरस्वती भवन में समुचित ग्रन्थों का संकलन भी आपके सद्प्रयत्नो का परिणाम है।

विद्यार्थियो को अध्ययनशील बनाने एव उनमे साहित्यिक रुचि जागृत करने के लिए पण्डितजी ने एक विद्यालयी साहित्य परिषद की स्थापना की जिसके अन्तर्गत एक हस्तलिखित पत्रिका "मार्तण्ड" निकाली जाती रही। इस पत्रिका ने अपने समय मे बड़ी सामाजिक, धार्मिक जागृति की। पत्रिका पूरे इलाके में 4–4 दिन के लिए घूमती थी। प्रान्त की समाज अपने यहां इस पत्रिका के आने की प्रतीक्षा किया करती थी।

साहित्य प्रणेता

पण्डितजी कवि हृदय थे अत कभी–कभी कक्षाओ मे भी द्रवित हृदय भावोद्‌गार कविता मे सुनाया करते थे। समाज के प्रतिष्ठित महानुभावो, विद्वानो व विशिष्ट त्यागियो के सम्मान मे पण्डितजी स्वागत गीत भी लिख देते थे। धार्मिक समारोहो पर गाए जाने योग्य धार्मिक सहगान, गीत व भजन भी इन्होनें लिखे जो प्रान्त भर मे रुचिपूर्वक गाए जाते रहे हैं।

पण्डितजी द्वारा रचित श्री द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पूजन , भक्ति पीयूष (भजन सग्रह), द्रोणगिरि वन्दना, जैन गारी सग्रह (नारियो के द्वारा विवाहादि उत्सवो पर सामूहिक रूप से गाए जाने योग्य गीत) बारह भावना, सुमन सचय आदि काव्य रचनाए प्रकाश मे आ चुकी हैं। लगता है इनकी समस्त रचनाए समाज मे सास्कृतिक एव धार्मिक चेतना को जागृत करने के उद्‌देश्य से ही रची गईं हैं। रामबगसजी फौजदार द्वारा रचित रामविलास, धनन्जयकृत नाममाला एव क्षुल्लक चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ का सम्पादन इन्होनें किया जो प्रकाशित हुए। मैं मानता हू कि पण्डितजी जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न भावुक कवि थे। द्रोणगिरि वन्दना का एक पद यहा प्रस्तुत है –

इस महा भयानक अटवी मे निज आत्म साधना के पथ पर।
आ डटे वीर विधि से लडने ले बांध खड्ग कर मे यतिवर।।
निश्चल करने चचल मन को अति कठिन योग मे युक्त हुए।
इस द्रोणशैल की पूण्य भूमि से गुरुदत्तादिक मुक्त हुए।।

सार्वजनिक सेवा

पण्डितजी की सेवाओ से सारा ही द्रोणगिरि क्षेत्र लाभान्वित हुआ था। उनकी सलाह सम्मति के बिना द्रोण प्रान्त के ग्रामीण लोगो का कोई भी काम सम्पन्न नहीं होता था। हर वर्ग का व्यक्ति उनको अपनी पारिवारिक समस्याए बता देता था तथा उनकी सम्मति से ही कार्य करता था। इन्होनें द्रोणगिरि (सेधपा) के सरपच का कार्य लगातार 15 वर्षों तक सभाला। इनके सरपची काल मे गाव की बडी उन्नति हुई। सामाजिक सेवा हेतु इन्होने "द्रोण प्रान्तीय सेवा परिषद्" तथा "द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ" की स्थापना की। जिनका सचालन पण्डितजी के ही परामर्श के अनुसार होता रहा।

करुणामय एक प्रसंग

एक बार दशहरे के समय कुछ लोग देवीजी को बलि देने के लिए एक बकरे को लिए जा रहे थे। पण्डितजी उस समय पूजन करके आ रहे थे। पण्डितजी ने उन लोगों को समझाया कि देवी तो सबकी माता हैं। यह बकरा भी उनका पुत्र है। भला अपने बच्चे की गर्दन कौन सी माँ कटवाना चाहेगी। इसे छोड़ दो, यह तो बेचारा बोल भी नहीं सकता। लोगो की समझ में पण्डितजी की बात आ गई पर एक धर्मान्ध हठपूर्वक कहने लगा "आप तो जैन हैं, आप देवी को नहीं मानते हैं इसलिए ऐसा कह रहे हो।"

पण्डितजी ने तुरन्त कहा – "तो भइया इसे छोड़ दो, इससे अच्छा तो मैं हूं, मेरा बलिदान करो, लो काटो गर्दन।" अब तो सब सकपका गए। आखिर उन्होनें उस बकरे को छोड़ दिया। ऐसे करुणाशील थे पण्डितजी।

स्वाभिमान

एक बार किसी शहर से एक जैन बन्धु द्रोणगिरि आए। इस समय वे शहरी हो गए थे। किन्तु पहिले बुन्देलखण्ड निवासी थे। उन्होनें पाठशाला के समय बच्चो को बुलाकर द्रोण प्रान्त की बुराई करते हुए एक लाईन मे कहा – "राम ने घटिया खाले दओ, जनम मेरो महुआ बीनत गओ।" इसमे प्रान्त की एवं प्रान्तीय समाज की गरीबी पर व्यग्य था। पण्डितजी ने तुरन्त 15–20 छन्दो की व्यग्यात्मक कविता रचकर शहरी वेशभूषा, आचार–विचार, रीति–नीति आदि पर ऐसा आक्षेप किया कि उन शहरी जन को शर्मिन्दा ही नहीं होना पडा, क्षमा भी मागनी पडी। यह था श्री पण्डितजी का स्वाभिमान।

प्रान्तीय समाज द्वारा सम्मान

अपनी सेवाओ मे ही आनन्द का रसास्वादन करने वाले पण्डितजी ने कभी किसी फल की इच्छा नहीं की। उन्होने फल प्राप्ति की भावना से किसी भी कर्तव्य कार्य को नहीं जोडा। जिस कार्य को हाथ मे लियां, उसको पूरा करके ही छोड़ा। वे उन उत्तम पुरुषो मे से थे जो आरभ किए गए कार्य को आपत्तियो से आहत होकर कभी नहीं छोडते हैं। न तो अर्थ की भूख ने उन्हे विचलित किया और न ही सम्मान की लिप्सा ने। "नहि कृतमुपकार साधवो विस्मरन्ति" की उक्ति के अनुसार विचारवान् समाज ने पण्डितजी का हर अवसर पर सम्मान किया। अभिनन्दन पत्र भेट किए। उनका उल्लेख यहा करना उचित नहीं लगता। क्योकि इससे निष्पृही पण्डितजी के व्यक्तित्व का कोई सरोकार नहीं था। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष सम्माननीय श्री पण्डित बशीधरजी व्याकरणाचार्य की अध्यक्षता मे प्रान्तीय समाज एवं द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ ने सन् 1967 मे पण्डितजी का सार्वजनिक सम्मान कर उन्हे "विद्याभूषण" की उपाधि से विभूषित किया था।

द्रोणगिरि से बाहर दो वर्ष

पण्डितजी ने 40 वर्ष तक क्षेत्र, विद्यालय एव वर्णी जैन गुरुकुल बड़ा मलहरा को अपनी सेवाओ से चमकाकर अपनी आत्मा को चमकाने का भी पुरुषार्थ किया था। वे आत्म कल्याण के पथ पर बढने की अभिलाषा सजोए सदैव त्यागमय जीवन पथ पर बढने को उत्सुक रहते थे। सन् 1965 मे दशलक्षण महापर्व पर प्रवचन हेतु पण्डितजी इम्फाल (मणिपुर) भी गए थे। वहाँ की समाज के विशेष अनुरोध पर वे वहाँ तीन वर्ष तक रहे और समाज को धार्मिक ज्ञान देते रहे। पूर्वी भारत का वह सीमान्त प्रदेश उनकी चारित्राराधना

के अनुकूल नहीं था। इसलिए वहा की समाज के अनुरोध को ठुकराकर पुन द्रोणगिरि की पावन भूमि पर लौट आए।

साधु संगति एवं आत्म कल्याण

द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर वन्दनार्थ समागत साधु सन्तो का आपके जीवन पर रचनात्मक प्रभाव पड़ा ही था। श्री 105 क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी द्रोणगिरि क्षेत्र पर एकान्त आत्म साधना के लिए आया करते थे, जिनका प्रभाव पण्डितजी पर बहुत था। उनसे प्रेरित होकर आत्म साधना करना उनकी हार्दिक इच्छा थी। पूज्य वर्णीजी के अतिरिक्त युग के महानतम श्रमण साधको श्री 108 आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज, श्री 108 आचार्य देशभूषणजी महाराज, श्री 108 विमलसागरजी महाराज, श्री 108 आचार्य शान्तिसागरजी महाराज (छाणी), श्री 108 शिवसागरजी महाराज, श्री 108 आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज आदि अनेक दिगम्बर सतो के सम्पर्क का लाभ मिला ही था। श्री 108 पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज जो ज्ञान ज्योति जलाने मे पूज्यश्री वर्णीजी के पूर्ण सहयोगी थे, जिनसे भी पण्डितजी का निकट का सम्पर्क रहा। इन सभी बाह्य निमित्तो से इनके अन्तरग का वैराग्य अकुर प्ररोहित हुआ। फलस्वरूप 1967 मे इन्होनें त्याग मार्ग पर अपने पग बढाए और अब ब्रह्मचारी गोरेलाल शास्त्री ने श्री क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज द्वारा सस्थापित श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम द्रोणगिरि मे आत्म साधना प्रारम्भ कर दी जिनवाणी का रसास्वादन करने और कराने के लिए उन्हे यहा पूरा समय मिलने लगा। ज्ञानाराधना एव चारित्राराधना के लिए पण्डितजी का यह अत्यन्त उपयुक्त प्रयास था। 1967 से 1991 तक आश्रम के त्यागी वर्ग को ज्ञानाराधना मे सहयोग देते हुए उन्होने चारित्राराधना की। इन्होने आश्रम की स्थापना मे सक्रिय सहयोग दिया ही था। उसके ट्रस्टी मत्री भी रहे थे अब आश्रम मे पूर्ण एकाकर होने की साधना कर रहे थे। "चारित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिदिट्ठो मोहक्खोहविहीणोपरिणामो अप्पणो हि समो" आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव की इस गाथा को उन्होने आत्मसात् कर लिया था। कुछ पक्तिया यहाँ उनके प्रति बहुमान से लिखी जा रही हैं—

समय शिला पर जिनने अपना नाम अमिट कर डाला।
भावुक हृदय जिन्होने सत्साहित्य सुरुचि लिख डाला।।
उदासीन जीवन अपनाकर जिनवाणी को छाना।
जिनका जीवन लक्ष्य रहा उसका अमृत पी जाना।।

काया तो नश्वर है सबकी कर्म अमर रहते है।
देह नहीं सत्कर्मों से ही पुरुष अमर रहते है।।
महापुरुष तुम सदा अमर हो सम्यग्ज्ञान विकासी।
आतम के अमरत्व पान से सदा रहे अविनाशी।।

अन्तिम समय

फरवरी 91 के मध्य से पण्डितजी का स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। शरीर मे निरन्तर क्षीणता आ रही थी, यह अवस्था सहारे की होती है। पण्डितजी का निवास आश्रम मे था और परिवार ग्राम मे रहता था, जो यहां से लगभग एक किलोमीटर दूर था। परिवार के सभी जन सेवा परिचर्या को आश्रम मे रहे यह सभव नहीं

था। पण्डितजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री अजितकुमारजी ने घर चलने का आग्रह किया, इस पर पण्डितजी ने बडे उदास मन से कहा कि घर जाने से कहीं घर के ही न रह जाए। यह सुनकर श्री अजितकुमार ने बडे विनम्र होकर कहा – "पिताजी! हम अपनी शक्ति भर आपकी चर्या आश्रम जैसी ही बनी रहे ऐसा प्रयास करेगे" वे पण्डितजी को आश्रम से घर 15 मार्च 1991 को ले आए।

घर मे पण्डितजी के लिए पूर्ण आश्रम जैसा वातावरण बनाया गया। पण्डितजी के नित्य धार्मिक कार्य, चिन्तन मनन की अनुकूलता 25 मार्च तक बराबर बनी रही। जब तक उनमे शक्ति रही जिन मदिर जाना, खडे होकर ही पूजन करना जारी रहा। 24 मार्च को शारीरिक कमजोरी अधिक बढ गई थी। शुद्धि कर मदिर जाने का मन किया, लेकिन पैर आगे नहीं बढे तो उसी समय अन्न का त्याग कर दिया तब से नियमपूर्वक ध्यान, चिन्तन करते हुए जल,दूध ग्रहण किया। पूरे समय णमोकार मत्र का पाठ चलता रहा। इस अवस्था मे वे पूर्ण चैतन्य थे ओर परिवार के सभी व्यक्तियो को पहचानते भी थे, लेकिन परिवारजनो के प्रति उनका कोई लगाव नहीं झलकता था। वे तो समाधिमरण पूर्वक देहावसान के अभिलाषी हो गए थे।

समाधिपूर्वक देहावसान

पण्डित गोरेलालजी शास्त्री, जो अब एक ब्रह्मचारी एव उदासीन–व्रती साधक थे, ने अपना पूरा जीवन तत्त्वो के रहस्य को बिखेरने मे ही लगाया था अब चारित्र को भी अपने जीवन मे उतारा। अब तो मानो वे यह ही सोच रहे थे–

"यह शरीर तो नश्वर है ही आत्मा की अमरता पर विश्वास रखने वालो को क्या जीवन, क्या मृत्यु सब बराबर है। वैसे भी इस देह मे रहकर मैने 85 वसन्त देख लिए हैं अब इससे सयम की आराधना कहॉ संभव है अब तो देह छूटना ही महोत्सव है मुझे।" वह समय भी आयेगा अब तो सभी प्रकार के आहार का त्याग है, शुद्धात्मा ही शरण है, पच गुरु सहायक है। यह दिन 28 मार्च का था। 29 मार्च को पण्डितजी दिवगत हो गए।

आत्मीयजनो को मोहवश दुख तो हुआ पर उससे क्या ? ज्ञानीजनों के लिए तो मौत महोत्सव है और कुछ नहीं।

धरा धाम को छोड चुके, अबं स्वर्गधाम विश्रामी।
लक्ष्य लिए अमरत्व प्राप्ति का चिन्तन में अविरामी।।
यहां अकामी रहे, वहॉ फिर कैसे भवसुख कामी।
है विश्वास वहॉ पर भी वे हो स्वतत्व विश्रामी।।

• श्री दि जैन अतिशय क्षेत्र
महावीरजी (राज)

□□□

श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री

— पं. दुलीचन्द, बाजना

पण्डित गोरेलालजी शास्त्री को मैं उनके बचपन से ही जानता हूँ। छोटे से ही वे नम्र, प्रतिभाशाली तथा सरल स्वभावी रहे। उनकी गतिविधियाँ "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" की कहावत को चरितार्थ करतभ। थीं। एक बार मेले के अवसर पर क्षेत्र के अध्यक्ष श्री सेठ लख्मीचन्दजी साहब बमराना वाले पधारे। पण्डितजी की प्रवृत्ति को देखकर व प्रतिभा से प्रभावित होकर उनको अपने यहा पढने के लिए ले गए और उन्हे गाव की पाठशाला जैन विद्यालय सादूमल मे भर्ती कर दिया। जैन समाज के प्रकाण्ड पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री, प हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री प्रभृति विद्वानो के यह बाल काल मे साथी सहाध्यायी विद्यार्थी रहे। हमारे तो वे लघु भ्राता के तुल्य हैं। अत जब भी इनका परीक्षाफल, प्रगति आदि सुनते थे हमारा ह्रदय आनन्द से फूला नहीं समाता था और सोचता था कि यह खूब पढे आगे बढे स्वयं प्रकाशमान हो प्रान्त को प्रकाशित करे। सादूमल मे शिक्षा पूर्ण करने के बाद ललितपुर, इन्दौर आदि पढने गए और सुयोग्य बनकर लौटे। प्रान्त की सेवा की जैसी उनकी भावना थी उनको वैसा सुयोग भी मिला।

घौरा के जल विहार मे पूज्य श्री 105 क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज को पधारने का मौका मिला। वहाँ एकत्रित लोगो को उन्होने समझाया –

"देखो, यह प्रान्त विद्या मे बहुत पीछे है। आप लोग जल विहार मे सैंकडो रुपये खर्च कर देते हो, कुछ विद्यादान मे भी खर्च करो। यदि द्रोणगिरि में एक पाठशाला हो जावे तो अनायास ही इस प्रान्त के बालक जैनधर्म के विद्वान् हो जावेंगे। (जीवन यात्रा पृष्ठ 111)"

पूज्य वर्णीजी के सदुपदेश से चन्दा हुआ, प्रान्तीय समाज तथा जाति भूषण सिंघई कुन्दनलालजी सागर (तत्कालीन अध्यक्ष द्रोणगिरि) ने भी चन्दा दिया और वैशाख वदी 7 स. 1985 मे द्रोणगिरि में पाठशाला की स्थापना हो गई। प. गोरेलालजी शास्त्री को ही प्रान्त मे ज्ञान प्रचार और प्रसार का भार सौंपा गया। उन्होनें उस कार्य का एक व्रत की तरह पालन किया। अच्छे–अच्छे छात्र तैयार किए जो आज विद्वान् बनकर प्रान्त का नाम गौरवान्वित कर रहे हैं। इसका श्रेय पण्डितजी को है।

विजावर नरेश श्री गोविन्दसिह जू देव के रजवाडे के निमित्त जो प्रयास और सूझ बूझ पण्डितजी ने अपनायी थी उसका प्रभाव जैन सम्राट सर सेठ हुकमचन्दजी पर भी पड़ा था। महाराजा विजावर के राज सदन मे लगे तीनपत्र महाराजा की कीर्तिगान करते थे तो महाराजा जैन समाज का आभार भी मानते हैं इस सम्पूर्ण कथा को वृत्तचित्र की तरह देखने का ही नहीं पण्डितजी का सहयोगी बनने का भी सुयोग मुझे मिला।

पण्डित गोरेलालजी एक सरल स्वभावी, सरस, मृदुभाषी विद्वान हैं उनके प्रयास के परिणामस्वरूप द्रोणगिरि क्षेत्र और पाठशाला के विकास मे जैन–अजैन जनता का सौहार्दपूर्ण सहयोग मिलता रहा है जो भी दर्शनार्थी क्षेत्र पर आया प्रभावित होकर ही गया।

पण्डितजी सचमुच एक ऐसे प्रच्छन्नवेषी साधु है जो प्रचार की दुनिया से दूर है। वे पूज्य वर्णीजी के प्रिय ग्रन्थ समयसार के अच्छे रसिया हैं। प्रभावशाली वक्ता और कुशल लेखक हैं। अपने प्रान्त के अतिरिक्त अन्य प्रान्त वाले भी इनके ज्ञान का लाभ ले रहे हैं। पण्डितजी के कारण हमारे प्रान्त और समाज का गौरव बढा है।

(यह आलेख 1967 मे पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के अभिनन्दन समारोह के अवसर पर प्रकाशनार्थ प्राप्त हुआ था।)

● बाजना, छतरपुर (म प्र)

❑❑❑

करुणामूर्ति स्वर्गीय पं. गोरेलाल शास्त्री

— सुरेन्द्रकुमार जैन

पुण्यभूमि द्रोणगिरि की गोद मे सन् 1908 ई. मे पण्डित गोरेलालजी का जन्म हुआ। इनके पिताजी का नाम भूरेलालजी था। पारसमणि की विशेषता होती है कि यदि वह लोहे को स्पर्श कर दे तो वह सोना हो जाता है सन्त पारस होता है और सामान्य व्यक्ति लोहा। सन्तरूपी पारस जिस सामान्य व्यक्ति रूपी लोहे को स्पर्श कर देता है वही सोना हो जाता है। पूज्य वर्णीजी पारस थे। उन्होने अनेको लौह खण्डो को छूकर सोना बना दिया। जब पूज्य वर्णीजी द्रोणगिरि पधारें उस समय पण्डित गोरेलालजी सादूमल और इन्दौर से विद्याध्ययन करके लौटे थे और उन्होने द्रोणगिरि को ही अपना कार्य क्षेत्र चुनकर क्षेत्र की उन्नति मे योगदान करने का निश्चय किया था। पूज्य वर्णीजी की प्रेरणा से वि स. 1985 (सन् 1928) मे द्रोणगिरि क्षेत्र पर श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला की स्थापना हुई और पण्डित गोरेलालजी उसमे अध्यापक के रूप मे कार्य करने लगे। सन् 1964 तक उन्होनें उक्त सस्था मे कार्यरत रहकर सैकडो छात्रो का जीवन निर्माण किया। साथ ही क्षेत्र की सम्पूर्ण व्यवस्था करते हुए जीर्णोद्धार, नव निर्माण एव विकास के महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पादित किया। द्रोणगिरि विद्यालय एव सिद्धक्षेत्र मे 37 वर्ष तक पण्डितजी ने अपने को लगाकर जो कार्य किया, उसी मे वे एकाकार हो गए, द्रोणगिरि क्षेत्र पर जो भी दर्शनीय है, जो नया है, जो रमणीयता है, वह सब पूज्य पण्डितजी के ही अथक श्रम का साकार रूप है।

समाज सुधारक

पण्डितजी जब अपनी युवावस्था मे थे। जवानी मे जोश होता है और बुढापे मे होश। तब उन्होने समाज सुधार के अन्तर्गत बाल विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय, जबर्दस्ती मृत्युभोज आदि कुप्रथाओ को दूर करने का सघर्षपूर्ण कार्य किया। श्री पण्डितजी के हृदय मे समाज सुधार की तीव्र लगन थी। जब भी देहात मे कोई समस्या आन पड़ती तब पण्डितजी उफनती नदी को तैरकर भी वहां सम्मिलित होते। कडी भुजती दुपहरी मे सिर के ऊपर गमछा डालकर जाते तो कभी पूस माघ की रातो मे भी चलते।

पण्डितजी को किसी जगह पंचायत मे बुलाया जाता तो वे वहा जाते। वहां जाकर स्थिति का गभीर अध्ययन करते, जैन--जैनेतर समाज की सलाह लेते, वातावरण की स्थिति समझकर पक्षकारो के अभिप्रायो को परखते और समस्या के उचित एव न्यायपूर्ण समाधान के लिए वातावरण तैयार कर अपने निर्णय को सबसे मान्य कराते थे। इसप्रकार क्षेत्रीय समस्याओ का निराकरण होता था। द्रोण प्रान्तीय सेवा परिषद् के माध्यम से आपकी समाज सेवा उल्लेखनीय मानी जा सकती है।

विद्यानुरागी

पण्डितजी बचपन से ही विद्यानुरागी रहे। उन्हे जैनागम का गहन अध्ययन था। जैनतत्व का जितना अनुशीलन पण्डितजी ने किया था कम विद्वानो ने किया होगा। जैन तत्वज्ञान के महनीय ग्रन्थो— राजवार्तिक, प्रवचनसार, समयसार, पचास्तिकाय, तिलोयपण्णति आदि का 3—4 घटे एक आसन से बैठकर स्वाध्याय करना पण्डितजी की दिनचर्या मे था।

चारित्राराधक

अपनी व्यक्तिगत चारित्राराधना पण्डितजी का स्वयं समाज के लिए एक आदर्श था कई वर्षों तक आप पाक्षिक श्रावक का जीवन बिताते रहे। प्रत्येक अष्टमी,चतुर्दशी को उपवास करना तथा प्रात काल ही 4 बजे के पहले उठकर सामायिक, स्वाध्याय करना पण्डितजी की दिनचर्या के प्रमुख अंग थे। इससे उन्होने अनेक जिज्ञासुओ मे ज्ञान की उत्कट जिज्ञासा भरकर उन्हे जिनवाणी के अध्ययन की ओर प्रेरित किया था। 1967 से 1991 तक उदासीनाश्रम द्रोणगिरि मे रहकर आत्म साधना करते हुये अन्य त्यागियो को अध्ययन व स्वाध्याय हेतु प्रेरित किया।

प्रेरक व्यक्तित्व

उनका सादा पहनावा, त्यागी, तपस्वियो जैसा था। किसी भी नवागन्तुक के प्रति पण्डितजी के हृदय मे उत्साह उमड पड़ता था। सभी लोग बडी ही आत्मीयता के साथ पण्डितजी से मिलते थे। पण्डितजी के आनन से निश्छलता, सौम्यता व सरलता छलकती थी। पण्डितजी की वाणी मे कोई अहकार नहीं था। नम्रता की मूर्ति पण्डितजी बड़े सीधे सादे शब्दो मे अपनी बात कह जाते थे। जैनदर्शन के गहनतम तत्वो का विवेचन चल रहा हो तो भी विद्वता के प्रति अहंकार की कोई क्षीण रेखा भी नहीं दिखती थी। सीधे साधे जीवन की तरह सीधे साधे शब्दों में उनकी वाणी मुखरित होती थी। दयामूर्ति पण्डितजी सचमुच ही बुन्देलखण्ड के गौरव थे।

साहित्य सर्जक

पण्डितजी एक प्रतिभाशाली आशुकवि थे। अध्यापन कार्य करते कराते भी पण्डितजी को बीच मे मौन होकर सोचते और छन्दोबद्ध पक्तियो को कहते देखा गया। लगता था जैसे किसी कवि की रचना उन्हे कठस्थ हो, परन्तु वह उनकी ही रचना होती थी। बैठे--बैठे ही कई छन्दो की रचना थोड़े समय मे ही कर देना पण्डितजी की विशेषता थी।

आपने प्रार्थना, प्रभातफेरी तथा धार्मिक भजनो की रचना की थी। आपकी प्रकाशित रचनाओ मे द्रोणगिरि पूजन, बारह भावना, जैन गारी सग्रह, भक्ति पीयूष, सुमन सचय (दोहा मजरी) हैं। चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ, रामविलास, नाममाला तथा मार्तण्ड (हस्त लिखित) मासिक का सम्पादन भी पण्डितजी ने किया।

बारह भावना एक उत्कृष्ट रचना है। उसके पाठ से मन वस्तु तत्त्व के चिन्तन मे ओत प्रोत हो जाता है। सुमन सचय मे दोहा छन्द मे नीति की सरल शिक्षाए दी हैं। जो बालक और वृद्ध को समान रूप से हितकारक हैं। भक्ति पीयूष मे सरस भक्तिमय काव्यधारा का आस्वादन होता है।

पण्डितजी का निधन दिनाक 29 3 91 को अत्यन्त सावधानीपूर्वक साधु एव विद्वत् मरण की श्रेणी मे हुआ है। ऐसा मैंने अनुभव किया है।

• सर्वोदय प्रिन्टर्स
छतरपुर

□□□

अध्यात्म जागरण के अग्रदूत

— डॉ. रमा जैन

सदा से भारतवर्ष अध्यात्म विद्या की लीलाभूमि रहा है। भारतीय साहित्य एवं इतिहास इस बात का साक्षी है कि आध्यात्मिक खोज और उसका सम्यक् आचरण ही आध्यात्मिक सन्तों तथा सत्यशोधी पृथ्वीपुत्रो के जीवन का एक मात्र उद्देश्य रहा है। आत्मसाधना समन्वित, लोक मंगलकारी "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना द्वारा भारत ने आदिकाल से ही विश्व का नेतृत्व किया है।

मुकुन्ददाता ग्रन्थ के एक श्लोक मे भक्त कवि जन्म जन्मान्तरो मे भी भगवान् के चरण कमलो की अनन्य, अटूट भक्ति चाहता है। वह कहता है —

नास्थाधर्मे न वसुनिचये, नैवकामोपभोगे,
यद् भाव्यं तद् भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपम्।।
एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमत जन्म जन्मान्तरेऽपि,
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु।।

हे भगवान्! न तो मेरी अधर्म मे आस्था है, न धन सग्रह मे और न काम भोग मे। यह सब तो मेरे पूर्व कर्मों के अनुसार जिस तरह होने हो, सो हो मेरी तो एक बडी मनचाही प्रार्थना है कि जन्म जन्मान्तरों मे भी आपके युगल चरण कमलो मे मेरी निश्चल, अखण्ड भक्ति बनी रहे।

पण्डित गोरेलालजी ऐसी ही अक्षुण्ण भक्ति की आकांक्षा करते हैं। उन्हे दृढ विश्वास है, अटूट श्रद्धा है कि ससार मे केवल अतीन्द्रिय—अनिर्वचनीय उत्तम सुख वीतराग प्रभु की उपदिष्ट वाणी मे ही प्राप्त हो सकता है। उनके शब्दो मे ही देखिये —

वीतराग उपदिष्ट धर्म ही उत्तम सौख्य प्रदाता है।
इसकी प्राप्ति किये बिना नहीं, ससृति का दुख जाता है।।

पण्डितजी ने एक साधक कवि के रूप मे सासारिक विषय वासना का विविध प्रकार से चिन्तन किया है। ससार मे ससरण का प्रबलतम कारण मोह और अज्ञान है। जिनके कारण जीव की राग द्वेषात्मक प्रवृत्तिया उत्पन्न होती हैं। ये प्रवृत्तिया ही हिसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह की ओर मन को दौडाती है। सारा जीवन मनुष्य का धन, वैभव, पुत्र, कलत्र, भोग—विलास की सामग्री एकत्रित करते—करते ही समाप्त हो जाता है।

पण्डितजी ससार की नश्वरता पर विचार करते हुए कहते हैं — "मृत्यु एक अटल सत्य है, अवश्यभावी है। उसके आने पर कोई भी मनुष्य बच नहीं सकता" अत भयभीत होने की आवश्यकता नहीं, अपितु आत्म चिन्तनपूर्वक ससार के सुखो से मुख मोडकर, आत्महित साधना मे लग जाना श्रेयस्कर है। जिन भक्ति और शुभ भावो से पुण्य बन्ध होता है। बडे—बडे महापुरुषो को, सन्तो और साधुओ ने भी कर्मों के नाश हेतु आत्म ध्यान किया है। अत पण्डितजी कहते है —

हे प्राणी जिनभक्ति मे तन्मय होकर कर्मों का नाश करो।"

परमात्मा की स्तुति द्वारा अपनी वह आत्म ज्योति प्रगट होती है, जिसका दिव्य रूप आनन्द का अक्षय भण्डार होता है। जिसप्रकार चट्टानो के नीचे गडा हुआ स्वर्ण हस्तगत करने के लिए चट्टानो को

कुदाली तथा अन्य साधनो द्वारा तोडा जाता है, उसीप्रकार कर्म के आवरण से आच्छादित अपना निज स्वरूप प्राप्त करने के लिए भगवान् की भक्ति उत्कृष्ट साधन है –

जब महापुरुष भी कर्म से नही छूटे,
तब औरो की क्या बात, निरन्तर लूटे।
जिन कियो यत्न उन दिये करम सब जारी।

पण्डितजी ने द्रोणगिरि वन्दना और पूजा मे गुरुदत्तादि मुनिवरों की वन्दना कितने सीधे, सरल शब्दो मे कितनी गहरी और प्रभावपूर्ण ढग से की है। कितना प्रसाद गुण है इन पक्तियो मे, जो कि मिश्री की भाति मीठी और तीर सी तीक्ष्ण बात से पाठक को यथार्थ का बोध कराने मे सक्षम है। कवि मुनि चरणो मे नमन इसलिए करते है कि वह ससार भ्रमण से मुक्त हो जायं –

हे पूज्य तपोनिधि तव चरणो मे, निशदिन करता हू प्रणाम।
बस चाह यही ससार भ्रमण से मै पा जाऊँ अब विराम।।

द्रोणगिरि वन्दना में पण्डितजी श्रोता और पाठक के हृदय मे अध्यात्म तत्व जगाना चाहते हैं। अत दुख देने वाली घोर अविद्या के अधकार को दूर करके आत्मज्ञान के सूर्य को मन मे प्रकट करने की भी प्रार्थना करते हैं –

बोध सूर्य का उदय हमारे मन मन्दिर मे प्रकट करो।
दु ख दायिनी घोर अविद्या अधकार को दूर करो।।

आत्मिक बल की उन्नति करके श्री जिन धर्मोत्थान करे।
निज कर्तव्यो के पालन मे अनवधानता दूर करे।।

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अपने कल्याण की ओर बहुत कम प्रवृत्त होता है। उसे चिन्ता रहती है केवल अपने शरीर, स्त्री–पुत्र, माता–पिता एव धन धान्यादि की। अहर्निश वह इसके कल्याण मे ही निमग्न रहता है। वह सोच ही नहीं पाता इन सबके अतिरिक्त भी एक आत्म वस्तु है, जो इसी शरीर के अन्दर विद्यमान है और उसकी हित साधना की ओर भी कुछ ध्यान देना है। इसका मुख्य कारण है उसे आत्मस्वरूप की स्पष्ट एव यथार्थ प्रतीति का अभाव। आत्म स्वरूप की यथार्थ प्रतीति के लिए नीर, क्षीर, विवेकी भेद विज्ञान आवश्यक है। भेद–विज्ञान होने पर स्व–पर–पदार्थों का स्पष्ट बोध हो जाता है और इससे मानव की प्रवृत्ति आत्माभिमुखी हो जाती है।

पण्डितजी कहते हैं हे भव्य जीव तू आत्मा का कल्याण कर। इस ससार मे भ्रमण करते हुए तुझे अनन्त काल हो गया। अब ऐसा काम कर जिससे ससार के जन्म मरण के समस्त दु खो से छुटकारा मिल जाए। आत्मानुभूति एव आत्मज्ञान का बडा माहात्म्य है। हे आत्मन् ! लाखो करोड़ो भवो की तपस्या से जितने कर्मों की निर्जरा होती है, उतनी निर्जरा तो आत्मानुभवी व्यक्ति एक क्षण मे कर लेता है। दौलतरामजी ने छहढाला मे लिखा है –

कोटि जन्म तप तपे, ज्ञान बिन कर्म झरें जे।
ज्ञानी के छिन मांहि त्रिगुप्ति ते सहज टरे ते।।

पण्डितजी गोरेलालजी ने भक्ति पीयूष मे लिखा है –

जब पूर्व जन्म का सुकृत उदय आता है।
तब मनुजगति मे जीव जनम पाता है।।
निज हित करने की मिली कुछ साता है।
यदि करे कर्म का नाश मोक्ष जाता है।।
इसको पाकर मत व्यर्थ गमाओ भाई।
नर भव का पाना जग मे अति कठिनाई।।

मनुष्य ससार की प्रवृत्तियो मे इतना उलझा रहता है कि उसे इस बात की कोई सुध नहीं हो पाती कि उसके जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य क्या है ? इतना ही नहीं वह अपनी इन विविध प्रवृत्तियो मे यह भी ध्यान नहीं रख पाता कि उसकी आयु के कितने अमूल्य क्षण व्यर्थ निकल गए और अब कितने शेष रह गए है, उसे यह भी भान नहीं होता कि हमारा ससार मे रहना सदा के लिए नहीं है आयुकर्म के अनुसार वह क्षण भी आ सकता है, जब हमे सभी इष्ट बन्धुओ को बिलखता छोडकर इस पर्याय से विदा लेनी होगी। पण्डितजी कहते है—

जल तरग की भाति चपल है, जग मे जीवन प्राणी का।
रहता नहीं सुथिर काया मे, यह सौन्दर्य जवानी का।।

नीतिकारो ने लिखा है —

पुरू गुणभोगे करेदि लोयम्मि पुरूगुण कम्म।
पुरू उत्तमो य जम्हा तम्हा सो वण्णिओ पुरिसो।।

जो उत्तम गुणो का सेवन करता है और लोक मे उत्तम गुण, कर्मो को करता है, वह उत्तम होने से पुरुष कहलाता है।

आत्म सयमी, उत्कृष्ट चरित्र के धनी पण्डितजी सच मे एक कर्मठ, निस्पृह, पुरुषार्थी, सद्सकल्पी महामानव थे। वे घर से दूर रहकर "वानप्रस्थ" आश्रम की सास्कृतिक, पुरातन परम्परा को पुनर्जीवित कर रहे थे। स्व कल्याण के साथ ही वे लोक कल्याण, लोक मगल की भावना से समाज मे व्याप्त कुरीतियो, कुप्रथाओ और अधविश्वासो को दूर करने का अहर्निश प्रयत्न करते रहे। उन्होने लिखा —

"जो कुरीतिया थीं समाज मे उनके रहे प्रहर्ता।"

शादी विवाह के शुभ अवसरो पर अश्लील बन्ना बन्नी और गारिया सुनकर उनका ह्दय व्यथित हो जाता था। उन्होनें बुन्देली लोकगीतो की तर्ज पर ही अनेक गारिया लिखीं और मधुर कठ से गा—गाकर महिला समाज मे एक नई जागृति का शखनाद भी फूका। उनके इस सामाजिक सुधार ने अज्ञान अधकार मे सुषुप्त महिला मडल मे एक नई चेतना, नई स्फूर्ति और दिव्य रोशनी भर दी। पण्डितजी द्वारा लिखी गारिया महिलाए जब समवेत स्वर मे गातीं थीं, पूरा वातावरण सगीतमय हो जाता था। घराती बराती सब मत्रमुग्ध हो वे गीत सुनते और मुस्कराते थे —

सुकृत कमाई कछु न कीनी, नीति सुनीति न जानी वे,
हा हा वे हूं हूं वे
कर अन्याय बहुत धन जोरा, लखी न कर की हानी वे।
हा हा वे हूं हू वे

दिन अरु रात गिनो नहि कोई, कीनें भोजन पानी वे,
हा हा वे हू हूं वे
नर भव पाकर अब तो कर लो, निज आतम कल्याणी वे।
हा हा वे हू हूं वे.

ससारी आत्मा सदा से ममत्वशील अतएव सग्रही भी रहा है। उसकी अविवेकपूर्ण प्रवृत्ति मे मोह ही प्रधान निमित्त है। यही कारण है कि यह आत्मा निरन्तर परकीय वस्तुओ को अपनाता रहता है एव उसमे तीव्र निजत्व तथा रागबुद्धि रखता है। माता–पिता, स्त्री–पुत्र, स्वजन, परिजन, धरा–धाम, धन–धान्य सब कुछ जिससे उसको तनिक भी आत्मीयता नहीं है, अपना मानता है। परन्तु इसे इस बात का तनिक भी विवेक नहीं कि वह अपने आप मे सर्वतत्र स्वतत्र द्रव्य है और अन्य वस्तुओ से उसका कुछ भी नाता नहीं है। वह सदा से अकेला है और सदा अकेला रहेगा, शरीर भी उसका नहीं है।

हे आत्मन्! तू तीनो काल मे अकेला है अपने स्वरूप को छोडकर तेरा परवस्तु से किंचित् सम्बन्ध नहीं है, न हुआ है और न होगा। कुटुम्ब का सम्बन्ध तो नदी–नाव के सयोग की तरह है। न वह शाश्वत् है और न उसमे अपनापन है।

आत्म स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध सच्चिदानन्दमय है। इसके विपरीत ससार और शरीर सब कुछ अशाश्वत और आत्मरूप से भिन्न हैं। ससार के नाते भी अखण्ड आत्मरूप की तरह सदा रहने वाले नहीं हैं। इसी तथ्य को कविवर पण्डित गोरेलालजी ने बडी सजीव शैली मे प्रतिपादित किया है। वे लोकगीतो के माध्यम से आत्म चेतना जगाना चाहते हैं –

तुम सुनो हमारे चेतन भैया, अपनी सुध विसरैया।
मोह महामद पीकर जग मे, निज को वृथा भ्रमैया।।
जग मे चक्कर खूब लगाया, जैसे खा को पैय्या।।
नरतन पाके जिन वृष धारो, जो भवपार लगैया।।
तुम सुनो हमारे चेतन भैया, अपनी सुध विसरैया।

• छतरपुर (मध्यप्रदेश)

□□□

आस्था के प्रतीक

— चन्द्रभान जैन

श्रद्धा एवं आस्था के प्रतीक श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि के सम्बन्ध मे लिखना मेरे लिए अत्यन्त दुरूह एव अशक्य कार्य इसलिये है क्योंकि मैं पण्डितजी की गंभीर ज्ञान गरिमा व पाण्डित्य के लाभ से वंचित रहा हूँ। जिनकी कर्तव्य परायणता की महक से चतुर्दिक् पर्यावरण सुवासित रहा है।

मुझे पण्डितजी के चरण सान्निध्य मे बैठकर ज्ञान प्राप्त करने का, अध्ययन करने का सौभाग्य तो नहीं मिला परन्तु क्षेत्र प्रबन्ध समिति की बैठको मे सम्मिलित होने तथा अभिरुचि होने के कारण सन् 1952 से प्राय द्रोणगिरि आते जाते रहने के कारण मैं पण्डितजी के निकट सम्पर्क मे रहा। मैंनें देखा कि पण्डितजी का अपार स्नेह मुझसे रहा है! मैने समयानुसार सफल जीवन के लिए उनसे सुझाव व मार्गदर्शन भी प्राप्त किये।

अज्ञान अधकार से आच्छादित इस द्रोणाचल मे सदातोया युगल सरिताओ के मध्य कर्मछालन का मूक उपदेष्टा महा रमणीक सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पर श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय के यशस्वी कर्मवीर प्रधानाचार्य के रूप मे सजग प्रहरी बनकर चार दशक तक ज्ञान का शंखनाद कर जो प्रकाश पुंज विकीर्ण किया वह पण्डितजी का इस भूभाग पर महान् महान् उपकार है।

द्रोणाचल मे स्थित लघु विद्यालयो के विकास एव संचालन व्यवस्था का सदा ध्यान रखते थे। हमारे नगर घुवारा मे सचालित श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन विद्यालय के प्रति तो उनका अनन्य–अनन्य उपकार रहा है। विद्यालय को वर्तमान स्वरूप प्रदान करने मे आपका महनीय योगदान स्मरणीय है। आपने इस विद्यालय मे अनेको बार पधारकर निरीक्षण–परीक्षण किया और विद्यालय को जीवन प्रदान करने के लिए आपने ही श्री क्षमाबाईजी शास्त्री जैसी श्रमशील विदुषी अध्यापिका को नियुक्त कर विद्यालय को गतिशील बनाये रखने मे महत्वपूर्ण योगदान किया है।

पण्डितजी गभीर शान्त, अल्प एवं मधुर भाषी, निरभिमानी व्यक्तित्व के धनी थे। आत्म प्रशंसा से सदा दूर रहने वाले जैन दर्शन के अति गंभीर करणानुयोग जैसे विषय के रसिक एवं मर्मज्ञ विद्वान् थे। द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ के अधिवेशनो मे, श्रुत पचमी पर्व आदि के अवसर पर अपने ओजस्वी विचार प्रगट करते हुए सघ के सदस्यो एव उपस्थित जन समुदाय को लोक और धर्म की रक्षा के लिए प्रेरणास्पद सदेश दिया करते थे।

पण्डितजी धार्मिक उपदेष्टा, समाज सुधारक, अज्ञान अधकार को दूर करने वाले थे। उन्होने अपने यशस्वी जीवन मे कभी विश्राम नहीं लिया। धर्म के हित मे, समाज के हित मे जहॉ भी पण्डितजी की आवश्यकता हुई पण्डितजी वहॉ उपस्थित हुए।

यद्यपि पण्डितजी का चार दशक तक तो कार्यक्षेत्र सस्थागत के रूप मे श्री सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि, श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय एवं इस ही की सहायक सस्था श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन गुरुकुल बड़ामलहरा ही रहा लेकिन समाज सेवा का द्वार उनके सामने सदा खुला रहा फलत पूरा प्रान्त उनकी समाज सेवा से अभिभूत रहा है। आसाम, मालवा, छत्तीसगढ, उत्तर प्रान्त आदि स्थानो मे पर्वों के निमित्त पूजा प्रतिष्ठाओ के विभिन्न अवसरो पर जाकर उन्होनें समाज को प्रवचनो का लाभ दिया। पण्डितजी परोपकारी व्यक्तित्व थे।

• घुवारा, छतरपुर (मध्यप्रदेश)

□□□

सफरनामा

— पण्डित लक्ष्मणप्रसाद "प्रशान्त"

गुरुदत्तादि मुनियो की निर्वाणभूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि सन् 1928 के पूर्व मात्र एक धार्मिक तीर्थक्षेत्र के रूप मे प्रसिद्ध रहा है। यह वह समय था जब भारत परतत्र था और रियासतो का जमाना था। रियासतो मे शिक्षा के विकास पर कोई ध्यान नहीं था। यह स्थान बिजावर रियासत का रहा है जो आवागमन के साधनो से वचित तो था ही शिक्षा के क्षेत्र मे भी बहुत पीछे था। जैन आम्नाय का प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र होने के कारण यहा यह आवश्यक था कि इसकी पूजा अर्चा सुरक्षा व्यवस्था तथा विकास के लिए व्यक्तियो का निर्माण किया जाए। यह तभी सभव होता जब यहा शिक्षा की सुविधा हो, व्यक्ति शिक्षित बने।

द्रोणगिरि इसके लिए अत्यन्त उपयुक्त स्थान था। पर यहा शिक्षा सस्था की स्थापना के लिए प्रयास करने वाला कोई नहीं था। सौभाग्य से इस तीर्थक्षेत्र पर आध्यात्मिक सत पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी का पदार्पण हुआ। समाज के कुछ व्यक्तियो ने वर्णीजी का ध्यान यहा एक शिक्षा मदिर की स्थापना की ओर आकृष्ट किया। वर्णीजी को यह सुझाव तो उपयुक्त लगा लेकिन कार्य श्रमसाध्य व्ययसाध्य होने के कारण कैसे सभव हो ? पपौरा मे परवार सभा का अधिवेशन था उसमे मै उपस्थित था वहा भी किसी सज्जन ने द्रोणगिरि मे एक पाठशाला प्रारम्भ करने की चर्चा मुझसे की। मैने द्रोणगिरि आने पर विचार करने की बात कही थी। जैसे ही मैं द्रोणगिरि आया मुझे पपौरा मे हुई चर्चा का स्मरण भी हो आया लेकिन द्रोणगिरि मे जैनियो के केवल 2–3 ही साधारण परिस्थितियो के घर हैं मेला के समय तो कुछ जनसख्या यहा दिखती है जिसमे पाठशाला को प्रारम्भ करने का विचार किया जा सकता है। लेकिन मेला तो अभी दूर है।

कुछ समय बाद घुवारा, जो क्षेत्र के निकट का एक बड़ा गाव है और जैन समाज की सख्या भी यहा अच्छी है, मे जल विहार था, उसमे सम्मिलित होने का मौका वर्णीजी को मिला। एकत्रित समाज के बीच उन्होने लोगो के सामने सुझाव रखा कि यह प्रान्त विद्या मे बहुत पीछे है। जल विहारादि कार्यों मे आप लोग बहुत पैसा खर्च करते हैं लेकिन विद्या दान की ओर समाज का रुझान नहीं हैं। मैं चाहता हू कि आप लोग कुछ दान विद्यादान मे करे तो द्रोणगिरि क्षेत्र पर एक पाठशाला प्रारम्भ की जा सकती है। जिसमे प्रान्त के बालक जैन धर्म का अध्ययन कर विद्वान् बन सकते हैं।

मेरे सुझाव पर सभी ने प्रसन्नता व्यक्त की और आर्थिक समस्या हल करने के लिए उपस्थित समाज से चन्दा करने की बात हुई परन्तु अधिक श्रम करने के बाद भी 50 रुपए मासिक व्यय का प्रबन्ध हो सका। इसके बाद महाराजगज मे भी एक उत्सव था वहा भी कुछ चन्दा हुआ। मलहरा निवासी श्री सिघई वृन्दावनदासजी ड्योडिया ने कहा आप चिन्ता न करिए हम यथाशक्ति सहायता करेगे। प दुलीचन्दजी बाजना ने भी बहुत उत्साह से कहा कि हम भी प्राणपण से इसमे सहायता करेगे। इतने मे ही द्रोणगिरि का वार्षिक मेला भी आ गया और उसमे सागर से प मुन्नालालजी राधेलीय आए। उन्होने विद्यालय खोलने के लिए सिघई कुन्दनलालजी सागर से सहायता करने को कहा तो उन्होने 100 रुपए वार्षिक देना स्वीकार किया।

शुभस्य शीघ्रम् की उक्ति के अनुसार प मुन्नालालजी और प दुलीचन्दजी की सम्मति से वैशाख सुदी 7 वि स 1985 मे बाबूलाल मोदी, जवाहरलाल मलहरा, लखमीचन्द द्रोणगिरि, आनन्दकुमार वर्मा,

नाथूराम शर्मा इन पांच छात्रों से विद्यालय का शुभारम्भ हुआ। शिक्षण कार्य के लिए स्थानीय विद्वान् पं. गोरेलालजी शास्त्री, जो अध्ययन कर आये ही थे, को 20 रुपए मासिक पर नियुक्त कर दिया। इसप्रकार द्रोणगिरि मे पाठशाला का शुभारम्भ हुआ। तथा पाठशाला का नाम गुरुदत्त दि जैन पाठशाला रखा गया।

पाठशाला की स्थापना के बाद सभी लोग अपने–अपने स्थान पर चले गए। पूज्य वर्णीजी ने भी प्रस्थान कर दिया। पाठशाला को चलते हुए जब 1 वर्ष पूरा हो गया तो उसके वार्षिकोत्सव का आयोजन हुआ। इस आयोजन मे पूज्य वर्णीजी के साथ सिघई कुन्दनलालजी, जो क्षेत्र एव पाठशाला के अध्यक्ष थे, आए तथा प्रान्तीय समाज उपस्थित हुई। विद्यालय के 1 वर्ष के कार्य को देखा और पण्डितजी के अथक परिश्रम की लोगो ने प्रशसा की। इस अवसर पर पण्डितजी के कार्यों से प्रभावित होकर सिघई कुन्दनलालजी ने 5000 रुपए की स्वीकृति दी। कई लोगो ने छात्रो के लिए छात्रावास बनवाने की स्वीकृति दे दी। सिंघईजी के छोटे भाई नत्थालालजी ने भी एक कमरा बनवाया और पाठशाला की उन्नति के लिए अनेक योजनाए बनाईं गईं।

द्रोणगिरि क्षेत्र पर इस पाठशाला के खुल जाने के कारण जैन छात्रों को तो शिक्षा के लिए साधन मिले ही जैनेतर छात्रो ने भी इस पाठशाला मे प्रवेश लेकर शिक्षा प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप पाठशाला की छात्र सख्या मे निरन्तर वृद्धि होने लगी। पाठशाला मे प्राथमिक शिक्षा के रूप मे अक्षरज्ञान से लेकर जैनधर्म की शिक्षा दी जाती थी। बालको को बालबोध चारो भाग, पूजन विधि आदि का ज्ञान प्राप्त होता था। पाठशाला थोड़े समय मे ही लोकप्रिय हो गई थी। विद्यालय के छात्र जब अवकाश के समय अपने–अपने घर जाते तो समाज मे प्रतिष्ठा पाते थे। सन् 1934 से विद्यालय मे संस्कृत का पठन–पाठन प्रारम्भ हुआ और बनारस की संस्कृत प्रथमा का पाठ्यक्रम लागू हुआ। उस सनय तक प. गोरेलालजी शास्त्री ही अकेले शिक्षण कार्य करते थे। संस्कृत व्याकरण उनका प्रिय विषय था। छात्रो को व्याकरण का ज्ञाम वे बडी सरलता से करा देते थे। सन् 1936 मे प्रथमा का प्रथम बैच निकला जिसमे महेन्द्रकुमार, विजयकुमार, मैं लक्ष्मणप्रसाद आदि लगभग 8 ऐसे छात्र थे जो इस विद्यालय से प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण कर उच्च अध्ययन हेतु अन्य विद्यालयों मे प्रवेश पाने के लिए योग्य छात्र बने। इसी बीच प. प्रकाशचन्द हितैषी भी विद्यालय में अध्यापक होकर आए और कुछ समय अध्यापन करने के पश्चात् जबलपुर जाकर सन्मति सदेश मासिक पत्रिका का सम्पादन, प्रकाशन करने लगे। बाद मे पत्रिका के साथ दिल्ली मे उनका स्थायी निवास बना।

छात्रो, अध्यापित विषयो तथा कक्षाओ की वृद्धि होने पर सन् 1934–35 के करीब श्री पं. धर्मदासजी न्यायतीर्थ अध्यापन के लिए इस विद्यालय मे आए और सन् 1940 तक विद्यालय मे पण्डितजी के सहयोगी के रूप मे शिक्षण कार्य करते रहे। वे अनुशासन मे कठोर थे प्राय छात्र उनसे डरते रहते थे जबकि पण्डितजी अनुशासनप्रिय होते हुए छात्रों के अधिक सम्पर्क में रहकर उनके सुख दुःख की खबर लेते रहते थे।

सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पर आने वाले तीर्थयात्री विद्यालय को देखकर प्रसन्न होते थे। कोई विशिष्ट तीर्थयात्री आता तो पण्डितजी उन्हे छात्रो के बीच लाते और उनसे छात्रो की परीक्षा लेने के लिए कहते थे। छात्रों के द्वारा दिए गए उत्तरों से जहां यात्री उनकी पढाई की प्रशंसा करने थे वहीं वे अनुशासन और विनय से प्रभावित हुए बिना भी नहीं रहते थे। यात्रीगण प्राय छात्रो को पारितोषिक तो देते ही थे, मिष्टान्न भोजन

की व्यवस्था भी करते थे। वी. नि स. 2467 अगहन सुदी वि. सं. 1997 को श्री राजकुमारजी शास्त्री तुकोगंज इन्दौर ने अपनी निरीक्षण टीप मे लिखा है "गुरुदत्त दि जैन पाठशाला का निरीक्षण किया। दर्ज रजिस्टर 22 छात्र हैं विशारद प्रथम खण्ड तक पढाई है, धर्म, साहित्य, व्याकरण, गणित, एव हिन्दी परीक्षाफल अच्छा रहा। वास्तव मे थोड़े से खर्च मे पाठशाला की उन्नति संतोषजनक है। पं. गोरेलालजी का परिश्रम प्रशसनीय है। आप सरीखे दूसरे विद्वान् भी कार्य करने को तैयार हो जावे तो कई संस्थाएं अच्छे रूप मे चल सकतीं है।"

इसीप्रकार एक टिप्पणी मन्नूलाल धरमचन्द्रजी पाटन (जबलपुर) मध्यप्रदेश ने 11.1 41 को विद्यालय मे छात्रो की पढाई को देखते हुए प्रसन्नतापूर्वक लिखी थी।

प्रकाश हितैषी एव प धर्मदासजी न्यायतीर्थ जब इस विद्यालय से अन्यत्र चले गए तब पण्डितजी के सहयोग के लिए शम्भूकुमारजी को अंग्रेजी हिन्दी आदि विषयो के अध्यापन हेतु नियुक्त किया गया। 21 और 22 फरवरी 1941 को श्री दरबारीलालजी एवं श्री उदयचन्दजी ने तीर्थयात्रा के साथ विद्यालय का निरीक्षण किया और उन्होने अपनी टीप मे लिखा "पण्डितजी का कार्य अच्छी तरह पाया। विद्यार्थी योग्य हैं।"

13 अप्रेल 1941 को सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के वार्षिक मेला के अवसर पर सागर से पण्डित मुन्नालालजी राधेलीय कुछ साथियो के साथ आए और मेला मे विद्यालय के विद्यार्थियो की परीक्षा ली तथा उनके उत्तरो से प्रभावित हुए।

1942 मे विद्यालय के छात्रावास मे 25 छात्र और ग्राम के जैन जैनेतर छात्र मिलकर कुल 47 छात्र अध्ययनरत थे। जो धर्म के साथ ही सस्कृत प्रथमा की तैयारी करते थे। इसी समय शिक्षक श्री अनन्तराम को हिन्दी, गणित विषयो के अध्यापन हेतु नियुक्त किया गया। इस वर्ष जैन पाठशाला कटनी के कोषाध्यक्ष श्री तुलसीरामजी ने द्रोणगिरि विद्यालय का निरीक्षण करते हुए लिखा है – "पण्डित गोरेलालजी पढाई का कार्य सुचारु रीति से करते हैं। प्रान्त मे यहा दानी जैन ज्यादा है उनको इस पाठशाला की उन्नति करना चाहिए।"

1943 मे विद्यालय मे छात्र सख्या बढी। सस्कृत प्रथमा मे अनेक छात्रो ने उत्तीर्णता पाई। 22 11 43 को श्री गुलझारीलालजी शास्त्री माधौनगर उज्जैन ने द्रोणगिरि की वन्दना की। उन्होने निरीक्षण टीप मे लिखा – "श्री गुरुदत्त दि जैन पाठशाला का निरीक्षण किया। परीक्षण भी किया। यहा की पढाई बहुत अच्छे ढग पर है। विद्यालय मे श्री मोहनलालजी शास्त्री व पण्डित गोरेलालजी शास्त्री पढाते हैं। पढाई का तरीका बहुत अच्छा है। यहा की बडी विशेषता तो यह देखी कि क्षेत्र और विद्यालय सम्बन्धी हिसाब आधुनिक पद्धति के अनुसार बहुत ही साफ है। श्री पण्डित गोरेलालजी साहब से पुराने हिसाब के बारे मे मालूम किया तो उन्होने उसका हिसाब बहुत सरलता से बतलाया।"

सन् 1945 मे विद्यालय के छात्रो की परीक्षा श्री गणेश विद्यालय मे छात्र रहे श्रीराम जैन ने वार्षिक मेला के अवसर पर उपस्थित होकर ली। उन्होनें अपनी टीप मे लिखा है कि – "आज वार्षिक मेले के अवसर पर उपस्थित जनता के समक्ष द्रोणगिरि पाठशाला के छात्रो की परीक्षा ली। परीक्षाफल आशातीत सुन्दर रहा। श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का कार्य सराहनीय है आशा है संस्था उन्नति करेगी।"

विद्यालय के सस्थापक पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी को द्रोणगिरि विद्यालय की चिन्ता रहती थी। वे जहा भी रहते थे पण्डितजी से बराबर पत्राचार कर विद्यालय एव क्षेत्र की गतिविधियो से परिचित रहते थे।

7 जुलाई 1945 को वर्णीजी ने जो पत्र लिखा वह निम्नप्रकार है –

"पत्र आया। सर्वप्रकार से समाचार जानें। आपकी बदौलत वहां की पाठशाला संचालित है और गुरुकुल की मूल जड़ आप ही हैं। उसे सदा बढाने की कोशिश करो माली बाग को जिसतरह संभालता है मैं उसकी हमेशा उन्नति चाहता हूँ।"

जब पूज्य वर्णीजी सम्मेदशिखरजी से पुन' बुन्देलखण्ड की ओर आए उस समय द्रोणगिरि विद्यालय की एक शखा श्री गुरुदत्त दि. जैन गुरुकुल बडामलहरा मे 1947 मे स्थापित की और द्रोणगिरि से पं. मोहनलालजी शास्त्री वहां प्रधानाध्यापक बनाये गये तथा द्रोणगिरि विद्यालय से ही उच्च कक्षाओं में अध्ययनरत छात्रो को बड़ामलहरा स्थानान्तरित किया। गुरुकुल की स्थापना कराने मे पण्डित गोरेलालजी की अह भूमिका रही है। जैसाकि पूज्य वर्णीजी ने स्वयं अपने उपरोक्त पत्र में उल्लेख किया है। इसके साथ ही गुरुकुल के लिए भवन की व्यवस्था श्री सिंघई वृन्दावनलालजी ड्योडिया ने की। श्री पं. दुलीचन्दजी वाजना का प्रयास स्तुत्य रहा। यहां यह प्रसग भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि जब पूज्य वर्णीजी सम्मेदशिखरजी पहुंचे तो उन्हें पुनः द्रोणगिरि लाने का प्रयास प्रारम्भ हुआ और इस हेतु प गोरेलालजी व पं दुलीचन्दजी एवं सिंघई वृन्दावनलालजी ड्योड़िया स्वय ईशरी वर्णीजी के पास गए और उन्होनें बुन्देलखण्ड की ओर विशेषकर द्रोणगिरि की ओर विहार करने का निवेदन किया। इस पर पूज्य वर्णीजी ने कहा कि मेरा वहा जाने का उद्देश्य क्या है और उपयोग क्या है? इस पर इन लोगो ने बुन्देलखण्ड के विकास और बड़ामलहरा मे गुरुकुल की स्थापना का उद्देश्य बताया। वर्णीजी ने इस हेतु आर्थिक समस्या रखी जिसपर पण्डित द्वय ने सहयोग करने का आश्वासन दिया वहीं सिघई वृन्दावनजी ने अपनी सिर की पगड़ी पूज्य वर्णीजी के चरणों मे अर्पित करते हुए वर्णीजी की इच्छा पर अपनी सम्पत्ति का उपयोग करने का आश्वासन दिया और गुरुकुल के लिए एक विशाल भवन क्रय कर दान दिया। इसी आधार पर पूज्य वर्णीजी ने विहार से बुन्देलखण्ड के लिए बिहार किया था। 1945 मे इस विद्यालय की शाखा गुरुकुल बड़ामलहरा में प्रारम्भ हो जाने के कारण छात्र संख्या दो जगह बॅट गई जिसके कारण द्रोणगिरि पाठशाला की छात्र सख्या कम हो गई। परन्तु शिक्षण कार्य बराबर प्रगति पर रहा। दिनांक 24 11 45 को द्रोणगिरि की वन्दनार्थ आए हुए यात्रियो मे से पं. हरिप्रसाद जैन वर्णी एवं जैनरत्न सिंघई लक्ष्मणप्रसाद हरदा ने अपने निरीक्षण टीप मे लिखा है "स्थानीय पाठशाला का कार्य देखने से मालूम पडता है कि दो स्थान हो जाने से एक की शिथिलता अवश्य हो रही है। आशा है इस क्षेत्र व पाठशाला के संचालक व कमेटी के महाशयो को अवश्य ध्यान देना चाहिए। पाठशाला के शिथिल हो जाने से क्षेत्र व विद्यालय दोंनो के प्रति उन्नति रूप दिग्दर्शन नहीं हो रहा है।"

11 मार्च 1946 को पं. सुमेरचन्दजी कौशल ने भी विद्यालय को देखा और विद्यालय की सराहना करते हुए श्री पं. गोरेलालजी शास्त्री के धार्मिक प्रेम व उत्साह की राराहना की। 1947 मे वर्णीजी पुन. द्रोणगिरि आये और पर्याप्त समय तक यहां रहकर विद्यालय के कार्यो का अवलोकन करते रहे। इसी वर्ष विद्यालय के छात्रावास में 15 एवं स्थानीय 18 कुल 33 छात्र विभिन्न कक्षाओ मे अध्ययनरत थे। इस समय पं. महेन्द्रकुमारजी भी शिक्षण कार्य के लिए आ गए। 1948 में संस्कृत प्रथमा के लिए 12 छात्र अध्ययनरत थे जो परीक्षा उत्तीर्ण कर स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी उच्च अध्ययन हेतु चले गए। कुल अंड़तालीस

छात्र थे। अक्टूबर 1948 मे प. जी ने विद्यालय के कार्य से स्तीफा दे दिया और विद्यालय मे मात्र पं. महेन्द्रकुमारजी ही रहे। 1949 मे विद्यालय मे 35 छात्र रहे।

1949 से 52 तक पं. श्री गोरेलालजी द्रोणगिरि से गुरुकुल मलहरा में पढ़ाने के लिए पहुंचे। इस समय प. विजयकुमारजी गुरुकुल मे थे। दयाचन्दजी शास्त्री भी गुरुकुल मे अध्यापन कार्य करते थे जिन्हें द्रोणगिरि पाठशाला मे स्थानान्तरित कर दिया। 1954 मे उनके शासकीय सेवा में चले जाने के कारण द्रोणगिरि का पूर्ण भार पं. जी को ही वहन करना पड़ा। सन् 1953 मे छात्र संख्या काफी थी। इस वर्ष लगभग 15 छात्र अकेले सस्कृत प्रथमा मे प्रविष्ट हुए और उत्तीर्ण छात्र स्याद्वाद महा विद्यालय वाराणसी उच्च अध्ययन करने चले गए। 1955 मे द्रोणगिरि मे विशाल धार्मिक आयोजन श्री मज्जिनेन्द्र पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव (गजरथ) हुआ। इस महोत्सव से प्राप्त आय से गुरुकुल मलहरा का उन्नयन जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के रूप मे किया गया और गुरुकुल मे सस्कृत पढने वाले छात्रो को द्रोणगिरि मे स्थानान्तरित कर दिया। गुरुकुल मलहरा का विलय द्रोणगिरि विद्यालय मे हो जाने के कारण संस्कृत और धर्म का अध्ययन करने वाले छात्रो की सख्या बढने लगी। पण्डित ज्ञानचन्दजी कन्नपुर को पण्डितजी के सहयोग के लिए शिक्षण कार्य करने के लिए नियुक्त किया गया। इसी समय पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज ने द्रोणगिरि मे रहना निश्चित किया ओर विद्यालय मे छात्रो को धार्मिक शिक्षा देने लगे। कार्याधिक्य के कारण द्रोणगिरि विद्यालय के स्नातक खुशालचन्द को प. जी के परामर्श पर नियुक्त किया गया। विद्यालय का नाम चूकि अनेक प्रान्तों मे था इसमे धार्मिक और संस्कृत शिक्षा के अध्ययन हेतु प. जी के समीप अन्य प्रान्तो से भी छात्र आने लगे। इनमे मद्रास के अजितदास जैन उल्लेखनीय हैं। वर्तमान ने यह क्षुल्लक अजितसागर के नाम से दक्षिण मे हैं। जनवरी 1960 मे आचार्य विमलसागर का ससंघ पदार्पण हुआ और 3 दिन यहां रुका। पाठशाला मे 12 छात्र थे। आचार्य महाराज ने छात्रो की परीक्षा ली। 1961 मे विद्यालय मे मध्यमा तक की पढाई प्रारम्भ हुई। 14 1 61 को संस्था के सस्थापक पूज्य वर्णीजी का एक पत्र आया जिसमे उन्होने लिखा "पत्र मिले समाचार जाने। आपने मेले के समय बहुत पुरुषार्थ किया था उसका फल साक्षात् मिला। आगे विद्यालय की योजना बनाई सो बहुत अच्छी है हमे प्रसन्नता हुई। इसका श्रेय आपको ही है। विद्यालय की उन्नति हो यही शुभकामना है"। एक पत्र और है जिसमे वर्णीजी ने लिखा है "योग जैसे बने पाठशाला चलती जावे। वह प्रान्त बहुत पीछे है। हम वृद्ध हो गए हैं अत कुछ कर नहीं सकते परन्तु भावना रहती है"। इसप्रकार के अनेक पत्र पूज्य वर्णीजी के प्राप्त हुए। 1962 मे ही महिला शिक्षा के उद्देश्य से प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रथमा एव विद्याविनोदिनी परीक्षा का परीक्षा केन्द्र यहाँ बना जो 1964 तक रहा। 1964 तक इसलिए रहा क्योकि इसके बाद शासन ने मान्यता समाप्त कर दी। द्रोणगिरि विद्यालय ने इस परीक्षा केन्द्र के माध्यम से सैंकडो महिलाओ को परीक्षा दिलाकर शासकीय सेवा मे लगवाकर आत्म निर्भर बनाया। इस वर्ष तक विद्यालय मे सस्कृत मध्यमा तक शिक्षण कार्य होता रहा। मई 1964 मे प जी ने लम्बी सेवा अवधि के बाद क्षेत्र एवं विद्यालय के कार्यों से पूर्ण मुक्ति लेकर अपना जीवन सयम की साधना मे लगाया। प जी के अवकाश ग्रहण करने के बाद डॉ सुन्दरलालजी आयुर्वेदाचार्य ककरवाहा ने क्षेत्र एव विद्यालय का कार्य सभाला। इन्होने द्रोणगिरि मे आयुर्वेदाश्रम का संचालन, आयुर्वेद का अध्यापन, शुद्ध देशी औषधियो का निर्माण कार्य भी प्रारम्भ किया। लेकिन अधिक व्यय साध्य कार्य होने से तथा सुयोग्य

कार्यकर्ताओं के अभाव से यह योजना नहीं चल पाई और 1968 में डॉ. सुन्दरलालजी ने कार्य छोड़ दिया।
1964 मे पं. जी के अवकाश ग्रहण करने के बाद विद्यालय की स्थिति डगमगा गई। पं. खुशालचन्दजी शास्त्री छोटे बालको को धार्मिक शिक्षा देते रहे। संस्कृत की पढाई समाप्त हो गई। इसके बाद पं. ज्ञानचन्दजी व्याकरणाचार्य विद्यालय के सचालन के लिए आए। कमलकुमारजी सागर भी कुछ समय तक विद्यालय मे शिक्षण कार्य हेतु रहे किन्तु इस समय तक न तो क्षेत्र की प्रबन्ध समिति का उत्साह विद्यालय संचालन मे रहा और न सुयोग्य शिक्षको के अभाव मे छात्रो ने ही इस विद्यालय मे प्रवेश पाने का प्रयत्न किया। चूकि यहा शासकीय माध्यमिक शाला होने के कारण जिन ग्रामो मे मिडिल तक लौकिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी उन ग्रामो के छात्रो ने द्रोणगिरि विद्यालय मे प्रवेश लेकर मिडिल स्कूल तक अध्ययन किया और विद्यालय मे प्रारम्भिक धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया लेकिन यह स्थिति बहुत समय तक नहीं रही।

1977 मे जब चौबीसी के निर्माण के बाद उसकी प्रतिष्ठा हेतु श्री मज्जिनेन्द्र पचकल्याणक प्रतिष्ठा एव गजरथ महोत्सव का आयोजन हुआ उस समय हम सभी स्नातको ने मिलकर विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती मनाने का प्रस्ताव किया। आयोजन समिति ने इस पस्ताव को स्वीकृति प्रदान की व विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती का आयोजन हुआ। इसी अवसर पर विद्यालय की गतिविधियो एव महनीय योगदान का लेखा जोखा के लिए स्वर्ण जयन्ती स्मारिका का भी प्रकाशन किया गया। इस आयोजन मे विद्यालय के आधार स्तम्भ श्री प गोरेलालजी शास्त्री की सेवाओ का मूल्याकन करते हुए अभिनन्दन किया गया। विद्यालय का यह स्वर्ण जयन्ती समारोह उस समय आयोजित किया गया जिस समय विद्यालय बन्द था और समारोह के पश्चात् तो विद्यालय का नामोनिशान भी नहीं रहा।

यद्यपि प्रबन्ध समिति ने विद्यालय के प्रारम्भ करने के अनेको प्रयास किए लेकिन बन्द हुई सस्था को पुन सचालित करना कठिन साबित हुआ। इस विद्यालय के सफरनामा (स्थापना काल से वर्तमान तक की यात्रा) पर दृष्टि डालने पर यह स्वत ही स्पष्ट होता है कि कोई भी सस्था को जब सुयोग्य सचालक मिलता है तभी सस्था उन्नति की ओर निरन्तर बढती रहती है। व्यक्ति जब उस सस्था से अपना नाता तोडता है तो जिसप्रकार हरा भरा उपवन सुयोग्य माली के अभाव मे उजड जाता है वैसे ही सुयोग्य सचालक के अभाव मे सस्थाओ की भी वही हालत हो जाती है। विद्यालय की स्थापना काल से 1964 तक जब विद्यालय का सचालन श्री प गोरेलालजी के हाथो मे रहा उन्होने अपने सतत् श्रम एव समर्पण भावना से विद्यालय को सिचित और उन्नत किया।

• आदर्शनगर मकरौनिया
सागर (मध्यप्रदेश)

□□□

सार्वजनिक सम्मान के प्रसंग पर

पण्डितजी के पत्र : सम्मान की आकांक्षा नहीं

– पं. खुशालचन्द शास्त्री

पावन भूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के उन्नायक, श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय को स्थापना अवधि सन् 1928 से सन् 1964 तक अनवरत रूप से सचालित कर द्रोण प्रान्त में व्याप्त अज्ञान अधकार को मिटाने मे अपना समग्र जीवन अर्पण कर सैंकडो विद्वानो, साहित्यकारो, चिकित्सको, व्यवसायियो व समाज सेवियो को तैयार करने वाले समाज हितैषी पूज्य वर्णीजी के शब्दो मे प्रान्त के उपकारी पं श्री गोरेलालजी शास्त्री ने पूर्णरूप से निवृत्ति लेकर पूर्णरूप से अपना जीवन धर्मसाधन मे लगाया। जुलाई 1964 मे इम्फाल (मणिपुर) से जैन समाज का दशलक्षण पर्व मे प्रवचन हेतु आग्रहपूर्ण आमत्रण मिलने पर प जी द्रोणगिरि से दशलक्षण पर्व के दस दिन पूर्व ही इम्फाल के लिए चल दिए। घूमते घामते इम्फाल पहुचे, समाज को प्रसन्नता हुई। पर्व प्रारम्भ हुआ प जी के पर्व के अवसर पर सुबह, दोपहर, रात्रि तीन प्रवचन होते थे। सरल सुबोध शैली मे दिए जाने वाले उनके प्रवचनो ने समाज को प्रभावित किया। पर्व के पश्चात् प. जी द्रोणगिरि वापिस आने लगे तो समाज ने प जी से कुछ समय तक और रुकने का आग्रह किया क्योकि वहा समाज द्वारा सचालित जैन मिडिल स्कूल मे बच्चो को धार्मिक शिक्षा देने के लिए कोई विद्वान् नहीं था। प. जी की सरल, सुगम शैली समाज को ठीक लगी अत समाज ने उन्हे स्कूल मे जैनधर्म के शिक्षण और मदिर मे शास्त्र प्रवचन के उद्देश्य से रोकना चाहा। प जी का मन भी कुछ समय रुकने का बना, उन्होने समाज का आग्रह स्वीकार कर लिया। पर्व की समाप्ति के एक माह बाद भी जब प जी द्रोणगिरि वापिस नहीं आए तब घरवालो ने हितैषियो ने प जी को वापिस आने के लिए पत्र लिखे। प जी ने सभी को पत्र का उत्तर लिखा समाज के विशेष आग्रह करने पर धर्म प्रचारार्थ मैंने एक वर्ष तक रहने का वचन समाज को दे दिया है। ऐसी स्थिति मे मै वचन पूर्ण कर ही आऊँगा।

पण्डितजी का जीवन बहुत सयमित, नियमित था, रहन सहन बहुत साधारण था, लेकिन खान पान की शुद्धता अधिक थी। इससे स्वय ही भोजन बनाते थे।इम्फाल मे पानी की समस्या थी क्योकि कुओ के पानी मे तेल रहता था, नल का पानी पण्डितजी लेते नहीं थे लेकिन अच्छा यह था कि वहा प्राय वर्ष भर वर्षा होती रहती थी। प जी जहा रहते थे वहा छत पर बर्तन रख कर वर्षा का पानी इकट्ठा कर लेते थे और उसी पानी को साफ कर उपयोग मे लेते थे। इसप्रकार प जी समाज के आग्रह पर 36 माह तक रहे और जब वहां से चले तो समाज ने बडे उदास मन से प जी को विदा किया। प जी के वहा समाज से मधुर सम्बन्ध रहे। प जी के अपने घर आने पर वहा के समाज के कतिपय व्यक्तियो का बराबर बहुत समय तक पत्राचार भी होता रहा।

प्रान्तीय समाज, स्नातको एव द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ द्रोणगिरि ने प जी के इम्फाल से वापिस आने पर उनका सार्वजनिक सम्मान करने की योजना बनाई और सम्मान मे एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी भेट करने का निर्णय लिया।अभिनन्दन ग्रन्थ छापने के लिए श्री दशरथ जैन एव श्री नरेन्द्र विद्यार्थी सम्पादक बनाए गए।

पण्डितजी का जीवन अत्यन्त सरल, सादा एव विचारो से उच्च था। सत्कर्म ही पूजा है, यह उनका सिद्धान्त था। वे आत्मप्रशसा से कोसो दूर रहे। उदार हृदय एव कर्तव्य के प्रति निष्ठावान् पण्डितजी ने

कभी भी अपना सम्मान नहीं चाहा।

जब पण्डितजी के सार्वजनिक सम्मान एवं अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन की जानकारी जैन पत्रो मे प्रकाशित हुई और पण्डितजी से जीवन परिचय एवं चित्र के लिए इम्फाल पत्राचार किया तो पण्डितजी ने दिनांक 1.11 66 को पत्र लिखा – "श्री कमलकुमारजी का पत्र मिला जिसमे उन्होने मेरे जीवन सम्बन्धी सामग्री मंगायी, परन्तु मै अपना परिचय नहीं छपाना चाहता हू। न उक्त आयोजन द्वारा सम्मान ही चाहता हूं।"

पण्डितजी ने उक्त पत्र मे अपने सम्मान का विरोध किया। जहा तक सम्मान की बात है तो सस्था हित, समाज हित, प्रान्त हित मे किए गए कार्य ही सम्मान के लिए पर्याप्त है। पण्डितजी ने सामाजिक कार्यकर्ताओ, विद्वानो की उपेक्षा को भी देखा जिसका उल्लेख उन्होने इम्फाल से लिखे गए पत्रो मे किया भी है।

सामाजिक संस्थाओ मे कार्य करने वालो के प्रति समाज का व्यवहार कैसा रहता है यह हम सब देखते है। विद्वानो सामाजिक कार्यकर्ताओ का दोहन तो समाज करती है। अल्प वेतन मे रात दिन कार्य कराना चाहती है। सुविधाए तो देने का प्रश्न ही नहीं इस पर भी समाज का हर व्यक्ति उनके कार्यों के प्रति नजर रखने का अधिकारी हो जाता है। यह सम्मानजनक स्थिति नहीं। संस्था से अवकाश लेने पर सस्थाधिकारी सम्मान ॅ ररूप दो शब्द भी कहने का शिष्टाचार नहीं निभाते। यह स्थिति प्राय सभी सामाजिक संस्थाओ मे कार्य करने वालो की है।

पण्डितजी ने अपनी ईमानदारी, लगन और कर्तव्य निष्ठा से सस्थाओं का कार्य किया। जब कभी संस्था के अधिकारियो मे किसी के अहंम् की पूर्ति न हो पाने के कारण किसी बात पर यदि किसी पदाधिकारी की पण्डितजी से कुछ बातचीत होती और पण्डितजी को यह अनुभव होता कि यह चर्चा हमारे स्वाभिमान के विरुद्ध है तुरन्त सस्था से सम्बन्ध विच्छेद करने का निर्णय लेते जिस कारण सस्था के वे पदाधिकारी जो प. जी की कार्य पद्धति से परिचित थे सस्थाओं के हित मे पं. जी का कहना अवश्य मानते थे। पदाधिकारियो की आपस मे गरमागरम बातचीत हो जाती थी पर वे पण्डितजी को संस्थाओ के कार्य देखने के लिए राजी कर लेते थे। पण्डितजी ने सस्थाओ मे सभी कार्य सस्था के हित मे किए तथा अपने लम्बे सेवा काल मे कभी भी स्वाभिमान को नहीं खोया। पण्डितजी ने अपने स्वर्णिम जीवन का 3/4 भाग द्रोणगिरि क्षेत्र विद्यालय एव गुरुकुल बडामलहरा के विकास में व्यतीत किया।

एक बार पण्डितजी ने अपने पत्र मे लिखा "वहां विद्वानों के सम्मान का आयोजन हो रहा है यह अच्छा काम है व करने वालो की कृतज्ञता का द्योतक है। परन्तु मैं इस आयोजन मे अपना सम्मान नहीं चाहता क्योकि मैं विद्वानो की श्रेणी में नहीं हूं।" सम्मान उसका होना चाहिए जो स्वार्थ त्यागकर धर्म के उद्धार मे अपना जीवन बिताता है। दूसरे जब मैंने सस्था मे 30 वर्ष काम किया व संस्था के प्रति आत्मीयता रखते हुए उसे तरक्की पर ले जाने का भाव रखा तथा पैसो का सदुपयोग करते हुए उन भूमियो को कौडियो (बहुत कम कीमत) मे खरीदा जिसका मूल्य आज 50 गुना देना पडता, व आपदाओ से बचाते रहने का भी प्रयत्न किया उस सस्था से अवकाश लेते समय किसी ने दो शब्द नहीं कहे तो उन लोगो से मेरा नाटकीय सम्मान हो यह मैं नहीं चाहता। मैं अपना परिचय व फोटो नहीं भेज रहा हू।

पण्डितजी ने इसी पत्र मे आगे लिखा "अपना स्वय का नुकसान करके क्षेत्र को उपयोगी, महत्वपूर्ण भूमियां खरीदीं, लोगो से बुराईया लीं, क्षेत्र को नुकसान पहुचाने वालो के साथ केश लडा, क्षेत्र को निरापद

रखा यह सब आत्मीयता से ही किया, परन्तु उसके उपलक्ष मे किसी ने सम्मान के दो शब्द भी नहीं कहे। अस्तु, मुझे तो अपने सम्मान के विषय मे जरा भी लगाव व उत्साह नहीं है। सामाजिक कार्य करने वालो को यदि यश नही मिला तो यह उनके ही अयशस्कीर्ति का फल है।"

पण्डितजी के पत्र मे लिखित सभी शब्द यथार्थ है, सत्य है, पर मै मानता हू कि सामाजिक कार्यकर्ता के प्रति सस्थाधिकारियो का उपेक्षा का भाव उचित नहीं है। निश्चित रूप से पण्डितजी का क्षेत्र की सभी सस्थाओ के विकास मे जो योगदान रहा है वह महत्वपूर्ण है और क्षेत्र का जो विकास आज हम देख रहे हैं उसके मूल पुरुष पण्डितजी ही है। प्रान्त मे शिक्षा का जो प्रचार प्रसार व विद्वान् दिख रहे है इसका श्रेय पण्डितजी को ही है। धर्मशालाओ के निर्माण के लिए भूमियो का क्रय करना, निर्माण मे आने वाली बाधाओ को दूर करना, विरोधियो से स्वय निपटना पण्डितजी जैसे साहसी व्यक्ति का ही कार्य था। चौबीसी जिनालय की समस्त भूमि अल्प मूल्य मे क्रय करना, क्षेत्र के विकास हेतु स्वय की भूमि भी दे देना पण्डितजी जैसे व्यक्ति के ही वश मे था। उन्होने क्षेत्र एव सस्थाओ के कार्य के लिए न दिन देखा न रात व्यक्तिगत प्रचार व पद की लालसा तथा सुविधा भोग से दूर रहकर क्षेत्र के विकास मे पूर्ण निष्ठा और लगन के साथ कार्य किया। क्षेत्र हित मे नि स्वार्थ भाव से की गई सेवा का कभी प्रतिफल भी नहीं चाहा। इसप्रकार क्षेत्र की सस्थाओ के निर्माण मे अपने जीवन का बहुमूल्य समय मौन साधक के रूप मे खपा देने वाले समाज सेवी के प्रति निवृत्ति के समय उनके द्वारा किए कार्यो के प्रति कृतज्ञता स्वरूप सम्मान मं दो शब्द भी कहने का शिष्टाचार न निभाना सस्थाधिकारियो की असहिष्णुता अनुदारता का ही द्योतक है।

पण्डितजी ने द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ द्रोणगिरि के अध्यक्ष और मत्री को भी एक पत्र दिनाक 4 4 67 को लिखा – "आप लोग प्रान्तीय सेवा कार्य को सलग्नता से कर रहे होंगे साथ ही आत्मोद्धार के कार्य का भी ध्यान रखते होगे। मै यहा पर आप लोगो से वियुक्त हुआ 35 माह पूर्ण कर रहा हूँ तथा अनेक कठिनाईयो व असुविधाओ के रहने पर भी खान पान की शुद्धि रखता हुआ स्वीकृत कार्य को समय का ध्यान रखते हुए कर रहा हूँ। आगे मई मास मे छुट्‌टी होने पर घर आ रहा हू। जैन मित्र अक मे समाचार पढा कि आप लोग मेरे लिए अभिनन्दन ग्रन्थ भेट करने का आयोजन कर रहे है, जो उचित नहीं है क्योकि मेरा कार्य क्षेत्र कोई आदर्श एव विस्तृत नहीं, न ही मेरे मै उक्त सम्मान के योग्य विद्वत्ता ही हैं। कोई उपकार के कार्य भी नहीं किए हैं।"

प्रान्त के लिए कोई नि स्वार्थ सेवाए भी नहीं कीं मैं किस दृष्टि से उक्त सम्मान को ग्रहण करूगा। अत आप लोग उक्त आयोजन को केंसिल कीजिए। मैं इस वर्ष घर अवश्य आऊँगा यदि आप लोग मेरी मशा के विरुद्ध कार्य करेगे तो मैं उक्त अवसर पर वहां उपस्थित नहीं होऊँगा। यहा से आना तो है ही पर कहीं बीच्र मे रुककर आऊँगा। आपका विस्तृत पत्र आने पर चलूगा।

एक पत्र पं जी ने अपने प्रिय एव विश्वासपात्र शिष्य डॉ नरेन्द्र विद्यार्थी को भी दिनाक 10 4 67 को लिखा – "आपका पत्र 2 4 67 का मिला समाचार ज्ञात किए। आपकी उच्च अभिवृद्धि से मुझे अपार हर्ष है। इस बौद्धिक उन्नति के साथ–साथ आपका जीवन परम पवित्र बने, यही सद्‌भावना है। जिस विषय को लेकर आपने यह पत्र लिखा मैं इस विषय मे बिल्कुल सहमत नहीं हूं। मैंनें एक पत्र सेवा संघ के अध्यक्ष के पास भी भेजा है जो वास्तविक सम्मान का पात्र हो उसका ही सम्मान होना चाहिए। मुझमे न तो विद्वत्ता है, न मेरा सेवा कार्य ही अधिक है और न चारित्रिक जीवन मे ही बढ पाया हूं। ऐसी हालत में अपने लिए सम्मान चाहना या कतिपय सद्‌भावना युक्त भाईयो द्वारा किए गए उक्त समारोह से अपने को कृतकृत्य मानना

योग्य नहीं। मुझे तो आप जैसे उच्च विचारो द्वारा जो सम्मान सदा मिलता है वही मेरे लिए पर्याप्त है। अयोग्य अवस्था मे विशिष्ट सम्मान द्वारा उस व्यक्ति की महानता जाहिर नहीं होती किन्तु हीनता ही प्रगट होती है। अत आप इस आयोजन मे न स्वयं पडे न किसी को पडने दे।"

14 4.67 को इम्फाल से लिखा गया पत्र एक यह भी है। जिसमे पण्डितजी ने लिखा "जो लोग मेरे प्रति सहानुभूति रखते है व जो शिष्य मुझे गुरु मानते है वह उनकी ही सौजन्यता व उदारता है। यह होते हुए भी जो जिस पैमाने पर समारोह करने का विचार किया है वह बिल्कुल ही अनुचित है। उस लायक मैं नहीं हू अतएव इस योजना को कैंसिल कर पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी के सम्मान मे बदलकर मुझे इस बडे भारी ऋण से मुक्त रहने दीजिए मुझे जितनी प्रसन्नता दूसरो के सम्मान को देखकर होगी उतनी स्वय के सम्मान मे नहीं होगी बल्कि दु:ख होगा मै अपने विषय में कुछ लिखूँ या अपने फोटो बनवाऊँ यह मुझसे नहीं हो सकता मेरा मन ही इस ओर आकर्षित नहीं होता। अन्त मे यह बात मै विशेष रूप से लिख रहा हू कि सम्मान समारोह की स्कीम को जरूर कैंसिल कर देना। मेरा इस समारोह से कोई सम्बन्ध नहीं रखना।"

इसके अलावा इस सम्बन्ध मे पण्डितजी ने अपने हितैषियों को भी पत्र लिखकर प्रस्तावित सम्मान समारोह को निरस्त कराने का आग्रह किया। पण्डितजी का मई माह में घर आना तो निश्चित था ही लेकिन सम्मान समारोह में सम्मिलित न होने का भी निश्चय था। आयोजको का सम्मान करने का निर्णय तो था ही इसलिए उन्होंनें सोचा कि पण्डितजी सम्मान समारोह मे उपस्थित नहीं रहे तो सम्मान कैसे व किसके लिए होगा। सम्मान समारोह की सभी तैयारियां हो चुकीं थीं। अध्यक्षता के लिए भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् के तत्कालीन अध्यक्ष श्री वंशीधरजी व्याकरणाचार्य बीना निश्चित हो चुके थे अत यह सोचा कि अभी पण्डितजी को किसी माध्यम से सम्मान समारोह निरस्त करने की सूचना भिजवा दी जावे और द्रोणगिरि यथाशीघ्र आने का अनुरोध किया जावे। पण्डितजी के आने पर आयोजन को गति दी जावे। पण्डितजी अपने निश्चित समय पर द्रोणगिरि आ गए। पण्डितजी के आगमन पर समाज, स्नातकों और ग्रामवासियो ने उनका आत्मीय भावभीना स्वागत किया।

श्रुतपचमी 1967 को पण्डितजी का आयोजको द्वारा सम्मान करने का कार्यक्रम चुपचाप प्रारम्भ हुआ तथा निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार पण्डितजी के न चाहते हुए विशाल जन समूह के बीच सम्मान समारोह आयोजित हुआ। पण्डितजी ने इस समारोह मे अपने सम्मान के प्रत्युत्तर मे भाव विभोर होकर लघुता प्रदर्शित करते हुए आयोजको के प्रति विनम्रता से जो कृतज्ञता व्यक्त की उस समय सभी के नेत्र नम थे। पण्डितजी की महानता, विशाल सहृदयता, विनम्रता, विद्वता की सभी ने सराहना की। आयोजको ने कहा कि हम निश्चित रूप से समाजसेवी, करुणामूर्ति, जन जन के उपकारी, वर्णीजी के शब्दो मे प्रान्त के उपकारी, सहस्रो के जीवन निर्माता हम सबके गुरु पण्डित श्री गोरेलालजी शास्त्री का सम्मान कर महसूस करते हैं कि सचमुच ही हमसे पण्डितजी सम्मानित नहीं हुए अपितु हम सभी आयोजकगण स्वयं ही सम्मानित हुए हैं और उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर स्वय गौरवान्वित हो रहे हैं। पण्डितजी ने तो स्वयं कभी सम्मान चाहा नहीं और न ही उनकी सेवाओ को देखते हुए यह सम्मान उनके लिए महत्वपूर्ण है क्योकि पण्डितजी ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होनें समाज को, प्रान्त को मात्र दिया ही दिया है उससे कुछ प्राप्ति की आशा नहीं की।

• उप डाकपाल, सब पोस्ट ऑफिस
बडा मलहरा, (छतरपुर)

□□□

पण्डितजी की डायरी के पन्नों से
उनकी तीर्थयात्रा

— प्रस्तुति : इन्जीनियर महेन्द्र जैन

सन् 1972 मे पण्डितजी की भावना गिरनार यात्रा की हुई । ब्र दया सिन्धुजी, आश्रम की बाई और स्वय पण्डितजी ने द्रोणगिरि से प्रस्थान करने वाली एक यात्रा बस में तीर्थ यात्रा के लिए प्रस्थान किया। तीर्थयात्रा के दौरान प जी ने अपनी दैनन्दिनी बनाई थी। क्रमवार पूरी यात्रा का विवरण स्वय प. जी ने लिखा था। उसे हम यहा उन्हीं के शब्दो मे दे रहे हैं —

यात्रा का प्रारम्भ दिनाक 19 12 72 को द्रोणगिरि से हुआ था। उन्होनें लिखा है, आज दिनाक 19 12 72 को द्रोणगिरि से एक मोटर के यात्रियो के साथ दिन मे 5 बजे प्रस्थान किया। सबसे पहले आहार क्षेत्र पर आए। मेला का दूसरा दिन था। पर यात्रियो की सख्या मेला मे कम थी। विशेष अतिथि श्री ब्र राजारामजी व प लालबहादुर शास्त्री, देहली थे हम लोग आहारजी 7 बजे रात्रि मे पहुंचे। पहले दर्शन, सामायिक की बाद मे श्री प बारेलालजी क्षेत्र के मत्री, श्री ब्र मूलचन्दजी व पं मौजीलालजी से मिले। तदनन्तर प्रवचन सुनने मण्डप मे गए। प्रवचन लालबहादुर शास्त्री का था, जो रोचक नहीं था। केवल निमित्त की मुख्यता थी, पुण्य को एकान्तत उपादेय बतलाया। शास्त्री परिषद का अधिवेशन चालू हो रहा था। किन्तु शास्त्री परिषद के मुख्य कार्यकर्ताओ मे से कोई नहीं था। अधिवेशन कार्य केवल रूढिमात्र साधने को हो रहा था।

यहां से चलकर रात्रि 10 30 पर पपौराजी आए ठहरने की उत्तम व्यवस्था थी। 4 घंटे सोकर प्रात 4 बजे उठे, पाठ किया तथा प्रवचन समयसार नाटक का किया। सुबह के समय का उपयोग अच्छा रहा। यहा के व्यवस्थापको ने सहानुभूति प्रदर्शित की। वास्तव मे क्षेत्र के मुनीम ऐसे ही होना चाहिए। क्षेत्र का वातावरण सुन्दर है। यहा तो 8 दिन भी ठ़हरकर शान्ति का लाभ लिया जाय तो थोड़ा है। यहां पर श्री 108 मुनिश्री नेमिसागरजी थे। उनका स्वास्थ्य बहुत ही गिर गया है। अब वह जगह—जगह घूमने लायक नहीं हैं। उनको तो क्षेत्रान्यास ले लेना चाहिए। यहां के गगनतल स्पर्शी जिनालयो को देखकर अति आनन्द होता है। तथा हरी भरी शस्य श्यामला भूमि को देखकर मन प्रफुल्लित हो जाता है। क्षेत्र पर विद्यालय चलता है उसमे छात्रावास मे रहने वाले छात्र पढते हैं।

20 12 72 को मुनि महाराज के लिए आहार दिए। पपौराजी से रात्रि 12 बजे चलकर ललितपुर आये। रात्रि विश्राम कर देवगढ जाकर वन्दना की। यह क्षेत्र बहुत प्राचीन है। वन्दना पश्चात् भोजन किया। क्षेत्र पर ऐतिहासिक सामग्री विपुल है। यहा की कला का दिग्दर्शन करने से प्राचीनता की प्रतीति होती है। 21 12 72 को यहा की वन्दना कर पुन ललितपुर आये। क्षेत्रपाल व शहर के मदिरो के दर्शन किये। अटाजी के मदिर मे प्रवचन सुना। प मुन्नालालजी प्रवचन कर रहे थे। अटा के मदिर मे 3 जगह दर्शन हैं। पुराने मदिर मे 19 जगह तथा नया मदिर मे 13 जगह दर्शन हैं। क्षेत्रपाल मे 10 जगह दर्शन हैं यहां रात्रि विश्राम किया।

दिनाक 22 12,72 को थूवौनजी की वन्दना की। यहा 25 मदिर हैं। यहा भोजनादि से निर्वृत्त होकर चन्देरी आये। यहा चौबीसी का निर्माण बहुत ही अनुपम है। प्रतिमाएं सभी विशाल हैं। जन्म रग के अनुसार

प्रतिमाओ का निर्माण है। यहां एक चैत्यालय भी है। कई जगह दर्शन हैं चौबीसी में भी कई जगह दर्शन हैं। चन्देरी से सामायिक बाद 110 मील चलकर रात्रि को सोनागिरि आये। 23.12.72 को सोनागिरि क्षेत्र के दर्शन किए। क्षेत्र बहुत रमणीक है। क्षेत्र पर 77 मंदिर हैं। नीचे 20 मंदिर हैं। यहां मुनि क्षीरसागरजी थे परन्तु उनसे बातचीत नहीं हो सकी। सोनागिरि मे जो खड्गासन प्राचीन मूर्तियॉ हैं उनका निर्माण बहुत अजब ढंग का है और छोटे हैं, इससे सुन्दरता मे कमी आती है।

सोनागिरि से ग्वालियर पहुंचने पर चम्बल घाटी में डाकुओ का भय होने के कारण रात्रि विश्राम महावीर धर्मशाला मे कर प्रात. 5 बजे प्रस्थान किया। आगरा होते हुए 11 बजे फिरोजाबाद पहुंचे। मार्ग में मिलेट्री के ट्रको के कारण मार्ग न मिलने के कारण फिरोजाबाद पहुँचने मे विलम्ब हुआ।

सेठ छदामीलालजी की धर्मशाला मे ठहरे। दर्शन पूजन किया। महावीरस्वामी की 7 फुट भव्य मनोज्ञ प्रतिमा के दर्शन कर अपूर्व शान्ति का अनुभव हुआ। रात्रि मे शास्त्र प्रवचन किया। यहां शहर मे 24 जिनालय हैं। चन्द्रप्रभु चैत्यालय मे चौथी शताब्दी की स्फटिक मणि की डेढ फुट अति मनोज्ञ प्रतिमा है। महावीर जिनालय मे अष्टधातु की एक मनोज्ञ प्रतिमा है। यह शहर कांच की सामग्री निर्माण के लिए प्रसिद्ध है।

फिरोजाबाद से आगरा के दर्शनीय स्थलो को देखते हुए रात्रि 8 बजे सिद्धक्षेत्र चौरासी मथुरा पहुंचे। दर्शन कर शास्त्र प्रवचन किया। मंदिर मे मुख्य प्रतिमा अजितनाथ स्वामी की प्राचीन और अति मनोज्ञ है इस मूर्ति का अभिषेक किया। एक श्यामवर्ण पार्श्वनाथ भगवान् की प्राचीन अतिशय युक्त मूर्ति है जिसके सम्बन्ध मे यह प्रसिद्धि है कि जो भी व्यक्ति मनोकामना के उद्देश्य से जाकर भक्तिभाव से पूजन अर्चन करता है, उसकी इच्छित मनोकामना पूर्ण होती है।

यहां ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम के अन्तर्गत इन्टर कालेज चलता है। जैन सघ का दफ्तर है। षट्खण्डागम का स्टाक है, जैन सन्देश यहा से निकलता है।

यहां से देहली गए। अष्टमी होने से उपवास था। अत दूसरे दिन पूजन कर पारणा की और दिल्ली के प्रमुख मन्दिरो–स्थानो को देखा। अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी लगी थी, उसे देखा।

पहाडी धीरज मे 2 मुनिराजो एव आर्यिकाओ का सघ था। धर्मपुरा दिल्ली मे आचार्यश्री देशभूषणजी महाराज भी ससघ विराजमान थे। सघो से वास्तविक लाभ नहीं मिलता। सेठ श्री प्रेमचन्दजी जैनावाच कम्पनी वालों से भेट हुई। वे धार्मिक व्यक्ति हैं। शास्त्र–स्वाध्याय मे रुचि रखते हैं। पूजन के बाद वे प्रवचन भी लाल मदिर मे करते हैं। रात्रि मे श्री बाबूलालजी कलकत्ता वाले प्रवचन करते हैं। अष्टपाहुड का प्रवचन हो रहा था। यहा मुनियो के शिथिलाचार पर भी विशेष चर्चा हो रही थी। सेठ प्रेमचन्दजी ने उदासीनाश्रम द्रोणगिरि को 51 रुपए की सहायता प्रदान की।

देहली से मेरठ, मवाना होते हुए सुबह 7 बजे हस्तिनापुर पहुंचे। यहा भगवान् शान्तिनाथ के तीन कल्याणक तथा कुन्थुनाथ व अरहनाथ के 4–4 कल्याणक हुए हैं। भगवान् मल्लिनाथ का समवशरण यहा आया था। यहा तीन नसियां हैं, प्राचीन हैं। धर्मशाला मे ठहरे पूजन प्रक्षाल कर श्री प हुकमचन्दजी से तात्विक चर्चा हुई यद्यपि आप नजर से कमजोर हैं किन्तु आपको शास्त्रो का ठोस ज्ञान है। इन्होनें द्रोणगिरि आश्रम आने की इच्छा प्रकट की। यहां पर ब्र. सुशीलाबाई जी सरधना भी मिलीं। जो पूर्व मे द्रोणगिरि

आश्रम मे रह चुकीं हैं और मुझसे अध्ययन किया है। उन्होनें धार्मिक स्नेह प्रदर्शित किया निमंत्रण किया। प्रस्थान मे विलम्ब के कारण श्री पं हुकमचन्दजी के साथ तात्विक चर्चा कर मन प्रसन्न हुआ। यहां से रात्रि प्रस्थान कर दिल्ली होते हुए तिजारा प्रात. 7 बजे पहुंचे।

यह तीर्थक्षेत्र नया–नया ही है। यहा भगवान् चन्द्रप्रभु का बहुत अधिक अतिशय बताते हैं। मुनि कीर्तिसागरजी से चर्चा हुई। उन्होनें मुझे बोलने को कहा, उनकी आज्ञानुसार मैंने बोला। इसके बाद मुनिराज ने बोला। अभी नए दीक्षित हैं कुछ समय बाद अच्छा बोलना आ जाएगा। एक सज्जन ने मुझसे कहा कि आप सोनगढ के सिद्धान्त को मानने वाले हैं। मैंने कहा कि न तो मैं सोनगढ के सिद्धान्त को मानता हू और न भ्रष्ट मुनियो को मानता हू। मैं तो सर्वज्ञ के आगम को मानता हू। इस पर वह महाशय चुप हो गए।

यहा से जयपुर होते हुए पदमपुरा क्षेत्र पहुचे, ठहरने की व्यवस्था उत्तम थी। पदमप्रभु की मूर्ति निकलने के स्थान पर एक छतरी बनी है तथा खण्डहर मे एक सवा फुट की मूर्ति है। यहा पदमप्रभु स्वामी का चमत्कार प्रसिद्ध है, लेकिन कुछ समझ मे नहीं आया। यहा एक नवीन विशाल मदिर का निर्माण हुआ है जिसमे 10 वेदी हैं। मुख्य वेदी पर भूगर्भ से निकली प्राचीन पदमप्रभु की 2 फुट की मूर्ति स्थापित है। विशाल मैदान है, धर्मशाला ठीक है। सगमरमर का कार्य ठीक हो रहा है। क्षेत्र रमणीक है।

पदमपुरा से जयपुर आये। मार्ग मे हवाई अड्डा देखा। हवाई जहाज को उतरते–उडते देखा। जयपुर मे धर्मशाला मे सुविधा न होने के कारण टोडरमल स्मारक चले गए। दर्शन पूजन कर प्रवचन सुनने को बैठ गए। प्रवचन श्रावक धर्म पर चल रहा था। यहा मुनिश्री निर्मलसागरजी के दर्शन किए। उन्होने अपने पास बुला लिया। वहा से खानिया चले गए जहा ठहरने की उत्तम व्यवस्था थी। भोजन के बाद शहर भ्रमण किया। अजायबघर देखा और सभी यात्रियो को छोड ब्र दयासिन्धुजी एव गुढावालीबाई के साथ टोडरमल स्मारक भवन प्रवचन का लाभ लेने गए। महाराज का प्रवचन हो रहा था। आत्महित की प्राप्ति हेतु प्रयत्न करने का मुख्य उद्देश्य था। प्रवचन के बाद महाराज ने बुलाया और आत्म कल्याण करने के लिए आगे बढने को कहा। खानिया मे दो दिन रहे। पहाड पर आचार्य देशभूषणजी के निर्देशानुसार कार्य हो रहा है। 32 जगह दर्शन है चौबीसी बनी है। एक गुफा मे आचार्य देशभूषणजी की मूर्ति बनवाकर उनके समय मे ही स्थापित की है। आचार्य देशभूषणजी महाराज ने इस क्षेत्र का निर्माण अपनी कीर्ति के लिए कराया है, ऐसा प्रतीत होता है। जयपुर मन्दिरो की नगरी है, परन्तु मुख्य जिनालयो के ही दर्शन किए।

जयपुर से प्रस्थान कर अजमेर पहुचे। बीसपथी नसिया मे ठहरे। सुबह पास की नसिया मे दर्शन किए। यहा मूलचन्द टीकमचन्दजी सोनी की नसिया दर्शनीय है। आदिनाथ स्वामी की 6 फुट उत्तुग मनोज्ञ प्रतिमा है। यहा पूजन करने मे बहुत आनन्द आया। यहा प सदासुखदासजी की देखरेख मे जयपुर मे निर्मित भगवान् के 4 कल्याणको की रचना अपूर्व है। सेठजी के मन्दिर मे जो शहर मे उनके मकान के पास है निर्वाण कल्याणक की अपूर्व रचना है। यह मन्दिर काच की कारीगरी से निर्मित होने के कारण बहुत सुन्दर लगता है। यहा सभी जिनालयो के दर्शन किए। सुप्रसिद्ध मुस्लिम दरगाह भी देखी।

अजमेर से व्यावर आये, सेठ चम्पालाल्जी की नसिया के दर्शन किए। यहा श्री पं हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री साढूमल वालो से भेट हुई। मिलकर बडी प्रसन्नता हुई। ये हमारे छात्र साथी हैं। साढूमल विद्यालय मे हम लोगो ने साथ–साथ अध्ययन किया है। इन्होनें ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन के सभी

शास्त्रो मुद्रित लिखित के दर्शन कराये। यहां पहली शताब्दी से 18वी शताब्दी तक के आचार्य व पण्डितो के श्रावकाचारो का संग्रह हो रहा है जिसका सम्पादन पण्डितजी कर रहे हैं। इस समय आप प्रूफ संशोधन कर रहे थे। पण्डितजी ने साथ रहकर मन्दिरो के दर्शन कराये और जब तक प्रस्थान नहीं किया हमारे साथ ही रहे। ब्यावर से प्रस्थान कर सुबह दैलवाडा पहुंचे। सबसे पहले अचलगढ गए जहां 14 सोने की विशाल प्रतिमाएं हैं। यही देखने के लिए यहा आते भी हैं। हमने उन प्रतिमाओ को देखा सोने सदृश लगतीं हैं। प्रतिमाओ का वजन जो प्राय. कहा जाता है 440 मन। वह प्रतीत नहीं होता। यहां विशेष कारीगरी नहीं है। दैलवाडा वापिस आने पर धर्मशाला मे ठहरकर दर्शन पूजन किया। यहा एक ही दिगम्बर मन्दिर है। श्वेताम्बरो द्वारा निर्मित मन्दिर दर्शनीय है। कलात्मक दृष्टि से अपूर्व हैं। यहा जैसी कला हमने अभी तक कहीं नहीं देखी। मन्दिरों की कलाकारी मे और निर्माण मे बहुत व्यय हुआ है। 2 चौबीसी, 10 विशाल जिनालय हैं। यहा इन्हीं मन्दिरो के बीच मे एक दिगम्बर मन्दिर है।

यहा से तारगाजी गए। पहाडी पर दर्शन है। स्टेशन पर ठंहरने के लिए धर्मशाला है। तारगाजी क्षेत्र की धर्मशाला मे स्नानादि से निवृत्त होकर दर्शन पूजन किया। यहा गाव के मन्दिर मे 19 जगह दर्शन है।

इसके बाद दुर्गम पहाडी को चढ गए। चार गुमटी है। जिसमे एक मे चरण, दूसरी मे प्रतिमाजी हैं। दो गुमटी श्वेताम्बरो की हैं। दूसरे पहाड पर गए जहा तीन गुमटियो मे दो दिगम्बरो की और एक श्वेताम्बरो की है। यहा श्वेताम्बरो द्वारा दैलवाडा की ही तरह एक विशाल मन्दिर का निर्माण हो रहा है, जिसमे बहुत व्यय हो रहा है।

तारगा से चलकर महसाण आए। यहा मुनि महावीरनगर मे एक विशाल दिगम्बर जैन मन्दिर बना है, नीचे आदिनाथ, चन्द्रप्रभु और पार्श्वनाथ की मनोज्ञ प्रतिमाए हैं। काच के कारण दोंनो तरफ देखने पर अधिक प्रतिमाओ के दर्शन होते है। प्रतिमाए भव्य और आकर्षक होने से दर्शन कर अपूर्व शान्ति का अनुभव हुआ। ऊपरी भाग मे भगवान् शान्तिनाथ की कायोत्सर्ग अति मनोज्ञ मूर्ति स्थापित है। यहा मुनिश्री महावीरकीर्ति का समाधिमरण होने के कारण इस नगर का नाम इन्हीं के नाम से मुनि महावीरनगर हो गया है। महावीरकीर्ति का 7 दिन की समाधि के बाद स्वर्गवास हुआ था। मन्दिर के पास ही सेठ हिम्मतलालजी हैं जिनसे मिलकर प्रसन्नता हुई। उनमे धर्म व सरलता देखी गई। यहा एक विशाल श्वेताम्बर मन्दिर का निर्माण कार्य चालू है। श्री हिम्मतलालजी के आग्रह पर मन्दिर को देखा, यहां दिगम्बर 50–60 घर ही है, जबकि श्वेताम्बर 400 घर हैं।

यहा से बीरमगाव ओर सुरेन्द्रनगर होते हुए प्रात: 4 बजे राजकोट पहुंचे। सामायिक पाठ आदि के बाद पूजन हेतु मन्दिर तलाशा। यहॉ श्वेताम्बरो की बस्ती है। कानंजीस्वामी के सद्प्रयत्नो से यहां एक विशाल सीमन्धर जिनालय बना है। जिसमे आदिनाथ, चन्द्रप्रभु और पार्श्वनाथ स्वामी की भव्य एव मनोज्ञ मूर्तिया है। ऊपर भी 3 पाषाण की और 4 धातु की प्रतिमाएं स्थापित हैं, पूजन करने से अपूर्व शान्ति का अनुभव हुआ।

यहा एक विशाल मेरू और समवसरण की सुन्दर रचना है। स्वाध्याय भवन मे सस्कृत, प्राकृत के ग्रन्थो का भण्डार है। गुजराती भाषा का साहित्य भी है। यहां हमने परमात्मप्रकाश का स्वाध्याय किया। यहां गिरनारजी मे यात्रा की सफलता के उपलक्ष्य से विधान करने का निश्चय किया।

दिनांक 8 1 73 को 5 बजे शाम को राजकोट से चलकर गिरनारजी पहुंचे। गिरिराज की वन्दना 9 1 73 को प्रात: की। लगभग 10 हजार सीढियां चढनी पडतीं हैं। तलहटी की धर्मशाला से 4 हजार सीढी चढकर पहली टोक पर एक छोटी सी धर्मशाला दिगम्बर जैनों की है। धर्मशाला से कुछ दूरी पर चलने पर 75 सीढी चढने के बाद राजुल की गुफा है। इसमे राजुल की मूर्ति व भगवान नेमीनाथ के चरण हैं। यहा से 50 सीढी चढने पर श्री दिगम्बर जैन मन्दिर है तथा 3 गुमटी जिसमे बाहुबली, पार्श्वनाथ और पंचपरमेष्ठी की मूर्तिया तथा कुन्दकुन्द के चरण हैं।

108 सीढी चढने पर गोमुखी गंगा का कुण्ड है तथा वैष्णव सम्प्रदाय के मन्दिर हैं। एक अलमारी मे 24 तीर्थंकरों के चरण हैं जिसे अन्य मत वाले 24 अवतार मानते हैं कुण्ड मे बाबा लोग दर्शको के सामने पैसा डालकर गुप्तदान का महत्व बताते हुए दर्शको से पैसा डलवाने का प्रयत्न करते हैं। गो के मुख का आकार बना होने के कारण इसे गोमुखी गगा कहा जाता है, इसमे पानी रहता है। यहां से आगे दूसरी टोक पर जाते हैं। इससे अनिरुद्धकुमार मोक्ष गए। अन्य धर्मावलम्बी इसे अम्बा माता की टोक कहते हैं। यहा एक बड़ा मन्दिर अम्बा माता का बना है। इसके आगे तीसरी टोक है जहा से शम्भुकुमार मोक्ष गए हैं। हिन्दू इसे गोरखनाथजी की टोक कहते हैं। इस टोक पर लकडी का टाल बना है, तौल हेतु कांटा लगा है, कचडा बहुत है। यहा पूज्यता का कोई चिन्ह नहीं मामूली से चबूतरे पर चिन्ह हैं। इसकी सफाई होनी चाहिए, जिससे दर्शनीय स्थल समझ मे आ सके। आगे चौथी टोक है जो दुर्गम है, सीढिया नहीं तथा मार्ग भी नहीं और न मार्ग सूचक कोई निशान है। चट्टानो—चट्टानो से चढकर जाना पडता है जो जोखिम का काम है। फिर भी पुरुष स्त्री बच्चे सभी जाते हैं। ऊपर चढने पर टोक के एक पत्थर मे एक छोटी प्रतिमा है। इस टोक से प्रद्युम्नकुमार के मोक्ष जाने से उनके चरण हैं। हिन्दू लोग इसे औघड़ की टोक कहते हैं। यहा से पाचवी टोक पर जाते हैं जो बहुत ऊँची है। परन्तु अन्त तक सीढियो का निर्माण है। इस स्थान से भगवान नेमीनाथ मोक्ष गए। यहा नेमीनाथजी के चरण तथा परिक्रमा मे छोटी सी मूर्ति नेमीनाथ की स्थापित है। बाबा लोग चरण को फूलो से, हलदी से तथा प्रतिमा को गुलाल आदि लगाकर रखते हैं। जिससे नमस्कार करने के भाव नहीं होते, पराधीनता है। बाबा लोग यात्रियो से पैसा चढवाकर दर्शन करने देते हैं। हिन्दू मत वाले इसे दत्तात्रेय की टोक कहते हैं। यहा से शेषावन देखने जाते हैं। मार्ग कठिन है, सीढिया लगी हैं यहा एक धर्मशाला है, जिसमे 4 कमरे हैं, विश्राम किया जा सकता है। धर्मशाला के नीचे ही डेरी मे भगवान नेमीनाथ के दीक्षा कल्याणक के चरण हैं। कुछ आगे चलने पर भगवान् नेमीनाथ के केवलज्ञान के चरण हैं। चरण श्वेताम्बरो के है, उन्हीं के द्वारा पूजन होती है। यहा मुनीम लोग कार्य कुशल एव व्यावहारिक हैं। यात्रियो के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं। यहा से 13 1 73 को प्रस्थान कर जूनागढ के दर्शन किए। किला भी देखा जो विशेष दर्शनीय नहीं है। सोमनाथ का मदिर देखा जो दर्शनीय है। यहा स्थापित लिग को ज्योतिर्लिंग कहते हैं। इस मन्दिर की सहायता राजा महाराजाओ ने की। यहा से समुद्र पास होने के कारण ठण्डी हवाए चलतीं हैं। यहां से चलकर सुबह सोनगढ पहुँचे। पूजन के बाद कानजीस्वामी के प्रवचन मे भाग लिया। नियमसार का प्रवचन 5 भावो पर हो रहा था। यहा एक विशाल सीमन्धरस्वामी का जिनालय है। ऊपर नीचे दर्शन हैं। एक विशाल मेरु है जिसमे कई अपूर्व चित्र है। एक तरफ ऊपर कानजीस्वामी की मूर्ति व नीचे कुन्दकुन्द स्वामी की मूर्ति है। प्रवचन मण्डप बना है, आगम मण्डप बन रहा है। समवसरण मन्दिर है। वहा परमागम मन्दिर मे समयसार की गाथाए मशीन से सगमरमर पर लिखायीं जा रहीं हैं।

यहा से चलकर पालीताना आए। शत्रुञ्जय पहाड़ तक बस ले गए। वहा से सीढियो से पहाड़ पर

पहुचे। सीढिया अच्छी बनीं है, साफ सफाई है। यहा दिगम्बर मन्दिर केवल एक हैं, परन्तु श्वेताम्बरो के साढे तीन हजार हैं। जिसमें 4–6 मन्दिर विशाल है। दर्शनीय हैं, यहा जैनों का वैभव देखा जा सकता है। यहां से 3 पाण्डव व 5 करोड़ मुनि मोक्ष पधारे है, इससे यह सिद्धक्षेत्र है। श्वेताम्बर लोग इसे अत्यन्त पुनीत क्षेत्र मानते है। यहां से पुन सोनगढ आये और प्रवचन का लाभ लिया। प्रवचन मे जाति कुल का वर्णन चल रहा था।

यहा से चलकर गोधा जो प्राचीन स्थान है और 4 जगह दर्शन है, गए। यहा से समुद्र पास है। किम्बदन्ती है कि यहा श्रीपालजी पार लगे थे ओर सहस्रकूट चैत्यालय के दर्शन किए थे।

यहा से अहमदाबाद आए। यहा एक बोर्डिंग तथा चन्द्रप्रभु जिनालय है। शहर के दर्शन किए दर्शनीय स्थलो को देखा। शाहपुरा मे क्षुल्लक सहजानन्द जी विराजमान थे, उनके दर्शन किए, प्रवचन सुना।

यहा से पावागढ आए, यहा से लवकुश तथा 5 करोड मुनि मोक्ष गए थे इससे यह सिद्धक्षेत्र है। पर्वत दुर्गम है, ऊपर 7 स्थानो पर दर्शन है। नीचे दो मन्दिर मे 4 जगह दर्शन है एक मेरु है। पर्वत पर एक देवी का मन्दिर है जिसमे अन्य मतावलम्बी बहुत बडी सख्या मे आते हैं। रात्रि विश्राम कर प्रात. 6 बजे चलकर बडवानी होते हुए चूलगिरि पहुचे। यहां ठहरने की उत्तम व्यवस्था है, कर्मचारीगण यात्रियो के प्रति सौजन्यतापूर्ण व्यवहार करते है। दर्शन पूजन किया। रात्रि मे आरती, शास्त्र प्रवचन सुना। सुबह गिरिराज की वन्दना की। 700 सीढियो के होते हुए भी यात्रा आसान है बीच मे भगवान आदिनाथ स्वामी की देशी पाषाण की 84 फुट कायोत्सर्ग भव्य मनोज्ञ मूर्ति है, ऊपर छतरी है। ऊपर भौंर (मक्खियो) के लगने के कारण यात्रीगण भयभीत रहते हैं। इसे बावनगजा के नाम से भी जाना जाता है। यहा नीचे 20 जिनालय मेरु तथा मुनि चन्द्रसागरजी की चरण छतरी है। ऊपर 7 मन्दिर है, यहा से इन्द्रजीत व कुम्भकर्ण मोक्ष पधारे, इससे सिद्धक्षेत्र है।

चूलगिरि से 3 बजे चलकर रात्रि 9 बजे इन्दौर पहुचे। पूजन करने के बाद तुकोगज गए। वहा घटाघर मे प्रवचन श्री प रतनचन्दजी का हो रहा था। प्रवचन हदयग्राही था ओर शैली उत्तम थी। जिसे सुना प्रवचन के बाद प जी ने मुझसे भी बोलने का आग्रह किया मैने भी बोला। उदासीनाश्रम मे सभी व्रतियो से मिले, अधिष्ठाताजी ने बहुत स्नेह के साथ हम लोगो का निमत्रण किया। शहर के जिनालयो की वन्दना की। 23 1 73 को सुबह सिद्धवरकूट के लिए प्रस्थान किया। नर्मदा एव रेवानदी को नाव से पार किया। धर्मशाला मे ठहरने की उत्तम व्यवस्था है। गर्म पानी की व्यवस्था है। दर्शन पूजन कर सतोष हुआ। बाहुबली जिनालय मे अभिषेक किया। पूजन की व सभी जिनालयों की वन्दना की। यहा 8 जिनालय डेहरी, छतरी, मानस्तभ और 5 चैत्यालय इसप्रकार 16 जगह दर्शन हैं। मोरटका धर्मशाला मे 8 जिनालय व 16 जगह दर्शन हैं। यहां से मधवा व सानत्कुमार चक्रवर्ती मोक्ष को गए। इससे यह सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र है। 10 कामदेव, सनतकुमार, वत्सराज, कनकप्रभु, मेघपुत्र, विजयराज, श्रीचन्द्र, नलराज, बलि, सुदेल, जीवन्धर भी मोक्ष को यहां से पधारे। क्षेत्र रमणीक है। यहां कम से कम दो दिन ठहरकर क्षेत्र की वन्दना का लाभ लेना चाहिए जो यात्रा सघो मे सभव नहीं होता। यहा हिन्दुओ का औंकारेश्वर तीर्थ है। यहा से 23 1 73 को ही रात्रि मे ऊन पावागिरि आ गए। मार्ग मे खरगौन मे नवग्रह का मेला देखा। ऊन पावागिरि मे ठहरने की उत्तम व्यवस्था है। इस क्षेत्र की व्यवस्था हेतु इन्दौर वालो की कमेटी है। एक छोटी सी पहाडी पर 10 जिनालय है, नीचे एक जिनालय एवं मेरु है। यहा के कर्मचारी कर्तव्यनिष्ठ हैं और क्षेत्र के लिए यात्रियो से पैसा लेने की कला है।

यहा प्राचीन मन्दिरो के बहुत खण्डहर है, 2–3 मन्दिरो को देखा। एक जगह तो बहुत सी प्राचीन प्रतिमाएं है तथा जिनालय जीर्णोद्धार के योग्य हैं। प्रतिमाए विशाल है।

25 1 73 को ऊन से मागीतुगी पहुचे। यहा आदिवासियो की बहुलता है। गरीबी है इससे क्षेत्र की प्रबन्ध व्यवस्था कमजोर है। क्षेत्र की विशेष उन्नति नहीं है। धर्मशाला की हालत भी ठीक नहीं है। बीसपथी आम्नाय है। नीचे 3 मन्दिर है, हमने एक जिनालय मे चन्दन फूल केशर हटाकर अभिषेक पूजन की। इसके बाद पहाड की वन्दना की। पहाड की चढाई कठिन है, सीढियां ऊँची हैं। सबसे पहले मागी पहाड है और दूसरा पहाड तुगी के नाम से प्रसिद्ध है। मागीतुगी के बीच मे श्रीकृष्ण की दाहक्रिया हुई थी, बताते हैं।

यहा से चलकर गजपथाजी सिद्धक्षेत्र आये यहा ठहरने की व्यवस्था ठीक है। धर्मशाला से 2 मील दूर पहाड है। चढने के लिए 500 सीढिया है जो ऊँची है। थकान आ जाती है। यहा से बलभद्र ने मोक्ष प्राप्त किया था, उनके चरण है।

गजपथा से चलकर रात्रि बम्बई आए और सुखानन्द धर्मशाला मे चौथी मजिल पर ठहरे। बम्बई दो दिन ठहरे, भोलेश्वर, गुलाबवाडी, सीमन्धर, कालवादेवी रोड, चौपाटी मे घासीराम पूनमचन्दजी के जिनालयों के दर्शन किए। दादर मे नवीन मन्दिर के दर्शन किए। इण्डियागेट तथा चौपाटी मे समुद्र देखा, बाजार का भ्रमण किया।

29 1 73 को बोरीबली आये, यह क्षेत्र मुनिश्री नेमीसागरजी की प्रेरणा से नवीन बना है। इसका नाम पोदनपुर है। यहा प्रथम खण्ड मे सुविधा सम्पन्न धर्मशाला है, द्वितीय खण्ड मे भगवान् आदिनाथ, भरत और बाहुबली की 24 फुट कायोत्सर्ग भव्य मूर्तिया हे। पीछे चौबीसी है। जिसमें ढाई फुट की प्रतिमाए विराजमान है। वन्दना भक्तिपूर्वक की, धर्मशाला मे भी एक चैत्यालय है तथा ग्राम मे एक बडा मन्दिर है। यह क्षेत्र दर्शनीय है दक्षिण की यात्रा करने वाले यात्रियो को इसकी वन्दना अवश्य करनी चाहिए।

बोरीबली से चलकर पूना होते हुए सतारा आये। पूना मे ठहरने की सुविधा उपलब्ध नहीं हुई। यह साफ स्वच्छ और दर्शनीय स्थल नहीं है, यहा एक दिगम्बर जैन गृह चैत्यालय है जो तलाश करने पर मिला। यहा नल के पानी से अभिषेक पूजा होती है परन्तु हमने एक श्वेताम्बर मन्दिर के कुए से जल लाकर अभिषेक पूजन किया यहा एक मेला भी लगा था।

यहा से चलकर रात्रि मे कुम्भोज आये। यह स्थान रमणीक है। यहा कुछ विश्राम करने की इच्छा हो जाती है। यहा मुनि समन्तभद्र महाराज विराजमान हैं। उन्हीं के प्रयासो से क्षेत्र मे सुन्दरता है। यहा विशाल मैदान मे भगवान बाहुबली की 28 फुट ऊँची मूर्ति स्थापित है जो भव्य और मनोज्ञ है। दर्शन कर अपूर्व शान्ति हुई। यहा बाहुबली विद्यापीठ सचालित है जिसमे 700 छात्र अध्ययन करते है।

यहा मांगीतुगी, मुक्तागिरि, गजपथा, तारगा, पावागिरि क्षेत्रों की रचना है। नीचे कैलाश पर्वत, गिरनार, पावापुरी, चम्पापुरी की भव्य रचना है। बाहुबली जिनालय, रत्नत्रय, समवसरण मन्दिर हैं, नन्दीश्वर की रचना है। एक मेरु व भूत, वर्तमान, भविष्य तीनो काल की चौबीसी हैं एव विदेह के 20 तीर्थकरो के चरण स्थापित हैं। एक मील की दूरी पर 3 प्राचीन मन्दिर हैं। जिसमे आदिनाथ, नेमीनाथ और महावीरस्वामी की प्रतिमाये हैं। पीने के लिए मीठे पानी का कुआ है। पहाड़ पर 300 सीढी चढ जाने पर 4 जगह मन्दिर हैं। शान्तिसागर महाराज के चरण हैं। सरस्वती का मन्दिर, सहस्त्रकूट चैत्यालय है वहा श्वेताम्बरो ने कब्जा कर लिया है। जिसमे 4–6 जगह दर्शन है। यहा एक दुर्गा का मन्दिर है।

यहा मुनिश्री समन्तभद्रजी महाराज के दोनो समय प्रवचन होते है। सुबह समयसार पर एव दोपहर

रत्नकरण्डश्रावकाचार का स्वाध्याय होता है। मुनि महाराज के प्रवचन सुने। उनसे चर्चा हुई। महाराज को प्रसन्नता हुई, यहा दो क्षुल्लक भी है।

कुम्भोज से प्रस्थान कर कोल्हापुर आये। यहा एक मेरु और आदिनाथ स्वामी की कायोत्सर्ग प्रतिमा है।

मूलवद्री से चलकर वैणूर आये। यहां भगवान बाहुबली की 34 फीट ऊँची मूर्ति है। मूर्ति मे कालापन एवं धब्बे आ गये हैं। यहा 4 जगह दर्शन हैं तथा शहर मे 3 जगह दर्शन हैं। यहा मन्दिरो में पूजन का समय निश्चित है। एक मन्दिर मे 7 बजे, दूसरे मे 8 बजे और तीसरे मन्दिर मे 10 बजे पूजन होती है। पूजन सुबह शाम दोनो समय होती है।

यहां से धर्मस्थल पहुंचे, यह क्षेत्र जैनेतर समाज का है जो दर्शनीय है। यहा श्री वीरेन्द्रजी हेगडे प्रमुख हैं। यहां विशाल धर्मशालाए हैं। यात्रियों को भोजन मिलता है। कुछ दूरी पर जैन मठ है यहां पूजन किया। यहा बहुत मूर्तिया है। 3 फुट ऊँची बाहुबली स्वामी की मूर्ति है। मार्ग मे एक सेठ के चैत्यालय के दर्शन किए। यहा प्रतिमाये मूगा, पन्ना आदि रत्नो की हैं। प्रतिमाओ मे अनेको रत्न जडे है। एक कमरे मे शकर, गणेश और सरस्वती की कलात्मक मूर्तियों का सग्रह है। धर्मस्थल मे श्री हेगडेजी की मातेश्वरी की भावना से बाहुबली की विशाल प्रतिमा का निर्माण हुआ है। जिसकी शीघ्र ही प्रतिष्ठा होने वाली है। हम लोगो ने अप्रतिष्ठित अवस्था मे कारकल मे जहा निर्माण हो रहा है दर्शन किए। प्रतिमा 39 फीट है जो एक पत्थर पर बनी है। यह पत्थर पहाड से निकाला गया है।

धर्मस्थल से श्रवणबेलगोला के लिए प्रस्थान किया। मार्ग कठिन घाटी का है यहा बस बहुत धीमी गति से गई मार्ग मे हालीवुड मे विश्राम किया। सुबह सामायिक, स्वाध्याय कर दैनिक क्रियाओ से निपटकर प्रस्थान किया। जल्दी–जल्दी मे घडी छूट गई। यहा 3 मठ हैं जो कलापूर्ण और दर्शनीय है। जैन मन्दिर भी है। लेकिन दर्शन नहीं हो पाये। 11 बजे श्रवणबेलगोला दिनाक 8 2 73 को पहुचे। स्नान पूजन किया। श्रवणबेलगोला हासन जिले मे है यहा चन्द्रगिरि, विन्ध्यगिरि नाम की दो पहाडी है। चन्द्रगिरि पर 14 जगह दर्शन है। आज इसी पहाडी के दर्शन किए। रात्रि मे भट्टारकजी से चर्चा की। नीचे विशाल मठ है। चन्द्रगिरि से आगे जैनबद्री गाव है। यहा दो विशाल मठ है। गाव के दोनो कोनो पर बाये पार्श्वनाथ और दाये शान्तिनाथ भगवान् की प्रतिमाऐ है। यहा से नीचे सीधा रास्ता श्रवणबेलगोला को है।

दूसरे दिन 600 सीढिया चढकर विन्ध्यगिरि (इन्द्रगिरि) पहाड पर गए। यहा पर 57 फुट भगवान् बाहुबली की मनोज्ञ विशाल मूर्ति है जो एक ही शिला पर बनी है और बिना सहारे के खडी है। दर्शन कर अत्यन्त हर्ष हुआ। इस मूर्ति का प्रत्येक 12 वर्ष मे विशेष उत्सव के साथ महामस्तकाभिषेक होता है। मूर्ति की भव्यता और विशालता के कारण मूर्ति के सामने से जाने का मन नहीं करता। यहॉ चन्द्रगिरि पर एक गुफा मे भद्रबाहु के चरण स्थापित है। यहा 7 दिगम्बर जैन मन्दिर है। चन्द्रगिरि पर्वत पर 16 मन्दिर है। उसी पर्वत पर सम्राट चन्द्रगुप्त नें 12 वर्षो तक कठिन तपस्या की थी। चन्द्रगुप्त बस्ती मे उत्कीर्ण शिलालेख इसके प्रमाण है। ग्राम मे 7 जिनालय और जिननाथपुर ग्राम मे 2 मन्दिर हैं। जो दर्शनीय है। यहा गोम्मटेश्वर दि जैन महादेव पाठशाला सचालित है। यहा भट्टारक चारुकीर्तिजी है। अभी उम्र से छोटे है ज्ञानार्जन करने पर विद्वान् बन सकते है। रात्रि को भट्टारकजी का प्रवचन सुना। अष्टपाहुड मे लिगपाहुड चल रहा था। सामान्यरूप से शैली ठीक है।

दिनाक 9 2.73 को श्रवणबेलगोला से चलकर मैसूर आये। बोर्डिंग मे ठहरे। पूजन आदि की। शाम को बाजार देखा। सुन्दर है, सफाई अच्छी है। राजमहल देखा, कई जगह राज्य के स्मारको मे सोने का काम है। कृष्णसागर बाध व वृन्दावन बाग देखा यहा बिजली की सजावट, फब्बारो का अजीव दृश्य है, जो दर्शनीय है लुभावना है।

मैसूर से बैगलोर आये। स्टेशन की धर्मशाला मे ठहरे। यहां से दि. जैन मन्दिर की तलाश की। बहुत दूर पर एक मन्दिर मिला वहां स्नान पूजन किया और धर्मशाला वापिस आये। सभी कार्यों से फुरसत होकर बाजार देखा।

यहा से रात्रि को कोण्डूर कुन्दकुन्दस्वामी की जन्मभूमि देखने के लोभ से मद्रास जाने का संकल्प किया लेकिन रास्ते मे किच–किच हो जाने के कारण ड्रायवरो ने जाना मजूर नहीं किया और मद्रास 4 बजे पहुचे। सभी यात्री परेशान हो गये मुश्किल से जैन धर्मशाला व दि जैन मन्दिर मिला। दर्शन पूजन और दैनिक कार्यो मे ही समय व्यतीत हो गया। रात्रि मे दर्शन, सामायिक के बाद पुजारीजी के प्रवचन में बैठ गये। पाण्डव पुराण पर प्रवचन चल रहा था। भाषा तमिल थी। सस्कृत श्लोक भी तमिल मे ही थे अर्थ भी तमिल मे था जिससे समझ मे नहीं आया। पुजारी क्रियाकाण्ड वाला था जिसे अपने ज्ञान का अभिमान था। सुबह मन्दिर पहुचकर सामग्री धोई लेकिन पुजारी द्वारा वैदिक सस्कृति से क्रियाकाण्ड करने पर ही कर सके। इस कार्य मे पुजारी ने अनावश्यक विलम्ब किया।

यहा से रात भर चले। रास्ते मे पावनगिरि नाम का ग्राम मिला जिसमे भगवान पार्श्वनाथजी की विशाल प्रतिमा थी लेकिन डबल माला पहनने के कारण दर्शन के भाव नहीं रहे। एक जिनालय ऊपर था। जिसमे अभिषेक पूजन की। दैनिक कार्यों से निपटकर रात्रि विश्राम किया। प्रात प्रस्थान कर हुगली पहुचे। यहा बोर्डिग के चैत्यालय मे अभिषेक पूजन कर आगे प्रस्थान किया। यहा 5 जिनमन्दिर है। रास्ते मे एक नदी के किनारे ककरीली कटक युक्त स्थान पर दैनिक क्रियाओ से फुरसत होकर रात्रि मे बीजापुर पहुचे। बोर्डिंग मे रुके। आदिनाथ जिनालय के दर्शन किए। सुबह दर्शन पूजन कर चल दिए और मार्ग मे एक बाध पर रुककर दैनिक क्रियाओ को सम्पन्न किया। बीजापुर से कुछ दूरी पर एक प्राचीन मन्दिर मे सहस्रफणी श्री पार्श्वनाथ भगवान् की मनोज्ञ मूर्ति के दर्शन किये, मन प्रसन्न हो गया। यहाँ मणिपुर से भागकर आने वाले जैनो ने एक मन्दिर बनाने के लिए नींव डाली थी तो तभी यह मन्दिर मिला। उस समय इसमे प्रतिमाये नहीं थीं। किसी को स्वप्न आने पर नींव की खुदाई करने पर सहस्रफणी भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति प्राप्त हुई। एक जगह महावीरस्वामी की मूर्ति प्राप्त हुई। जिसमे टॉकियो के निशान होने से मुस्लिम शासको द्वारा नुकसान पहुचाने का अन्दाज लगता है। यहा दोनो तरफ पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग प्रतिमाये है।

यहा से प्रस्थान कर 16 2 73 को सोलापुर पहुचकर श्राविकाश्रम मे ठहरे। इस आश्रम मे 3 हजार बालिकायें अध्ययन करती है। आश्रम सचालिका ब्र सुमतिबाईजी है। जिन्हे भारत शासन ने पद्मश्री से अलकृत किया है। यहाँ एक चैत्यालय है जिसमे सभी प्रतिमाये मनोज्ञ और आकर्षक हैं। दर्शन कर मन को शान्ति प्राप्त हुई। सचालिकाजी ने हम लोगो को भोजन कर जाने का बहुत आग्रह किया परन्तु समयाभाव के कारण रुक नहीं पाये। सामायिक आदि कर ग्राम के 5 जिनालयों एव शहर के जिनालयो के दर्शन किये।

वहां बालको का भी एक बोर्डिंग है जिसमे 2 हजार छात्र अध्ययन करते हैं। बोर्डिंग में भी एक चैत्यालय है जिसके दर्शन किये। सोलापुर श्रावको का शहर है यहां चैत्यालय भी मनोज्ञ हैं। यहीं कल्याण भवन मे श्री प. वर्धमानजी, पार्श्वनाथजी शास्त्री रहते है जो नियमित प्रवचन करते हैं। यहीं माणिकचन्द दिगम्बर जैन परीक्षालय भी है, आप उसके मंत्री हैं।

सोलापुर से चलकर सिद्धक्षेत्र कुन्थलगिरि आये। यह देशभूषण कुलभूषण की सिद्धभूमि है। यहां चारित्र चक्रवर्ती महान् तपस्वी आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का समाधिस्थल है। क्षेत्र रमणीक और शान्तिप्रदायक है। क्षेत्र पर 8 मन्दिर है यहाँ 18 फुट उत्तुग बाहुबलीस्वामी की मनोज्ञ प्रतिमा है। ग्राम मे 3 जिनालय हैं। आचार्य शान्तिसागरजी महाराज की समाधि सं. 2021 में हुई थी। प्रबन्ध अच्छा है। पानी की कमी होने पर भी स्नानादि को पानी की व्यवस्था हो गई थी। छोटी पहाडी है जिसपर भगवान् बाहुबली स्वामी की प्रतिमा की गत वर्ष प्रतिष्ठा हुई थी। देशभूषण कुलभूषण नाम से एक ब्रह्मचर्याश्रम है जिसमे 140 छात्र अध्ययन करते है। यहा देशभूषण कुलभूषण मुनिराजों पर पत्थर, अग्नि, बिच्छू आदि की वर्षा के उपसर्ग को श्री रामचन्द्रजी ने दूर किया था। मुनिराज आत्मस्थ होने के कारण ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पधारे।

18 2 73 को प्रात एलौरा पहुचे। धर्मशाला मे स्नानादि से निवृत्त होकर गांव से लगभग 2 मील चलकर सीढियो से पार्श्वनाथ जिनालय पहुचे। यहां भगवान् पार्श्वनाथ की साढे सात फीट पद्मासन प्राचीन भव्य मूर्ति है। यहा अभिषेक पूजन किया। गुफाओ को देखने गये यहा कुल 34 गुफाये है जिसमे 30 से 34 तक की गुफाओ मे जैन प्रतिमायें अधिक संख्या मे उत्कीर्ण हैं। अन्य मतावलम्बियो की मूर्तियां भी है। गुफाये दर्शनीय है। पहाड काटकर बनाई गई है। प्रारम्भ मे हिन्दू और बौद्ध धर्म से संबंधित गुफाये हैं। यह स्थान पुरातत्व विभाग के अधिकार मे है। देखने का टिकट लगता है। व्यवस्था सुन्दर है। एलौरा मे समन्तभद्र ब्रह्मचर्याश्रम है जिसमें 150 छात्र अध्ययनरत हैं। लौकिक शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। कुछ छात्रो से प्रश्न पूछने पर उत्तर संतोषजनक मिले।

यहा से चलकर सिल्लौर पहुँचे। अजन्ता छूट गया। यहाँ एक नया दिगम्बर जैन मन्दिर है। महावीरस्वामी की डेढ फुट अति मनोज्ञ मूर्ति है। दर्शन कर आगे चले। मार्ग मे बस खराब होने के कारण रात्रि भर बस चलकर प्रात 4 बजे अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ शिरपुर आये। यहां सभी मूर्तियाँ व स्थान दिगम्बर आम्नाय के है परन्तु प्राचीन पार्श्वनाथ की मूर्ति जो अन्तरिक्ष के नाम से प्रसिद्ध है उस पर श्वेताम्बरो दिगम्बरो का विवाद है। अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार पूजा अर्चना करते है। गाव के बाहर मन्दिर मे नवीन अति मनोज्ञ मूर्तियाँ है। ये मूतियाँ श्री कानजीस्वामी के उपदेशानुसार प्रतिष्ठापित हैं।

यहा से कारजा आये। यह स्थान अत्यन्त रमणीक है। यहां पर एक मन्दिर है जिसमे 3 जगह दर्शन है। ऊपर भी दर्शन हैं। यहां मुनि समन्तभद्रजी महाराज का ब्रह्मचर्याश्रम है। जिसमें 175 छात्र पढते हैं एक कन्या विद्यालय भी है। जिसमे 750 बालिकाये अध्ययन करती हैं। बोर्डिंग के चौथी मंजिल पर समवसरण की मनोरम रचना है। यहां से अमरावती आये। पचायती मन्दिर के दर्शन किये। 10 जगह दर्शन हैं। रत्नभुवन नाम की धर्मशाला है। यहा से परतवाडा होते हुए मुक्तागिरि आये। धर्मशाला मे नहा धोकर दर्शन पूजन कर क्षेत्र के दर्शन किये। क्षेत्र पर 52 जिनालय और 70 जगह दर्शन हैं। नीचे मन्दिर मे महावीरस्वामी की तीन मनोज्ञ प्रतिमाये है। इसी मन्दिर मे पूजन की इस क्षेत्र का नाम मेढगिरि भी है।

यहा से चलकर नागपुर आये। नागपुर के जिनालयो के दर्शन कर रामटेक आये। यहा भगवान् शान्तिनाथ स्वामी की मनोज्ञ प्रतिमा है। क्षेत्र के दर्शन कर मन प्रसन्न हुआ। यहाँ से सिवनी के जिनालयो के दर्शन करते हुए मढियाजी जबलपुर, कुण्डलपुर, रेशन्दीगिरि की यात्रा करते हुए 20.2.73 को वापिस द्रोणगिरि आ गये।

दो माह की इस लम्बी तीर्थयात्रा मे जहा तीर्थक्षेत्रो, संतो के दर्शनो का लाभ प्राप्त हुआ, वहीं अनेक खट्टे मीठे अनुभव भी हुये।

1 यात्रा सघ की बसो मे यात्रा सुखद नहीं रहती तथा विभिन्न विचारो के व्यक्तियो का समूह होने के कारण आपस मे मतभेद होता है। समय पर कोई कार्यक्रम नहीं हो पाता जिसकारण यात्रा मे शान्ति का वातावरण नहीं रहता।

2 समूह मे सामञ्जस्य न होने के कारण जो स्थान देखना चाहिए जहाँ पर्याप्त समय देना चाहिये, नहीं दे पाते।

3 भीड के कारण अनेको स्थानो पर असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।

4 गाडियो के रात्रि भर यात्रा करने के कारण थकान होने से तीर्थयात्रा का आनन्द नहीं रहता।

5 यात्रा सघ मे व्रतियो, विद्वानो का समागम होने पर भी यात्रीगण उनका लाभ-नहीं ले पाते। यात्रियो को अपनी सुविधा का विशेष ध्यान रहता है। अनेक यात्री लेट लतीफी के कारण यात्रासघ के लिए सिरदर्द बनते हैं।

इन सब कारणो से बचने के लिए शान्तिपूर्वक यात्रा के लिए छोटे–छोटे वाहनो से जिसमे एक ही विचारधारा के व्यक्ति रहे, यात्रा करनी चाहिए। ये साधन सुविधाजनक होते हैं। सभी जगह जा सकते हैं जिससे अन्य व्ययो से बचा जा सकता है। ड्राइवरो से उनके स्टाफ से सौजन्यता का व्यवहार भी यात्रा की सफलता के लिए आवश्यक है।

(इन्जीनियर महेन्द्र जैन पण्डितजी के द्वितीय पुत्र के सुपुत्र हैं जिन्हे पण्डितजी के साथ गिरनार यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय उनकी आयु 8–9 वर्ष की रही होगी। उन्होने पण्डितजी की दैनन्दिनी से यह यात्रा वृत्त तैयार किया है। – सम्पादक)

● प्रतीक्षा मेडीकोज
बड़ामलहरा, छतरपुर (मध्यप्रदेश)

□□□

बुन्देलखण्ड के गौरव
आचार्य पण्डित गोरेलालजी शास्त्री
(व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक विहंगम दृष्टि)

– प्रो. एस. वी. अवस्थी

शिक्षक विभिन्न सम्बोधनो से विभूषित होकर सदा से ही अपने दायित्वों का सम्यक् निर्वहन करते हुए सामाजिक चेतना के सम्वाहक का सूत्रधार रहा है। यह सभी स्वीकार करते है कि आदर्श समाज व राष्ट्र निर्माण का दायित्व सदा शिक्षको पर रहा है और रहेगा। कारण कि वह शिक्षकीय भूमिका के माध्यम से उनका सम्वाहक भी है। वस्तुत' हरेक परिस्थितियों मे देश के नौनिहालो मे समूचे सस्कार डालकर उनके माध्यम से देश को आगे बढाने की शक्ति शिक्षक मे ही है। यह निर्विवाद सत्य है कि गहन अधकार मे भी यदि प्रकाश की उम्मीद की जा सकती है तो वह शिक्षक वर्ग से ही है। देश की हृदयस्थली मध्यप्रदेश का बुन्देलखण्ड अचल सास्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक व शैक्षणिक गौरव गरिमा से अतीत से वर्तमान तक मण्डित रहा है।

इस सुश्रृंखला मे सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि का न केवल शैक्षणिक क्षेत्र मे, वरन् समस्त क्षेत्रो मे योगदान अविस्मरणीय व सराहनीय रहा है।

काल की एक निरन्तर गति विश्व को गतिमान् किए है। यह सुनिश्चित है कि इस काल प्रवाह में हमें उन प्रकाश स्तम्भो को स्मरण करना होगा जिनके स्मरण किए बिना आगत की स्वर्णिम परिकल्पना करना असंभव होगी। श्री पण्डित गोरेलालजी पूज्य वर्णीजी की शिष्य परम्परा मे अग्रिम पंक्ति के मूर्धन्य सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी आचार्य रहे हैं। अज्ञानान्धकार सबसे बडा शत्रु होता है। ज्ञान के प्रकाश से ही राष्ट्र व समाज को नई दिशा व नई राहे मिलतीं रहीं हैं। पण्डितजी ने पूज्य वर्णीजी के स्वप्नो को साकार करने का दायित्व अन्तर्मन से सभाल लिया तथा इस अंचल को द्रोण प्रान्त की एकमात्र सस्था गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय द्रोणगिरि को उसके स्थापना काल सन् 1928 से लेकर 1964 तक प्रधानाचार्य के रूप मे कार्य करते हुए न केवल सचालित किया वरन् अपनी ज्ञानज्योति से सहस्रो दीप प्रज्ज्वलित किए। उन्होने अपनी सुदीर्घ शिक्षा साधना से अनेको विद्वानो को मार्गदर्शित व प्रेरित किया है। इस क्षेत्र मे अधिकांश विद्वान् उनकी शिष्य परम्परा से न केवल अपने को वरन् अपने ज्ञानज्योतिदाता को भी गौरवान्वित कर रहे हैं। द्रोण प्रान्त का यह ऐतिहासिक अंचल ऋषियो, मुनियों की तपोभूमि के रूप मे मंडित रहा है। पण्डितजी ने गुरुदत्तादि मुनियो की निर्वाणभूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि को संवारने मे लगभग चालीस वर्षों तक जो सार्थक योगदान दिया है वह उस काल के गौरवपूर्ण इतिहास मे एक मिशाल है।

पण्डितजी की लेखनी भी सदा गतिशील रही है। आपने आंध्यात्मिक, लोकोपयोगी व बाल साहित्य का सृजन कर अपनी प्रतिभा को सदा–सदा के लिए अमर कर दिया है। उनकी कृतियो मे बारह भावना, सुमन संचय, जैन गारी भाग 1 व भाग 2, द्रोणगिरि पूजन, जैन भजन संग्रह आदि हैं। सम्पादित कृतियों मे नाममाला, रामविलास मार्तण्ड एव क्षुल्लक चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ हैं।

मानव विकास के क्रम मे सबसे महत्त्वपूर्ण काल शैशव व बाल्यकाल माना जाता है। कारण कि इस काल के सस्कार ही जीवन की आधारशिला बनते हैं। पण्डितजी ने शिक्षक के रूप मे इस यथार्थता को न

केवल स्वीकारा वरन् अपनी लेखनी द्वारा उसे मूर्तरूप भी दिया।

समाज व राष्ट्र का सबसे बड़ा संकट मूल्यो का सम्यक् विकसित न होना है। आज निश्चित रूप से मूल्यो की गगा मैली दिखाई दे रही है। सत्य, सदाचरण, प्रेम, शान्ति, अहिंसा आदि शाश्वत मानवीय मूल्य तिरोहित हो रहे हैं। पण्डितजी ने अपनी रचनाओ मे सरल दोहो के माध्यम से स्तुत्य कार्य किया है। उनकी कालजयी रचना सुमन सचय मे कुछ दोहे इसके स्पष्ट प्रमाण हैं।

बाल्यकाल मे स्मरणशक्ति अति तीव्र व सस्कार ग्रहणशीलता की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण होती है। आपने वर्णादि क्रम से उपरोक्त रचना मे मानवीय मूल्यो को बच्चो मे अंकुरित करने का प्रयास किया है। निम्न दोहे प्रमाणार्थ प्रस्तुत हैं –

1 *ऊसर पृथ्वी मे गया बीज विफल हो जाय।*
त्यौ दुर्जन उपदेश सुन, देते शीघ्र गमाय।।

2 *खल की सगति छोडिये जो होवे गुणवान्।*
विषधर मणि से युक्त भी हरे सदा ही प्राण।।

3 *नर वे ही जग मे भले, करे अन्य उपकार।*
अपना–अपना पेट तो भर लेता ससार।।

4 *दया ह्दय मे धारिये दया धर्म का मूल।*
दयावान् के शत्रु भी हो जावे अनुकूल।।

आपने सम्पूर्ण वर्णमाला क्रम से इतने सरल व सारगर्भित दोहे लिखे हैं जो आज भी उपयोगी हैं।

राजा भर्तृहर्रि के नीति शतक के अनुरूप आपने नीतिपरक यथार्थ जीवन का बोध कराने वाले जो दोहे लिखे हैं वे न केवल बालको के लिए वरन् प्रत्येक मानव के लिए अनुकरणीय हैं। यथा –

1 *नहीं भरोसे और के छोडें अपने काम।*
अपने मरने के बिना नहीं मिले सुरधाम।।

2 *जिसे अदालत मे नहीं जाना हो गम खाय।*
नहीं देखना वैद्य को होवे तो कम खाय।।

3 *भले बुरे नर की प्रकृति केवल परखी ज़ात।*
हॉडी को तो एक ही चावल देखो जात।।

4 *स्वाभिमान धन के धनी वही महा धनवान्।*
स्वाभिमान बिन जगत मे धन जीवन दुखदाय।।

5 *वचन वहां ही बोलिये जहा सफल हो जाय।*
जैसे निर्मल वस्त्र पर चोखो रग चढ जाय।।

पण्डितजी ने अपने नीति व उपदेश परक दोहो से जिस भाषायी सरलता का आलम्बन लेकर अपनी बात कही है वह कवि भावना की सफलता का परिचायक है।

साहित्य व कला विहीन पुरुषो को नीतिकार भर्तृहरि ने सींग पूँछ विहीन पशु माना है। इसी प्रकार साहित्य व भाषा समीक्षको ने भाषा मे व्याकरण के महत्व को सर्वत्र प्रतिपादित किया है। भाषारूपी रथ का रथी वास्तव मे व्याकरण ही है। कारण कि इसी की कसावट पर भाषा सौन्दर्य व उसकी गुरुता निर्भर करती है। पण्डितजी का निम्न दोहा इसका बडा ही सटीक व सरल उदाहरण है। देखिये —

अंधा है व्याकरण बिना बहिरा कोष विहीन।
लूला बिन साहित्य का, मूक तर्क से हीन।।

जीवन संसार मे मित्र का अवलम्बन सबसे महत्वपूर्ण माना गया है, किन्तु यह सत्य है कि असली मित्र के बिना मित्र शब्द अपनी भूमिका निर्वहण नहीं कर सकता। आपका निम्न दोहा प्राणिमात्र के लिए एक सचेतक है। देखिये—

कहे सामने प्रिय वचन पीछे कटे बिगार।
उन मित्रों को दूरतें तजिये स्वहित विचार।।

इसप्रकार नीति शतक के समान ही पण्डितजी ने अपनी सुमन सचय नामक रचना मे एक सौ एक दोहो के माध्यम से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की भावाभिव्यजना अति सरल भाषा मे व्यक्त कर काव्य को मानव मात्र के लिए ग्राह्य व हितकारी बनाने का जो श्रेयस्कर कार्य किया है वह स्तुत्य है।

पण्डितजी समाज व राष्ट्र के परोक्ष व अपरोक्ष सकट से भलीभाति परिचित ही नहीं थे वरन् वे सही रूप मे युगदृष्टा थे। इतनी सुदीर्घ साधना व उनका बहुआयामी व्यक्तित्व उनकी अमर कहानी बन गया है।

वे जैन दर्शन व सिद्धान्त के अधिकारी विद्वान् थे। आपने द्रोणगिरि मे स्थित साधुओ, व्रतियो को अनेक ग्रन्थो का अध्ययन कराया व स्वाध्याय को फलीभूत करने हेतु आचार्य के रूप मे एक अति महत्वपूर्ण स्मरणीय कार्य किया।

कहा गया है कि धार्यते य सो धर्म । पण्डितजी ने इस उक्ति को अपने जीवन मे चरितार्थ किया है। आपकी स्मरणशक्ति अति तीव्र थी। अनेको धार्मिक ग्रन्थ पण्डितजी को कठस्थ थे।

आज पण्डितजी के अनगिनत शिष्य उनके बताये मार्ग पर चलकर उनके स्वप्नो को साकार कर रहे है। वस्तुत ऐसे आचार्यो के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित कर हम उन्हे उपकृत नहीं करते वरन् स्वयं उपकृत होते है।

पण्डितजी के ज्ञान, कौशल व कार्य की त्रिवेणी आज भी मानव मात्र के लिए उतनी ही पावन है जितनी रचनाकार के जीवन काल मे थी। वे निश्चित रूप से अपने व्यक्तित्व व कृतित्व की एक जीवन्त सस्था थे।

मै अपने अन्त हृदय से ऐसे कर्मयोगी आचार्य को शत–शत नमन करता हूँ साथ ही यह आशा करता हूँ कि भौतिकता से प्रभावित समाज, राष्ट्र व विश्व पण्डितजी की अभिव्यक्ति को जीवन मे उतारकर जैनदर्शन के शाश्वत मानवीय मूल्यो को अपनाकर उन्हे स्मरण ही नहीं करेगा वरन् इससे अपना कल्याण भी करेगा।

□□□

बुन्देलखण्ड में सबकी आस्था के केन्द्र
पण्डित गोरेलालजी शास्त्री

— डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन

बुन्देलखण्ड के जैन पण्डितो मे पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बुन्देलखण्ड का सीमाकन यदि "इत जमना उत नर्मदा इत चम्बल उत टौंस" के आधार पर किया जाता है तो द्रोण प्रान्त को बुन्देलखण्ड का हृदय स्थल कहा जायेगा। इसी प्रान्त मे आज से लगभग 90 वर्ष पूर्व द्रोणगिरि (सेंधपा) नामक ग्राम मे पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का जन्म हुआ था।

पण्डितजी ने साढूमल, ललितपुर एव इन्दौर आदि स्थानो में रहकर अपना अध्ययन पूर्ण किया। तत्पश्चात् उन्होने इस प्रान्त की जैन समाज मे शिक्षा का अभाव और पनप रहीं सामाजिक विकृतियो को दूर करने के उद्देश्य से आजन्म द्रोण प्रान्त मे ही रहकर समाज सेवा करने का व्रत लिया। उसी समय सुखद सयोग यह रहा कि आध्यात्मिक सत प्रवर क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी की दृष्टि उन पर पडी और उन्होनें पण्डितजी की योग्यता, कर्मठता, त्याग, निष्ठा एव सेवाभाव आदि गुणो को परख कर वि स 1985 मे द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर स्थापित श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन विद्यालय के सचालन का कार्यभार उनके कधो पर डाल दिया। पण्डितजी ने भी उनके आग्रह को आदेश रूप मे स्वीकार कर प्रदत्त उत्तरदायित्व को पूर्ण करने मे यथाशक्ति अपने जीवन को लगा दिया। वस्तुत पण्डितजी क्षेत्र और विद्यालय के पर्याय बन गए थे। सभी का सर्वांगीण विकास करना पण्डितजी के जीवन का परम ध्येय बन गया था। वर्णीजी ने अपनी जीवन गाथा मे पण्डितजी के कार्यों की भूरि–भूरि प्रशसा की है। एक जगह उन्होने लिखा है –"पण्डित गोरेलालजी यहीं के रहने वाले हैं, व्युत्पन्न हैं, आप ही के द्वारा पाठशाला की अच्छी उन्नति हुई है। आप क्षेत्र का भी काम करते हैं।"

समाज सेवा की राह पर पण्डितजी निरन्तर बढते रहे। समाज के जिस अग मे विकृति दिखाई दी, निर्भीकता के साथ उसको दूर करने मे जुट गए। बाल विवाह, मरण भोज, वृद्ध विवाह आदि का डटकर प्रतिरोध किया। जैन –जैनेतर समाज के आपसी विवाद सुलझाने के लिए आपको प्रधान न्यायाधीश की तरह माना जाता था। पण्डितजी के स्वभाव मे अक्खडता और मृदुता का विचित्र मणिकाञ्चन सयोग था। किसका कहा और कब प्रयोग करना है, तदनुसार उसका प्रयोग कर वे विभिन्न स्वभावो वाले व्यक्तियो को भी सहज अपने अनुकूल बना लेते थे। विद्यालय के प्रकाश स्तम्भ के रूप मे पण्डितजी की ज्ञान रश्मिया विभिन्न क्षेत्रो मे कार्यरत उनके शिष्यो के माध्यम से सम्पूर्ण देश मे फैलीं हुईं है।

द्रोणगिरि विद्यालय मे मेरी अवस्थिति के समय पण्डितजी की बहिरात्मा विद्यालय और क्षेत्र से अनुस्यूत होते हुए भी उनकी अन्तरात्मा सासारिक बन्धनो से मुक्त होने की दिशा मे पूर्णरूप से मुड़ चुकी थी। पण्डितजी के इस रूप को परखकर काठन ओर श्यामरी नदियो से परिगत गुरुदत्तादि मुनिवरो की निर्वाणभूमि द्रोण पर्वत की उपत्यका मे स्थित कुटी मे वास कर रहे महान् तपस्वी क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज ने एव क्षेत्र पर रह रहे त्यागी वृन्द ने अपने मोक्षमार्ग को निष्कटक बनाने के लिए अपने पास पण्डितजी जैसा ज्ञानदीप देखकर उन्हे अपने पथ का पक्का पथिक बना लिया।

मुक्तिमार्गोन्मुख होने के बाद यह स्वाभाविक था कि पण्डितजी का मन सन् 1964 के बाद सामाजिक कार्यो एव गृहस्थ जीवन से अनासक्त हो चला था। उस दौरान उनका प्रतिदिन शस्य–श्यामला–श्यामरी

सरिता के तट पर स्थित व्रती आश्रम मे घर से पैदल चलकर जाना और व्रतियो – साधुओ को अध्ययन अध्यापन कार्य कराना या प्रवचन देना आदि जीवन का अभिन्न अग बन गया था।

पण्डितजी की इस चर्या को देखकर आचार्य समन्तभद्र की निम्न पक्तिया याद आ जाती है –

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव.मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुने.।।

"मोह मिथ्यात्व से रहित गृहस्थ मोक्षमार्ग मे स्थित है परन्तु मोह मिथ्यात्व से सहित मुनि मोक्षमार्ग मे स्थित नहीं है। मोही मिथ्यादृष्टि मुनि की अपेक्षा मोह रहित सम्यग्दृष्टि गृहस्थ श्रेष्ठ है।" नि सदेह पण्डितजी का जीवन जल मे रहने वाले कमल पत्र की तरह था। जिस तरह जल मे रहते हुए भी कमलपत्र मे पानी ठहर नहीं पाता उसी तरह पण्डितजी भी गार्हस्थ जीवन मे रहते हुए भी उनके मन की इच्छाये सयमित होने से उन्हे सासारिक आसक्ति विचलित नहीं कर सकी। उनकी यह विशेषता थी कि यदि कोई कार्य करना है तो तन्मयता के साथ ही करना है। जहा पहुचने पर वहा से पुन लौटने का द्वार नहीं होता। तदनुसार वे अपना जीवन व्रतमय कर क्रमश एक–एक प्रतिमा को धारणकर निरन्तर मोक्षमार्ग की दूरी को पाटते आगे बढते रहे। अन्तत उन्होने अन्तिम दिनो मे घर मे आहार ग्रहण करना भी छोड दिया था और पूर्णरूपेण श्रेयोमार्ग का वरण कर मार्च 1991 मे सल्लेखनापूर्वक अपना देह त्याग दिया। पण्डितजी के जीवन के उस रूप को देखकर मुझे भर्तृहरि की निम्न पक्तिया स्मरण हो जाया करतीं थीं –

रत्नैर्यदाब्धेस्तु तुषनं न देवा भेजिरे भीम विषेण भीतम्।
सुधा बिना न प्रययुर्विराम न निश्चितार्था विरमन्ति धीराः।।

"रत्नो की प्राप्ति होने पर भी देवता सतुष्ट नहीं हुए और समुद्र मन्थन करते रहे। जब भयानक विष निकला तो भी उन्होने भयभीत होकर बिना अमृत प्राप्त किए विराम नहीं लिया। धीर पुरुष अपने लक्ष्य को सिद्ध किए बिना, मध्य मे नहीं छोडते।"

पाण्डित्य, पण्डित की कसौटी होती है। जिसमे पाण्डित्य नहीं वह पण्डिताभास है। अकेले ज्ञान के आधार पर किसी को पण्डित नहीं माना जा सकता। पाण्डित्य के लिए ज्ञान के साथ तदनुसार आचरण भी होना जरूरी है। पाण्डित्य के लिए दोनो ही सापेक्षिक अनिवार्यता है। निरपेक्ष रूप मे पण्डित का खण्डित स्वरूप ही प्रकट होता है। यदि ऐसा न होता तो सभी ज्ञानी विद्वान् पण्डित कहे जाते। वस्तुत प गोरेलालजी शास्त्री मे ज्ञान और चारित्र का अनूठा सगम था। उन्होने पाण्डित्य के नाम पर साहित्य सृजन का पुलिन्दा तो तैयार नहीं किया, परन्तु अपने जीवन मे अनुभूत प्रयोग के आधार पर उन्होने जो कुछ भी लिखा उसमे गागर मे सागर भर दिया। जैसा उन्होनें जीवन जिया, वैसा ही अपनी लेखनी से निबद्ध कर दिया। पण्डितजी न्याय, धर्म, दर्शन और आध्यात्म विषयक जटिलताओ को सहज ही सुलझा देते थे। गूढातिगूढ सिद्धान्तो को भी अपने विवेचन द्वारा वे बोधगम्य बना देते थे। उनके द्वारा भक्तिपरक, लोकोपकारक एव सामाजिक बुराईयो को दूर करने वाला जो साहित्य सृजन हुआ उनमे उपलब्ध साहित्य निम्न है –

सुमन संचय

प्रकाशक मोतीलाल पन्नालाल फौजदार चादेलीय, मु सेधपा (द्रोणगिरि) स्टेट बिजावर प्रथमावृत्ति वीर सवत् 2462। इस पुस्तिका मे अ, आ, इ, ई आदि वर्णमाला के क्रमानुसार 48 पद्य हैं। दोहा छन्द मे है। इनमे धर्म, दर्शन और लोक जीवन से सम्बन्धित बाते बतायी गईं है। बालक इससे सहज मे ही नैतिक शिक्षा को ग्रहण करते हुए वर्णमाला को तैयार कर सकते है। पण्डितजी ने इसकी उपयोगिता के विषय मे लिखा है –

लीजिए पुस्तक महोदय आप यह बिल्कुल नई।
नव–नव सुमन सचय सुखद शुभ माल यह गूथी गई।।
होय इसमे सार कुछ भी तो इसे अपनाईये।
उक्तिया इसकी हमेशा निज अमल मे लाईये।।

गारी संग्रह

यह पुस्तक पण्डितजी ने तब लिखी जब उनको यह अनुभव हुआ कि विभिन्न अवसरो पर महिलाओ द्वारा गाये जाने वाले गीतो मे, विशेष रूप से जिसे गारी कहते हैं, उसमे अनेक बुराईया और स्तरहीनता है, जिसका चारित्रिक दृष्टि से समाज पर बुरा प्रभाव पडता है, उस विकृति को दूर करने के उद्‌देश्य से उसी तर्ज पर तीर्थंकरो के चरित्र एव धार्मिक विषयवस्तु को लेकर गारी गीतो की रचना कर द्रोण प्रान्त की समाज मे एक स्वच्छ परम्परा स्थापित कर महत्वपूर्ण योगदान किया है।

बारह भावना

प्रकाशक जैन भ्रातृसघ, सागर प्रथमावृत्ति, वीराब्द 2474 कुल पुष्ठ 16। इसमे पण्डितजी के द्वारा बारह भावनाओ का काव्यमय सुन्दर विवेचन किया गया है। मुनि एव गृहस्थ इन बारह भावनाओ का चिन्तवन कर स्वकीय कर्मों की संवरपूर्वक निर्जरा करने योग्य अवस्था प्राप्त कर सकते हैं।

भक्ति पीयूष

प्रकाशक अजितकुमार जैन, द्रोणगिरि छतरपुर (म प्र) प्र स 1964 इसमे पण्डितजी द्वारा रचित भजनो का सग्रह है। विभिन्न तर्जों पर धार्मिक, राष्ट्रीय एव सामाजिक एकता को सुदृढ करने वाले 24 भजन उनके द्वारा स्व रचित है।

द्रोणगिरि अर्चना

प्रकाशक सिघई फौजदार मोतीलाल पन्नालाल जैन, चान्देलीय सेधपा द्रोणगिरि स्टेट बिजावर, प्र स वीर सम्वत् 2463। इसमे द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र से सम्वन्धित ऐतिहासिक पक्षो को उजागर करने वाले अडिल्ल अष्टक, ढार नन्दीश्वर, वसन्ततिलका, दोहा एव पद्धड़ी छन्दो मे उसकी महिमा मण्डित पूजन लिखी गई है।

उपर्युक्त रचनाओ के अतिरिक्त पण्डितजी ने रामविलास, नाममाला, मार्तण्ड – हस्तलिखित मासिक और क्षुल्लक चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ का सफल सम्पादन किया है। पण्डितजी की अनेक ऐसी भी रचनाए हैं, जो अप्रकाशित हैं।

इसप्रकार पण्डित गोरेलालजी शास्त्री ने सच्चे गुरु, योग्य अध्यापक कुशल प्रशासक एव नीतिज्ञ के रूप मे जिस तरह समाज मे नयी चेतना जागृत की, उसी तरह उन्होने साहित्य सृजन, धार्मिक एव आध्यात्म के क्षेत्र मे भी कवि, विद्वान्, पण्डित, धर्मनिष्ठ एव तपस्वी होने का भी परिचय दिया। नि सन्देह द्रोण प्रान्त की जैन पण्डित परम्परा मे पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के महनीय योगदान को कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकता हैं।

• विभागाध्यक्ष सस्कृत
राजकीय महामाया विद्यालय श्रावस्ती (उ प्र)

□□□

मेरे आद्य गुरु

— डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी

मेरे गुरुवर ब्र पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का जन्म 1908 मे पावनभूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि मे हुआ था। आप दो भाई और एक बहिन थे। आपके पिता का नाम श्री भूरेलालजी था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा द्रोणगिरि मे हुई तत्पश्चात् सादूमल, ललितपुर तथा इन्दौर के जैन विद्यालयो मे अपनी शिक्षा पूर्ण की। यह सौभाग्य की बात थी कि बुन्देलखण्ड के आध्यात्मिक सत पूज्यश्री गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज ने 1928 मे द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय की स्थापना की और उसके संचालन का भार आपके सबल कन्धो पर रखा। आप उत्साही, सुयोग्य विद्वान् तो थे ही, ज्ञान पिपासु होने के कारण ज्ञानार्जन कैसे किया जाता है — यह जानते थे। अत आपने बडी ही योग्यता और उत्साह के साथ विद्यालय का प्रधानाध्यापक पद संभालते हुए सस्था का सचालन किया। परिणामस्वरूप थोडे समय मे विद्यालय लोकप्रिय हो गया और शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रो की अच्छी खासी भीड लगने लगी। छात्रो के समुज्ज्वल भविष्य निर्माण के लिए आपने आगतुक छात्रो को आत्मीय स्नेह प्रदान किया। आप प्रात काल अपने घर से साढे चार बजे विद्यालय आकर छात्रो को जगाया करते थे, प्रार्थना कराते और फिर पढाई शुरु कर देते। धर्म के अतिरिक्त सस्कृत, व्याकरण—अनुवाद, न्याय, साहित्य आदि सभी विषय विभिन्न कक्षाओ मे पण्डितजी अकेले ही पढाते थे। दोपहर मे अध्यापन कार्य के अतिरिक्त सस्था एव क्षेत्र की देखभाल के साथ—साथ साढे दस बजे से पढाना प्रारम्भ कर देते। यह क्रम साय 4 बजे तक चलता। पुन सायकालीन भोजन के पश्चात् जब छात्रगण घूमकर आते तब सायकालीन प्रार्थना एव देवदर्शन के पश्चात् पुन पढाने बैठ जाते और रात्रि नौ बजे तक अध्यापन कार्य जारी रहता। छात्रो की दैनिक चर्या मे प्रात' व्यायाम एव स्नान करने के पश्चात् मन्दिर मे सामूहिक रूप से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, सामायिक एव स्वाध्याय नियमित रूप से करना उनकी जीवनचर्या का प्रमुख अग था। यहा से छुट्टियो मे जब भी छात्र घर जाते तब इनके सुसस्कारो को देखकर गाव के लोग प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। किसी विद्यार्थी को किसी विषय के पढने मे अगर कभी कोई कठिनाई हुई तो उसे उस विषय का अभ्यास कराने के लिए पण्डितजी इस तरह का प्रयोग करते कि जैसे वैद्य ज्वर ग्रस्त किसी बालक को बताशे मे रखकर कढवी गोली आसानी से खिलाने का प्रयत्न करता है। मुझे स्वय इस सस्था मे पढने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जब मुझसे लघु सिद्धान्त कौमुदी का पाठ नहीं चला तब उन्होने जैनेन्द्र व्याकरण पढाना प्रारम्भ किया और जब यह भी नहीं चली तब उसके स्थान पर कातत्र व्याकरण पढायी। इस अदला बदली की प्रक्रिया मे मेरी बुद्धि ठिकाने आ गयी और मुझे पुन लघु सिद्धान्त कौमुदी पढने का साहस पण्डितजी ने दिलाया। छात्रो को पाठ्येतर विभिन्न प्रवृत्तियो मे लगाना पण्डितजी आवश्यक समझते थे। इसलिए उन्होने सबसे पहले समाज सुधार की ओर छात्रो को उत्साहित किया।

बुन्देलखण्ड मे प्राय यह परम्परा है कि तीर्थक्षेत्रो को स्थानीय जैन समाज का प्रकाश स्तम्भ व मार्गदर्शक माना जाता है अर्थात् क्षेत्रो के माध्यम से ही समाज के समस्त रीति रिवाज, नियमोपनियम एव समस्त आपसी झगडो का निर्णय होता है। तीर्थ क्षेत्रीय कमेटी के निर्णय प्रान्तीय समाज को सदा से मान्य रहे हैं। पण्डितजी को किसी जगह पचायत मे बुलाया जाता तो वे वहा जाते। वहा जाकर स्थिति का गम्भीर

अध्ययन करते, जैन–जैनेतर समाज की सलाह लेते, वातावरण की स्थिति अवगत कर पक्षकारो के अभिप्रायो को परखते। पुन समस्या के उचित निर्णय को सबसे मान्य कराते और इसप्रकार क्षेत्रीय समस्याओ का निराकरण करते। समाज सुधार के कार्यों मे पण्डितजी अपने जीवन के अन्त तक सक्रिय रहे।

बचपन से ही पण्डितजी विद्यानुरागी रहे और यह क्रम उनके उदासीन जीवन मे भी चला। जैनागम का गहन अध्ययन और जैन तत्त्वज्ञान के अनुशीलन मे अन्य विद्वानो के साथ शास्त्रीय चर्चा मे पण्डितजी की सलग्नता देखकर आश्चर्य होता था। जैन तत्त्वज्ञान के महनीय ग्रन्थो– राजवार्तिक, प्रवचनसार, समयसार, पचास्तिकाय, तिलोयपण्णत्ति आदि का स्वाध्याय करना पण्डितजी की दिनचर्या मे रहा।

पण्डितजी की व्यक्तिगत चारित्राराधना स्वय समाज के लिए एक आदर्श रूप रही। कई वर्षों तक आपने पाक्षिक श्रावक का जीवन बिताया। प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास करना तथा प्रतिदिन प्रात काल 4 बजे से पहले उठकर सामायिक एव स्वाध्याय करना उनकी जीवनचर्या के प्रमुख अग रहे हैं। इससे अनेक जिज्ञासु त्यागीजनो को प्रेरणा मिली और उन्होने भी स्वाध्याय एव सामायिक मे अपना मन लगाया।

पण्डितजी के व्यक्तित्व पर जितना लिखा जावे उतना थोडा है। उनका सम्पूर्ण पौद्गलिक आकार मानस पटल पर घूम जाता है ज्ञानचक्षु के सम्मुख उनका स्मरण करते ही एक प्रशम मूर्ति के रूप मे सम्मुख आ जाता है। कितना सादा पहनावा, त्यागी तपस्वियो जैसा ही। किसी भी नवागन्तुक के प्रति पण्डितजी के हृदय मे जो उत्साह उमड़ पडता था वह देखते ही बनता था। बडी ही आत्मीयता से पण्डितजी उससे मिलते और उसकी अगवानी के लिए आतुर हो उठते। पण्डितजी के आनन से कितनी निश्छलता, सौम्यता व सरलता छलकती दिखाई पडती थी। सभा मे जब भी बोलने को वह खडे होते उनकी वाणी मे कोई अहकार नहीं होता। नम्रता की मूर्ति पण्डितजी सीधे साधे शब्दो मे अपनी बात कह जाने के आदी थे। जैनदर्शन के गहनतम तत्त्वो का विवेचन वे करते किन्तु विद्वत्ता के प्रति अहकार की कोई क्षीण रेखा भी उनके मुखारविन्द पर कभी दिखाई नहीं दी। सीधे सादे जीवन की तरह सीधे सादे शब्दो मे ही उनकी वाणी मुखरित होती रही। वर्तमान आधुनिकता को देखकर हृदय को बड़ी ठेस लगती है कि दुनिया मे अब इस तरह के लोग इतिहास की वस्तु बनते चले जा रहे हैं। दयामूर्ति पण्डित गोरेलालजी जैसे विद्वान् पण्डित एव आचार्य बुन्देलखण्ड के गौरव रहे हैं।

पण्डितजी मे बचपन से ही काव्य प्रतिभा प्रस्फुटित हुई थी। वास्तव मे वे एक प्रतिभाशाली आशुकवि थे। अध्यापन कार्य करते–करते जब भी पण्डितजी को बीच मे कुछ मौन होकर सोचने और उसी समय गुनगुनाते, गुनगुनाते हुये ही कुछ छन्दोबद्ध पंक्तियो को मधुर स्वर मे गाते और उन्हे कापी पर नोट करते, जब हम लोग देखते थे, ऐसा लगता था जैसे किसी कवि द्वारा पूर्व रचित कविता उन्हे कठस्थ हो और उन्होनें उसे ही लिख लिया हो। बैठे–बैठे ही कई छन्दो की रचना थोडे समय मे ही कर देने की अद्भुत क्षमता उनमे थी।

छात्रो को कविता और लेख लिखना तथा भाषण देना भी सिखाया करते थे तथा दूसरे ग्रामो मे या क्षेत्रो मे वार्षिक मेलो पर हम लोगो को भाषण आदि की तैयारी कराकर सस्था की ओर से भेजते थे। एक बार श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पपौराजी के मेले पर हम चार छह छात्रो को पण्डितजी ने भेजा। मुझे वहा

अनेक विद्यालयो के प्रतियोगी छात्रो के साथ भाषण देना था। भाषण तो पण्डितजी ने सामयिक स्थिति को परिलक्षित करते हुए लिखा ही था, हमे उसे रटवा भी दिया था। निर्भीकता के साथ कैसे बोलना यह गुरुमंत्र भी उन्होने दिया। मैं पपौराजी जैसे बडे विद्यालय के उच्च कक्षा वाले छात्रो के साथ प्रतियोगिता मे सम्मिलित हो गया। इसे मैं गुरु का आशीर्वाद ही मानता हूँ कि मै प्रतियोगिता मे प्रथम रहा और सर्वोत्तम पुरस्कार भी मुझे ही मिला। इसकी खबर हमारे मेला से लौटने से पहले ही पण्डितजी को मिल चुकी थी। वे बहुत प्रसन्न थे। उस दिन के बाद ऐसे अनेक अवसर आये जब पण्डितजी ने मुझे भाषण के लिए तैयारी कराई और सफलता दिलवाई। वक्तृत्वकला एव लेखनकला तथा कविता के क्षेत्र मे आज जो कुछ मेरे पास है सब उन्हीं के सत्प्रयत्नो का परिणाम है। सामाजिक क्षेत्र की तरह राजनैतिक क्षेत्र मे कार्य करने का प्रोत्साहन भी सर्वप्रथम उन्हीं से मिला। जब मै प्रयाग विश्वविद्यालय मे बी ए. कक्षा का छात्र था, तब उनका पत्र मिला कि 1952 के आम चुनाव मे यदि भाग लेना हो तो यह उचित अवसर है। पण्डित कुन्दनलालजी जनसघ से खडा होना चाहते है परन्तु क्षेत्रीय समाज का मन किसी काग्रेस प्रत्याशी को ही विजयी बनाने का हैं और सभी की इच्छा तुम्हारे समर्थन की है। परन्तु इस समय मेरी परीक्षा का अन्तिम वर्ष था अत मैंने सविनय क्षमा याचना कर ली। दो साल बाद जब मै अपनी शिक्षा पूरी कर चुका था तब इस क्षेत्र मे उपचुनाव की समस्या सामने आई। पण्डितजी की तरह अनेक मित्रो ने प्रोत्साहन दिया और मुझे बडामलहरा निर्वाचन क्षेत्र से काग्रेस का प्रत्याशी काग्रेस हाई कमान ने घोषित किया। पण्डितजी की प्रसन्नता की सीमा नहीं थी। उन्होने क्षेत्र कमेटी की मीटिग मे सभी सदस्यो से अपनी–अपनी जगह काम करने की प्रेरणा दी और स्वय भी गाव–गाव जाकर मुझे विजयी बनाने का पूरा–पूरा प्रयत्न किया। उनका शुभाशीर्वाद मुझे फलीभूत हुआ। सर्वप्रथम मै द्रोणगिरि पण्डितजी के चरणो मे उपस्थित हुआ। उस समय पण्डितजी के जो आशीर्वचन प्राप्त हुए वह आज भी स्मरणीय हैं।

मेरे पूज्य गुरुदेव इस ससार से 29 3 91 को विदा हो चुके है परन्तु हम लोगो के समक्ष एक आदर्श छोड गए है जिसपर चलकर हम जीवनभर अपना कल्याण कर सकेगे। उनकी पुण्य स्मृति मे हमारी विनम्र श्रद्धाजलि समर्पित है।

(डॉ नरेन्द्र विद्यार्थी अब दिवगत हो गये हैं। –सम्पादक)

• विद्यार्थी सदन
क्षत्रसाल चौराहा, छतरपुर (म प्र)

□□□

सन्त प्रवर पूज्य वर्णीजी एवं पं. गोरेलालजी

— डॉ. सुमतिप्रकाश

प्रातः स्मरणीय आध्यात्मिक सन्त पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी-ज्ञानसूर्य के रूप मे इस भारत वसुन्धरा पर अवतरित हुए उन्होने सैंकडो शिक्षण संस्थाओ की स्थापना मे अभूतपूर्व योगदान करने तथा आध्यात्मिक वातावरण बनाने मे अपनी सार्थक भूमिका निभायी। सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे भी पूज्य वर्णीजी के अवदान से सम्पूर्ण मानव समाज का हित हुआ है। पूज्य वर्णीजी को पावन भूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के प्रशान्त, रमणीक और स्वास्थ्यप्रद वातावरण ने आकर्षित किया तभी तो उन्होने बहुत समय तक यहा रहकर आत्म साधना की थी।

द्रोणगिरि प्रवास के समय पूज्य वर्णीजी की दृष्टि एक साधारण परिवार के बालक पर पड़ी जो शिक्षा की व्यवस्था न होने के कारण अनपढ स्थिति मे था। वर्णीजी को बालक गोरेलाल व्युत्पन्न और होनहार लगा। उनकी भावना हुई कि यह बालक पढ लिखकर क्षेत्र के विकास मे सहयोगी बने। वर्णीजी की भावना के अनुरूप बालक गोरेलाल को अध्ययन करने के सुयोग मिले और उसने साढूमल, ललितपुर तथा इन्दौर के विद्यालयो मे मनोयोगपूर्वक शास्त्री तक अध्ययन किया। जब गोरेलाल विद्वान् बनकर द्रोणगिरि वापिस आये तो पूज्य वर्णीजी को बडी प्रसन्नता हुई। इसी बीच पूज्य वर्णीजी से प्रान्त की समाज ने द्रोणगिरि क्षेत्र पर विद्यालय खोलने का प्रस्ताव किया। वर्णीजी ने विद्यालय की स्थापना के लिए प्रभावी प्रयत्न किया। वि स 1985 (सन् 1928) मे द्रोणगिरि मे श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत पाठशाला की स्थापना हुई और पण्डितश्री गोरेलालजी को उसके सचालन का दायित्व सौपा गया।

पण्डितजी वर्णीजी को अपना आदर्श मानते थे अत उनके प्रति पूर्ण आदर व श्रद्धाभाव से उन्होने वर्णीजी के आदेश को शिरोधार्य किया और विद्यालय का मनोयोगपूर्वक सचालन करते हुए वर्णीजी द्वारा जगाई शिक्षा ज्योति को बराबर प्रज्ज्वलित करने मे अपनी अहम् भूमिका निभायी तथा वर्णीजी ने सामाजिक उत्थान के लिए मानव सेवार्थ जो भी कार्य किए उनमे पण्डितजी ने भी पूर्ण सहयोग किया। पूज्य वर्णीजी जब इस क्षेत्र से विहार करते थे तो पण्डितजी को ही अपने कार्यों व गतिविधियो के सचालन का उत्तरदायित्व सौपते थे। इसप्रकार सच्चे अर्थों मे पूज्य वर्णीजी ने पण्डित गोरेलालजी को प्रान्त के विकास हेतु अपना वास्तविक प्रतिनिधि घोषित कर दिया था। वर्णीजी जब यहा रहते तो उनका प्रत्यक्ष सम्पर्क पण्डितजी से रहता ही था परन्तु दूर रहने पर वे पत्राचार से पण्डितजी को प्रेरित किया करते थे। पूज्य वर्णीजी और पण्डितजी के बीच हुए पत्राचार मे वर्णीजी ने पण्डितजी को प्रान्त का हितैषी और सिद्धक्षेत्र का विकासकर्ता बताते हुए उनके योगदान का उल्लेख बहुलता से किया है। समय--समय पर पण्डितजी वर्णीजी के वर्षायोगो मे पहुचकर उनके सान्निध्य का लाभ प्राप्त करते और उनकी वाणी का रसास्वादन करते थे। इतना ही नहीं वर्णीजी के आचरण से प्रेरणा प्राप्त कर उन्होंने अपने जीवन को भी सयमी बनाया था। पण्डितजी की सरलता, सादगी और विद्वत्ता पर पूज्य वर्णीजी का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता था। पण्डितजी अपनी उन्नति के लिए वर्णीजी को ही श्रेय देते थे और अन्त तक उन्हे आदर्श मार्गदर्शक मानते रहे। इसप्रकार हम पाते है कि पण्डितजी के प्रबल प्रेरणास्रोत वर्णीजी ही थे।

वर्णीजी द्वारा पण्डितजी के नाम लिखे गए पत्रो से जो प्रेरणा पण्डितजी को मिली तथा उनके

व्यक्तित्व विकास मे व समाज के उत्थान मे वे पत्र किसप्रकार मील के पत्थर सिद्ध हुए यह सब उजागर करने के लिए पूज्य वर्णीजी और पण्डितजी के अटूट सम्बन्धों की कहानी कहते हुए पत्रो का सार सक्षेप मे प्रस्तुत करना इस लेख का उद्देश्य है। आशा है समाज इससे अवश्य लाभान्वित होगी। मै मानता हूँ कि यह पत्राचार इतिहास की थाती बनकर भावी पीढी को मार्गदर्शन प्रदान कर सकेगा।

वर्णीजी द्वारा लिखे गए पत्रो का प्रारम्भ श्रीयुत् अथवा श्रीयुत् महाशय पण्डित गोरेलालजी योग्य कल्याण भाजन से ही होता है। समाचारो के बाद आ. शु चि गणेश .वर्णी या गणेशप्रसाद वर्णी से समाप्ति होती है। मेरे सामने उपलब्ध पत्रों का सार इसप्रकार है –

7 जुलाई 1945 का पत्र है जिसमे पण्डितजी को वर्णीजी ने लिखा – "पत्र आया सब प्रकार के समाचार जाने। आपकी बदौलत वहा की पाठशाला संचालित है और गुरुकुल की मूल जड आप हैं उसको सदा बढाने की कोशिश करो। माली बाग को जिस तरह सँभालता है। मै उसकी हमेशा उन्नति चाहता हूँ।"

इस पत्र मे वर्णीजी ने द्रोणगिरि पाठशाला के सचालन का श्रेय जहा पण्डितजी को दिया है वहीं इस पाठशाला की एक शाखा बडामलहरा मे जैन गुरुकुल के रूप मे सचालित करने का मूल कारण पण्डितजी को ही माना है।

एक पत्र 16 2 55 का है जिसमे वर्णीजी लिखते है – श्री पण्डित गोरेलालजी योग्य कल्याण भाजन हो। मेले का समाचार देना। आपके द्वारा हमको सर्व सुभीता रहता है इसमे आपकी प्रशसा नहीं करता केवल आपमे गुण है वह कहना पडता है।"

14 1 61 को ईशरी से लिखे पत्र मे पण्डितजी को लिखा है – "पत्र मिले समाचार जाने आपने मेले के समय बहुत पुरुषार्थ किया और उसका फल साक्षात् मिला। आगे की विद्यालय की योजना बनाई सो बहुत अच्छा है। हमे प्रसन्नता हुई। इसका श्रेय आपको ही है विद्यालय की उन्नति आगे वृद्धि को प्राप्त हो यही शुभकामना है।"

भादों वदी 11 के पत्र मे वर्णीजी लिखते है – "योग जैसे बने पाठशाला चलाई जावे वह प्रान्त बहुत पीछू है। हम वृद्ध हो गए हैं अत. कुछ कर नहीं सकते, परन्तु भावना रहती है।"

फाल्गुन वदी 2 सं 2010 सन् 1953 के पत्र मे वर्णीजी ने लिखा है "पत्र बालक का आया उसके सर्टिफिकेट भेजते है। अब के यहा बहुत यात्री आये यदि ये क्षेत्र द्रोणगिरि पर सहायता करे तब सर्व त्रुटि पूर्ण हो जाये परन्तु वह सुमति कहाँ। अस्तु, परन्तु आपका काम तो उन्हे साक्षर बनाने का है विशेष क्या लिखूँ ? अब तो आप ही रक्षा करना हम तो दूर हो गए परन्तु भावना उस प्रान्त के कल्याण की निरन्तर रहती है।"

इस पत्र मे पूज्य वर्णीजी ने जिस बालक का पत्र मे उल्लेख किया वह पण्डितजी के तृतीय पुत्र कमलकुमार ही है। सन् 1953 मे रतनचन्द बरायठा के साथ कमलकुमार श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय ईशरी मे पढने की इच्छा से गए थे। पूज्य वर्णीजी का उस समय वर्षायोग गया (बिहार) मे हो रहा था। पूज्य वर्णीजी के दर्शनार्थ जब कमलकुमार वहां गए तब वर्णीजी ने कहा, तुम व्यर्थ यहा आये हो, यहा की जलवायु अनुकूल नहीं है। अत घर (द्रोणगिरि) जाकर पिताजी (पं. गोरेलालजी) से पढकर संस्कृत प्रथमा की परीक्षा देकर बनारस चले जाना। इस पर कमलकुमार द्रोणगिरि वापिस आये और पिताजी के पास अध्ययन कर प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की। उनकी टी. सी का उल्लेख पूज्य वर्णीजी ने

किया है जो ईशरी से भिजवाई थी। पत्र मे शेष चर्चा द्रोणगिरि क्षेत्र से सम्बन्धित है।

13 8 58 के पत्र मे लिखा – "मेरा विश्वास है प्रान्त की जो उन्नति हुई उसका मूल कारण आप हैं। कमजोरी इतनी है जो कुछ भी उत्साह नहीं होता पर भावना बुरी नहीं है।"

दिनाक 10.11.58 के पत्र मे लिखा – "हमारा विश्वास है वहा की उन्नति मे आप मूल कारण हैं अब हमारा शरीर इस योग्य नहीं जो कुछ कर सके अत आने का उत्साह नहीं होता।"

7 दिसम्बर के पत्र मे लिखा – "आपके सद्भाव गुरुकुल की उन्नति करेगे। अब हम तो पके पात हैं। भावना आपके भावो की उन्नति हो, यही है। उस प्रान्त मे प्रभावना मे व्यय करते हैं। हमारी चिन्ता न करना जब विशेष आवश्यकता होगी आपको लिखेगे। अभी तो आवश्यकता नहीं। मेरा तो यह विश्वास है जो धर्म की सत्ता का अभाव नहीं होता, हम तो अकिंचित्कर हैं।"

आषाढ वदी 9 वि स 2001 (सन् 1944) के पत्र मे पूज्य वर्णीजी ने पण्डितजी को लिखा – "पर्व सानन्द से बीता होगा आप सानन्द से अध्ययन कराईये और एक बात हमारी अवश्य मानिये अभी बालक का विवाह 3 वर्ष न करिये अपने बालको को आशीर्वाद।"

उपरोक्त पत्र पण्डितजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री अजितकुमार के सम्बन्ध का है। पण्डितजी अजितकुमार की शादी करना चाहते थे लेकिन अजितकुमार नहीं। जब वर्णीजी को शादी करने का पता चला तो उन्होनें तुरन्त पण्डितजी को अभी शादी न करने का लिखा। पूज्य वर्णीजी के सम्बन्ध पण्डितजी के परिवार से थे जब भी वर्णीजी द्रोणगिरि आते पण्डितजी के यहा ही प्राय रुकते थे। उस समय वर्णीजी क्षुल्लक नहीं थे। परिवार के सभी सदस्यो से स्नेह रखते थे उनकी उन्नति चाहते थे। इसी कारण से ही उन्होने ज्येष्ठ पुत्र अजितकुमार की छोटी अवस्था मे शादी करने से पण्डितजी को मना कर दिया।

वर्णीजी ने कुछ पत्र पण्डितजी को छात्रो के सम्बन्ध मे भी लिखे हैं।

4 सितम्बर 1952 का पत्र जिसमे पण्डितजी को वर्णीजी ने लिखा – "बेंदा का छात्र यहां से 41 रुपये तो हमने दिलवाए बहुत ही दीन बना। अत जहा तक बने ऐसे छात्रो के साथ पढाई मे यथार्थ व्यवहार करना, 20 रुपए तो पुस्तको के वास्ते ले गया अत. हम तो बिल्कुल अपटु हैं। आपके द्वारा ही उस प्रान्त का उद्धार होगा। शिक्षा मे पीछे है। अत उदास न होना। आम के पेड़ पर ही पत्थर मारे जाते हैं। बबूल पर कोई नहीं मारता विशेष क्या लिखे आप तो नीति से काम लेना।"

इसी सन्दर्भ मे 7 अक्टूबर 1952 का भी एक पत्र है जिसमे लिखा है – "पाठशाला सेधपा का कार्य सुचारु रूप से चलता होगा। अपरच एक समाचार यह है कि जो रामलाल का भतीजा गुरुकुल में पढता है उसको कदापि वहा से निष्कासन नहीं करना। जो कुछ वह देवे ले लेना। वर्ष के अन्त मे जो कुछ आप लोग उस पर मासिक निर्णय करेगे। हम उसको कहीं से दिलवा देवेगे। मन्त्रीजी को कह देना।"

आषाढ वदी एकम् सवत् 2009 को लिखे पत्र मे लिखा है – "अपरच फूलचन्द को द्रोणगिरि पाठशाला मे बिना फीस के प्रवेश करा देना तथा अध्यापक से कह देना इस पर दृष्टि रखना गरीब है।" एक पत्र और है जिसमे वर्णीजी ने लिखा है – "अपरच फूलचन्द बल्द कपूरचन्द हटा वाला है वह बालक चतुर है तथा पढकर विद्वान् बन जावेगा। इसके वास्ते श्री लाला मक्खनलालजी दिल्ली वालों ने 5 रुपए मासिक छात्रवृत्ति देना स्वीकार किया है आप इसे शीघ्र ही द्रोणगिरि पाठशाला मे प्रवेश करा देना कोई

विलम्ब न करना।

"भादो सुदी 11 वि स 2009 का भी एक पत्र है जिसमे लिखा है — "अपरच कपूरचन्द लडके को भर्ती कर लेना गरीब है। यदि गरीबो को भर्ती न करोगे तब सिघईजी को अत्यन्त क्लेश होगा सो अच्छा नहीं। फिर वहा वाले मत्री जाने गभीरता से काम लो।"

छात्रो को लिखे उपरोक्त पत्रो से पूज्य वर्णीजी का छात्रो के प्रति स्नेह, उन्हे शिक्षित बनाने की प्रेरणा, गरीब छात्रो के प्रति सहानुभूति और उन्हे आर्थिक सहयोग कर योग्य बनाने की भावना प्रगट होती है।

भादो सुदी 11 के पत्र मे जिन सिघईजी का उल्लेख है। वे द्रोणगिरि विद्यालय के सभापति समाजभूषण सिघई कुन्दनलालजी है। पूज्य वर्णीजी का और सिघईजी का बहुत निकट का सम्बन्ध रहा है। सिघईजी दयालु थे उन्होने अपनी तरफ से सहायता देकर सैकडो छात्रो को द्रोणगिरि व सागर के विद्यालयो मे पढाया है।

पूज्य वर्णीजी ने पण्डितजी को छात्रो के सम्बन्ध मे तथा सस्था के सचालन के सम्बन्ध मे तो समय–समय पर पत्र लिखे ही है। पण्डितजी को स्वय भी आत्म कल्याण के लिए प्रेरणादायक पत्र लिखे है। फाल्गुन सुदी 3 स 2011 को एक पत्र लिखा — "जहा तक बने ज्ञान की वृद्धि के उपाय करना सुअवसर बार–बार नहीं मिलता आप भी आत्मीय शक्ति को देखकर दान करना।"

कार्तिक वदी 12 स 2012 के पत्र मे वर्णीजी ने लिखा है— "अब आप मे ही रहो सन्तान है इसकी ममता करना ज्ञानी के नहीं" आपकी आप जानो। आपने लिखा सो ठीक है परन्तु अब वार्धक्य के कारण उत्साह वैसा नहीं है।

दिनाक 30 9 55 के पत्र मे पण्डितजी को वर्णीजी ने लिखा — "जयन्ती उत्सव चतुर्थी को न होगा। प्रान्त द्रोणगिरि उत्तम है, परन्तु लोगो की दृष्टि अभी तक नहीं है। अब हमारा शरीर पक्वपात सदृश है। वहा पर क्षुल्लक चिदानन्दजी से हमारी इच्छाकार कहना। मार्ग तो मार्ग ही रहेगा। प्रभु वीर ने दिखाया है उनका ही उपदेश है। महावीर निर्दिष्ट पथ पर गमन करने से सिद्ध पद प्राप्ति हो सकती है। केवल कथन तो कथन ही है अब आप ब्रह्मचर्य मार्ग पर आओ"।

एक अन्य पत्र मे ईशरी से पूज्य वर्णीजी ने पण्डितजी को लिखा है "पत्र आया समाचार जाने। मेरा आपके विषय मे यह दृढतम विश्वास हो गया है कि आप जिस कार्य मे उपयोग लगावेगे आपकी तन्मयता उसे पूर्ण करेगी। यह तो लौकिक कार्य है आपकी तन्मयता एक दिन आपको इन ससार बन्धनो से विमुक्त कर निर्वाणदात्री होगी।"

उक्त पत्रो मे वर्णीजी ने पण्डितजी को आत्म कल्याण की ओर भी प्रेरित किया। जिसके कारण पण्डितजी ने शिक्षण कार्य करते हुये पूर्ण सयमित जीवन बिताया और पूज्य वर्णीजी के स्वर्गवास के पश्चात् 1964 मे द्रोणगिरि विद्यालय और क्षेत्र के कार्यो से अवकाश लेकर आत्म साधना मे लग गए। 1970 से तो गृहत्याग कर उदासीनाश्रम मे रहते हुए आत्म साधना के साथ आश्रम स्थित व्रतियो को शिक्षण–प्रवचन का लाभ देने लगे। 29 मार्च 1991 मे जब पण्डितजी का स्वर्गवास हुआ उस समय जो भी पण्डितजी की परिचर्या मे रहा है उन सबने उनके निराकुलतापूर्वक समाधिमरण के साथ शुद्ध और शान्त परिणामो से देह

त्याग करते देख सतोष धारण किया। निश्चित ही उनकी इसप्रकार देह त्याग के पीछे पूज्यवर्णीजी की प्रेरणा और सबल था जिसके आधार पर निश्चित रूप से पण्डितजी को सद्गति की प्राप्ति हुई होगी।

पूज्य वर्णीजी को सस्थाओ के निरन्तर चलते रहने की भावना सदैव रहती थी। सस्थाओ के सचालन के लिए पूज्य वर्णीजी जिसे योग्य समझते थे उसे रखते थे और सचालन क्षमता, योग्यता देख उसे सस्था हित मे बनाए रखते थे। पूज्य वर्णीजी द्रोणगिरि विद्यालय के सचालन मे पण्डितजी की क्षमता और योग्यता से प्रभावित रहे है। द्रोणगिरि विद्यालय के लिए पण्डितजी से योग्य व्यक्ति मिलना सभव नहीं था। एक बार कभी पण्डितजी ने अपने आर्थिक विकास की दृष्टि से द्रोणगिरि से अन्यत्र जाने की चर्चा की थी जब वर्णीजी को यह पता चला तुरन्त पण्डितजी को पत्र लिखा — "पत्र आया समाचार जाने आपका अनुभव अल्प है। अत अभी आप विकल्प त्यागिये वर्ष पूरा होने दीजिए। उस प्रान्त मे वही तो विद्यालय है तथा आप उस प्रान्त की व्यवस्था जानते है। मेरी समझ मे तो आता है वहा कोई व्यापार का सिलसिला कर लीजिए।" वर्णीजी के इस पत्र के बाद पण्डितजी ने अन्यत्र जाने का विचार त्यागा और अल्प वेतन मात्र मे विद्यालय और क्षेत्र का कार्य मनोयोग व समर्पण भाव से किया तथा परिवार के पोषण के लिए द्रोणगिरि मे क्षेत्र और विद्यालय के कार्यों से बचे समय का उपयोग व्यापार मे करने लगे। निश्चित रूप से यदि वर्णीजी के प्रति पण्डितजी की अटूट श्रद्धा और वर्णीजी का पण्डितजी के प्रति स्नेह और प्रेरणा न होती तथा प्रान्त के उत्थान, क्षेत्र के सरक्षण और विद्यालय की उन्नति की भावना न होती तो पण्डितजी द्रोणगिरि से बाहर जाकर धन कमाते और सम्पन्न परिवारो की गणना मे पण्डितजी का परिवार भी होता लेकिन पण्डितजी ने वर्णीजी की भावना का समादर किया और अर्थ की ओर महत्व नहीं दिया।

वर्णीजी दया और करुणा की साक्षात् मूर्ति थे उनका हृदय सहज ही बहुत कोमल, दयालु था तभी तो जो भी वर्णीजी के पास जाकर अपना दुखडा सुनाता, वर्णीजी भावुक हो जाते थे। वर्णीजी की इस सरलता के कारण वर्णीजी कई जगह छले भी गए, ऐसा उन्होने अपने पत्रो मे लिखा भी है। फिर भी वर्णीजी की सरलता बनी ही रही। सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि मे भरोसेलाल माली काम करता था। किसी उद्दण्डतावश उसे पृथक् कर दिया। वर्णीजी को जैसे ही पता चला तुरन्त उन्होने पण्डितजी को पत्र लिखा — "अपरच भरोसे माली को रख लेना गरीब आदमी है बहुत हो चुका आशा है आप इस बार ध्यान देकर उसे रख लेवेगे।"

पूज्य वर्णीजी असमय मे सयम धारण के पक्ष मे नहीं थे। प्राय बालक बचपन मे भावुक होते है और अज्ञानता मे तो और कुछ भी नहीं जान मुनियो, साधुओ को देख प्रभावित होते है और साधुओ की ओर से थोडा भी प्रश्रय त्यागी बनने का मिला तुरन्त तैयार हो जाते है। जिस सयम को ग्रहण कर रहे है उसको जानते हो या नहीं तथा भविष्य मे क्या स्थिति होगी इसका विचार न तो देने वाला करता है और न लेने वाला ही करता है। तभी तो सयम मार्ग से विचलित हो जाते है यहा तक कि मुनि पद धारण कर भी पदच्युत होते है और धर्म की तथा साधुजन की निन्दा के पात्र बनते है। ईसी सन्दर्भ मे 1943 का एक प्रकरण है। द्रोण प्रान्त का एक बालक किसी तरह जम्बूस्वामी की शरण मे आकर त्यागी बनने को तैयार हो गया। अवस्था छोटी थी घरवालो से पूछकर आया नहीं था। वर्णीजी को पता चला उन्होने बहुत समझाया परन्तु जब बालक नहीं माना तो पूज्य वर्णीजी ने 18 जुलाई 1943 को एक पत्र प्रण्डितजी को लिखा — "ककरवाहे का लडका श्री जम्बूस्वामी के पास है और आजकल वह यहीं है। चातुर्मास यहीं होगा। मैने उससे कहा घर से

भाग कर आया है जब हमने बडे जोर से डाटा तो वह बोला — हम तो ब्रह्मचारी होयगे। हम लोग नहीं होने देगे। आप एक पत्र उसके बाप को लिख दो एक पत्र यहा स्वामीजी को लिखो। किसी के बालक को बलात्कार त्यागी बनाना मार्गवृद्धि का कारण नहीं। पाठशाला उत्तम चलती होगी, ससार की दशा भयंकर है। उस पाठशाला की उन्नति आपके आधीन है। निवृत्त स्थान मे भी आगे का स्थान देकर उसकी रक्षा कर रखना निर्वाण इस पर्याय से करना। आशा है आप उस लडके को त्यागी वृत्ति से बचावेगे। अभी जिद है।" इस सन्दर्भ मे एक पत्र प शिखरचन्दजी, जो वर्णीजी के साथ ही रहते थे, का भी पण्डितजी के पास आया जिसमे उन्होनें लिखा — "इस समय वह बालक अननुभवी है तथापि मुनिराज की सगति से वह उसी मार्ग का अनुगामी बन रहा है। अत आप वहा आकर या उसके पिता आकर समझा बुझाकर ले जावे। हम लोगो की बात वह नहीं सुनता।"

द्रोणगिरि क्षेत्र प्रान्त मे जो भी सामाजिक उन्नति के लिए कार्य हो सामाजिक सगठन बने उस सभी के लिए पूज्य वर्णीजी पण्डितजी को ही मुख्य जड मानते थे। तभी तो उन्होने अपने पत्रो मे प्रान्त की उन्नति मे पण्डितजी को ही मूल कारण बताया है। पण्डितजी के तृतीय पुत्र जो स्वय सामाजिक कार्यो मे रुचि लेते हैं, ने जब 1961 मे प्रान्त के युवको की शक्ति को सगठित कर उसे समाजोत्थान मे लगाने के उद्देश्य से द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ की स्थापना के लिए पूज्य वर्णीजी से आशीर्वाद मागा तो उन्होने 17 जून 1961 को श्री कमलकुमारजी को पत्र लिखा — "आज तारीख 17 को पत्र मिला आपके सम्मेलन की स्थापना शुभ बेला मे हो गई होगी नवयुवक कार्यकर्ताओ का योग्य सुघटन भी होगा। आपके उद्देश्यो की पूर्ण सफलता हो। उस प्रान्त मे ग्राम—ग्राम मे धर्म शिक्षा के लिए पाठशालाए स्थापित की जाए तथा जो सस्थाए चल रहीं है उन सबका निरीक्षण किया जावे। सुचारु रूप से वे चलती रहे ऐसी व्यवस्था बना दी जावे। हमारा शरीर अति जर्जर, दुर्बल होता जा रहा है अत इसका मुख्य सस्थापकत्व प गोरेलालजी व दुलीचन्दजी बाजना सभाले।"

उपरोक्त पत्रो से पता चलता है कि पूज्य वर्णीजी का प जी से कैसा सम्बन्ध रहा है। द्रोणगिरि विद्यालय तथा उससे सबधित सस्थाओ के सचालन मे पण्डितजी की अनिवार्यता का अनुभव करते हुए समय—समय पर पत्रो द्वारा उन्हे मार्गदर्शन देते रहे। प जी वर्णीजी की दृष्टि मे द्रोण प्रान्त के उत्कर्ष के लिए महत्वपूर्ण व्यक्ति रहे है। इसी से उन्होने अपने पत्रो मे विद्यालय की मूल जड, विद्यालय एव प्रान्त की उन्नति आपके आधीन है। आपकी बदौलत वहा की सस्था सचालित है आदि शब्दो का उल्लेख किया है। निश्चित रूप से प जी ने जिस लगन, समर्पण और अपनत्व के आधार पर क्षेत्र, विद्यालय एव प्रान्त की सेवा की है वह किसी से छिपी नहीं है यही कारण रहा है कि प जी को प्रान्त मे सभी जगह आदर मिला। आज द्रोण प्रान्त मे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो प जी की तरह सर्वमान्य हो। प जी ऐसे व्यक्तियो मे रहे है जिन्होनें समाज का तन—मन—धन से उपकार किया है। प जी ने समाज को दिया ही दिया है। उसके प्रतिफल मे कुछ चाहा नहीं है। यह है उनकी निस्वार्थ सेवा भावना जिसके कारण जन—जन के बने रहे है पण्डितजी।

• प्राध्यापक वाणिज्य विभाग
स्वशासी महाराजा महाविद्यालय
छत्रसाल मार्ग, छतरपुर (म प्र)

□□□

क्षुल्लक चिदानन्दजी एवं पण्डित गोरेलालजी

— *कपूरचन्द्र जैन*

आध्यात्मिक सन्त प्रवर पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी के बाद बुन्देलखण्ड मे उनके उत्तराधिकारी का दायित्व पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी ने ही संभाला और पूज्य वर्णीजी द्वारा सचालित शिक्षा मिशन को आगे बढाने मे वे निरन्तर क्रियाशील रहे।

क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज का प्रारम्भिक नाम दामोदर था। इनका जन्म द्रोणगिरि अचल के एक ग्राम धनगुवा मे वि स. 1958 मे हुआ था। 3 वर्ष की अल्पआयु मे पिताजी की छत्रछाया आपके ऊपर से उठ गई थी अत इनका लालन पालन माताजी ने ही किया। इन्होने स्टेट द्वारा सचालित प्राथमिक शाला मे प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर छोटे मे ही धन्धा शुरु कर दिया था और जन्मभूमि छोडकर पास के ग्राम दरगुवा मे रहने लगे थे। इनका मन व्यापार धन्धा मे नहीं लगता था अत उसमे लाभ की बजाय हानि ही होती थी। इसकारण इन्हे दरगुवा को छोडना पडा। वहा से इन्दौर चले गए। धन्धा प्रारम्भ किया लेकिन भाग्य मे तो धन्धे मे घाटा ही घाटा था अन्तत व्यापार से उदास होकर ब्रह्मचारिणी भूरीबाईजी के सम्पर्क मे आए और साधना का मार्ग अपना लिया। 17 वर्ष की अवस्था मे ही ये गृहत्यागी बन गए थे।

इन्होने कुछ समय तक अनाथालय बडनगर एव श्री गणेश दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय सागर मे गृह प्रबन्धक के रूप मे अपनी सेवाये प्रदान की थीं। सिद्धक्षेत्र गिरनारजी मे मुनीमी का कार्य छोड पावनतीर्थ सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि मे वापिस आ गए। यहा इनका सम्पर्क पूज्य वर्णीजी से हुआ और वे उनके साथ हो लिए। पूज्य वर्णीजी ने द्रोणगिरि मे जैन पाठशाला की स्थापना की तो इन्होनें इस कार्य मे वर्णीजी का पूर्ण सहयोग किया था। अभी तक ये ब्र चिदानन्दजी ही थे। श्री पण्डित गोरेलालजी से प्रभावित होकर ये भी द्रोणगिरि विद्यालय के सचालन मे पण्डितजी का सहयोग करने लगे। छात्रावास की व्यवस्था देखना और छात्रो की दैनिक चर्या का ध्यान रखना तथा यथासभव पढाने मे सहयोग करना इनकी दिनचर्या मे शामिल हो गया। यहा इन्होने खुद भी पण्डित गोरेलालजी से धार्मिक ग्रन्थो के साथ ही सस्कृत व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की।

इन्होने वि स 2004 मे पूज्य वर्णीजी से हस्तिनापुर के मेला मे क्षुल्लक के व्रत ग्रहण कर लिए थे। ज्ञानपिपासु तो यह निरन्तर रहे। क्षुल्लक होकर भी इन्होने ज्ञान की प्यास बुझाने के लिए कुछ वर्षों तक सोनगढ मे भी तत्त्वाभ्यास किया।

जैन साहित्य प्रचार की भावना से ओतप्रोत होकर इन्होनें देहली मे सस्ती जैन ग्रन्थमाला की स्थापना की। जहा से अनेक ग्रन्थ व शास्त्र प्रकाशित कराकर लागत मूल्य मे ही जैन मन्दिरो, स्वाध्याय प्रेमियो, साधुओ एव छात्रो को उपलब्ध कराये।

श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि मे सन् 1955 मे श्रीमज्जिनेन्द्र पचकल्याणक प्रतिष्ठा एव गजरथ महोत्सव सम्पन्न हुआ उस समय ये द्रोणगिरि आ गए थे तब से इन्होने द्रोणगिरि के विकास और प्रान्त मे जगह–जगह शिक्षण सस्थाओ के सचालन मे अपना योगदान दिया। पूज्य क्षुल्लकजी जिस ग्राम मे जाते थे पहला कार्य समाज मे बच्चो को इकट्ठा कर उन्हे णमोकार मन्त्र, चौबीस तीर्थंकरो के नाम, चिन्ह एव दर्शन करने की विधि सिखाना होता था। जीवन चलता रहे, साधना निराकुलतापूर्वक होती रहे और सफलतापूर्वक शिक्षा का प्रचार होता रहे इस निमित्त पूज्य क्षुल्लकजी रूखा सूखा बिना स्वाद का भोजन ग्रहण कर पूरा समय पढाने मे लगाते थे। पूज्य क्षुल्लकजी को चलता फिरता शिक्षालय माना जाता था।

पूज्य वर्णीजी के बाद प्रान्त मे जगह--जगह छोटी--छोटी ग्राम स्तर की धार्मिक पाठशालाओं का सचालन करना इनका प्रमुख कार्य था।

शिक्षा के साथ ही इन्होने त्याग मार्ग की ओर भी व्यक्तियो को आकर्षित किया और इस निमित्त प्राय तीर्थक्षेत्रो पर उदासीन आश्रमो की स्थापना की। जिनमे वि सं 2012 में स्थापित श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम द्रोणगिरि भी महत्वपूर्ण है। द्रोणगिरि के इस आश्रम को स्थायित्व प्रदान करने के लिए इन्होने स्वतत्र भवन का निर्माण, स्थायी ध्रुवफण्ड की स्थापना, व्यवस्था हेतु स्वतत्र व्यवस्था समिति का गठन एव ट्रस्ट का निर्माण आदि कार्य किए। इसमे इन्होनें पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का सहयोग लिया। ब्र दयासिन्धुजी को आश्रम मे लाकर उन्हे ही आश्रम की गतिविधियो को सुचारुरूप से चलाते रहने का दायित्व सौपा।

श्री पण्डित गोरेलालजी को सयम की ओर लाने मे आपकी भी सतत् प्रेरणा रही है। जिसके कारण पण्डितजी ने अपने जीवन का उपयोग इस तरफ लगाया था। शुद्ध भोजन तो वे शुरु से ही करते थे, अष्टमी--चतुर्दशी का उपवास करना भी उन्होने सन् 1950 से ही प्रारम्भ कर दिया था। 1964 में क्षेत्र एव विद्यालय की सेवा से अवकाश लेने के बाद तो पण्डितजी ने अपनी उदासीनवृत्ति मे वृद्धि करते हुए 1970 मे पूर्णरूप से उदासीनाश्रम मे ही रहना प्रारम्भ कर दिया वहॉ वे अन्त तक रहे।

निश्चित रूप से पूज्य वर्णीजी के बाद प्रान्त मे जन जागरण का कार्य क्षुल्लकजी ने ही किया है उनके उपकारो से प्रान्त उपकृत है। पण्डितजी भी क्षुल्लकजी को वर्णीजी का पूरक मानते हुए उन्हे अपना आदर्श मानते थे। अल्प बीमारी मे ही पूज्य क्षुल्लकजी का स्वर्गवास 5 मार्च 1970 को जब पथरिया मे हुआ तो यह समाचार सुनकर सारा प्रान्त स्तब्ध रह गया। आश्रमवासी शोकाकुल हो गए। पण्डितजी पर भी क्षुल्लकजी के स्वर्गवास का प्रभाव पडा और वे अत्यन्त विह्वल हो गए। दिनाक 29 मार्च 1970 को उदासीनाश्रम द्रोणगिरि मे श्रद्धाजलि आयोजन हुआ। जिसमे प्रान्त भर की समाज ने उपस्थित होकर पूज्य क्षुल्लकजी के प्रति अपने अपार आदर भाव, श्रद्धा सुमन व्यक्त किये। इस अवसर पर पण्डितजी ने भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा--

हे सन्त तुम्हारे बिना प्रान्त, नेता विहीन हो गया क्लान्त।
वह तुम जैसी क्षमता महान् है नहीं किसी मे दृश्यमान्।।
हे तप· पूत हे गुण निधान, सच्चिदानन्द रस किया पान।
तज जीर्ण देह पहुँचे सुधाम, स्वीकार करो अन्तिम प्रणाम।।

पूज्य क्षुल्लकजी के स्वर्गवास के बाद आश्रम की जो गतिविधिया थीं उनका दायित्व पण्डितजी ने सभाल लिया और पूर्ण समर्पण भाव से आश्रम के विकास मे अपना योगदान दिया। पण्डितजी ने पूज्य क्षुल्लकजी द्वारा प्रारम्भ किए गए मिशन को भी सचालित करते हुए समाज के उन्नयन मे योगदान दिया और सही अर्थो मे पूज्य क्षुल्लकजी के अधूरे कार्यों को पूर्ण निष्ठा के साथ सम्पादित कर क्षुल्लकजी की प्रेरणाओ का अनुकरण करते हुए 29 मार्च 1991 को स्वर्गवासी हो गए। अब मात्र क्षुल्लकजी एव पण्डितजी की यशोगाथा ही शेष हैं उनके द्वारा किए गए कार्य समाज को मार्गदर्शक के रूप मे प्रेरित करते रहेगे। यह मेरा सौभाग्य रहा है कि पूज्य क्षुल्लकजी के दर्शनो, प्रवचनो एव आहार देने का लाभ मुझे मिला तथा पूज्य पण्डितजी तो मेरे गुरु होने के कारण मेरे जीवन निर्माता ही रहे हैं। मैं दोनों ही महापुरुषो की चरण वन्दना से धन्य हूँ।

• वरद्वाहा, छतरपुर (म प्र)

❑❑❑

पण्डितजी के शिक्षा गुरु : पं. शीलचन्दजी न्यायतीर्थ

– पण्डित दयाचन्द शास्त्री

विद्वत् प्रवर, समाजसेवी पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के गुरुओ मे श्री पं. शीलचन्दजी न्यायतीर्थ साढूमल का भी विशेष स्थान रहा है। वीर प्रसवा, रत्नगर्भा बुन्देली वसुन्धरा हमेशा से वीरो, विद्वानो एव आदर्श महापुरुषो से मण्डित रही है। जिन्होनें अपने महान् एव पुनीत कृत्यो से भारत भूमि के मस्तक को गौरवान्वित किया है। ललितपुर जिले का साढूमल ग्राम जिसे विद्वानो की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। यह पाच उत्तुग शिखरो से युक्त जिनालयो के कारण अपना विशेष स्थान रखता है विद्वानो की परम्परा को अक्षुण्ण रखने मे विद्वानो के जनक श्रीमान् प शीलचन्दजी न्यायतीर्थ का अपना विशेष स्थान है।

श्री सिघई परमाननदजी धार्मिक प्रवृत्ति एव सद्‌विचारो के श्रावक थे। इनके यहां मगसिर कृष्ण 6 वि स 1958 को पण्डित शीलचन्दजी का जन्म हुआ था। ग्राम के स्कूल मे प्रारम्भिक शिक्षा के बाद सर सेठ हुकमचन्द जैन सस्कृत महाविद्यालय मे प्रवेश लेकर इन्होने समाज के मूर्धन्य विद्वान् श्रीमान् प जीवन्धरजी के सरक्षण मे धर्म, सस्कृत, न्याय आदि विषयो का अध्ययन लगन और परिश्रम से करते हुए न्यायतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

इन्होने ललितपुर, पपौराजी एव सिवनी मे अध्यापन कार्य किया था, और सर्वत्र समाज से उन्हे पूर्ण सम्मान मिला था किन्तु अपने जन्म स्थान के प्रति असीम प्रेम होने के कारण सिवनी से साढूमल वापिस आ गए और समाज तथा विद्यालय की सचालन समिति के विशेष आग्रह पर 12 अगस्त 1930 से श्री महावीर दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय मे प्रधानाध्यापक के रूप मे अपना योगदान देकर लगातार अपने श्रम से विद्यालय को सिचित किया। इन्होने छात्रो को लाड प्यार तथा डॉट–डपटकर भी अनुशासन बनाते हुए योग्य बनाया और समाज व देश के लिए उच्चकोटि के विद्वान् दिए। पण्डितजी ने 30 जून 1974 को अवकाश ग्रहण कर लिया था लेकिन उनका सम्बन्ध जीवन के अन्तिम क्षण तक विद्यालय से बना रहा।

श्री प शीलचन्दजी अपने परिवार मे बडे होने के कारण दाऊ कहलाते थे। ग्रामवासी भी उन्हे दाऊ ही कहते थे। "दाऊ" ज्येष्ठता के साथ गभीरता, सरलता, करुणा और दया की मूर्ति थे। परोपकारी और न्यायप्रिय होने के कारण ग्राम मे ही नहीं पूरे प्रान्त मे उनकी प्रतिष्ठा थी।

गाव मे कोई वैद्य न होने के कारण पण्डितजी ने परोपकार की भावना से प्रेरित होकर जितना ज्ञान था उसके आधार पर होम्योपैथिक एव आयुर्वेदिक दवाओ द्वारा बीमार जनता की खूब सेवा की। वे रोगियो को नि शुल्क दवाये अपनी ओर से वितरित करते थे। इस पुनीत सेवा कार्य मे दाऊ के लिए अमीर–गरीब, उच्च–निम्न वर्ग का भेदभाव नहीं था। जिसतरह सूरज–चाद की रोशनी बिना भेदभाव के सभी के लिए बराबर मिलती है उसीप्रकार दाऊ की सेवाओ का लाभ सभी वर्ग के लोगो को मिलता था।

पण्डितजी की लोकप्रियता का एक नमूना यह है कि जब पचायती शासन आया तो ग्राम–ग्राम मे सरपचो का चुनाव हुआ था लेकिन साढूमल मे ग्रामवासियो ने एक स्वर से दाऊ को ही सरपच चुनने का निर्णय लिया। लगातार 15 वर्ष तक वे निर्विरोध सरपच रहते हुए ग्राम के विकास मे सलग्न रहे। दाऊ के सरपच रहते ग्राम का कोई भी व्यक्ति शासन के अधिकारियो से अपने हितो के लिए परेशान नहीं रहा। ग्राम की कोई भी पचायत दाऊ के बिना नहीं हुई। दाऊ की न्यायप्रियता के कारण कोई भी व्यक्ति पीडित नहीं हो

पाया। जनता का शोषण नहीं हो पाया। गाव वालो के किसी भी प्रकार के विवाद का समाधान दाऊ के पास ही होता था।

दाऊ का जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण था। यथासभव सयम का पालन भी जीवन मे रहा। सादा जीवन उच्च विचारो के पोषक दाऊ ने समाज सुधार की दृष्टि से कई कुरीतियो—कुरूढियो का बहिष्कार किया और उन्हे उखाडने मे अपनी भूमिका निभाई। 1974 में लकवे से पीडित होने के कारण वे शरीर से कमजोर हो गए थे। कुछ ठीक भी हुए और मई 1978 मे इनका स्वर्गवास हो गया। । ग्राम का ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जो न रोया हो। जिस समय दाऊ की अन्तिम यात्रा निकली तब गलियो मे अपार भीड थी। महिलाओ ने अपने—अपने दरवाजो मे रोते बिलखते दाऊ के अन्तिम दर्शन किए। यह दाऊ की लोकप्रियता, परोपकारी कर्मों व निस्वार्थ सेवी न्यायप्रियता का ही परिणाम है। जिस समय चिता मे अग्नि प्रज्वलित की गई तो अपार जन समूह ने पण्डितजी (अपने दाऊ) के पुण्य कर्मों का स्मरण किया और अश्रुपूर्ण नेत्रो से उन्हे विदाई दी थी। मै भी उनमे एक था अब फिर उन्हे शतश नमन करता हूँ।

• अजयगढ, पन्ना (म प्र)

□□□

“ पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः।। ”

अर्थ : मेरा पक्षपात परक राग भाव भगवान महावीर के बारे में है और न ही कपिल आदि धर्म प्रवर्तकों में द्वेषभाव है। जिनके वचन युक्तिसिद्ध हैं हमें उनका ही परिग्रहण करना चाहिये।

पण्डितजी की लम्बी शिष्य परम्परा

— रतनचन्द जैन

पावनभूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पर पूज्य वर्णीजी द्वारा सस्थापित श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत पाठशाला पूज्य पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के सतत् श्रम, साधना और समर्पण का प्रतीक रही है। उन्होने स्थापना से ही सन् 1928 से 1964 तक अनवरत अध्यापन किया और बालको को शिक्षित कर उनके जीवन का निर्माण किया है। पण्डितजी की शिष्य परम्परा बहुत लम्बी है। यहा हम उन यशस्वी अध्ययन करने वाले कतिपय शिष्यो का परिचय दे रहे है जिन्होने समाज व राष्ट्र की उन्नति मे योगदान देते हुए साहित्य एव शिक्षा जगत् मे उल्लेखनीय कार्य किए, व्यवसाय तथा समाज सेवा जैसे सार्वजनिक क्षेत्र मे अपने शिक्षा गुरु पूज्य पण्डित गोरेलालजी शास्त्री को गौरवान्वित किया है।

श्री सिंघई जवाहरलालजी, बड़ामलहरा

विद्यालय की स्थापना से पूज्य पण्डितजी की शिष्य मण्डली मे प्रथम शिष्य होने का गौरव प्राप्त कर अपने भविष्य का निर्माण करने वाले सिघई जवाहरलालजी, बडामलहरा एक सफल समाजसेवी, कुशल वैद्य ओर व्यवसायी हैं। आप सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि एव विद्यालय की प्रबन्ध व्यवस्था मे कार्य कर रहे हैं। वर्तमान मे श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि ट्रस्ट के ट्रस्टी है। बडामलहरा मे भी सामाजिक, सहकारी, सार्वजनिक हित की सस्थाओ से जुडे है। आप अपनी इस प्रगति का श्रेय पूज्य पण्डित गोरेलालजी को ही देते हैं।

श्री बाबूलालजी मोदी, बड़ामलहरा

पण्डितजी के प्रारम्भिक शिष्यो मे आपका नाम उल्लेखनीय है। श्री मोदीजी अपनी शिक्षा–दीक्षा के लिए पूज्य पण्डित गोरेलालजी शास्त्री को ही प्रमुख मानते है। शिक्षा प्राप्ति के बाद इन्होनें अपने पैतृक वस्त्र व्यवसाय को सभाला और सफल हुए। इनकी रुचि सदैव समाज सेवा जैसे सार्वजनिक कार्यों मे रही है। यह श्री सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि, विद्यालय एव गुरुकुल मलहरा के बहुत समय तक उपमत्री रहे हैं। सहकारी आन्दोलन मे उनका योगदान सराहनीय रहा है। स्वदेशी वस्त्रो का ही प्रयोग करना इनकी विशेषता रही तथा राजनैतिक क्षेत्र मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस से प्रारम्भ से ही जुडे रहे। वर्तमान मे इनका जीवन धार्मिक वातावरण मे व्यतीत हो रहा है। ये व्यवहार मे अति मधुर, सेवाभावी होने के कारण प्रतिष्ठित है।

डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी, छतरपुर

जीवन पर्यन्त विद्यार्थी उपनाम से सार्वजनिक कार्यकर्ता के रूप मे जाने जाते रहे श्री नरेन्द्र विद्यार्थी पूज्य पण्डित गोरेलालजी शास्त्री को अन्त समय तक अपनी प्रगति के लिए पण्डितजी का उपकार स्वीकार करते रहे हैं। द्रोणगिरि विद्यालय मे अध्ययन करने के बाद इन्होनें सागर, वाराणसी, इलाहाबाद मे अध्ययन किया। अध्ययन काल मे ही स्वतत्रता आन्दोलन मे भाग लिया। सन् 1954 मे जब तत्कालीन विन्ध्य प्रदेश मे उपचुनाव हुआ तो उसमे बडामलहरा विधानसभा क्षेत्र से चुनाव जीतकर यह 1957 तक विन्ध्य एवं मध्य प्रदेश विधान सभा के सदस्य रहे है। अपने कार्यकाल मे इन्होने अनेको सार्वजनिक कार्यकर क्षेत्र को लाभान्वित किया। 1955 मे जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय का बडामलहरा मे शुभारम्भ इन्होने कराया

तथा 1963 से 65 तक वे इसके कुशल प्राचार्य भी रहे। साहित्य के क्षेत्र में भी इनका योगदान कभी नहीं भुलाया जा सकता। "अछूत कोई नहीं" नामक इनकी रचना तो बहुत ही लोकप्रिय रही। जिस पर शासन से पुरस्कार भी इन्हे मिला। वर्णी साहित्य तो आपकी ही देन है। कुशल वक्ता, सार्वजनिक कार्यकर्ता, साहित्यसेवी डॉ. विद्यार्थीजी ने जब भी कोई महत्वपूर्ण कार्य करने की सोची सबसे पहले सफलता हेतु अपने गुरु पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के पास पहुँचकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। उनकी तीव्र भावना पण्डितजी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने की रही लेकिन अपनी अस्वस्थता के कारण वे यह काम कर नहीं पाये। 1991 मे पूज्य पण्डितजी के निधन से इन्हे अपार दु ख हुआ। विद्यार्थीजी सतत जागरुक कार्यकर्ताओ मे अग्रणी रहे हैं। जिसके कारण उन्हें महत्वपूर्ण पदो पर आसीन होने का गौरव भी प्राप्त हुआ है। आपका स्वर्गवास मई 1992 मे हुआ।

श्री लक्ष्मणप्रसादजी प्रशान्त, सागर

द्रोणगिरि अचल के ग्राम धनगुवा के निवासी श्री लक्ष्मणप्रसादजी पण्डितजी के यशस्वी छात्रो मे हैं। पूज्य वर्णीजी की प्रेरणा से द्रोणगिरि विद्यालय में प्रवेश लेकर इन्होंने संस्कृत एवं धर्मग्रन्थों का अध्ययन कर सस्कृत प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की और गणेश दिगम्बर जैन सस्कृत महाविद्यालय सागर से शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्य रत्न की उपाधि प्राप्त की तथा इसी महाविद्यालय मे कुछ वर्षों तक सेवा करने के पश्चात् शासकीय सेवा मे चले गए। वर्तमान मे आप अवकाश प्राप्त हैं। आप एक कुशल संगठक हैं। काव्य प्रतिभा के कारण इन्होने गीत लिखे हैं। "झरना" गीत काव्य पर इन्हे मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य परिषद् द्वारा पुरस्कार भी मिला। "प्रशान्त गीत" नाम से एक सकलन प्रान्तीय नवयुवक सेवा संघ ने प्रकाशित किया है। अनेको अप्रकाशित रचनाए भी हैं। इन्होंने भ्रातृसघ की स्थापना की और बहुत समय तक इसके मंत्री रहे तथा द्रोण प्रान्तीय सेवा परिषद् की स्थापना कर उसके मंत्री होकर समाजसेवा के क्षेत्र मे कई उल्लेखनीय कार्य किए। यह कुशल लेखक, वक्ता एवं प्रवचनकार हैं। 75 वर्ष से अधिक उम्र के होने पर भी इनमे युवको जैसी स्फूर्ति आज भी है। स्वाभिमान के धनी प्रशान्तजी अत्यन्त सरल, विनम्र और परोपकारी सुजन हैं।

श्री बालचन्दजी, नवापारा राजिम

गौना निवासी श्री बालचन्दजी द्रोणगिरि विद्यालय मे पूज्य पण्डित गोरेलालजी के मेधावी शिष्य रहे हैं। अध्ययन समाप्ति के बाद अपनी जन्मभूमि छोड़कर नवापारा (राजिम) मे स्थायी रूप से रहने लगे तथा वहा भी समाज सेवा मे संलग्न रहे। बच्चो को धार्मिक शिक्षा देना, प्रवचन करना इनका प्रतिदिन का कार्य था। इनका अपना व्यवसाय खूब फला फूला। सराफी के व्यवसाय के साथ इन्होंने बर्तन भण्डार, तेल मिल, राइस मिल भी प्रारम्भ किए। व्यवसाय मे व्यस्त रहते हुए भी जो समय मिलता उसमे साहित्य सेवा मे लगे रहे इनके द्वारा लिखी मोक्षशास्त्र की टीका पं मोहनलालजी शास्त्री जबलपुर ने प्रकाशित की है। समाजोपयोगी लेख भी समय–समय पर लिखते रहे हैं। यह अत्यन्त मिलनसार, कर्तव्य निष्ठ, समाजसेवी थे। इनका स्वर्गवास मई 1996 मे अत्यन्त शान्त परिणामो के साथ हुआ।

श्री वैद्य दामोदरचन्द, घुवारा

घुवारा निवासी श्री दामोदरजी ने पूज्य पण्डित गोरेलालजी शास्त्री से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद वैद्यक का कार्य प्रारम्भ किया और स्वयं के अध्ययन से ही कुशल वैद्य बन गए। छात्र जीवन मे ही

इन्होनें कविता करना प्रारम्भ कर दिया था। नीतिशतक, हीरो का खजाना,सन्तवर्णी काव्य इनकी लोकप्रिय रचनाए हैं। सन्तवर्णी काव्य का सम्पादन, सशोधन इन्होनें पूज्य पण्डितजी से कराया था। मोक्षमार्ग प्रकाशक को भी काव्य के रूप मे लिखना चालू किया था कि अचानक इनका स्वर्गवास हो गया। यह पण्डितजी के प्रमुख शिष्य तो थे ही उनके चिकित्सक भी थे। जब भी पण्डितजी अस्वस्थ होते थे इनकी दवा ही उन्हे लाभप्रद होती थी। पण्डितजी के अन्तिम समय में भी इन्होनें उनकी परिचर्या की थी। उनके स्वर्गवास के बाद इन्होने ही पण्डितजी का स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित करने का प्रस्ताव रखा था। द्रोणगिरि क्षेत्र एव विद्यालय के यह उपमत्री भी रहे। घुवारा पाठशाला के भी लम्बे समय तक मत्री रहने के कारण ये मत्रीजी के नाम से ही जाने जाते थे। परोपकारी एंव कर्तव्यशील समाजसेवी के रूप मे इनकी प्रतिष्ठा थी।

श्री सिंघई धर्मदासजी ड्योढ़िया, बड़ामलहरा

उदार, दानी, शिक्षा प्रेमी श्री सिघई वृन्दावनलालजी ड्योढिया के पुत्र श्री धर्मदासजी ने विद्यालय मे प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपने पैतृक व्यवसाय को ही वृद्धिगत किया। यह द्रोणगिरि क्षेत्र, पाठशाला एव गुरुकुल मलहरा के गृहमत्री, उपमत्री, उपसभापति और सभापति रहे है। वर्तमान मे आप सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के ट्रस्टी भी हैं।

पण्डित धरणेन्द्रकुमारजी शास्त्री, हटा

वरद्वाहा निवासी श्री धरणेन्द्रकुमारजी पण्डितजी के एक विनम्र और सेवाभावी शिष्य हैं। इन्होनें पूज्य पण्डितजी के सान्निध्य मे धार्मिक शिक्षा प्राप्त की थी। आजीविका के लिए हटा जिला दमोह मे जाकर बस गए और किराना का व्यवसाय किया। आप कवि भी हैं। द्रोणगिरि दर्पण, धन्यकुमार चरित्र काव्य इनकी प्रकाशित रचनाए है।

श्री पण्डित विजयकुमारजी साहित्याचार्य, श्री महावीरजी (राज.)

बडागाव निवासी श्री विजयकुमारजी ने पण्डितजी के पास 7 वर्षों तक अध्ययन तो किया ही साथ ही उनसे पिता जैसा स्नेह भी पाया। इन्होनें सागर, वाराणसी मे भी अध्ययन किया। अध्ययन के बाद बडामलहरा मे गुरुकुल तथा जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय मे अध्यापन कार्य किया एव कुछ समय तक सरधना एव हस्तिनापुर मे शिक्षण कार्य करने के बाद अब श्री महावीरजी मे कार्यरत है। धार्मिक अनुष्ठान, विधान, प्रतिष्ठा आदि कराना इनके रुचिकर कार्य है। आप लेखक, वक्ता, प्रवचनकार एवं कवि भी हैं। आपकी अनेको रचनाए प्रकाशित हो चुकीं हैं। वर्णीजी की अमर कहानी आपकी एक लोकप्रिय देन है।

श्री डॉ. महेन्द्रकुमारजी, भगवां

द्रोणगिरि के ही समीप भगवा के निवासी श्री महेन्द्रकुमारजी ने पण्डितजी के सान्निध्य मे अपना जीवन निर्माण किया है। द्रोणगिरि विद्यालय से प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण कर इन्होनें सागर एव वाराणसी मे भी अध्ययन किया। इन्हे अपने गुरु श्री पण्डित गोरेलालजी के साथ शिक्षण कार्य करने का सौभाग्य मिला। बाद मे ये शासकीय सेवा मे चले गए। एम ए, साहित्याचार्य और पी– एच डी उपाधिया प्राप्त कीं। जब पण्डितजी ने विद्यालय से अवकाश ले लिया और उसकी स्थिति बिगडने लगी तब इन्होने उपमंत्री के रूप मे विद्यालय को सुव्यवस्थित करने का प्रयास किया था ये अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। लम्बी बीमारी के बाद भी इनका निधन सहजता से हुआ।

श्री पटुवारी रतनचन्दजी, कानपुर

श्री पटुवारीजी अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पण्डितजी के चरण सान्निध्य मे प्राप्त करने के बाद व्यवसाय हेतु कानपुर चले गए थे। जहां इन्होनें प्रारम्भ में लोहे के व्यापारियो के साथ दलाली का कार्य किया तथा बाद मे परिश्रम एव लगन के फलस्वरूप स्वयं महावीर मोटर ट्रान्सपोर्ट के नाम से एक प्रतिष्ठान प्रारम्भ किया। जो अब महत्वपूर्ण प्रतिष्ठान है। इन्होनें अपने परिवारजनो को भी कानपुर मे बुलाया, व्यवसाय मे जमाया। यह एक परोपकारी व स्वभाव से सरल व्यक्ति थे। प्रान्त एव समाज के विकास मे इन्होने हमेशा आर्थिक सहयोग प्रदान किया तथा द्रोणगिरि क्षेत्र पर एक स्वाध्याय भवन भी बनवाया। आप अपनी इस व्यावसायिक तरक्की को अपने एक मात्र गुरु श्री पण्डित गोरेलालजी के आशीर्वाद का फल मानते रहे है।

श्री द्वारिकाप्रसादजी शर्मा

कुल, धर्म एव जाति के बन्धनो से मुक्त होकर शिक्षा दान मे सलग्न पण्डित श्री गोरेलालजी के अनन्य शिष्यो मे श्री द्वारकाप्रसादजी शर्मा भी हैं जिन्होंने पूज्य पण्डितजी के चरणो मे बैठकर सस्कृत शिक्षा के साथ ही जैनधर्म का भी अध्ययन किया है। इतना ही नहीं अध्ययन के बाद छोटे-छोटे ग्रामो मे जाकर इन्होने पाठशालाओ का सचालन भी किया।

श्री हरगोविन्द पाण्डेय, उज्जैन

श्री हरगोविन्द पाण्डेय पण्डितजी के उन जैनेतर छात्रो मे से हैं जिन्होने माता-पिता का लाड-प्यार नहीं पाया बल्कि परिवार के अन्य सदस्यो द्वारा यातनाए भी सहीं। पूज्य पण्डितजी ने इन्हे सहारा दिया, विद्यालय मे रखा एव पिता का स्नेह देकर पढाया और आर्थिक सहयोग देकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए काशी भेजा। आपने साहित्याचार्य, एम ए की शिक्षा ग्रहण करने के बाद शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय उज्जैन मे शिक्षण कार्य प्रारम्भ किया साथ ही ज्योतिष की शिक्षा भी लेते रहे। स्थिति यह है कि अपने पुरुषार्थ के बल पर आज आप एक सिद्धहस्त ज्योतिषाचार्य है तथा उज्जैन मे गगाधर वेद विद्या प्रतिष्ठानम् का संचालन कर वेदो की शिक्षा दे रहे है। उज्जैन मे प्रतिष्ठित ज्योतिष और क्रियाकाण्डी विद्वानो मे यह अपना विशेष स्थान रखते है।

श्री पण्डित ज्ञानचन्दजी, कन्नपुर

श्री ज्ञानचन्दजी शास्त्री पूज्य पण्डितजी के प्रिय शिष्यो मे रहे हैं। शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्होनें पण्डितजी के सहयोगी के रूप मे विद्यालय मे शिक्षण कार्य भी किया। बाद मे यह कोतमा मे रहने लगे थे।

डॉ. उत्तमचन्दजी, छिन्दवाड़ा

श्री उत्तमचन्दजी सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य श्री प. गुलाबचन्दजी पुष्प टीकमगढ के उन होनहार पुत्रो मे से है जिन्होने द्रोणगिरि मे पण्डितजी से प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की और एम बी बी एस की शिक्षा ग्रहण करने के बाद हृदय रोग विशेषज्ञ बने। ये आज भी छिन्दवाडा मे हृदय रोग चिकित्सालय द्वारा जनता की सेवा कर रहे हैं। छिन्दवाडा मे इनकी गिनती प्रतिष्ठित चिकित्सको मे होती है। यह अत्यन्त उदार, परोपकारी और मिलनसार व्यक्ति है।

श्री लक्ष्मणप्रसादजी, बडामलहरा

इन्होने पण्डितजी के सान्निध्य मे 4-6 माह ही रहकर शिक्षा प्राप्त की है लेकिन पण्डितजी के प्रति

इनकी अपार श्रद्धा है। यह अत्यन्त सरल, गंभीर, समाजसेवी हैं। वर्तमान मे शासकीय सेवा से प्राचार्य पद से सेवा निवृत्त हुए हैं। द्रोणगिरि क्षेत्र व आश्रम में क्रमशः उपसभापति, मंत्री एवं गिरार अतिशय क्षेत्र में मंत्री के रूप में आपकी सेवाएं प्राप्त हो रहीं हैं।

श्री डॉ. कन्छेदीलालजी, तेन्दूखेड़ा

गोरखपुर निवासी श्री कन्छेदीलालजी द्रोणगिरि विद्यालय मे पूज्य पण्डितजी से सस्कृत और धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के बाद चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन कर चिकित्सक बन गए तथा तेन्दूखेड़ा (नरसिहपुर) मे स्वय का औषधालय प्रारम्भ किया आज ये एक सफल चिकित्सक और भारतीय जनता पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता हैं।

श्री डॉ. बालचन्दजी वरायठा

भीकमपुर निवासी डॉ बालचन्दजी ने द्रोणगिरि विद्यालय मे पण्डितजी से संस्कृत और धर्म का अध्ययन करने के बाद आयुर्वेद की उच्च शिक्षा प्राप्त की तथा बरायठा ग्राम मे स्वयं का औषधालय खोलकर चिकित्सा का व्यवसाय प्रारम्भ किया। इनकी सरलता, परोपकारी प्रवृत्ति से इन्हे ख्याति भी मिली।

श्री पण्डित राजधरलालजी, सागर

अजनौर जिला टीकमगढ निवासी श्री राजधरलालजी ने द्रोणगिरि विद्यालय मे पण्डितजी के सान्निध्य मे सस्कृत और धर्मग्रन्थो का अध्ययन कर सागर विद्यालय मे उच्च अध्ययन किया तथा सागर को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया। रात्रि पाठशालाओ मे अध्यापन, पूजन विधान कराने का कार्य लम्बे समय तक किया। यह सदा प्रसन्नचित्त रहते थे। समाज सेवा इनका व्यसन था।

श्री डॉ. दुलीचन्दजी, छतरपुर

शाहगढ निवासी श्री दुलीचन्दजी ने द्रोणगिरि विद्यालय से पण्डितजी के सान्निध्य मे अध्ययन कर सस्कृत प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की तथा उच्च अध्ययन हेतु वाराणसी चले गए। वहा काशी हिन्दू विश्व विद्यालय से बी ए, एम एस की उपाधि प्राप्त कर शासकीय सेवा मे चिकित्सक बन गए और अधीक्षक पद से सेवा निवृत्त हुए।

श्री धरमचन्दजी मोदी, छतरपुर

शाहगढ निवासी श्री धर्मचन्दजी मोदी द्रोणगिरि विद्यालय से सस्कृत मे प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण कर सागर मे और बाद मे स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी मे साहित्याचार्य, बी कॉम तक शिक्षा प्राप्त कर मध्यप्रदेश शासन के सहकारिता विभाग मे विभिन्न पदो पर कार्य करते हुए उप पजीयक पद से सेवा निवृत्त हुए हैं। वर्तमान मे इनका बर्तनो का व्यवसाय है। यह मृदुभाषी, सरल एव प्रभावी वक्ता हैं। विधि विधानो मे इनकी विशेष रुचि है। श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि प्रबन्ध समिति के मत्री, उपाध्यक्ष एव श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो के मत्री हैं।

श्री भागचन्दजी शास्त्री, बड़ामलहरा

वरद्वाहा निवासी श्री भागचन्दजी ने पण्डितजी के पास प्रथमा परीक्षा तक अध्ययन किया। बाद मे इन्होनें स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी से शास्त्री तक शिक्षा ग्रहण कर शासकीय शिक्षा विभाग मे कार्य प्रारम्भ किया तथा अब प्रधानाध्यापक पद से सेवानिवृत्त हैं।

श्री कपूरचन्दजी, बड़ामलहरा

भगवां निवासी श्री कपूरचन्दजी ने पूज्य पण्डितजी के सान्निध्य में संस्कृत प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण कर स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी से साहित्याचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। शासकीय सेवा में कार्य करते हुए आप प्राचार्य पद पर कार्यरत हैं। हमेशा प्रसन्न रहने वाले श्री कपूरचन्दजी सरल और विनम्र स्वभाव के धनी हैं। आपने हिन्दी, अंग्रेजी, सस्कृत शब्दकोष एव माध्यमिक स्तर के लिए अंग्रेजी व्याकरण लिखी है।

श्री पण्डित बाबूलालजी शास्त्री, बड़ामलहरा

वरद्वाहा निवासी श्री बाबूलालजी पण्डितजी के उन शिष्यों में से हैं जो प्रारम्भ से ही अत्यन्त सरल, विनम्र और संकोची स्वभाव के हैं। इन्होंनें सस्कृत प्रथमा तक अध्ययन करने के बाद स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी मे अध्ययन भी किया। लम्बी अवधि तक शासकीय सेवा करने के बाद आप सेवा निवृत्त हो चुके हैं। आप धार्मिक वृत्ति के हैं पूजन विधान कराने में विशेष रुचि हैं शास्त्री नाम से ही जाने जाते हैं। अब बड़ामलहरा मे स्थायी निवास है। तत्त्व जिज्ञासु होने के कारण आप निरन्तर धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन करते रहते हैं। सादा जीवन उच्च विचार ही इनका आदर्श है।

श्री अजितकुमारजी, द्रोणगिरि

पण्डितजी के ज्येष्ठ पुत्र अजितकुमारजी ने प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिताजी के चरणो मे बैठकर प्राप्त की। कुछ समय तक सागर विद्यालय मे अध्ययन किया। पिताजी के पद चिन्हो पर चलकर आप धार्मिक, संमाजसेवी व विनयी स्वभाव के हैं। पूजन विधान कराने मे आपकी विशेष रुचि है। भगवान् महावीर 2500 वा निर्वाण महोत्सव मे द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा संघ के अध्यक्ष रहे हैं। अपने अध्यक्षीय कार्यकाल मे विभिन्न जगहो पर नि शुल्क नेत्र शिविरो का आयोजन, जगह--जगह उत्सव--कार्यक्रमो का आयोजन किया। धर्मचक्रो के प्रवर्तन कार्यक्रम मे उत्साह के साथ कार्य किया। वर्तमान में आप संयमी जीवन बिता रहे है। धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन मे आपकी विशेष रुचि है।

श्री बाबूलालजी शास्त्री, बड़ागांव

भगवा निवासी श्री बाबूलालजी ने पण्डितजी के संरक्षण मे पढकर सस्कृत प्रथमा की परीक्षा उत्तीर्ण कर स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी मे अध्ययन किया और शासकीय सेवा प्रारम्भ की। वर्तमान मे आप शिक्षा विभाग से सेवा निवृत्त हैं। आप विनम्र और सरल स्वभावी है।

श्री देवेन्द्रकुमारजी शास्त्री

ग्राम वैशा जिला टीकमगढ निवासी श्री देवेन्द्रकुमारजी पण्डितजी के उन शिष्यों में से हैं जिन्होंनें पण्डितजी से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की और अध्ययन के बाद उन्हीं के साथ कुछ समय तक सेवा करने का अवसर भी पाया बाद मे यह शासकीय सेवा मे चले गए। लम्बी शासकीय सेवा के बाद आज आप एक अवकाश प्राप्त शिक्षक हैं तथा अत्यन्त विनम्र, सरल और स्वभाव से बहुत सीधे हैं। गुस्सा की रेखा भी इनके चेहरे पर कभी नहीं देखी गई।

श्री प्रेमचन्दजी कुपी वाले, छतरपुर

श्री प्रेमचन्दजी कुपी के पूर्व निवासी हैं। द्रोणगिरि विद्यालय मे प्रवेश लेकर एक वर्ष से कम समय अध्ययन किया है। प्रेमचन्दजी स्वय कहते हैं कि मैंने मात्र पूज्य पण्डितजी से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की और जो ज्ञान उन्होनें दिया वही मेरी पूजी है। जिसके बल पर वर्तमान मे व्यवसाय रत हूँ। श्री प्रेमचन्दजी

छतरपुर मे कॉलोनियो के निर्माण का कार्य कर रहे हैं अपने व्यवसाय मे पूर्ण सफल हैं। आप श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम द्रोणगिरि ट्रस्ट के उपाध्यक्ष हैं। आप उदार, दानी, सेवाभावी एव धार्मिक व्यक्ति है।

श्री कमलकुमारजी, छतरपुर

पूज्य पण्डितजी के तृतीय पुत्र श्री कमलकुमारजी ने विद्यालय का गौरव तो बढाया ही, प्रान्त के गौरव भी वे आज है। इन्होने प्रथमा परीक्षा वर्णीजी के आदेश से पिताजी के चरणो मे बैठकर उत्तीर्ण की और स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी मे प्रवेश लेकर वहा अध्ययन किया। 1959 मे जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बडमलहरा मे सेवा प्रारम्भ की और 1965 मे शासकीय सेवा मे चले गये। जहां आज आप व्याख्याता पद पर कार्यरत है। शासकीय सेवा करते हुए भी आपने सामाजिक कार्यों मे रुचि ली। प्रारम्भ मे 1962 मे समाज सेवा और सगठन की भावना से द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ की स्थापना की तथा 20 वर्ष तक सगठन का सचालन किया।

छतरपुर मे आने पर छतरपुर समाज का सगठन किया, मदिरो की व्यवस्थाओ मे योगदान दिया। भगवान् महावीर के 2500 वे निर्वाण महोत्सव मे राष्ट्रीय स्तर पर जुडे रहे। रीवां सम्भागीय क्षेत्रीय समिति मे छतरपुर जिला के मत्री का दायित्व निभाया। इस अवधि मे सम्भाग के जिलो मे कार्यक्रमो का सचालन किया। शासकीय स्तर पर निर्मित समितियो मे रहकर छतरपुर मे कीर्तिस्तम्भ का निर्माण कराने मे विशेष रुचि ली। महावीर विश्रान्ति भवन की योजना बनाई। इन्हीं के प्रयास से दो धर्मचक्रो का एक साथ द्रोणगिरि मे समागम महत्वपूर्ण घटना है। पूरे सम्भाग मे धर्मचक्र प्रवर्तन, नि शुल्क नेत्र शिविरो का आयोजन, जगह–जगह सेमीनारो का आयोजन इन्हीं के श्रम और लगन का फल है। निर्वाण महोत्सव मे छतरपुर मे महावीर शिशु मदिर की स्थापना की। वर्ष भर तक इनके द्वारा किए गए कार्यों का मूल्याकन कर केन्द्रीय समिति ने इन्दौर मे समापन समारोह के अवसर पर तत्कालीन उपराष्ट्रपति वी डी जत्ती द्वारा स्वर्णपदक से सम्मानित कराया। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी मध्याचल के आप 10 वर्ष तक मत्री रहे हैं। श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो प्रबन्ध समिति के लम्बे समय तक मंत्री रहकर उसके विकास में इनका उल्लेखनीय योगदान है। खजुराहो का विशाल गजरथ महोत्सव इन्हीं के कार्यकाल मे हुआ। श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन कला सग्रहालय का निर्माण, हस्तलिखित श्रुत भण्डार की स्थापना, धर्मशालाओ का निर्माण, मदिरो का जीर्णोद्धार इनके कार्यकाल की ही देन है। श्री दशरथजी के साथ इन्होनें खजुराहो के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान किया है। सामाजिक, धार्मिक क्षेत्र का ऐसा कोई कार्य नहीं जो जिला छतरपुर मे हो और उसमे इनका योगदान न हो।

साहित्य के क्षेत्र मे आपकी रुचि के कारण आपने अनेको स्मारिकाओ का सम्पादन किया, जैन मूर्ति प्रशस्ति लेखो का सकलन–सम्पादन, जिले के जिनालयो मे स्थित मूर्तियो का पंजीकरण आदि महत्वपूर्ण कार्य किए। द्रोणगिरि दर्शन, रेशन्दीगिरि दर्शन, जिनमूर्ति प्रशस्ति लेख, करुणामूर्ति वर्णीजी, प्रज्ञाश्रमण विराग सागर आदि अनेक कृतिया प्रकाशित हैं। क्षुल्लक चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ का सम्पादन और प्रकाशन का श्रेय इन्हीं को जाता है। आप कुशल समाजसेवी, सगठक, लेखक, वक्ता हैं। परोपकार तो आपको विरासत मे ही प्राप्त है। वर्तमान मे आप साहित्य सेवा मे लगे हुए हैं। छतरपुर आपका स्थायी निवास है।

अखिल भारतीय सस्थाओ से आप बराबर जुडे हुए है। तीर्थ वन्दना रथ, कुन्दकुन्द ज्ञानचक्र, जनमगल कलश, जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति आदि का प्रभावनापूर्वक छतरपुर जिले मे प्रवर्तन कराने मे आपका सक्रिय एव महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आचार्य सघो के बुन्देलखग्ड प्रवास आदि कार्यक्रमो मे आप सक्रिय रहे है। आचार्य देशभूषणजी महाराज का छतरपुर जिला आगमन एव विहार आपके मार्गदर्शन मे ही हुआ था। श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम ट्रस्ट द्रोणगिरि के ट्रस्टी मत्री है।

श्री पं. सरमनलाल दिवाकर, सरधना

ऐरोरा जिला टीकमगढ निवासी श्री सरमनलालजी दिवाकर इस विद्यालय के उन स्नातको मे से है जिन्होने मात्र इस शिक्षण सस्था और पूज्य पण्डितजी के चरणो मे ही बैठकर अध्ययन किया तथा अखिल भारतीय स्तर पर उभरकर आये। बाल निकेतन सरधना एव जैन गुरुकुल हस्तिनापुर मे प्रधानाचार्य रहते हुए सामाजिक कार्यो से जुडे रहे। वीर और अर्हत् वाणी के सह सम्पादक रहे हैं। धर्मचक्र एव तीर्थवन्दना रथ मे वीरवाणी प्रवक्ता के रूप मे देश भर मे भ्रमण किया है। आपकी विशेष रुचि पूजा विधान प्रतिष्ठाओ मे है जिन्हे आप प्रभावना के साथ सम्पन्न कराते है।

श्री केशवप्रसाद शर्मा, द्रोणगिरि

पूज्य पण्डितजी से शिक्षा प्राप्त करने वाले ऐसे स्नातक हैं जिन्होने ब्राह्मण होते हुए जैनधर्म की शिक्षा रुचिपूर्वक ग्रहण की। सस्कृत प्रथमा उत्तीर्ण होकर स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी मे अध्ययन किया। तदुपरान्त बाद मे शासकीय सेवा मे आ गये। आज द्रोणगिरि (अपनी जन्मभूमि) के विद्यालय मे ही कार्यरत है। कहानी लेखन मे आपकी विशेष रुचि है। इनके पिताजी, बडे भाई भी पण्डितजी के शिष्य रहे है।

श्री बाबूलाल असाटी, द्रोणगिरि

श्री बाबूलालजी भी पण्डितजी के उन स्नातको मे से है जिन्होने वैष्णव होते हुए भी जैनधर्म की शिक्षा के साथ ही सस्कृत की शिक्षा प्राप्त की है द्रोणगिरि मे अध्ययन करने के बाद स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी मे अध्ययन किया। तथा शासकीय सेवा मे आज आप ग्रामीण विस्तार अधिकारी हैं।

श्री डॉ. शीतलप्रसाद फौजदार, बड़ामलहरा

द्रोणगिरि निवासी श्री शीतलप्रसादजी फौजदार ने द्रोणगिरि विद्यालय मे अध्ययन कर आयुर्वेद का अध्ययन जयपुर मे किया। अध्ययन के बाद इन्होने चिकित्सा को व्यवसाय बनाया तथा आजीवन सामाजिक कार्यकर्ता रहे हैं। यह द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ के अनेक वर्षो तक अध्यक्ष तथा श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि प्रबन्ध समिति के उपमत्री काफी लम्बे समय तक रहे। यह धार्मिक प्रवृत्ति के थे। द्रोणगिरि मे क्षेत्रीय कार्यो का निरीक्षण करते--कराते समय चोट लग जाने के कारण इनका स्वर्गवास हो गया था।

श्री डॉ. नरेन्द्रकुमारजी, श्रावस्ती (उ. प्र.)

द्रोणगिरि मे आपने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर साढूमल एव स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी मे अध्ययन किया। बनारस से ही एम. ए., पी– एच. डी आदि उपाधि प्राप्त कर शासकीय सेवा मे आ गए। वर्तमान मे आप शासकीय महामाया महिला कॉलेज, श्रावस्ती मे सस्कृत विभागाध्यक्ष है। प्रारम्भ मे आप कबड्डी, कुश्ती के विश्वविद्यालय स्तर पर और प्रदेश स्तर पर खिलाडी रहे हैं। आपकी रुचि लेखन मे

है। इन्होंने अपना स्थायी निवास टीकमगढ मे बनाया है। तथा अपने बल पर ही अध्ययन कर यशस्वी विद्वानो की श्रेणी मे स्थान बना पाने मे सफलता पाई है।

श्री मोतीलालजी, भगवां

भगवा निवासी श्री मोतीलालजी ने द्रोणगिरि विद्यालय मे अध्ययन कर उच्च शिक्षा वाराणसी मे प्राप्त की और शासकीय सेवा मे आ गए। समाजसेवी और कुशल सगठक के रूप मे आप जाने जाते हैं। वर्तमान मे शासकीय सेवा से अवकाश प्राप्त कर सेवाकार्य मे सलग्न है।

श्री प्रेमचन्दजी, मड़देवरा

मड़देवरा निवासी श्री प्रेमचन्दजी ने प्रारम्भिक शिक्षा द्रोणगिरि मे प्राप्त कर सागर विश्वविद्यालय से स्नातक परीक्षा पास करने के बाद पुलिस इन्सपेक्टर बनने का सकल्प किया और निरन्तर प्रयास के बाद अपने सकल्प मे सफल हुए। वर्तमान मे आप सागर मे थाना प्रभारी के पद पर कार्यरत हैं। आपने ईमानदारी, लगन तथा परिश्रम के साथ कार्य कर विभाग मे लोकप्रियता अर्जित की है।

श्री धर्मचन्दंजी, ग्वालियर

गभीरिया (सागर) निवासी श्री धर्मचन्द ने पूज्य पण्डितजी के सान्निध्य मे सस्कृत प्रथमा एव विशारद तक धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। उच्च शिक्षा सागर विद्यालय मे प्राप्त की और शासकीय सेवा के अधीन संस्कृत महाविद्यालय ग्वालियर मे शिक्षण कार्य करने लगे। स्थायी निवास भी ग्वालियर मे ही बना लिया। पूजन—विधान, शास्त्र—प्रवचन मे आपकी विशेष रुचि है।

श्री पण्डित खुशालचन्दजी शास्त्री, बड़ामलहरा

हलावनी निवासी श्री खुशालचन्दजी उन शिष्यो मे से है। जिन्होनें पण्डितजी के चरणो मे बैठकर शिक्षा प्राप्त की ओर उन्हीं की कृपा से 1959 मे द्रोणगिरि विद्यालय में शिक्षण कार्य प्रारम्भ किया। 1977 तक क्षेत्रस्थ विद्यालय का कार्य करने के पश्चात् पोस्ट ऑफिस की सर्विस मे चले गए। वर्तमान मे आप उप डाकपाल के पद पर बडामलहरा मे कार्यरत हैं। आप एक समाजसेवी व परोपकारी व्यक्ति है तथा पूजन-विधान व शास्त्र-प्रवचन मे रुचि रखते है।

श्री रतनचन्दजी, रामपुर

यह श्री पण्डित खुशालचन्दजी के छोटे भाई हैं। इन्होने सस्कृत मध्यमा तक की शिक्षा पण्डितजी से प्राप्त कर मोरेना और स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी मे अध्ययन कर श्री दिगम्बर जैन इटर कॉलेज रामपुर मे हिन्दी प्रवक्ता के रूप मे कार्य प्रारम्भ किया। अपना स्थायी निवास भी रामपुर मे ही बना लिया। आप एक कुशल वक्ता, लेखक, सम्पादक हैं। सरल, मृदुभाषी और परोपकारी होने से प्रभावक व्यक्तित्व के धनी हैं।

श्री पण्डित अमरचन्दजी, खजुराहो

वाजना निवासी श्री अमरचन्दजी ने काफी बडी उम्र मे पूज्य पण्डितजी के सान्निध्य मे शिक्षा प्राप्त की। द्रोणगिरि से प्रथमा, पूर्व मध्यमा एवं विशारद तक अध्ययन कर मोरेना विद्यालय मे चले गए। 1967 मे श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो मे कार्य करने लगे। इन्होने निष्ठापूर्वक कार्य करते हुए जीर्णोद्धार, स्वरूप भवन एवं वेदियो के निर्माण मे महत्वपूर्ण योगदान किया है। आप कुशल व्यवस्थापक एव शिल्पी तो

है ही पूजन, विधान, प्रतिष्ठाओ मे भी रुचि रखते है। वर्तमान मे क्षेत्र के कार्य से अवकाश लेकर खजुराहो मे ही स्थायी निवास बनाकर स्वय का व्यापार करने लगे है।

श्री डॉ. गुलाबचन्दजी, विनेका

भीकमपुर निवासी डॉ गुलाबचन्दजी ने द्रोणगिरि विद्यालय मे शिक्षा प्राप्त कर जयपुर मे आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की अब विनेका (सागर) मे चिकित्सा का व्यवसाय कर रहे है। आप सरल, मधुरभाषी और व्यवहार कुशल धार्मिक रुचि सम्पन्न सामाजिक व्यक्ति है।

श्री डॉ. फूलचन्दजी, जयपुर

श्री गुलाबचन्दजी के लघु भ्राता फूलचन्दजी ने भी द्रोणगिरि में शिक्षा प्राप्त कर जयपुर मे आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की तथा जयपुर मे ही श्री दिगम्बर जैन औषधालय मे चिकित्सक के पद पर कार्य करने लगे। व्यवहार से मधुर, सरल और नम्र प्रवृत्ति के है। इनकी आयुर्वेद पद्धति से चिकित्सा करने वालो मे विशेष ख्याति है। समाज इनकी सेवाओ से उपकृत है।

श्री डॉ. लालचन्दजी, देवास

खुटकुआँ निवासी श्री लालचन्दजी ने द्रोणगिरि विद्यालय मे पूज्य पण्डितजी से शिक्षा प्राप्त करने के बाद उच्च अध्ययन स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी मे किया। एम ए. करने के बाद शासकीय सेवा प्रारम्भ की तथा सेवारत रहते हुए पी–एच डी, की। मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग की परीक्षा मे बैठकर सीधे प्राचार्य बने। वर्तमान मे आप शिक्षा विभाग मे उप सचालक के पद पर देवास मे कार्यरत हैं।

श्री कोमलचन्दजी, देवास

गोरखपुर निवासी कोमलचन्दजी ने द्रोणगिरि विद्यालय मे अध्ययन करने के बाद जनता उच्च माध्यमिक विद्यालय बडामलहरा मे अध्ययन किया। शासकीय शिक्षा विभाग मे सेवा प्रारम्भ कर आज देवास मे शिक्षक पद पर कार्यरत हैं।

श्री परमेष्ठीदासजी, फौजदार

द्रोणगिरि निवासी श्री परमेष्ठीदासजी ने द्रोणगिरि विद्यालय मे प्रारम्भिक धर्म एव सस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के बाद अपने पैतृक व्यवसाय को सँभाला। बडामलहरा मे स्थायी निवास बनाकर अपने व्यवसाय मे निरन्तर प्रगति करते हुए औषधियो का भी निर्माण प्रारम्भ किया। वर्तमान मे आप अपने व्यवसाय मे पूर्ण सफल है। धार्मिक, परोपकारी व उदार वृत्ति के होने के कारण आप प्राय मुक्त हस्त से दान देते रहते हैं। हमेशा प्रसन्न रहना आपका स्वभाव है।

श्री पन्नालालजी, भगवां

फुटवारी निवासी श्री पन्नालालजी द्रोणगिरि विद्यालय मे पण्डितजी से धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने के बाद अपने व्यवसाय मे लग गए। आप बहुत समय तक द्रोणगिरि क्षेत्र मे भी कार्य करते रहे है।

श्री गुलझारीलालजी, दरगुवां

श्री गुलझारीलालजी दरगुवां भी पण्डितजी से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर अपने व्यवसाय मे लग गए। शुद्ध आयुर्वैदिक औषधियो के द्वारा इलाज करना आपकी रुचि है। आप मधुरभाषी, समाजसेवी और परोपकारी व्यक्ति है।

श्री क्षु. अजितसागरजी, मद्रास

द्रोणगिरि विद्यालय पूज्य पण्डितजी के समय देश मे प्रसिद्ध विद्यालय रहा है। मद्रास जैसे सुदूरवर्ती अहिन्दी भाषी प्रान्त से यहा आकर श्री अजितकुमारजी ने पूज्य पण्डितजी के सान्निध्य मे 4 वर्ष तक मनोयोग से धर्म एव सस्कृत का अध्ययन किया। वर्तमान मे ये क्षुल्लक अजितसागर के नाम से मद्रास मे अपनी साधना कर रहे है।

श्री धर्मचन्दजी, बड़ागांव

श्री धर्मचन्दजी द्रोणगिरि विद्यालय के गौरव स्नातक श्री पण्डित विजयकुमारजी आचार्य के अनुज है। जिन्होने द्रोणगिरि विद्यालय मे पूज्य पण्डितजी के श्री चरणो मे अध्ययन कर अपने उज्जवल भविष्य का निर्माण किया है। वर्तमान मे आप शासकीय शिक्षा विभाग से अवकाश प्राप्त हो चुके है।

श्री दीपचन्दजी, हीरापुर

यह स्वर्गीय ब्रह्मचारी श्री दयासिन्धुजी, अधिष्ठाता श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम द्रोणगिरि के पुत्र है। द्रोणगिरि विद्यालय मे अध्ययन करने के बाद आप शासकीय सेवा करने लगे। वर्तमान मे शासकीय हाई स्कूल हीरापुर मे कार्यरत है।

पूज्य गुरु पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के शिष्यो की सूची लम्बी है यहा तो कुछ ही का उल्लेख कर पाने मे सक्षम हुआ हूँ। सच बात तो यह है कि पूरे द्रोण प्रान्त मे ही पण्डितजी का शिष्य समुदाय व्याप्त है। अन्य प्रान्तो मे भी उनके शिष्य जगह--जगह है। जैन--जैनेतर समाज के बालको ने पण्डितजी से शिक्षा ग्रहण कर अपना भविष्य बनाया हे। द्रोणगिरि के आस पास 7--8 मील के इर्द गिर्द चाहे वह ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो यहा तक कि पिछडी जाति का भी हो पण्डितजी ने शिक्षा दान देकर उसको उपकृत किया है। उस समय छात्राओ को भी शिक्षा देकर उल्लेखनीय कार्य उन्होने किया। आज पूरा प्रान्त पण्डितजी के उपकारो से उपकृत है। पण्डितजी ने द्रोणगिरि विद्यालय के माध्यम से हम पशु सदृश लोगो को मानव बनाया है। हमे मनुष्य पर्याय का ज्ञान कराना उसकी उपयोगिता बताना आदि जो कार्य किया है वह विरले ही कर पाते है। ऐसे गुरु की गौरवगाथा से हम सभी धन्य है।

• हिन्दी प्रवक्ता
श्री दिगम्बर जैन ट्रस्ट इन्टर कॉलेज
रामपुर (उ प्र)

□□□

रामलालजी,उपसभापति क्षेत्र, घौरा

पण्डित गोरेलालजी ने किसी पदाधिकारी के जटिल व्यवहार के कारण स्तीफा देकर काम छोड़ दिया है। पाठशाला का काम पण्डितजी के द्वारा छोडे जाने से पाठशाला की अवनति होगी। कारण कि यह मौजा जागीर व ठकुरायसी है। उस संस्था मे काम उसी व्यक्ति से होगा जो कि उस ग्राम की पंचायत ठकुरायत से मिलकर चले। मेरी राय है कि अगर पण्डित गोरेलालजी फिर से कार्य करने को तैयार हो जावे तो उन्हे प्रोत्साहन देकर पुन अवसर प्रदान करना चाहिए।

पी. एस. चम्पतराव, इन्सपेक्टर, शिक्षा विभाग, बिजावर

निरीक्षण के समय भूतपूर्व अध्यापक पण्डित गोरेलालजी भी उपस्थित थे, उन्होनें पाठशाला की जो सेवा की है वह सबको विदित है। परन्तु खेद है कि कुछ जटिल परिस्थितियो के कारण पण्डितजी त्यागपत्र देकर पृथक् हो गये है।

भगवानदास जैन, संचालक ऑल इण्डिया चन्द्रकीर्ति यात्रा संघ, धरमपुरा, देहली

पण्डितजी का व्यवहार एव सुप्रबन्ध सराहनीय है।

पं. भैयालाल शास्त्री "कौछल" काव्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य डॉ. चिकित्सालय, शिवपुरी

क्षेत्र पर स्थित पाठशाला की व्यवस्था भी सुन्दर है। पण्डितजी का सौजन्यपूर्ण व्यवहार प्रशंसनीय है।

लालचन्द जैन, एडवोकेट, रोहतक

यहा के प्रधानाध्यापक पण्डित गोरेलालजी बहुत सज्जन है और उन्होने हर प्रकार की सुविधा हमे दी है।

Tara Chand Jain, Badaganu

Pandit Gorelal ji seemed to me a very learned man He devotes his best for the betterment of his Pathshala and their Kshetra I wish you success in his holy mission

रघुवीरसिंह कोठारी, देहली

पण्डित गोरेलालजी योग्य विद्वान् है। क्षेत्र पर उनका होना बडा उत्साहवर्धक है।

दुर्गाप्रसाद व नानकचन्द जैन, अबूहर, फिरोजाबाद (पंजाब)

आज तारीख 17 3 40 को हमने श्री द्रोणगिरिजी की यात्रा की, बहुत अच्छी रही। यहा क़ा इन्तजाम बहुत अच्छा है। यहा के कर्मचारी बहुत अच्छी तरह से बर्ताव करते है। पण्डित गोरेलालजी पाठशाला एवं क्षेत्र का काम परिश्रम से करते है।

बालाजी प्रसाद, सहारनपुर (उ. प्र.)

4 अप्रेल 40 को हमने द्रोणगिरिजी पहाड की यात्रा बडे आनन्द के साथ की। पहाड व धर्मशाला का इन्तजाम निहायत अच्छा है। पण्डित गोरेलालजी पाठशाला मे काम करते हैं, बहुत योग्य और सज्जन व्यक्ति है। यात्रियो के साथ मुनासिब बर्ताव करते है।

सुखलाल जैन, भजनोपदेशक, मारवाड़ी कटरा, नई सड़क, देहली

आज हम सबने दूसरी बार सिद्धक्षेत्र की यात्रा की। यहा का कार्य देखकर सन्तोष हुआ। पाठशाला भी चलती है, पण्डित गौरेलालजी शास्त्री का व्यवहार एव कार्य सन्तोषजनक है।

रूपचन्द जैन, किशनगढ़, अजमेर

श्री गुरुदत्त उदासीनाश्रम मे आये। यहा पर त्यागियो के लिए बहुत अच्छा प्रबन्ध है। स्वाध्याय आदि क्रियाये नियमित समय पर रुचिपूर्वक देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। यहा व्रतियो को आकर रहना चाहिए। पण्डित गोरेलालजी साहब की देखरेख मे स्वाध्याय आदि कार्य रुचिपूर्वक चलता है। अन्य त्यागीगण पूर्ण रुचिपूर्वक धार्मिक कार्यों मे भाग लेते है।

पण्डित श्रुतसागर जैन, न्यायतीर्थ

श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम का प्रबन्ध सुन्दर है। हमने 4 दिन रहकर यह अनुभव किया कि जलवायु अच्छा है। पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का प्रतिदिन 3 टाईम प्रवचन होता है। यहा के वातावरण मे मेरी यहॉ चौमासा करने की इच्छा हुई।

धन्नालाल जैन काला, जैन समाज, कलकत्ता

दिनाक 4 10 79 को श्री दिगम्बर जैन सघ कलकत्ता, यहा आया। सब व्यवस्थाये देखकर प्रसन्नता हुई। उदासीनाश्रम मे स्वाध्याय से लाभान्वित हुए। यहा के मत्री श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री सरल स्वभावी है।

अब यहॉ जून 1967 मे आयोजित पण्डितजी के सार्वजनिक अभिनन्दन के शुभावसर पर प्राप्त शुभकामनाओ को प्रस्तुत कर रहा हूँ –

पण्डित वंशीधरजी व्याकरणाचार्य, बीना

पण्डित गोरेलालजी के अभिनन्दन के सम्बन्ध मे आप महानुभावो की सूझ का मै हार्दिक समर्थन करता हूँ और सफलता की कामना करता हूँ।

प्रो. भागचन्द जैन "भागेन्दु", इटारसी

मेरे स्मृति पटल पर सादी वेश-भूषा में आचार निष्ठ, कर्मठ किन्तु सदा हसमुख रहने वाले उच्च विचार–सम्पन्न जिन विद्वान् का अमिट रेखाचित्र आज भी अकित है, वे विद्वान् है – बुन्देल मेदिनी के चिरसेवी मौन साधक श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी शास्त्री। मैने पण्डितजी को अनेक रूपो यथा – सफल अध्यापक, कुशल व्यवस्थापक, समन्वयवादी, सहिष्णु ओर निर्भीक कार्यकर्ता, क्रियाकाण्ड के मर्मज्ञ , प्रभावक वक्ता, प्रचारक, समाज सुधारक तथा साहित्यकार के रूप मे तो देखा ही है, साथ ही यह भी अनुभव किया है कि वे दम्भ, अहकार, मिथ्या विडम्बना और आधुनिक विज्ञापनबाजी से कोशो दूर रहने वाले विचारशील विद्वान् है।

पण्डित गोरेलालजी मौन साधक, भगवती–सरस्वती के आराधक है। शिक्षा और समाज सुधार के रूप मे उनके कार्यकलाप अविस्मरणीय है। उनकी शिष्य परम्परा लम्बी और गौरवपूर्ण है। ऐसे विद्वत्प्रवर के सार्वजनिक अभिनन्दन के अवसर पर हम अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए उनके चिरायु होने की कामना करते हैं।

श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी, फिरोजाबाद

यह जानकर हर्ष हुआ कि आप श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि का सार्वजनिक सम्मान करना चाहते है। मै इस समारोह की सफलता हृदय से चाहता हूँ।

अभूतपूर्व सेवाओ द्वारा उस प्रान्त मे कुरीतियो को हटाने मे और शिक्षण द्वारा शिक्षा के प्रचार मे विशेष योगदान दिया है। त्यागमार्ग मे तत्वज्ञान के बिना आने वाली शिथिलताओ को दूर करने हेतु अपने जीवन मे स्वयं त्यागमार्ग को अपनाकर त्याग का मार्ग प्रशस्त किया है। त्यागियो को तत्त्वज्ञान का बोध कराकर समाज के सामने कर्मठ त्यागी तैयार किए है। मै आपका हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

पण्डित नन्हेलाल जैन, न्याय, सिद्धान्त शास्त्री, राजाखेड़ा (धौलपुर)

पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का सम्मान उनकी सेवाओ के उपलक्ष मे अच्छे रूप मे होने की हार्दिक इच्छा करता हूँ।

पण्डित वर्द्धमान पी. शास्त्री, विद्यावाचस्पति, व्याख्यान केसरी, सोलापुर

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप सस्था के चिरसेवी पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का अभिनन्दन कर रहे हैं। यह प्रयास निश्चित ही स्तुत्य है। समाज मे जब तक कार्यकर्ताओ के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने की परिपाटी अपनाई नहीं जायेगी तब तक कार्यकर्ताओ की वृद्धि नहीं हो सकती। उनकी वृद्धि से ही रत्नों की उपलब्धि हो सकती है। गुणग्राहकता का अभाव होता जा रहा है। इस दिशा मे आप लोगो ने जो कदम उठाया है वह अभिनन्दनीय है। आपका अनुकरण अन्य संस्था वालो को भी करना चाहिए। इस अवसर मे हमारी आरे से भी पण्डित गोरेलालजी का अभिनन्दन स्वीकार कीजिए।

छोटेलाल जैन अदावन वाले, शाहगढ़

पण्डितजी द्वारा धार्मिक, सामाजिक एव विद्या के क्षेत्र मे की गई सेवाओ के प्रति समाज सदा ऋणी रहेगा, मै समाज के सदस्य के रूप मे पण्डितजी का अभिनन्दन करता हुआ उनकी दीर्घायु की शुभकामना करता हूँ।

धर्मदास जैन न्यायतीर्थ, नवापारा, राजिम

श्रीमान् पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि से मेरा केवल परिचय ही नहीं, वे मेरे घनिष्ठ स्नेही मित्रों मे से एक हैं। द्रोणगिरि पाठशाला मे अध्यापन कार्य करते हुए एकत्र रहने का अवसर मिला और यह सौहार्द स्थापित हुआ जो बहुत समय से दूर रहते हुए भी तदवस्थ है। उनकी विद्वत्ता, सरल प्रकृति, नैसर्गिक स्नेह आकर्षण की वस्तु है। पण्डितजी के साथ तात्विक बातो पर जिस वीतराग भाव से चर्चा होती थी उसमे स्नेह की ही वृद्धि होती थी। अज्ञान तिमिराच्छन्न उस द्रोण प्रान्त मे द्रोणगिरि पाठशाला से ज्ञानरूप किरणो का प्रकाश फैलाकर वहा का जो भी अज्ञानान्धकार दूर हुआ है, उसमे पण्डितजी की सेवाये महत्वपूर्ण रहीं है। उस प्रान्त की कुरूढियो को हटाने मे भी पण्डितजी को प्रयास करना पडा और उसमे पण्डितजी को सफलता मिली। वर्तमान मे उन्होने उदासी वृत्ति को अपनाया है जिससे उनके जीवन मे "सोने मे सुगन्ध" वाली कहावत चरितार्थ होती है। उनकी साहित्य सेवा जन कल्याण साधक है। मै परम स्नेही मित्रवर पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का अभिनन्दन करता हूँ। द्रोण प्रान्त के लिए उनकी दीर्घकालीन सेवाये अनन्य एवं अविस्मरणीय है।

यशपाल जैन, नई दिल्ली

हमारे देश मे दान की बड़ी गरिमा है। दानो मे सर्वश्रेष्ठ विद्यादान माना जाता है। उस दिशा मे जिनका योगदान रहा है, वे हमारे लिए निःसन्देह अभिनन्दनीय है। मै श्री शास्त्रीजी की सेवाओ का अभिनन्दन

कि जैसे चेचक के रोग से बचाव के लिए बचपन मे उसका टीका सहायक होता है, ठीक वैसे ही पण्डितजी ने जिन बच्चो को शैशव मे ही उदात्त सस्कारो से सुसस्कृत किया है, वे अपने जीवन मे मानवीय विकृतियो के शिकार होने से बचे रहे है।

जबकि हमारा आज का नागरिक जीवन ईमानदारी और सदाचार की बेहद अपेक्षा करता है। ऐसे समय मे पण्डितजी का युवको के प्रति किया गया सुप्रयत्न निश्चय ही स्तुति के योग्य है, व्यक्तिगत रूप से पण्डितजी सहृदयता और विनय जैसे विविध गुणो से सम्पन्न है और आज के जमाने की सबसे बड़ी विशेषता उनमे यह है कि "कथनी और करनी" के सामञ्जस्य को अपने जीवन मे बनाये रखा है। यही कारण है कि लोगो के मन मे उनके प्रति आदर और श्रद्धा का भाव विद्यमान है।

पण्डित दयाचन्द जैन, प्राचार्य, सागर (म. प्र.)

श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि वालो के अगणित शिष्य, जिन्होने अपनी अप्रबुद्धावस्था में उनसे प्रबोध प्राप्त किया था और क्रम से विकास प्राप्त कर वर्तमान मे शास्त्री, आचार्य, एडवोकेट, एम ए. पी-एच. डी. आदि पदवियो से विभूषित हो गए हैं। अपने आद्य विद्यागुरु का सम्मान समारोह कर रहे हैं, इन भाईयो का उक्त प्रयास अभिनन्दनीय है।

अब पण्डितजी के निधनोपरान्त प्राप्त सवेदना सदेशो को सक्षेप मे दे रहे है –

पण्डित जगन्मोहनलालजी शास्त्री, कटनी

पण्डित गोरेलालजी प्राचीन विद्वान् थे। हमारा उनका गत 50 साल से परिचय था। वे बहुत सौम्य प्रकृति के विद्वान् तो थे ही सदाचारी, दृढ प्रतिज्ञ, सेवाभावी भी थे। उनका वियोग आप सबको दुखकारक तो स्वाभाविक है। यह हम लोगों को भी शोककारक है। संसार की इस अबाधगति को कोई रोक नहीं सकता, सबके सामने आती है। उसे वस्तु स्वभाव जानकर शोक दूर करने का प्रयत्न करना तथा उनके पद चिन्हो पर चलकर उनकी कीर्ति को अमर करना। उदासीनाश्रम की देखरेख व्यवस्था बनाये रखना, वह उनका कीर्ति स्मारक है।

पण्डित नाथूलाल शास्त्री, इन्दौर

पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के स्वर्गवास का समाचार जानकर अत्यन्त दु ख हुआ। पण्डितजी यहाँ पर हुकुमचन्द सस्कृत महाविद्यालय इन्दौर के विद्यार्थी रहे है। उनकी त्यागवृत्ति प्रारम्भ से ही थी। दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम द्रोणगिरि मे दीर्घकाल तक रहकर उन्होने बहुत सेवा की है। उनकी स्मृति वही बनी रहे ऐसी कोई योजना तैयार करे।

प्रो. खुशालचन्द जैन, गोरावाला, वाराणसी

आज श्रीमान् पण्डित गोरेलालजी की समाधि का समाचार जानकर शोक हुआ क्योकि वे अपने आप मे उस अचल में पूज्यवर श्री 105 गुरुवर वर्णीजी की परम्परा के प्रकाश स्तम्भ थे। यही भावना है कि आप सब बाल-गोपाल अपनी इस पारिणामिक हानि को सद्धर्म के प्रसाद से सह सके और उनके उच्च आदर्शों का आचरण करके उन्हे कृतकृत्य करे। उनका अभाव हमारे द्रोणांचल की अपूरणीय क्षति है।

पण्डित विजयकुमार साहित्याचार्य, महावीरजी

यह सूचना पाकर कि पूज्य गुरुदेव का समाधिमरण पूर्वक देहावसान हो गया है, अति तीव्र शोक

इनसे मेरा 50 वर्ष पुराना परिचय है।

डॉ. भागचन्द "भागेन्दु" अध्यक्ष संस्कृत विभाग, दमोह

शोक पत्र से परम पूज्य मनीषी ब्र पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के देहावसान के समाचार जानकर हार्दिक सन्ताप हुआ। वे पूज्य वर्णीजी के युग के और प्रवृत्तियों के चरितार्थ कर्ता जीवन्त इतिहास थे, जिन्होने अपनी सेवाओं को कभी इनकैश नहीं किया। उनकी महनीय सेवाओ का सुफल बुन्देलखण्ड की सुदीर्घ शिष्य परम्परा, तीर्थक्षेत्र और सास्कृतिक वैभव से मण्डित समाज है। उन्होने आप सभी की एक सुयोग्य सम्पदा समाज को प्रस्तुत की है। जिस पर सभी को गौरव है। उनके निधन से इतिहास, संस्कृति, समाज और धर्म की एक महनीय अपूरणीय क्षति हुई है। हम सभी उन्हे सादर स्मरण, नमन कर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते है।

मुनि नमिसागरजी, पार्श्वनाथ भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर

मालूम पडा कि पण्डित गोरेलालजी जैन का स्वर्गवास बड़ी अच्छी तरह से हुआ। णमोकार मत्र पढते पढते हुआ। पण्डित गोरेलालजी को आशीर्वाद है कि अगले भव मे पुन मुझसे मिले और सस्कृत व्याकरण आदि पढाई का मौका मिले, उनकी आत्मा को शान्ति मिले।

डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी, छतरपुर

दिवगत गुरुदेव एक साधक का जीवन जी रहे थे। अत सद्‌गति सुनिश्चित है।

डॉ. कन्छेदीलाल जैन, तेंदूखेड़ा

पण्डितजी के स्वर्गवास से समाज मे एक बहुत बडी कमी आई है। पण्डितजी ने जीवन भर जो समाज सेवा की है, वह चिरस्मरणीय रहेगी।

धर्मचन्द जैन, इम्फाल

पण्डितजी के समाचार पढकर अत्यन्त खेद हुआ। पण्डितजी के द्वारा हजारो बालको का उद्धार हुआ है।

श्रीमंत सेठ भगवानदास शोभालाल जैन, सागर

श्री ब्र पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के निधन का समाचार पाकर दु ख हुआ। वे समाज सेवी एव धर्म श्रद्धालु, त्यागी व्यक्ति थे।

कुन्दनलाल जैन, रिटायर्ड प्रिंसीपल, दिल्ली

श्री पण्डित गोरेलालजी के निधन का समाचार पढकर अत्यन्त दु ख हुआ, निश्चय ही वे पुरानी पीढी के मूर्धन्य विद्वान् थे, उन्होने द्रोणगिरि पाठशाला की जो सेवा की और वहा से उनकी जो शिष्य मण्डली निकली वह निश्चय ही जैन सस्कृति और समाज की सेवा मे तल्लीन है। मैंने तो केवल 50 वर्ष पूर्व उनके पुण्य दर्शन मात्र ही किए थे पर उनकी यशोगाथा से अत्यधिक अभिभूत था। जैसा कि पण्डित फूलचन्दजी ने उन्हे उदारचेता, सरल हृदय और त्यागमय जीवन का प्रतीक कहा है। परम श्रद्धेय पूज्य स्वर्गीय वर्णीजी ने भी अपनी जीवन गाथा मे उनके त्यागमय जीवन और विद्वत्ता की भूरि–भूरि प्रशसा की है। अत उनके अभाव मे जैन समाज का जो स्थान रिक्त हो गया है उसकी पूर्ति दुर्लभ दिखाई देती है। मै उनके

इनसे मेरा 50 वर्ष पुराना परिचय है।

डॉ. भागचन्द "भागेन्दु" अध्यक्ष संस्कृत विभाग, दमोह

शोक पत्र से परम पूज्य मनीषी ब्र पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के देहावसान के समाचार जानकर हार्दिक सन्ताप हुआ। वे पूज्य वर्णीजी के युग के और प्रवृत्तियों के चरितार्थ कर्ता जीवन्त इतिहास थे, जिन्होने अपनी सेवाओ को कभी इनकैश नहीं किया। उनकी महनीय सेवाओ का सुफल बुन्देलखण्ड की सुदीर्घ शिष्य परम्परा, तीर्थक्षेत्र और सास्कृतिक वैभव से मण्डित समाज है। उन्होने आप सभी की एक सुयोग्य सम्पदा समाज को प्रस्तुत की है। जिस पर सभी को गौरव है। उनके निधन से इतिहास, संस्कृति, समाज और धर्म की एक महनीय अपूरणीय क्षति हुई है। हम सभी उन्हे सादर स्मरण, नमन कर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते है।

मुनि नमिसागरजी, पार्श्वनाथ भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर

मालूम पडा कि पण्डित गोरेलालजी जैन का स्वर्गवास बड़ी अच्छी तरह से हुआ। णमोकार मत्र पढते पढते हुआ। पण्डित गोरेलालजी को आशीर्वाद है कि अगले भव मे पुन मुझसे मिले और सस्कृत व्याकरण आदि पढाई का मौका मिले, उनकी आत्मा को शान्ति मिले।

डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी, छतरपुर

दिवगत गुरुदेव एक साधक का जीवन जी रहे थे। अत सद्‌गति सुनिश्चित है।

डॉ. कन्छेदीलाल जैन, तेंदूखेड़ा

पण्डितजी के स्वर्गवास से समाज मे एक बहुत बडी कमी आई है। पण्डितजी ने जीवन भर जो समाज सेवा की है, वह चिरस्मरणीय रहेगी।

धर्मचन्द जैन, इम्फाल

पण्डितजी के समाचार पढकर अत्यन्त खेद हुआ। पण्डितजी के द्वारा हजारो बालको का उद्धार हुआ है।

श्रीमंत सेठ भगवानदास शोभालाल जैन, सागर

श्री ब्र पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के निधन का समाचार पाकर दु ख हुआ। वे समाज सेवी एव धर्म श्रद्धालु, त्यागी व्यक्ति थे।

कुन्दनलाल जैन, रिटायर्ड प्रिंसीपल, दिल्ली

श्री पण्डित गोरेलालजी के निधन का समाचार पढकर अत्यन्त दु ख हुआ, निश्चय ही वे पुरानी पीढी के मूर्धन्य विद्वान् थे, उन्होने द्रोणगिरि पाठशाला की जो सेवा की और वहा से उनकी जो शिष्य मण्डली निकली वह निश्चय ही जैन सस्कृति और समाज की सेवा मे तल्लीन है। मैंने तो केवल 50 वर्ष पूर्व उनके पुण्य दर्शन मात्र ही किए थे पर उनकी यशोगाथा से अत्यधिक अभिभूत था। जैसा कि पण्डित फूलचन्दजी ने उन्हे उदारचेता, सरल हदय और त्यागमय जीवन का प्रतीक कहा है। परम श्रद्धेय पूज्य स्वर्गीय वर्णीजी ने भी अपनी जीवन गाथा मे उनके त्यागमय जीवन और विद्वत्ता की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। अत उनके अभाव मे जैन समाज का जो स्थान रिक्त हो गया है उसकी पूर्ति दुर्लभ दिखाई देती है। मै उनके

भगतराम जैन, मंत्री श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, आहारजी

श्री ब्र पण्डित गोरेलालजी का 29 3 91 को निधन हो जाने के समचार को जानकर अत्यन्त खेद हुआ। श्री 1008 भगवान शान्तिनाथ से प्रार्थना है कि स्वर्गस्थ आत्मा को शान्ति एव आप सभी परिवार जनो को दु.ख सहन करने की क्षमता प्राप्त हो।

कपूरचन्द जैन, मंत्री जैन समाज, छतरपुर (म. प्र.)

जैनदर्शन के विख्यात विद्वान् पण्डित ब्रह्मचारी श्री गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि के 29 3.91 को हुए आकस्मिक निधन पर जैन समाज गहन दु ख व्यक्त करती है। माननीय पण्डितजी ऐसे चारित्रवान् विद्वान् थे जिन्होनें ज्ञान के दीपक को चारित्ररूपी तेल से सदैव प्रज्ज्वलित रखा। द्रोणगिरि विद्यालय के प्राचार्य के रूप मे अनेक वर्षों तक सेवारत रहकर आपने बुन्देलखण्ड मे जैनदर्शन एवं सस्कृत के अनेक विद्वान् तैयार कर बुन्देलखण्ड समाज की सराहनीय सेवा की है।

श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, द्रोणगिरि

परम पूज्य गुरुवर्य ब्र पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के निधन के समाचार जानकर अत्यन्त खेद हुआ, वह सम्पूर्ण क्षेत्र के/सस्थाओ के आधार स्तम्भ थे, उन्हीं के सद्प्रयत्नो से द्रोणगिरि क्षेत्र का विकास हुआ। उन्होने द्रोणगिरि की शोभा बनाये रखी। अब भविष्य मे ऐसा विद्वान् पैदा होना जल्दी सम्भव नहीं है। यह अपूरणीय क्षति हुई है। क्षेत्र की प्रबन्ध समिति दिवगत आत्मा के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है।

शीतलचन्द फौजदार, उपमंत्री
श्री महावीर दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय, साढूमल (ललितपुर)

महाविद्यालय पण्डितजी के निधन को सामाजिक सस्थाओ एव जैन जगत् की अपूरणीय क्षति मानता है तथा स्वर्गीय आत्मा को श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

पण्डित जयकुमार जैन, प्रधानाचार्य, शा. उ. मा. विद्यालय, अनगौर (छतरपुर)

शासकीय उच्चतर महाविद्यालय के हम सभी शिक्षक एव छात्रगण श्री पण्डित गोरेलालजी कें गोलोकवासी होने पर अत्यन्त क्षोभ सतप्त है। ईश्वर से प्रार्थना करते है कि उनके आकस्मिक निधन से हुई क्षति को सहन करने की शक्ति उनके परिवार को दे तथा शान्ति प्रदान करे।

दिगम्बर जैन समाज घुवारा, शाहगढ, रामटोरिया, मढदेवरा बकस्वाहा, बम्हौरी, बडामलहरा, भगवा, बडागाव, बिजावर, खजुराहो, टीकमगढ, ककरवाहा आदि समाज के शोक सम्वेदना प्रस्तावों मे पण्डितजी के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर प्रकाश डालकर उनकी अपूरणीय क्षति के प्रति हार्दिक दु ख प्रगट किया गया है।

□□□

सारा कार्य पिताजी से सीखा और सभाला। रिश्तेदारी का उत्तरदायित्व भी निवाहा। यहॉ एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि पण्डितजी का तथा पण्डितजी के समस्त परिवार का पूज्य वर्णीजी से निकट का सम्बन्ध रहा है इस प्रसग मे श्री अजितकुमारजी ने पिताजी के चरण सान्निध्य मे द्रोणगिरि विद्यालय मे अध्ययन करने के बाद श्री गणेशवर्णी सस्कृत महाविद्यालय सागर मे अध्ययन करने के उद्देश्य से प्रवेश लिया लेकिन भाग्य मे सागर मे पढना नहीं था। वहॉ बीमार होने के कारण घर वापिस आ गए। पिताजी ने इनका विवाह करने का सोचा लेकिन पुत्र पिता से सकोच के कारण मना नहीं कर पाया। श्री अजितकुमारजी ने एक पत्र पूज्य वर्णीजी को लिख दिया। पूज्य वर्णीजी ने तुरन्त पत्र का उत्तर इनके पिताजी को लिखा।

जिसके आधार पर इनकी शादी 3 वर्ष रोक दी गई। बाद मे रानीताल ग्राम मे श्री सिघई गुलाबचन्दजी की ज्येष्ठ पुत्री शान्तिबाई से इनकी शादी सम्पन्न हुई। अनपढ शान्तिबाई जब पण्डितजी की पुत्रवधू बनकर आयीं तो पण्डितजी ने धार्मिक संस्कार दिए। वे परिश्रमी, शान्त स्वभावी एव सेवाभावी रहीं है। लम्बी बीमारी के कारण दिनांक 20 मार्च 1997 को उनका स्वर्गवास हो गया। इनकी दो पुत्रियो मे ज्येष्ठ पुत्री कुसुम ने अपने बब्बाजी से धार्मिक शिक्षा पायी तथा लौकिक शिक्षा मे स्नातक उपाधि प्राप्त की। दमोह निवासी श्री महेश बडकुल के साथ गृहस्थ जीवन प्रारम्भ किया। दोनो व्यक्ति अत्यन्त धार्मिक, साधुचर्या मे रत, सयमी जीवन से रह रहे है मुनिभक्त है विशेषरूप से आचार्य प्रवर विद्यासागरजी महाराज के अनन्य भक्त है। द्वितीय पुत्री आशा सागर निवासी श्री राजकुमारजी गोदरे के साथ विवाही है।

श्री अजितकुमारजी अत्यन्त धार्मिक अपने पूज्य पिताजी के पद चिन्हो पर चल रहे है। द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ के छह वर्ष तक अध्यक्ष रहे हैं। इनके अध्यक्षीय कार्यकाल मे भगवान् महावीर 2500 वॉ निर्वाण महोत्सव वर्ष मे म प्र. और उत्तर प्रदेश के प्रमुख नगरो मे नि शुल्क नेत्र शिविरो का सघ के माध्यम से आयोजन हुआ उसमे रोगियो की परिचर्या बडे उत्साह से करते थे। सार्वजनिक क्षेत्र मे भी ग्राम के विकास मे आपने दस वर्ष तक निर्विरोध सरपच रहकर बहुत बडा योगदान किया है। दीन–दु खी, असहाय, परेशान व्यक्तियो की आप हमेशा सहायता करते रहते है। समस्याओ से युक्त व्यक्तियो की समस्याओ का समाधान करना आपका कार्य रहा है। वर्तमान मे पूर्ण सयमी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। पूजन–पाठ, विधान, प्रतिष्ठा आदि धार्मिक कार्य कराने मे आपकी विशेष रुचि है।

श्री विमलकुमारजी

पण्डितजी के द्वितीय पुत्र विमलकुमारजी ने सस्कृत प्रथमा तक अपने पिताजी से ही शिक्षा प्राप्त की। बरेठी निवासी श्री दामोदरजी की पुत्री जमुनाबाई से आपका विवाह हुआ इनके पुत्र महेन्द्र जैन ने सोवियत रूस मे 6 वर्ष अध्ययन कर इन्जीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की है। इनका विवाह सुजानपुरा (टीकमगढ) निवासी श्री बालचन्दजी की पुत्री इन्दिरा से हुआ जो शासकीय सेवा मे शिक्षिका है। महेन्द्र बडामलहरा मे प्रतीक्षा मेडीकोज प्रतिष्ठान चला रहे है। श्री विमलकुमारजी परिश्रमी, सेवाभावी, व्यक्ति है इनका द्रोणगिरि मे महावीर किराना भण्डार है। यह राजनीति मे भी सक्रिय है। ग्राम पचायत सेधपा के पार्षद होने के नाते ग्राम के विकास मे योगदान करते है। इनकी धर्मपत्नी श्रीमती जमुनाबाई का 1987 मे मस्तिष्क ज्वर से स्वर्गवास हो चुका है।

प्रमिला एम एस.- सी. (भौतिक शास्त्र) हैं इनका सम्बन्ध डॉ. श्रीयांशकुमारजी सिघई, प्राध्यापक केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ, जयपुर के साथ हुआ है। प्रमिला स्वय भी राजस्थान शिक्षा विभाग में स्कूल व्याख्याता है साकेत और सिद्धान्त नामक दो पुत्रो का इनका सीमित परिवार हैं।

पुत्रों मे ज्येष्ठ पुत्र निरन्जन बी. काम तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद सन्मति प्रोवीजन स्टोर के नाम से पन्ना नाका छतरपुर में अपना प्रतिष्ठान संचालित कर रहे हैं। इनकी शादी बालाघाट निवासी श्री पटुवारी गुलाबचन्दजी की पुत्री अवधेश जैन से हुई है। इनसे मयक पुत्र होने के कारण पण्डितजी की चतुर्थ पीढी का प्रारम्भ हुआ है। द्वितीय पुत्र राजीव जैन ने बी. एस-सी. करने के बाद आकर्षण वेन्टेक्स ज्वेलरी एव जनरल स्टोर के नाम से अपना धन्धा प्रारम्भ किया है। इनका विवाह सागर निवासी श्री नेमीचन्दजी मलैया की पुत्री अरुणा एम. ए. (हिन्दी, समाजशास्त्र) के साथ हुआ है। तृतीय पुत्र पीयूष ने जयपुर में अध्ययन करते हुए जैनदर्शन शास्त्री, परीक्षा उत्तीर्ण की है और अन्तिम पुत्र पंकज जैन ने छतरपुर मे ही रहकर एम ए, बी एड किया है वर्तमान मे एल एल बी कर रहे हैं तथा दोनो प्रतिष्ठानों मे सहयोग करते हुये नान बैंकिग सस्थाओ मे कलेक्शन का बखूबी कार्य कर रहे हैं। इसप्रकार श्री कमलकुमारजी का पूरा परिवार पूर्ण शिक्षित, व्यवहारकुशल एव अपने-अपने कार्यक्षेत्र मे योग्यता पूर्वक क्रियाशील है। कमलकुमारजी इस उत्कर्ष के लिए पूरा श्रेय अपने पिताजी को ही देते हैं।

श्री रतनचन्दजी

पण्डितजी की चतुर्थ सन्तान श्री रतनचन्दजी हैं। पिताजी के समीप ही सस्कृत प्रथमा की परीक्षा उत्तीर्ण कर अध्ययन के लिए मोरेना एवं जयपुर गए लेकिन अध्ययन में रुचि न होने के कारण घर वापिस आ गए। अब द्रोणगिरि मे ही कृषि कार्य करते है। इनका सम्बन्ध घुवारा निवासी पटुवारी हीरालालजी की पुत्री प्रेमलता के साथ हुआ जिससे तीन पुत्री एव दो पुत्र हैं। इनकी ज्येष्ठ पुत्री ऊषा का सम्बन्ध बरखेरा सिकन्दर निवासी श्री चौधरी राकेश के साथ हुआ है तथा शेष दों पुत्रीं अभी अध्ययनरत हैं। पुत्र सुनील द्रोणगिरि सादूमल मे अध्ययन करने के बाद जयपुर मे अध्ययन कर रहा है। एक पुत्र मनोज घर पर ही अध्ययन करता हुआ पिता के कार्यों में सहयोग करता है।

श्रीमती काशीबाई

काशीबाई पण्डितजी की एकमात्र पुत्री हैं, जिन्होने अपने पिताजी से ही अध्ययन कर धार्मिक सस्कार प्राप्त किए। मडदेवरा निवासी शाह गनेशीलालजी के साथ विवाह होने के बाद से अपना गृहस्थ जीवन सुखमय व्यतीत कर रही है। इनके तीन पुत्रो मे ज्येष्ठ पुत्र जिनेश एम कॉम मध्य प्रदेश राज्य परिवहन निगम मे लेखापाल के पद पर छतरपुर मे कार्यरत है। द्वितीय पुत्र अरुण एम ए एव तृतीय पुत्र भागचन्द हाईस्कूल मे अध्ययनरत है। श्रीमती काशीबाई अपनी मॉ की तरह ही परिश्रमी, मृदुभाषी, व्यवहार कुशल एव धार्मिक महिला हैं।

इसप्रकार परिवारजानों का थोड़ा सा परिचय जानने पर सुनिश्चित हो जाता है कि पण्डितजी का परिवार शिक्षित, समाजसेवी और आदर्श परिवार की श्रेणी मे आता है।

• बडामलहरा
छतरपुर (म प्र)

□□□

जब भी काकाजी देहात से धंधा करके लौटते थे अपने साथ जो रुपया पैसा लाते थे उसे सुरक्षित सँभालकर रखने के लिए प्राय. मुझे ही देते थे। काकाजी एक अच्छा बलिष्ठ घोड़ा रखते थे उसके माध्यम से ही देहात जाकर धंधा करते थे। यदा कदा मुझे भी जब मै 8–10 वर्ष का था अपने साथ घोडे पर बैठाकर देहात ले जाते थे, दो तीन दिन अपने साथ रखते थे और खाने–पीने का पूर्ण ध्यान रखते थे। मुझे भी काकाजी के साथ रहने में अच्छा लगता था। पिताजी अपने ज्येष्ठ भ्राता का पूर्ण सम्मान करते थे, उन्हे आदर देते थे।

1954 में जब मैं अध्ययन के लिए बनारस जाने लगा उस समय काकाज़ी को बहुत दु.ख हुआ और उन्होने रोकने का काफी प्रयास भी किया। लेकिन शिक्षा के उद्देश्य से मै जा रहा था इससे उदास मन से उन्होंनें मुझे जाने की स्वीकृति दे दी। जब मै अवकाश के समय घर आता काकाजी बड़े प्रसन्न होते थे। काकाजी से मेरा अधिक सम्पर्क रहने के बावजूद भी काकाजी के अन्तिम समय मे मैं नहीं रह पाया। अगस्त 1957 मे जब मैं वनारस मे था, काकाजी का स्वर्गवास हो गया मुझे सेवा का भी अवसर नहीं मिल पाया।

हमारे पूज्य पिताजी अपने बडे भाई एवं हमारे काकाजी का बहुत ध्यान रखते थे अस्वस्थ अवस्था मे पूर्ण मनोयोग से सेवा परिचर्या करते थे। काकाजी अनपढ भले ही थे लेकिन धर्म पर उन्हे दृढ आस्था थी। णमोकार मंत्र पर श्रद्धा थी। अगस्त 1957 में जब काकाजी बीमार हुए तब आपको यह आभास हो गया कि यह हमारा अन्तिम समय है उन्होने अपने भाई श्री पण्डित गोरेलालजी से इच्छा प्रकट की कि हमारा मरण अच्छा हो ऐसा प्रयास करें। पिताजी ने अपने भाई का अन्तिम समय जान उन्हे धार्मिक वातावरण मे रखा। समाधिमरण, बारह भावना, स्तोत्रो के पाठ का क्रम चलता रहा श्री ब्र. रमाबाईजी सम्बोधन देतीं रहीं। अन्त समय काकाजी के परिणाम अत्यन्त निर्मल हो गए और मरण से एक दिन पूर्व परिवारजनों से, परिचितो से क्षमा याचना की तथा णमोकार मंत्र का स्मरण करते रहे। अत्यन्त मन्द कषाय से युक्त पूज्य काकाजी का स्वर्गवास पूर्ण सावधान अवस्था मे हुआ। जबकि उनके परिचित व्यक्ति यह सोच भी नहीं सकते थे कि काकाजी का इतना अच्छा मरण होगा। काकाजी के स्वर्गवास के बाद पूज्य पिताजी ने गिरिराज पर स्थित प्राचीन आदिनाथ जिनालय की वेदी का जीर्णोद्धार कराया, सगमरमर लगाया। उनके ही न्यायोपात्त द्रव्य का सदुपयोग कर उनकी स्मृति को स्थायी बना दिया। आज हमारे काकाजी अवश्य हमारे सामने नहीं हैं लेकिन उनकी चिर स्मृतियां हमारे मांनस पटल पर अवश्य हैं और जब भी मैं उनका स्मरण करता हूँ पूरा चेहरा आंखो के सामने आ जाता है। लगता है कि हमारे पूज्य काकाजी हमारे सामने हैं हमसे कुछ कह रहे हैं। धन्य हैं हमारे पूज्य काकाजी जिनकी मन्द कषाय और परोपकार भावना से वे आज भी जाने जाते हैं।

पूज्य बुआजी श्रीमती मथुराबाई

हमारी बुआ वात्सल्यमूर्ति श्रीमती मथुराबाईजी पिताजी की बड़ी वहिन थीं। इससे पिताजी उन्हे जिया का सम्बोधन देते थे हम लोग तो उन्हें बुआजी कहकर ही उनका स्नेह प्राप्त करते थे। बुआजी पढ़ी लिखी नहीं थीं क्योकि उस समय बालिका शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। इनका विवाह छोटी उम्र मे ही पास के ग्राम वरमा में श्री शाह धर्मदासजी, जो धार्मिक थे, के साथ हुआ था। हमारे फूफाजी कुछ समय याद वरमा ग्राम छोड़कर बड़ामलहरा मे रहने लगे थे। इनके क्रमशः काशीराम, घनश्यामदास, नन्दकिशोर एव कपूरचन्द चार पुत्र थे इनमे से काशीराम और घनश्यामदासजी का स्वर्गवास हो गया है। श्री नन्दकिशोरजी वस्त्र व्यवसाय एव श्री कपूरचन्दजी किराना व्यवसाय करते हैं। पूज्य बुआजी की गोरावाई और चतरावाई दो

1959 में जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बड़ामलहरा में सर्विस प्रारम्भ करने के पूर्व मेरी शादी हो चुकी थी मेरी व्यवस्था के लिए माँ ही हमारे साथ रहीं। 1964–65 में बी. एड प्रशिक्षण के दौरान जब मुझे छतरपुर में रहना पडा उस समय भी माँ ने मुझे अकेला नहीं छोडा मेरे साथ ही रहकर अपना स्नेह प्रदान किया। 1965 मे मेरी पुत्री प्रमिला के जन्म के समय भी माँ ने अपनी बहू प्रभा की सार संभाल की। उसके खान–पान पथ्य का बराबर ध्यान रखा तथा अपनी लाडली नातिन प्रमिला का लालन–पालन भी अपनी गोद मे ही किया।

1965 मे शासकीय सेवा मे आ जाने के कारण प्राय· मुझे बाहर ही रहना पड़ा। 1969 से छतरपुर मे निवास होने के बाबजूद माँ ने मुझे भरपूर सहयोग दिया। मेरे पुत्रों निरंजन, राजीव, पीयूष, पकज का जन्म भी माँ के ही सान्निध्य मे हुआ। उस समय सभी बच्चो की देख रेख माँ ही करतीं थीं। द्रोणगिरि मे मेरे तीनो भाईयों के साथ माँ रहती रहीं हैं फिर भी मुझे माँ का जो स्नेह और मेरे परिवार को जो अपार वात्सल्य मिला है उसे मैं वर्णन नहीं कर सकता।

मुझे जहां तक स्मरण है माँ ने हमेशा हमारे पिताजी का बराबर ध्यान रखा है। समय पर उन्हे भोजन देना, उनकी दिनचर्या को संचालित रखने मे पूर्ण सहयोग करना माँ का प्रथम कर्तव्य रहा है।

अपने जीवन मे मैंनें माँ का स्नेह बहुत अधिक पाया लेकिन माँ को न तो मैं अपेक्षित सुविधा दे पाया और न ही उनकी सेवा करने का संतोष मुझे है। माँ का आदर मैं बहुत करता था लेकिन माँ कोई कष्ट होने पर भी नहीं कहतीं थीं। जब भी कोई घर परिवार सम्बन्धी चर्चा करनी होती थी तो न मालूम क्यो वे मुझसे प्रत्यक्ष बात नहीं करतीं थीं। यदि कोई बात करनी भी होती थी तो मेरी पत्नी के माध्यम से यह चर्चा होती थी। मुझे दु.ख होता था कि मेरी माँ होते हुए भी मुझसे अपनी सुख दुख की बात करने में इतना संकोच करतीं हैं। जबकि मैनें माँ से कुछ सामान की कमी पूँछी तो न कर दिया खर्च हेतु यदि कुछ राशि देने की कोशिश की तो प्रथम तो लेना ही नहीं और यदि बहुत आग्रह करने पर ली भी तो मैने पाया कि मेरी दी हुई राशि को उन्होनें स्वयं के हित मे उपयोग नहीं किया बल्कि उस राशि से उपयोगी सामग्री खरीदकर मेरे पास ही भेज दी।

पिताजी के स्वर्गवास के बाद (29 मार्च 1991) माँ यद्यपि दु·खी थीं लेकिन उन्होने अपना दु.ख हम लोगो को सान्त्वना देने मे ही भुलाया और जब कभी मैं अपने पिता के अभाव का अनुभव करते हुए दु खी हुआ तो माँ ने ही मुझे धैर्य बँधाया और कहा कि अभी मैं हूँ। किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। इसप्रकार उन्होने अपना अपूर्व स्नेह तो दिया ही पिता के अभाव को भी नहीं खलने दिया।

मेरा तथा मेरे परिवार का यह दुर्भाग्य रहा कि हम लोगो को माँ की सेवा का अवसर उनके अन्तिम समय पर नहीं मिल पाया। दुर्भाग्य से उस समय मैं वहीं नहीं था और जब 12 जून 1992 की रात्रि मे दूरभाष पर मुझे माँ के स्वर्गवास का समाचार मिला तो मैं हतप्रभ रह गया, मुंह से कोई शब्द नहीं निकला, नेत्रो से झर–झर आंसुओ की धारा बहने लगी, पूरा परिवार शोकमग्न हो गया। रात्रि में ही मैं अपनी पत्नी और भतीजे महेन्द्र के साथ ही मलहरा आया। बस से उतरकर पैदल ही द्रोणगिरि पहुचा दरवाजे खुलवाये और आंगन में पहुँचकर माँ के कमरे मे दृष्टि गई तो दीवार के सहारे खडा का खड़ा रह गया। भाईयों ने समझाया मुझे सहारा देकर बैठाया। मैंने भाईयो से कहा कि मुझे माँ के अन्तिम दर्शन भी नहीं मिल पाये भाईयो ने कहा कि क्या करे कोई बीमारी नहीं थी। ऐसी स्थिति भी समझ मे नहीं आई कि माँ बिना किसी से बोले ही चली

पारिवारिक अनुभूति

परम उपकारी पूज्य पिताजी का परिवार को अन्तिम सन्देश
प्रतिदिन दर्शन-पूजन, स्वाध्याय अवश्य करना

—अजितकुमार जैन

पिता अपने परिवार का शुभ चिन्तक होता है। वह परिवार का पालन–पोषण, शिक्षा–दीक्षा और आजीविका की व्यवस्था अपना कर्तव्य समझकर करता है तथा यथाशक्ति पूरे परिवार की सुख समृद्धि के लिए प्रयास करता है। हर पिता अपनी सन्तान को सुयोग्य और सम्पन्न देखना चाहता है।

हमारे पिताजी भी भरे–पूरे परिवार से थे। अपनी उम्र मे उन्होनें अपने परिवार को पालने, उसे शिक्षित और सुव्यवस्थित करने का उत्तरदायित्व निभाया। पिताजी हमेशा सम्मिलित परिवार के पक्षधर रहे वे स्वय भी अपने सभी भाईयों के साथ रहे तथा आगे भी उन्होने साथ रहने का प्रयास किया। अपने समय में तो पिताजी ने अपने परिवार में विभाजन होने ही नहीं दिया एवं भविष्य में भी परिवार व्यवस्थित रहे उसके लिए ही उन्होने अपने अन्तिम समय तक प्रेरणा दी।

पिताजी धार्मिक प्रवृत्ति के प्रारम्भ से ही रहे। उन्हे जिनेन्द्र भगवान् पर दृढ श्रद्धा थी, इसी कारण उनका अधिकतर समय जिनेन्द्र स्तवन, पूजन, स्वाध्याय मे व्यतीत होता था। प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी का उपवास तो वे सन् 1955 से ही करने लगे थे। उनका जीवन पूर्ण संयमित, सादगीपूर्ण था। अपने जीवन मे पिताजी ने अथक परिश्रम कर परिवार के जीवन–यापन हेतु सम्पत्ति का अर्जन किया। सम्पत्ति के अर्जन मे भी विवेक से ही कार्य किया और न्यायपूर्वक ही कमाया।

पिताजी ने साहूकारी भी की, किसानो से पैसे का लेन–देन रखा, किन्तु कभी अन्याय नहीं किया। अर्जित द्रव्य का उपयोग पिताजी अपने परिवार के पोषण के साथ ही गरीबो को सहारा देने मे, दान–पूजा मे भी करते थे। अतिथि सत्कार में पिताजी हमेशा आगे रहे। जो भी क्षेत्र की वन्दना करने आया, पिताजी ने यथाशक्य उसका अतिथि सत्कार किया। पानी चाहने वाले को पानी दिया और भोजन कराने मे प्रसन्नता का अनुभव किया। ऐसा कोई दिन नहीं जाता था, जब पिताजी के चौके मे 2–4 अतिथि न आते हो। पिताजी की इस परम्परा को बनाये रखने के लिए हम लोगों ने भी पूर्ण प्रयास किया, क्योकि हम सभी पूज्य पिताजी की ही श्रम और साधना के द्वारा बने हुए हैं। उनके दिए संस्कारों से संस्कारित हैं। पिताजी का प्रयास रहा कि घर का कोई भी सदस्य धर्म की आस्था से न डिगे। जब अपने मंझले पुत्र विमलकुमार का पुत्र सोवियत संघ रूस अध्ययन हेतु गया तो उसके धार्मिक आचरण को बनाये रखने की चिता उन्हे रही। वे जानते थे कि धर्म विहीन देश मे पढने वाला धर्म से च्युत हो जावेगा और अपनी क्रियाओं मे विवेक नहीं रखेगा। इसी से उसके वापिस आने पर पुन. संस्कारित करने की भावना पिताजी के मन में रही।

पूज्य पिताजी सन् 1970 से घर से उदासीन होकर उदासीनाश्रम मे रहकर साधना करने लगे, प्रतिदिन गांव के जिनालय मे दर्शन करने आते और उसी समय 10–15 मिनट को घर आकर सभी की कुशल क्षेम लेते, मार्गदर्शन देते, बच्चो को धार्मिक संस्कारों की प्रेरणा देते। धार्मिक अध्ययन कराना, स्तोत्रों को याद कराना, पूँछना उनका प्रतिदिन का कार्य होता था। पिताजी ने अपने परिवार की स्थिति को देखा और उन्हे शका हुई कि कहीं हमारे बाद परिवार मे आपसी मन–मुटाव सम्पत्ति को लेकर न हो जावे। इससे उन्होंने परिवार के सदस्यो को दिनांक 6 मई 1989 को पत्र लिखकर भविष्य के लिए दिशा निर्देश

श्री सुशीलाबाईजी ने हमारे लिए बहुत कुछ पैसा खर्च किया है। विमल यदि पूजन में लग जावे तो ठीक है। उसके पूजन के संस्कार बने रहते और आजीविका चलती जाती। व्यापार मे उसे कोई लाभ नहीं होता। मवेशी अब कोई ठीक–ठिकाने के नहीं। उनको अलग कर देना, तुम लोग उनकी हिफाजत नहीं कर सकते। इसकी प्रतिलिपि सबके पास रखना।

तुम्हारा हितैषी इस पर्याय का
गोरेलाल

अब आप सब इसकी जानकारी करके चलना।

श्रीयुत् अजितकुमार, बिमलकुमार, कमलकुमार, रतनचन्द, चि. महेन्द्रकुमारजी आप लोग सदा जिनधर्म के प्रसाद से अपनी जिन्दगी पूर्ण करना क्योंकि धर्म ही सब के लिए सुख करने वाला है।

धर्म सेवन से पीछे नहीं रहना, यह पर्याय पुनः प्राप्त होने की आशा नहीं।

उपरोक्त पत्र पिताजी ने स्वय लिखा और अपने चारों पुत्रों तथा नाती चि. महेन्द्र को आवश्यक परामर्श देते हुए सदैव जिनधर्म में लगे रहने के लिए प्रेरित किया है। पूज्य पिताजी की इस अन्तिम इच्छा को अपने लिए प्रेरणा स्रोत मानते हुए मैं पालन करने का प्रयास कर रहा हूँ। पूज्य पिताजी के चरण चिन्हों पर चलकर यदि मैं अपने जीवन को सफल बना पाया तो निश्चित रूप से पूज्य पिताजी जहा भी होगे, सन्तोष का अनुभव करेगे। मैं उनके अनन्य उपकारो से उपकृत हूँ।

मेरे परम उपकारी-पूज्य पिताजी

मेरे परम उपकारी पूज्य पिताजी को सभी पण्डितजी उपनाम से ही जानते हैं। हमारा पूरा परिवार भी उन्हे पण्डितजी नाम से ही पुकारता था, वे तीन भाई थे। पिताजी सबसे छोटे थे, सबसे बढे श्री बिहारीलालजी जिन्हे हम बढे दद्दा कहते थे, को तो हमने देखा है लेकिन पण्डितजी के मझले भाई श्री बलदेवप्रसादजी जिनका असमय में निधन हो गया था, को नहीं देखा। बढे दद्दा श्री बिहारीलालजी की धर्मपत्नी बिना सन्तान के ही स्वर्ग सिधार गईं थीं। पूज्य पिताजी ने अपने बडे भाई साहब को पिता तुल्य माना और उनकी सेवा की। उनका निधन वि. सं. 2484 सन् 1958 मे हो गया था। वे स्वभाव से तेज लेकिन बहुत ही कोमल थे। अन्त समय मे उनके परिणाम बहुत ही सरल हो गए थे। वे मरण समय पूर्ण शान्त भाव से परिवार के सभी सदस्यो, परिचितो से क्षमायाचना करते हुए विशुद्ध परिणामो से पूर्ण सजग अवस्था मे णमोकार मंत्र पढते–पढते स्वर्गवासी हो गये। निरक्षर होते हुए भी अन्त समय मे उनके सरल परिणाम देखकर उनके स्वभाव से परिचित लोगों को आश्चर्य हुआ था।

पूज्य पिताजी के हम चार पुत्र क्रमशः अजितकुमार, विमलकुमार, कमलकुमार और रतनचन्द तथा एक पुत्री काशीबाई हैं। पूज्य पिताजी ने हम लोगों को योग्य बनाने के लिए बहुत अधिक प्रयत्न किया मुझे स्वयं पढाया और बाद में श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय सागर पढने हेतु भेजा लेकिन मेरे असाताकर्म के उदय से वहां की जलवायु अनुकूल नहीं हुई और घर वापिस आना पड़ा। पूज्य वर्णीजी के सम्पर्क में रहने के कारण वर्णीजी ने भी हम लोगों की शिक्षा के लिए पिताजी को प्रेरणा दी थी। उन्होनें मेरे अनुज कमलकुमार को स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी, रतनचन्दजी को श्री दिगम्बर जैन आयुर्वेदिक

पत्र के प्राप्त करने के साथ ही मैंने चिन्तन किया –

माता, पिता, बन्धु, स्वजन जाता न कोई साथ है,
संसार में भ्रमता हुआ प्राणी सदैव अनाथ है।
आयु क्षय के बाद में कोई न जीवन दे सके,
देवेन्द्र या मनुजेन्द्र मणि औषधि न कुछ भी कर सके।।

उक्त पंक्तियो का स्मरण करते हुए अपने में साहस बटोरा और उस दिन से ही संकल्प किया कि प्रतिदिन सुबह शाम दो दो घटे पिताजी की वैयावृत्ति और उनसे अपने आत्म कल्याण के लिए कुछ सीखूंगा। इसके पूर्व यदा कदा बाहर चला जाता था लेकिन पत्र के बाद बाहर जाना बंद कर दिया। तबसे बराबर आश्रम मे जाकर सुबह पूज्य पिताजी की सेवा करना, नहलाना, कपड़े धोकर सुखाकर व्यवस्थित ढंग से रखना तथा शाम को दो घंटे उनकी वैयावृत्ति करना उनसे चर्चा करना आत्म कल्याण की बातो को ग्रहण करना मेरी दैनिक चर्या हो गई थी।

दिनांक 9.11.90 को छतरपुर मे हमारे अनुज कमलकुमार के पुत्र निरंजन व राजीव ने आकर्षण फैशन हाउस एव जनरल स्टोर प्रारम्भ किया उसके मुहूर्त हेतु मुझे जाना था पिताजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था इससे वे तो छतरपुर नहीं पहुंचे लेकिन उन्होनें प्रसन्नता व्यक्त करते हुए मुझे उद्घाटन की सभी विधि बताकर छतरपुर भेजा और अपना आशीर्वाद भी दिया। दुकान खुलने के पश्चात् उन्होनें पिताजी को नये कपडे लेकर रख दिए। मैंनें वापस घर आकर दुकान खुलने का सभी समाचार बताया और कपडे पिताजी को सौंपे तो पिताजी ने कहा कि अच्छा काम हुआ लेकिन ये कपडे जो लाये हो उसका उपयोग नहीं कर पाना है, व्यर्थ खर्च किया।

प्राय अस्वस्थता की स्थिति मे उनके शिष्यो मे डॉ नरेन्द्र विद्यार्थी छतरपुर, वैद्य दामोदरजी घुवारा देखने आते रहते थे। वैद्यजी की दवा पर तो उन्हे बहुत अधिक भरोसा रहता था इससे अस्वस्थ अवस्था मे प्राय उन्हीं की दवा लेते थे।

मार्च 1991 की 16 तारीख को अचानक दिन मे आश्रम से आदमी आया और मुझे तथा मेरे मझले भाई विमलकुमार को बुलाने का सकेत दिया। तुरन्त हम दोनो आश्रम गए और पिताजी को कमरे मे तख्त के सहारे बैठे देखा चिन्ता तो थी ही पिताजी के चरण स्पर्श किए और बुलाने का कारण पूँछा, उन्होंनें दिनोदिन शारीरिक कमजोरी बढने का कारण बताया। हम लोगो के द्वारा उनसे घर चलने की सविनय प्रार्थना करने पर उन्होने एक ही व्यथा व्यक्त की कि हमारी अभी तक की साधना क्या व्यर्थ हो जायेगी ? घर मे साधना नहीं बन पावेगी। मैंनें उनको विश्वास दिलाया कि आपकी साधना मे घर में भी किसी प्रकार का व्यवधान नहीं होगा हम सभी पूर्ण सहयोगी रहेगे सेवा, देखरेख ओर वैयावृत्ति की अनुकूलता के लिए ही आपको घर ले जा रहे हैं। आश्रम जैसा ही वातावरण हम लोग घर मे बनावेंगे। अस्वस्थता के कारण पण्डितजी को घर वाले घर ले जा रहे हैं, यह सुनते ही आश्रमवासी जिसमें ब्र. लालचन्दजी भौंतीवाले अपंग स्थिति मे भी पिताजी के पास आ गए और कहने लगे कि पण्डितजी आप घर न जावे हम लोग अपनी सामर्थ्य भर आपकी सेवा करेंगे अन्य व्रतियो ने भी रोकने का प्रयास किया। रसोई बनाने वाली बाई, जो केलगुवां की थी, ने भी आग्रह किया कि मैं पिता के समान पण्डितजी की सेवा करूंगी आप उन्हे आश्रम में ही रखिये। जब

पाठ करते रहे। पिताजी संकेतों से अपनी जाग्रत अवस्था का आभासं कराते रहे। बराज वाली मौसी जो हम लोगो की मॉं की छोटी बहिन थीं, मॉं को संभाले रहीं। 29.3.91 को शाम के 6 40 पर पूज्य पिताजी हम लोगों के समक्ष ही चिरनिद्रा में विलीन हो गए और हम सभी को रोता बिलखता अपनी छत्रछाया से वंचित कर गए। पूज्य पिताजी के चरणो मे हम सभी बिलखते रहे। पूज्य पिताजी की परिचर्या मे श्री मल्लिकुमार फौजदार , सुरेश शास्त्री , क्षेत्र के कर्मचारी श्री धन्यकुमार, पवनकुमार, राकेश रानीताल, भैयालाल सिमरिया आदि लगे रहे।

पूज्य पिताजी को अन्तिम क्षण तक हम लोग देखते रहे कितनी समता के साथ उनका मरण हुआ यह देख सभी लोग इसप्रकार के मरण को धन्य मान हम सभी का भी इसी प्रकार का मरण हो यह सोचने लगे। चूँकि पिताजी प्रान्त मे प्रतिष्ठित थे और लगभग सभी के गुरु थे इससे दाह संस्कार मे सभी हो इस भावना से दिनांक 30 3 91 को प्रात दाह संस्कार किया गया। दाह सस्कार मे जन समूह उमड़ पड़ा और जिसने भी सुना दाह सस्कार मे सम्मिलित हुआ। अपार भीड़ थी। सभी पिताजी के सरल स्वभाव, परोपकार और सज्जनता के गुणगान करते थे। मैने अपने जीवन मे दाह सस्कार के समय इतना विशाल जन समूह नहीं देखा उस दिन पिताजी की लोकप्रियता का आभास हुआ।

4 अप्रेल को पिताजी की शुद्धता कर जब मैं आश्रम गया तो आश्रम स्थित व्रतियो ने कहा कि अब हम लोग बेसहारा हो गए। तत्वज्ञान कराने वाले अब नहीं रहे। ब्र. लालचन्दजी तो मुझसे लिपट गए और विलाप करते हुए कहने लगे कि हम भी पण्डितजी के पास शीघ्र ही जा रहे हैं। ब्र लालचन्दजी भी कुछ समय बाद चिरनिद्रा मे विलीन हो गए।

पिताजी प्रखर बुद्धि के थे उन्हें सहस्रनाम स्तोत्र , समयसार, गोम्मटसार, कर्मकाण्ड, जीवकाण्ड आदि की अनेक गाथाये याद थीं। मोक्षमार्ग प्रकाशक की तो एक–एक लाईन याद थी। इनके ज्ञान से प्रभावित अनेको साधुओ, मुनियो ने इनसे शिक्षा ग्रहण की थी। सन् 1990 मे पूज्य मुनिश्री नमिसागरजी महाराज ने तो अध्ययन करने की ही दृष्टि से द्रोणगिरि मे चातुर्मास किया था। उन्होनें आध्यात्मिक ग्रन्थो के साथ कातंत्र व्याकरण को भी पण्डितजी से पढा था। पूज्य मुनि कहा करते थे कि आपके पिताजी बहुत ही ज्ञानी हैं इनका मरण होने पर इन्हे देवगति ही प्राप्त होगी। मुनिराज पिताजी से बहुत प्रभावित थे। आचार्य शान्तिसागरजी महाराज, परम पूज्य आचार्य विमलसागरजी महाराज, आचार्य देशभूषणजी महाराज का सान्निध्य भी पिताजी को मिला था। वे आचार्यश्री विद्यासागरजी के सान्निध्य मे भी रहे। लेकिन त्याग और आध्यात्मिकता का सदेश तो पूज्य वर्णीजी एव क्षुल्लक चिदानन्दजी से ही उन्हे मिला जिसके आधार पर उन्होने आत्म साधना की।

पिताजी ने आध्यात्मिक रचनाये कीं हैं जिनमे बारह भावना, जैन गारी सग्रह भाग 1–2, आध्यात्मिक भजन महत्वपूर्ण हैं। मैं अपने परम उपकारी, हितैषी, आध्यात्मिकता के सन्देशवाहक अपने पिताजी के उपकारो से उपकृत हूँ और उन्हीं के चरण चिन्हो पर चलकर उन जैसी आत्म शाति की प्राप्ति हेतु प्रयासरत हूँ। मैं उनके चरणो मे शत शत नमन करता हूँ।

• द्रोणगिरि छतरपुर (म प्र)

□□□

बनाने का भरसक प्रयास किया। लेकिन मैं किसी सर्विस में स्थाई रूप से नहीं रह सका। पिताजी को मेरे जीवन की चिन्ता रही। उनके अन्तिम समय मुझे सेवा का बहुत मौका मिला, मैंने सेवा कर स्वयं तो अपने को सौभाग्यशाली माना, लेकिन पिताजी को मेरी चिन्ता बनी रही। पिताजी के उपकारो को कभी भुलाया तो नहीं जा सकता लेकिन मुझे अपने आप में यह सोचने को रह गया कि मैं अपने पूज्य पिताजी के बताये मार्ग पर नहीं चल पाया। वर्तमान मे मैं अवश्य उनका स्मरण करते हुए अपने जीवन को सुधारने की ओर प्रयासरत हूँ।

• द्रोणगिरि, छतरपुर (म प्र)

□□□

जीवन निर्माता-पूज्य पिताजी

— कमलकुमार जैन

मेरे पूज्य पिताजी स्व. पण्डित गोरेलालजी शास्त्री जिन्हें सभी लोग नाम से कम पण्डितजी के रूप मे ज्यादा जानते थे। पूज्य वर्णीजी ने श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला के संचालन का दायित्व पिताजी को सौंपा था इसकारण ग्रामवासी प्रान्तीय जनता एवं जैन समाज उन्हे पण्डितजी नाम से ही सम्बोधित करने लगी थी। हम लोग भी उन्हे पिताजी न पुकारकर पण्डितजी कहते थे। पिताजी जब कभी विद्यालय से या बाहर से घर आते तो सभी कहते पण्डितजी आ गए। घर में कोई आकर यही पूछता पण्डितजी है ? हम लोग जब कभी पिताजी को नहीं देखते तब कहते पण्डितजी कहां गए? यह नहीं कहते थे कि पिताजी कहा गए। पिताजी सर्वत्र पण्डितजी के नाम से ही जाने जाते रहे हैं पण्डितजी शब्द इतना प्रचलित था कि यदि कोई वास्तविक नाम से पिताजी को पूछता तो नही बता पाते थे लेकिन पण्डितजी शब्द से पूँछने पर तुरन्त बताते थे क्योकि पिताजी पण्डितजी नाम से ही प्रसिद्ध हो गए थे, गोरेलाल, जो पिताजी का वास्तविक नाम था, से नहीं।

पूज्य पिताजी मेरे जन्म पिता तो थे ही मेरे जीवन निर्माता भी थे। आज जो कुछ भी हूँ मैं उन्हीं की कृपा से हूँ उन्हीं की देन है। बचपन में पिताजी ने खूब लाड़ प्यार दिया कुछ संभलने की स्थिति आई पिताजी ने संभालने मे सहयोग किया, खडा होना चलना सिखाया कुछ उम्र बढने पर णमोकार मत्र सिखाया, अक्षर ज्ञान कराना प्रारम्भ किया। जैन धर्म की प्रारम्भिक शिक्षा प्रारम्भ की। धीरे–धीरे लौकिक शिक्षा की ओर बढाते गये। पहली कक्षा दूसरी कक्षा इसप्रकार क्रमशः प्रायमरी पांचवी कक्षा उत्तीर्ण की और छठवीं कक्षा मे पढने लगा पिताजी ने अंग्रेजी का भी अभ्यास कराना प्रारम्भ किया।

सन् 1953 का मुझे स्मरण है कि जब पूज्य पिताजी द्रोणगिरि से कुछ समय के लिए द्रोणगिरि की ही शाखा गुरुकुल बडामलहरा में रहने लगे। इसी बीच भगवान् बाहुबली स्वामी का 12 वर्ष वाला महामस्तकाभिषेक था। इस अवसर पर तीर्थयात्री अधिक आते थे। पिताजी को सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के विकास व्यवस्था का दायित्व भी निभाना पडता था। कोई भी बडा तीर्थयात्रा सघ आता क्षेत्र पर छात्रो द्वारा स्वागत कराकर तीर्थयात्रियों को प्रसन्न कर उनसे अधिक से अधिक सहायता प्राप्त करने का प्रयास करते थे। समाज के जाने माने श्रेष्ठी उदार दानी जूट किंग के नाम से जाने जाने वाले कलकत्ता निवासी श्री गजराजजी गंगवाल 500 यात्रियो की स्पेशल ट्रेन तीर्थयात्रा सघ के साथ बुन्देलखण्ड की यात्रा को आये।

बनाने का भरसक प्रयास किया। लेकिन मै किसी सर्विस में स्थाई रूप से नहीं रह सका। पिताजी को मेरे जीवन की चिन्ता रही। उनके अन्तिम समय मुझे सेवा का बहुत मौका मिला, मैंने सेवा कर स्वय तो अपने को सौभाग्यशाली माना, लेकिन पिताजी को मेरी चिन्ता बनी रही। पिताजी के उपकारो को कभी भुलाया तो नहीं जा सकता लेकिन मुझे अपने आप मे यह सोचने को रह गया कि मैं अपने पूज्य पिताजी के बताये मार्ग पर नहीं चल पाया। वर्तमान में मैं अवश्य उनका स्मरण करते हुए अपने जीवन को सुधारने की ओर प्रयासरत हूँ।

• द्रोणगिरि, छतरपुर (म प्र.)

□□□

जीवन निर्माता-पूज्य पिताजी

— कमलकुमार जैन

मेरे पूज्य पिताजी स्व पण्डित गोरेलालजी शास्त्री जिन्हें सभी लोग नाम से कम पण्डितजी के रूप मे ज्यादा जानते थे। पूज्य वर्णीजी ने श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला के संचालन का दायित्व पिताजी को सौंपा था इसकारण ग्रामवासी प्रान्तीय जनता एवं जैन समाज उन्हे पण्डितजी नाम से ही सम्बोधित करने लगी थी। हम लोग भी उन्हे पिताजी न पुकारकर पण्डितजी कहते थे। पिताजी जब कभी विद्यालय से या बाहर से घर आते तो सभी कहते पण्डितजी आ गए। घर मे कोई आकर यही पूछता पण्डितजी है ? हम लोग जब कभी पिताजी को नहीं देखते तब कहते पण्डितजी कहां गए? यह नहीं कहते थे कि पिताजी कहा गए। पिताजी सर्वत्र पण्डितजी के नाम से ही जाने जाते रहे हैं पण्डितजी शब्द इतना प्रचलित था कि यदि कोई वास्तविक नाम से पिताजी को पूछता तो नही बता पाते थे लेकिन पण्डितजी शब्द से पूँछने पर तुरन्त बताते थे क्योकि पिताजी पण्डितजी नाम से ही प्रसिद्ध हो गए थे, गोरेलाल, जो पिताजी का वास्तविक नाम था, से नहीं।

पूज्य पिताजी मेरे जन्म पिता तो थे ही मेरे जीवन निर्माता भी थे। आज जो कुछ भी हूँ मैं उन्हीं की कृपा से हूँ उन्हीं की देन है। बचपन मे पिताजी ने खूब लाड प्यार दिया कुछ संभलने की स्थिति आई पिताजी ने संभालने मे सहयोग किया, खड़ा होना चलना सिखाया कुछ उम्र बढने पर णमोकार मंत्र सिखाया, अक्षर ज्ञान कराना प्रारम्भ किया। जैन धर्म की प्रारम्भिक शिक्षा प्रारम्भ की। धीरे-धीरे लौकिक शिक्षा की ओर बढाते गये। पहली कक्षा दूसरी कक्षा इसप्रकार क्रमश: प्रायमरी पांचवी कक्षा उत्तीर्ण की और छठवीं कक्षा मे पढने लगा पिताजी ने अंग्रेजी का भी अभ्यास कराना प्रारम्भ किया।

सन् 1953 का मुझे स्मरण है कि जब पूज्य पिताजी द्रोणगिरि से कुछ समय के लिए द्रोणगिरि की ही शाखा गुरुकुल बडामलहरा मे रहने लगे। इसी बीच भगवान् बाहुबली स्वामी का 12 वर्ष वाला महामस्तकाभिषेक था। इस अवसर पर तीर्थयात्री अधिक आते थे। पिताजी को सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के विकास व्यवस्था का दायित्व भी निभाना पडता था। कोई भी बड़ा तीर्थयात्रा सघ आता क्षेत्र पर छात्रो द्वारा स्वागत कराकर तीर्थयात्रियो को प्रसन्न कर उनसे अधिक से अधिक सहायता प्राप्त करने का प्रयास करते थे। समाज के जाने माने श्रेष्ठी उदार दानी जूट किंग के नाम से जाने जाने वाले कलकत्ता निवासी श्री गजराजजी गगवाल 500 यात्रियों की स्पेशल ट्रेन तीर्थयात्रा संघ के साथ बुन्देलखण्ड की यात्रा को आये।

दिया। मैं प्रथम बार बनारस पहुँचा। स्याद्वाद महाविद्यालय पहुँचकर नहा धोकर तैयार हुआ। दोपहर मे विद्यालय का कर्मचारी आया और सभी नवागत छात्रों को छात्रावास अधीक्षक के पास लिवा ले गया। मै भी गया। उस समय छात्रावास अधीक्षक श्री पदमचन्दजी शास्त्री थे। सभी छात्रो के अनुमति पत्र देखे और आवास हेतु कमरे आवटित कर दिए। मेरा नम्बर आया मुझसे अनुमति पत्र मागा। मैने वर्णीजी का पत्र दिया। छात्रावास अधीक्षक ने कहा यह अनुमति तो नहीं है। रात्रि को अधिष्ठाता जी के पास चलना, उनका जो आदेश होगा करेगे। उस समय अधिष्ठाता श्री हर्षचन्द्रजी वकील थे। रात्रि मे छात्रावास अधीक्षक के साथ अधिष्ठाता जी के पास गये वहा पूज्य वर्णीजी का पत्र दिखाया। अधिष्ठाताजी ने उस पत्र को सबसे बडी स्वीकृति मानकर तुरन्त प्रवेश दे दिया। तथा मैं सानन्द अध्ययन करने लगा।

मुझे उस समय का स्मरण है जब पूज्य पिताजी मुझे अपने से विलग कर बनारस भेज रहे थे। पिताजी के चरण स्पर्श कर जैसे ही मै बस पर चढा पिताजी के नेत्रो से अश्रुधारा बहने लगी। मेरे नेत्रो से तो पहले ही जैसे चरण स्पर्श किए अश्रुधारा बहने लगी थी। पिताजी की अश्रुधारा मुझे इगित कर रही थी कि तुम घर छोडकर बहुत दूर पढने के उद्देश्य से जा रहे हो। इससे मनोयोग से अध्ययन कर विद्वान् बनने का प्रयास करना। पिताजी पढाई का महत्व समझते थे फिर भी किसी तरह अध्ययन किया था। लेकिन मेरे सामने यह स्थिति नहीं थी पिताजी ने अध्ययन के सभी साधन जुटाने का पूर्ण प्रयास किया।

बनारस मे पिताजी के सहपाठी श्री प फूलचन्दजी शास्त्री श्री प अमृतलालजी शास्त्री आदि थे। बनारस मे जब घर की याद आवे इनसे मिलते रहने का पिताजी ने कह दिया था। मै श्री पं. फूलचन्दजी से मिला पिताजी का सन्देश दिया। पिताजी का सन्देश पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए और मुझे पुत्रवत् माना, स्नेह दिया मै उनके सरक्षण मे बनारस मे सानन्द अध्ययन करने लगा।

1956 मे मेरे साथ एक घटना घटित हुई मेरे किसी विद्वेषी साथी ने मेरे पिताजी के नाम मेरी बीमारी का पत्र डाल दिया पत्र का मुझे कोई पता भी नहीं था। पिताजी को पत्र मिला पढकर घबडा गए। घर मे सभी चिन्तित हुए पिताजी ने तुरन्त बनारस के लिए प्रस्थान किया जैसे ही विद्यालय पहुचे। छात्रावास के प्रवेश द्वार पर जो छात्र मिले उनसे पिताजी ने मेरी जानकारी ली। छात्रो ने मुझे आवाज दी। तुम्हारे पिताजी आये हैं पिताजी आये यह शब्द सुनकर आश्चर्य हुआ तुरन्त कमरे से निकला पिताजी को देखा चरण स्पर्श किया। सामान उठाया कमरे मे ले गया और पिताजी से असमय मे बिना सूचना के आने का कारण पूछा, पिताजी ने पत्र दिखाया। सभी साथियो ने जो पिताजी की सुनकर अन्य कमरो से मेरे यहा आ गए थे पत्र पढते ही कहा यह किसी छात्र की शरारत है। पिताजी मुझे स्वस्थ देख प्रसन्न हुए। नहा धोकर पिताजी ने भोजन किया। विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री पं कैलाशचन्दजी, अधीक्षक श्री पदमचन्दजी एव अपने सहपाठी श्री प फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री से मिलकर दो दिन बाद ही बनारस से विद्यालय की, घर की चिन्ता के कारण द्रोणगिरि वापस आ गए।

1958 मे मैं मध्यमा अन्तिम खण्ड मे अनुत्तीर्ण हो गया विद्यालय के नियम के अनुसार अनुत्तीर्ण छात्रों को सशुल्क प्रवेश दिया जाता था। बनारस से पिताजी के नाम पत्र आया कि आपका पुत्र परीक्षा मे अनुत्तीर्ण हो गया है यदि पढाना चाहते हो तो सशुल्क प्रवेश दिया जा सकेगा। मेरे अनुत्तीर्ण होने से पिताजी को बहुत दु ख हुआ लेकिन मेरी पढाई को निरन्तर जारी रखने के लिए मुझे पिताजी ने पुन बनारस भेज दिया। लेकिन मुझे बनारस मे अच्छा नहीं लगा इसी बीच पिताजी के ज्येष्ठ भ्राता श्री बिहारीलालजी, जो

जिसके माध्यम से सामाजिक चेतना, शिक्षा प्रचार, सार्वजनिक मानव सेवा के कार्य हुए। पिताजी की ही प्रेरणा का प्रतिफल है कि मैंने 30 वर्ष से सामाजिक जीवन मे राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कर अपनी पहिचान बनाई है। भगवान् महावीर 2500 वॉ निर्वाण महोत्सव वर्ष में संभागीय स्तर पर मंत्री के दायित्व का निर्वाह कर कार्यक्रमो का संचालन, नेत्र शिविरो का आयोजन धर्मचक्रो का सफलतापूर्वक प्रवर्तन जैसे महत्वपूर्ण कार्य किए। श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो में 15 वर्ष तक मंत्री का दायित्व निभाया। 1981 में खजुराहो मे पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव का विशाल स्तर पर आयोजन अपने मत्रित्व काल मे सम्पन्न कराया। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी म. प्र. का 12 वर्ष तक मंत्री का दायित्व निभाया।

पिताजी ने मेरा सर्वांगीण विकास करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पिताजी ने हर क्षण मेरा ध्यान रखा है, मेरी उन्नति चाही है लेकिन प्रतिफल में कुछ भी नहीं चाहा मुझे अनेकों ऐसे अवसरों की याद है जब पिताजी अस्वस्थ हुए और मैंने उनकी सेवा करनी चाही लेकिन मेरी सर्विस की चिन्ता के कारण उन्होने हमेशा यही कहा कि तुम अपना काम देखो मेरी तो सेवा यहॉ (द्रोणगिरि पर) होती रहेगी। जुलाई 1981 मे मैं खजुराहो क्षेत्र के मत्री के नाते गजरथ महोत्सव के बाद सौधर्म इन्द्र के साथ कुण्डलपुर नारियल चढ़ाने गया, वहीं से पूज्य आचार्य प्रवर विद्यासागरजी के दर्शन करने नैनागिरि गया। वहां पिताजी थे। पिताजी उस समय बहुत अस्वस्थ थे यहां तक कि बेहोशी की अवस्था में थे मैं तुरन्त उन्हे छतरपुर लाया और इलाज कराया। कुछ ठीक होने पर पिताजी बोले अब हम ठीक हैं, यहां तुम्हारे लिए परेशानी होती है यह कह घर चले गए। 1986 मे भी पिताजी की आंख का आपरेशन कराया उस समय भी कार्य अधिक होने से पिताजी जैसे ही पट्टी खुली द्रोणगिरि चले गए। उन्होने मुझे परेशान होते नही देखा।

1989 मे मुझे हृदयाघात की बीमारी हुई और 15 दिन जिला चिकित्सालय के गहन चिकित्सा कक्ष मे रहा। पिताजी द्रोणगिरि मे ही रहते हुए अत्यधिक चिंतित रहे और मेरे स्वास्थ्य लाभ की कामना के लिए धार्मिक कार्य करते रहे। स्वस्थ होने पर मैं पिताजी के दर्शन करने द्रोणगिरि गया पिताजी ने मुझे देखा मेरी कमजोरी की हालत देखी, विह्वल हो गए। मैंने चरण वन्दना की और पिताजी को समझाया कि आपकी सद्भावना के कारण जीवन बच गया आप दु:खी न हो मैं शीघ्र ठीक हो जाऊँगा। पिताजी ने पूर्ण सावधान रहने और स्वास्थ्य का ध्यान रखने को कहा। पिताजी को मेरे परिवार की भी चिन्ता थी दो बच्चे निरंजन और राजीव बड़े थे उन्हें काम पर लगाने की चिन्ता थी। 1990 में मैंने उन्हे दुकान प्रारम्भ कराने के मुहूर्त के लिए पिताजी को बुलाया। पिताजी अस्वस्थ थे अत: वे स्वय तो नहीं आ पाये। मेरे ज्येष्ठ भ्राता अजितकुमारजी को भेजा और मुहूर्त की सभी प्रक्रियाये उन्हे बता दीं तथा अपना आशीर्वाद भेजा। दुकान का शुभ मुहूर्त हुआ मैंनें पिताजी के लिए बड़े भाई साहब के साथ वस्त्र रख दिए। भाई साहब ने घर पहुचकर पिताजी से दुकान के समाचार कहे बहुत प्रसन्न हुए। वस्त्रो को दिया तो कहा कि व्यर्थ मे यह खर्च किया अभी तो स्वयं संभलने की जरूरत है, सहयोग चाहिए। उन वस्त्रो को पिताजी ने अन्तिम समय तक उपयोग मे लिया।

पिताजी की अन्तिम अवस्था मे ही मुझे उनके साथ रहने का मौका मिल सका। मार्च 1991 मे पिताजी अस्वस्थ हुए और उदासीनाश्रम से बड़े भाई साहब पिताजी को घर ले आये। मुझे खबर मिली उस समय मैं शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय अनगौर मे कार्य करता था। प्रतिदिन छतरपुर से आता था। 20 मार्च से मैं अनगौर से घर (द्रोणगिरि) पिताजी को देखने जाने लगा। 25 मार्च को जब मैंने पिताजी का स्वास्थ्य ज्यादा खराब देखा तो स्कूल की ड्यूटी कर छतरपुर आया रात्रि मे ही परिवार के साथ द्रोणगिरि आ गया। पिताजी ने बहू एवं नातिन को देखा, कहा अच्छी आ गयीं सभी ने पिताजी की हालत देखी दु:खी हुए।

"पिताजी की भावना के अनुरूप नहीं बन पाया"

— रतनचन्द जैन

अपने पिताजी की सबसे छोटी सन्तान होने के कारण मेरा बचपन तो लाड़ प्यार से बीता ही। उसके बाद का भी समय लाड प्यार के कारण अधिक उन्नतिशील नहीं रहा। जहां तक पढने लिखने की बात थी, पूज्य पिताजी ने अपने चरण सान्निध्य में बैठकर संस्कृत प्रथमा तथा धर्म मे प्रवेशिका तक जैसे तैसे पढाकर मुझे आगे की शिक्षा के लिए बाहर भेजने का प्रयास किया।

1956 मे मुझे अपने भाई कमलकुमार के साथ स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी भेजा। लेकिन उस समय मेरी पूर्व स्वीकृति न होने के कारण वहां प्रवेश न पा सका। वापस घर आया और श्री गोपाल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय मोरेना मे भर्ती करा दिया। घर से बाहर रहने का यह मेरा प्रथम मौका था। इससे सुख से रहने के लिए व्यय हेतु काफी सहयोग मिला। जिसकारण वर्ष भर मैंनें खूब मौज मस्ती से समय निकाला। परिणाम हुआ, उस वर्ष की परीक्षा मे अनुत्तीर्ण हो गया। मेरे पूज्य पिताजी ने इसके बाबजूद भी मुझे स्वतंत्रतापूर्वक जीवन यापन हेतु आयुर्वैदिक शिक्षा दिलाकर चिकित्सक बनाने का प्रयास किया। मुझे द्रोणगिरि के ही मेरे साथी शीतलप्रसाद फौजदार के साथ आचार्य दिगम्बर जैन आयुर्वेदिक कॉलेज जयपुर मे प्रवेश करा दिया। उस समय कॉलेज के प्राचार्य जैन जगत् के मान्य विद्वान् पण्डित चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ थे।

जयपुर मैं 1959 मे गया और पिताजी की भावना चिकित्सक बनने की लेकर गया, लेकिन मेरा भाग्य तो मुझे कुछ और ही बनाना चाहता था। जयपुर जैसी सुन्दर गुलाबी नगरी मे रहने का सुख मिला और खर्च करने के लिए पर्याप्त धनराशि मिली, क्योंकि उस समय हमारे भाई साहब श्री कमलकुमारजी जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बड़ामलहरा में कार्य करने लगे थे। इससे जब भी खर्च की आवश्यकता हुई, पत्र लिखा कि वहां से भाई साहब ने मांग से अधिक राशि इसलिए भेज दी कि शिक्षण कार्य में व्यवधान न आवे और अपने लक्ष्य की ओर ध्यान रहे। लेकिन जयपुर मे कौन देखता कि मैं क्या करता, मन पढने में तो कम गुलाबी शहर की सफर करने मे अधिक लगाया। जयपुर का ऐसा कोई सिनेमा नहीं गया, जिसे मैंनें देखा नहीं हो। पिताजी सोचते थे कि लघु पुत्र मन लगाकर पढ रहा होगा और चिकित्सक बनकर अपने जीवन को सुखी बना लेगा। लेकिन जयपुर मे तो मैं कुछ और ही बन रहा था। पैसे की कमी थी नहीं। बस एक पत्र भाई साहब को मलहरा लिखने मात्र की देरी रहती थी। पूरा वर्ष सैर सपाटे मे गया और देहाती वातावरण से शहरी वातावरण मिला। पढाई का समय तो शहर का भ्रमण, शाम का समय तो सिनेमा मे उपस्थिति पढने का समय ही कहाँ। उस समय मै अपने भविष्य के प्रति अज्ञानी था, दूसरे साथी छात्रो से भी सीख नहीं ली। परिणाम अन्त मे वही हुआ, जो होना था, परीक्षाफल शून्य आया। पिताजी ने इस पर भी सोचा चलो प्रथम वर्ष है, पढाई कठिन होगी, कोई बात नहीं, अगली वर्ष पुन: जयपुर भेजा। दूसरी वर्ष भी मुझे पढने के लिए आकर्षित नहीं कर पाई और सैर सपाटे मे दूसरी वर्ष भी गई। पिताजी ने निराश होकर मुझे धन्धे मे लगाना चाहा, लेकिन मेरा मन धन्धा में भी नहीं लगा। घर मे खेती की जमीन थी, खेती देखने लगा। खेती की ओर मन लग गया और खेती मे ही पूरा समय देने लगा और अब पूरा जीवन एक कृषक का जीवन जी रहा हूँ।

के विकास को देखती हूँ और प्रत्येक ग्राम मे बालिका शिक्षा के प्रोत्साहन कार्यक्रम को देखती हूँ तो मुझे लगता है कि हमारे पिताजी ने मुझे पढने की ओर उस समय प्रेरित किया जिस समय शिक्षा का प्रसार नहीं था। मै अपने लिए सौभाग्यशाली मानती हूँ और पिताजी के उपकारो से खुद को उनका ऋणी अनुभव करती हूँ। निश्चित रूप से यदि पिताजी ने मुझे पढने के लिए प्रेरित न किया होता तो आज निरक्षर महिला के रूप मे अपना जीवन व्यतीत करती और वर्तमान मे शिक्षित बहुओ के बीच असम्मानजनक स्थिति में रहती। सम्मानपूर्वक रहने के लिए बालिकाओ का शिक्षित रहना बहुत आवश्यक है।

● धर्मपत्नी, श्री शाह गनेशीलालजी, मड़देवरा

□□□

पिताजी की परिचर्या में मेरे अन्तिम क्षण

— कमलकुमार जैन

मार्च 1991 को जब पूज्य पिताजी अस्वस्थ हो गए और आश्रम से हमारे बड़े भाई साहब अजितकुमारजी, मझले भाई विमलकुमारजी और लघु भ्राता रतनचन्दजी पिताजी को घर ले आए उस समय मैं शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय अनगौर मे कार्यरत था। छतरपुर से आता जाता था। 20 मार्च को मेरी इच्छा द्रोणगिरि जाकर पिताजी से मिलने की हुई। शाम को छतरपुर वापस न होकर द्रोणगिरि चला गया। पिताजी को देखा, स्वास्थ्य खराब था इलाज आयुर्वेदिक ही चल रहा था। पिताजी एलोपेथी लेते नहीं थे। उनके ही शिष्य श्री वैद्य दामोदरजी, घुवारा इलाज कर रहे थे। पिताजी जब भी अस्वस्थ होते थे इन्हीं का इलाज लेकर ठीक होते थे। रात्रि मे पिताजी के साथ रहा। परिचर्या एव चर्या करता रहा। सुबह तैयार होकर अपनी ड्यूटी पर आ गया। लेकिन मन तो पिताजी के ही पास था छतरपुर न जाकर पुन घर ही वापस आया। पिताजी कहने लगे व्यर्थ आना जाना बनाकर परेशान होते हो, मै अब स्वस्थ हूँ। लेकिन मुझे पिताजी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं दिख रहा था और यह लगा कि कुछ समय तक पिताजी के ही पास रहना चाहिए। यह सोच मै घर से स्कूल गया और शाम को छतरपुर जाकर परिवार को लेकर रात्रि मे ही द्रोणगिरि आ गया। पिताजी ने परिवार के सभी सदस्यो को देखा, अपनी बहु प्रभा, नातिन प्रमिला और नातियो क्रमश. निरन्जन, राजीव, पकज पीयूष को देखा तो प्रसन्नता का अनुभव किया। कहा "अच्छे आ गए, हमे अपना अन्तिम समय दिखता है। सभी को देखने की इच्छा थी।" यह 24 मार्च की रात्रि की चर्चा थी। परिवार के प्राय सभी सदस्य घर मे ही थे। नातिन कुसुम दमोह से, सागर से आशा आ गई थी मडदेवरा से बहनजी भी आ गईं थीं।

25 मार्च को नाती चि महेन्द्र इन्जीनियर सोवियत रूस से अध्ययन कर देहली मे सर्विस कर रहा है, अचानक आ गया। पिताजी ने देखकर प्रसन्नता व्यक्त की हम सभी को भी अच्छा लगा। पिताजी शारीरिक स्थिति से तो कमजोर हो रहे थे लेकिन साधना उनकी निरन्तर होती रहती थी। अस्वस्थता मे भी बिना देव दर्शन और पूजन के जल भी ग्रहण नहीं किया। पिताजी की अन्तिम स्थिति का आभास हो रहा था। अन्त समय भाव न बिगड़े, इससे ब्र रामबाईजी पिताजी को बराबर सम्बोधित करतीं रहतीं थीं।

26 मार्च को प्रात पिताजी को दैनिक क्रियाओ से तैयार कर शुद्ध वस्त्र पहिनाकर जिन—मन्दिर ले

अनिच्छा प्रगट की। थोडा सा पानी दिया और सायंकाल तक के लिए सभी प्रकार का आहार त्याग करा दिया। इस दिन पिताजी को देखने रिश्तेदार, शिष्यगण, उदासीनाश्रम के व्रतीगण बराबर आते रहे और उन सबको पिताजी ने पहिचाना, उनकी ओर देखा और हाथ उठाकर उनको अपनी सजगता का उत्तर दिया। मैंने बराबर पिताजी को मन मे कुछ पढते हुए देखा, हाथ की अगुलियो को चलते देखा जिससे लगा वे सामायिक करते रहे।

शाम को पिताजी ने कुछ ग्रहण नहीं किया और बराबर उनको कुछ स्मरण करते देखा। अति निकट से जब कान लगाकर सुना तो आवाज बहुत धीमी थी, और अन्तर्मन मे चिन्तन चल रहा था।

पिताजी प्राय आध्यात्मिक बारह भावनाओ का चिन्तवन, समाधिमरण का पाठ किया करते थे। समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक आदि ग्रन्थ उन्हे मौखिक याद होने के कारण अस्वस्थ अवस्था मे उनका भी पाठ चलता रहता था। पिताजी का तो अपने मन मे चिन्तवन चलता ही रहता था, परिवार के लोग भी उनके समीप रहकर णमोकार मत्र, बारह भावना, समाधिमरण का पाठ करते रहते थे और पिताजी की सजगता को भी देखते रहते थे।

29 मार्च पिताजी का इस पर्याय का अन्तिम दिन था। लेकिन चेहरे से उनकी क्रियाओ से ऐसा नहीं लगता था कि पिताजी आज के बाद नहीं होगे। प्रात' दैनिक क्रिया कराई और अपने आत्म चिन्तन मे लग गए। पूर्ण चैतन्य स्थिति थी, नेत्रो मे पूर्ण ज्योति थी, सिर्फ कमी थी तो शारीरिक बल की। परिवार के सभी सदस्यो को देखते थे लेकिन मोह किसी से नहीं रहा था, जानते सबको थे।

इस दिन पिताजी ने कुछ नहीं लिया, देने को तैयार भी हुए तो अनिच्छा प्रगट की और सभी प्रकार के आहारो का त्याग कर दिया। हम लोगो को भी अनुभव हो गया कि पिताजी कुछ ही समय के मेहमान हैं। बराबर उनके ही पास बैठे रहे, कुछ न कुछ धार्मिक वातावरण बनाए रहते। समाधिमरण का पाठ चलता रहा। दोपहर मे 3 बजे के करीब सागर से कुछ रिश्तेदार भी आ गए। पिताजी की बोलने की शक्ति क्षीण हो रही थी लेकिन नेत्रो से उन्होने बराबर सबको देखा।

साय 5 बजे के करीब हम लोग णमोकार मत्र पढ रहे थे, पिताजो की ओर निगाह थी। चेहरे मे तेज था, नेत्र बन्द थे, हाथो की अगुलिया ऐसी चल रहीं थी जैसे सामायिक हो रही हो। 5 30 बजे पिताजी को फिर देखा। नाडी चलने का आभास न होने के कारण तुरन्त ब्र. रामबाईजी को बुलाया, वे आयीं और उन्होने नाडी पर हाथ रखा और कान के पास मुँह लगाकर णमोकार मत्र सुनाने लगीं। हम लोगो को उनकी अन्तिम स्थिति का आभास हुआ। पास मे ही थे हम लोग भी णमोकार मत्र पढने लगे। अचानक साय 6.40 पर पिताजी के गले से खट की आवाज हुई, बाईजी ने पिताजी का मुह ढकते हुए पिताजी के इस पर्याय से जाने का संकेत दिया। हम लोग पिता विहीन हो गए और पिताजी के पास से उठकर शोकमग्न हो गए। मुझे रोता देख सभी को आभास हो गया। वियोग से सभी को दु ख हुआ, लेकिन मै बहुत व्याकुल हो रहा था। ज्येष्ठ भ्राता, जिन्हे पिता तुल्य ही माना, ने मुझे समझाया, सान्त्वना दी। गाव वालो ने समझाया लेकिन उस समय का वियोग ऐसा था कि सब कुछ समझते हुए भी अनजान था और अपने मन मे साहस नहीं जुटा पा रहा था। मेरे अधिक विलाप का कारण यह था कि पूज्य पिताजी ने मुझे बनाने मे मेरे जीवन निर्माण मे जो उपकार किया है, शताश भी मैं उनकी सेवा नहीं कर पाया। पिताजी को हर समय हमारी सुख सुविधा की चिन्ता

उनको मैं बब्बा के रूप मे सम्बोधित करने लगी।

सादूमल मे प्रथम शिक्षा ग्रहण करने के कारण ये हमारे से पूर्व परिचित थे। हमारे पिताजी पं शीलचन्दजी जिन्हे सभी लोग दाऊ से सम्बोधित करते थे, इनके गुरु रहे हैं। इससे इनके सरल और सौम्य स्वभाव से सभी परिचित भी थे। जैसे ही मै इस घर मे आई, मुझे पितृवत् स्नेह मिला, मधुर व्यवहार मिला। अपने गुरु की पुत्री को पाकर मेरे ससुर ने मुझे पुत्रीवत् ही माना।

यद्यपि यह मेरा सौभाग्य नहीं रहा कि पण्डितजी (ससुर) के सम्पर्क मे अधिक रहूँ क्योकि मेरे पति के सर्विस मे होने के कारण मुझे घर से बाहर ही रहना पडा। अवकाश मे घर जाना तो होता ही रहा।

ससुरजी की धार्मिक क्रियाओ को देखकर मै बहुत प्रभावित थी। उनके मुख से सहस्रनाम, एकीभाव आदि स्तोत्रो का सस्वर उच्चारण सुनकर मेरी भी इन स्तोत्रो को पढने की इच्छा हुई और जब मैने उनसे सहस्रनाम सीखने की इच्छा प्रगट की तो उन्होने मुझे प्रेम से सहस्रनाम पढाया। उन्होने कहा कि कोई भी पढने की इच्छा प्रगट करे तो मुझे आनन्द आता है, क्योकि मनुष्य जीवन की सार्थकता जिन स्तवन करने मे ही है। उन्होने मुझे सहस्रनाम, भक्तामर स्तोत्र आदि पढना सिखाया, मोक्षशास्त्र को पढाया, मुझे धार्मिक सस्कारो मे ढाला।

द्रोणगिरि मे स्थायी रूप से न रह पाने के कारण मैं ससुरजी की सेवा नहीं कर पाई, परन्तु जब–जब अस्वस्थता के कारण, नेत्रो के इलाज के लिए छतरपुर आये उनकी सेवा करने का सौभाग्य अवश्य प्राप्त हुआ। उनके अनुकूल भोजन की व्यवस्था होने के कारण अधिक प्रसन्न रहते थे। मेरे छोटे–छोटे बच्चो के होने के कारण कार्य अधिक होने पर भी जब मै समय पर उनके अनुकूल व्यवस्था बनाती थी तो उन्हे मेरी परेशानी देखकर तकलीफ होती थी। लेकिन मै उनकी सेवा मे अपने को बहुत अधिक प्रसन्नता का अनुभव करती थी। मैने उन्हे कभी गुस्सा करते नहीं देखा और न एक क्षण ऐसा देखा जो व्यर्थ गया हो। धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन करना और जब नेत्रो के इलाज के कारण अध्ययन न कर पाये तब कण्ठस्थ ही स्तोत्रो का स्मरण करते उन्हे देखा है। तीनो समय सामायिक तो उनकी नियमित रही है। बिना देव–दर्शन, पूजन, स्वाध्याय के अन्न ग्रहण नहीं किया। अन्तिम समय मे जब आप अत्यन्त असमर्थ हो गए और मन्दिर जाना सभव नहीं हुआ तभी से अन्न का त्याग कर दिया और घर मे ही दैनिक क्रियाओ को करने के बाद जिन स्तवन, सामायिक करने के बाद ही दूध फल स्वीकार किया। धर्म मे दृढ आस्था थी और जो नियम धारण करते थे उसे पूर्ण निष्ठा के साथ निभाते थे।

उस समय का मुझे स्मरण है जब मेरी मंझली जिठानी जमुनादेवी का मस्तिष्क ज्वर से जिला चिकित्सालय छतरपुर मे स्वर्गवास हो गया और हम लोग उनके शव को लेकर द्रोणगिरि पहुचे, उस समय ससुरजी उदासीनाश्रम मे रहते थे। जैसे ही हम लोगो के आने का सुना, तुरन्त घर आये और बड़े विह्वल होकर बोले कि "मै जर्जर, अशक्त हूँ, जाने लायक हूँ सो तो मैं बैठा हूँ, यह हमसे बहुत छोटी और स्वस्थ रहती थी, जो हमारे सामने ही चली गई।"

ससुर साहब की ही प्रेरणा से मै धार्मिक वातावरण मे आयी। उनकी विद्वत्ता और सहज शिक्षा के लिए उपलब्धता से मुझे धार्मिक अध्ययन की बहुत इच्छा रही, लेकिन मैं अधिक समय तक साथ रहकर लाभ नहीं ले पाई, यह मेरा दुर्भाग्य ही है कि साधन होते हुए भी साधनो का लाभ नहीं ले पाई। उनके स्वर्गवास से

की भी रुचि धर्म की ओर बढी जिसके कारण हम दोनो सयमित जीवन जीकर अपनी मनुष्य पर्याय का उपयोग कर रहे है। मेरे जीवन मे इसप्रकार के परिवर्तन के लिए हमारे बब्बाजी द्वारा दिया गया धार्मिक ज्ञान प्रधान कारण बना। आज हमारे बीच बब्बाजी तो नहीं है लेकिन उनके आदर्श, उनके द्वारा दिया गया ज्ञान हमारे भविष्य के लिए मार्गदर्शन का काम कर रहा है।

• C/o श्री महेश बड़कुल
अहिंसा भवन, दमोह (म प्र)

□□□

मुझे अपार स्नेह ही स्नेह मिला

— *प्रमिला सिंघई,* एम एस सी

जब मेरा जन्म हुआ तब मेरे बब्बाजी इम्फाल मे रहते थे। जून 1967 मे जब वे इम्फाल से द्रोणगिरि आये तो पहली बार मैने बब्बाजी को देखा होगा और बब्बाजी ने भी मुझे पहली बार देखा होगा। उस समय मेरी आयु दो वर्ष की थी। " 3 या 4 जून को बब्बाजी द्रोणगिरि आये बस स्टेण्ड पर ग्रामवासी, समाज के लोग एवं स्नातक गणो ने बब्बाजी का स्वागत किया और गाजे बाजे के साथ उन्हे घर लाये थे। बहुत दिनो की प्रतीक्षा के बाद चूकि बब्बाजी प्रवास से आये थे इससे सबके मन मे बहुत खुशी थी। बब्बाजी आकर चबूतरे पर बैठे घर के सभी लोगो ने जिसमे मेरी बडी काकी, मझली काकी, मेरी मम्मी एवं छोटी काकी सभी ने बब्बाजी के पैर छुए थे। मै यह सब उत्सुकता से देख रही थी। मेरी बहिन कुसुम एव आशा बब्बाजी के पास पहुच गई क्योकि वे लोग बब्बाजी को जानतीं थीं। मै उनके पास खडी थी बब्बाजी को किसी ने इशारा किया कि यह गुड्डी है कमलकुमार की पुत्री। बब्बाजी ने बडे स्नेह से मुझे गोद मे उठा लिया था और खिलाने लगे थे।" यह सब मुझे मेरी मम्मी ने बताया था।

मै पापाजी के साथ मलहरा रहती थी क्योकि पापाजी उस समय मातगुवां मे सर्विस करते थे। निवास मलहरा बनाये थे। यदा कदा बब्बाजी द्रोणगिरि से मलहरा आते थे मुझे बब्बाजी के आने से बडा आनन्द होता था।

1969 मे पापाजी का ट्रान्सफर छतरपुर हो गया और हम लोग छतरपुर चले गये थे। बब्बाजी से दूर हो जाने के कारण अवकाश के समय जब घर आना होता था तभी बब्बाजी से मिलना होता था। जब मै कुछ समझदार हुई तो हर ग्रीष्मावकाश मे मम्मी पापा के साथ द्रोणगिरि आती थी बब्बाजी मुझे अपने पास बुलाते और स्नेह के साथ धार्मिक शिक्षा देते थे। णमोकार मंत्र मुझे बब्बाजी ने सिखाया, चौबीस तीर्थंकरो के नाम, विनती बब्बाजी ने सिखाई। प्रतिदिन देव दर्शन करने की प्रेरणा मुझे बब्बाजी ने ही दी। आज जो धार्मिक संस्कार मुझमे है वे सब बब्बाजी ने ही दिए।

बब्बाजी मुझसे अत्यन्त प्रसन्न रहते थे क्योकि मैं पढने मे होशियार थी। जब मैने B sc और M sc की तो इस पढाई से उन्हे बहुत प्रसन्नता हुई बब्बाजी ने मेरे सुखी जीवन के लिए आशीर्वाद दिया। जब–जब भी वे छतरपुर आये या मै द्रोणगिरि गई मुझे हमेशा ही उनका स्नेह प्राप्त हुआ।

बब्बाजी के अन्तिम समय में मुझे भी उनके समीप रहने का अवसर मिला क्योकि उस समय मैं

अस्वस्थतावश पिताजी जब कभी द्रोणगिरि से छतरपुर कुछ दिनो के लिए आते थे तब तथा एक बार नेत्र का आपरेशन कराने आये तब बब्बाजी की परिचर्या करने का मौका मिला। साथ में रहने का तथा उनसे कुछ धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने का मौका मिला। बब्बाजी को स्तुतियां, सिद्धान्तग्रन्थ मौखिक याद रहने के कारण मुझे याद कराते थे। उस समय मुझे उनकी दिनचर्या देखने का समय मिला। अस्वस्थता में भी उनकी नियमित दिनचर्या रहती थी।

मुझे गर्व है इस बात का कि बब्बाजी की शास्त्री उपाधि को पिताजी (कमलकुमारजी) के बाद अगली पीढी तक ले जाने में मैं ही सक्षम रहा जो सब पूज्य बब्बाज़ी की ही प्रेरणा और देन मैं समझता हूँ।

मैं अपने पूज्य बब्बाजी का असीम स्नेह कभी भूल नहीं सकता। यह उन्हीं का परिणाम है कि आज जैन दर्शन में रुचि बढी है। निश्चित रूप से बब्बाजी के आदर्शों पर चलने का प्रयत्न करूँगा। वे भी स्वर्ग मे जब कभी अवधिज्ञान से बीते कल को देखते होंगे तो अवश्य ही संतोष व्यक्त करते होगे।

अति मानव को, महामानव को शत–शत नमन।

• पण्डित टोडरमल स्मारक
ए–4 बापूनगर, जयपुर

□□□

द्रोणगिरि से द्रोण गिरि तक का सफर

— पंकज जैन एम. ए.

हमारे पूज्य बब्बाजी (स्व. पण्डित गोरेलालजी) का जन्म वि. स. 1962 के श्रावण मास की 15 को द्रोणगिरि मे हुआ था। हमारे बब्बाजी ने प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय शिक्षक श्री नन्हेलालजी मालाकार से पाटी पर अक्षरज्ञान के रूप में प्राप्त की। सेठ लक्ष्मीचन्दजी बमराना का शिक्षा प्राप्त करने मे महत्वपूर्ण सहयोग उन्हे मिला। उन्होनें श्री महावीर दिगम्बर जैन पाठशाला सादूमल में वैशाख वदी 9 वि. स. 1977 को प्रवेश करा दिया। दो वर्ष सादूमल अध्ययन करने के बाद उन्होने डेढ वर्ष श्री दिगम्बर जैन विद्यालय क्षेत्रपाल ललितपुर मे और इसके बाद दो वर्ष श्री सर सेठ हुकमचन्द दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय इन्दौर मे अध्ययन किया।

अध्ययन पूर्ण कर जैसे ही वे अपने जन्म स्थान द्रोणगिरि आये इन्दौर विद्यालय में पढाने हेतु नियुक्ति पत्र भी उनके पास आ गया। बब्बाजी ने इन्दौर जाने का मन बनाया और प्रस्थान किया। लेकिन करनी तो थी उन्हे अपनी जन्मभूमि की सेवा अत' घरवालो, रिश्तेदारों के विशेष आग्रह पर रास्ते से ही वापस लौट आये।

इसी बीच वि. सं 1985 मे द्रोणगिरि में ही पूज्य वर्णीजी के सद्प्रयासो से श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला की स्थापना हुई और उसमे बब्बाजी को शिक्षक पद पर नियुक्त किया गया। उन्होने खूब परिश्रम किया और पाठशाला प्रगति की ओर बढने लगी। एक वर्ष पूर्ण हुआ विद्यालय की प्रगति से सभी ने सन्तोष प्रगट क्रिया। विद्यालय मे पढाने के अलावा बब्बाजी की कार्यक्षमता को देखते हुए सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि की समस्त व्यवस्थाओ का दायित्व भी उन्हे सौंप दिया गया।

1949 से 1953 तक बब्बाजी द्रोणगिरि से बड़ामलहरा मे रहे। बड़ामलहरा आने पर द्रोणगिरि क्षेत्र

वात्सल्य के धनी - पूज्य बब्बाजी

— सुनील जैन

जिस समय मेरा जन्म हुआ था पूज्य बब्बाजी (स्व. पूज्य पण्डित गोरेलालजी) उदासीनाश्रम द्रोणगिरि मे रहने लगे थे। ग्राम के मन्दिर के दर्शन प्रतिदिन दोनो समय करने के लिए आते थे उसी समय 10–15 मिनट को घर भी आकर परिवार की जानकारी लेते थे। जब मैं 5 वर्ष का हुआ पूज्य बब्बाजी के निकट आया। उन्होनें मुझे बड़े स्नेह के साथ णमोकार मंत्र सिखाना प्रारम्भ किया और प्रतिदिन मन्दिर आने के साथ ही मुझे धार्मिक संस्कार देना प्रारम्भ किया। उनके द्वारा दिया हुआ पाठ मै याद कर सुनाता था। बब्बाजी बहुत प्रसन्न होते थे। धीरे–धीरे मेरी स्कूल की पढाई प्रारम्भ हुई और बब्बाजी द्वारा धार्मिक शिक्षण प्रारम्भ हुआ। बालबोध प्रथम भाग, द्वितीय भाग पढाना, स्तुतिया, स्तोत्रो को याद कराना, सुनना उनका प्रतिदिन का कार्य हो गया। मुझे भी बब्बाजी के द्वारा प्रेम के साथ पढाना अच्छा लगा।

बब्बाजी द्वारा दिए गए धार्मिक संस्कार ही मेरे जीवन निर्माण मे सहयोगी हुए हैं। आज बब्बाजी नहीं हैं लेकिन उनके द्वारा जो मार्गदर्शन मुझे मिला है, धार्मिक ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह मेरे जीवन का आधार बना और उसी के आधार पर आज मुझे सस्कृति सरक्षण सस्थान जयपुर मे अध्ययन करने का मौका मिला है। पूजन विधान आदि कराने की ओर मेरी प्रवृत्ति बढी। बब्बाजी का वात्सल्य आज भी मुझे प्रेरित करता है। दिशा निर्देश देता है और उज्ज्वल भविष्य के लिए प्रगति पथ पर बढने के लिए मार्गदर्शक है। पूज्य बब्बाजी के प्रति शत–शत नमन करता हूँ।

□□□

प्रसंगवश शाहगढ मे हुये मेरे प्रवचनों को सुनकर प्रसन्न व प्रभावित भी।

कुछ समय बाद मुझे लगा कि कहीं बब्बाजी का मन मेरी परीक्षा लेने का तो नहीं था, सफल शिक्षक तो वे थे ही अतः मेरे अनुमान का होना असंभव भी नहीं कहा जा सकता है। खैर, जो भी रहा हो यदि यह सही है तो मै प्रसन्न हूँ कि उन्होने मुझे जिनवाणी के अभ्यासी शिष्य के रूप मे देखा। मुझे तो यह गौरव की बात है कि उन्होंने मेरा मूल्यांकन नतदामाद की दृष्टि से नहीं , शास्त्र स्वाध्यायी विद्वान् की दृष्टि से किया।

इसके अलावा कुछ–कुछ अन्तराल से द्रोणगिरि में ही एक दो बार मिलना और हुआ। एक बार जब मैं द्रोणगिरि पहुँचा था तो घर पर ही मुलाकात हो गई। वे प्रतिदिन प्रात आश्रम से ग्रामस्थित आदिनाथ जिनालय मे दर्शन–पूजन हेतु आते थे और घर पर थोड़ा रुककर चले जाते थे। उस दिन वे भोजन के उपरान्त ऑगन मे धूप सेकते हुये कुरसी पर बैठे थे, मै भी समीप ही था, बातचीत होना भी स्वाभाविक ही था। पुण्य पाप का प्रकरण चल निकला तथा पुण्य के उदय मे अनुकूल बाह्य सामग्री का मिलना होता है और पाप के उदय मे उसका बिछुडना होता है, ऐसी चर्चा चली। "जैनकर्मसिद्धान्ते बन्ध मुक्ति प्रक्रिया" शीर्षक से मै उस समय पी–एच डी. उपाधि के लिये शोध प्रबन्ध लिख रहा था अतः विषय परिमार्जित व सुविचारित था ही, अच्छा विमर्श हुआ। निष्कर्ष यह रहा कि जीव को अनुकूल बाह्य सामग्री के मिलने व न मिलने या बिछुड़ने मे क्रमश. पुण्य पाप का निमित्त कारण होता ही है अन्य कारण उपादान, भवितव्यता आदि भी अवश्य होते हैं। सचमुच ही चर्चा से वे मुझे प्रसन्न लगे। जिनवाणी की चर्चा प्रसन्नता का कारण बनती ही है पर उसे जिसे वह समझ मे आये।

पण्डितजी से अन्तिम बार मिलना तब हुआ जब मै जयपुर से दमोह गया था। दमोह मे साढूभाई श्री महेश बड़कुल के यहाँ पता चला कि बब्बाजी का स्वास्थ्य गिर रहा है तो उनसे मिलने द्रोणगिरि जाने का मन हुआ। द्रोणगिरि आकर मैने देखा कि बब्बाजी शिथिल हो गये हैं, शायद मरण समय निकट आ रहा था, वे लेटे थे अस्वस्थ होने से कोई बातचीत नहीं हुई, मानो उन्हे बात की फुरसत ही कहाँ थी वे तो समाधिमरण की तैयारी मे थे। मेरे जाने के कुछ दिन बाद ही वे यह पर्याय छोड़कर चले गये।

अब आज जब उनके व्यक्तित्व–कृतित्व का बहुमान आता है तो लगने लगता है कि यदि मैं पारिवारिक प्रयोजन से नहीं, अपने आपको उनका अनुसर्ता बनाने की दृष्टि से उनके ससर्ग मे अधिक से अधिक रहता तो कितना अच्छा होता। मै उनके पावन व्यक्तित्व को प्रणाम करता हूँ, बस यही अनुभूति–अभिव्यक्ति सम्पदा है उनकी मेरे पास।

• णमोकार निलय
5/47, मालवीयनगर, जयपुर

□□□

उनके पदचिन्हों पर चलने की कामना करती हूँ

— श्रीमती अरुणा जैन

एम ए (हिन्दी, समाजशास्त्र)

1 जुलाई 1998 को जब मैने अपने नये घर मे समाजसेवी विद्वान् श्री कमलकुमारजी के द्वितीय सुपुत्र राजीव जैन की सहधर्मिणी के रूप मे प्रवेश किया तो शादी की चहल–पहल, रिश्तेदारो की भीड़–भाड से युक्त घर मेरे लिए नया था। लेकिन परिवारजनो की आत्मीयता से मै कुछ ही घंटो मे घर मे घुल–मिल गई। भीड़–भाड़ कम होने पर मैंने अपने जीजाजी श्री श्रीयांशजी, जयपुर को किसी ग्रन्थ की प्रूफ रीडिग करते देखा तो उत्सुकतावश उनसे पूछा जीजाजी यह क्या है ? उन्होंने कहा – यह एक स्मृति ग्रन्थ का मैटर है, जो इसी घर से सम्बन्धित है। आपके बाबा ससुर स्व पण्डित गोरेलालजी शास्त्री की स्मृति में यह ग्रन्थ उनके स्नातको, परिवारजनो एवं सम्बन्धियो द्वारा प्रकाशित कराया जा रहा है। इससे मुझे अपने अजिया ससुर के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा हुई। उस समय तो शादी के कुछ दिन बाद मैं अपने पितृगृह सागर चली गई। अब जब सागर से पुन मैं वापिस आई तो मैंने पापाजी (ससुरजी) से स्मृति ग्रन्थ के बारे मे पूँछा और खुद कुछ लिखना चाहती हूँ, यह कहा तो पापाजी ने उनका जीवन परिचय मुझे पढने को दिया जिससे मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे अजिया ससुर एक बड़े विद्वान्, समाज सुधारक एवं पूरे प्रान्त के गुरु रहे हैं। ऐसे उपकारी व्यक्तित्व के प्रति मेरा माथा सहज ही श्रद्धा से नत हो गया है। उनके सम्बन्ध मे मैं जो कुछ भी लिखूँ वह सूर्य को दीपक दिखाने के समान ही है तथापि उनकी पुण्य स्मृति मे श्रद्धापूर्वक कुछ लिखने का प्रयास कर रही हूँ।

सबसे पहले मैं कल्पनाओ मे डूबकर अपने अजिया ससुर के चरण स्पर्श कर उनके आशीर्वाद की मगल कामना करती हूँ। शायद मुझे भी समाज सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो तथा मेरे इस उत्साह मे कमी न आने पाये। मै अपने आपको बहुत ही सौभाग्यशालिनी समझती हूँ कि मुझे ऐसे विद्वान् के घर मे बहू बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ साथ ही दुर्भाग्य भी मानती हूँ कि मुझे उनके दर्शन न हो सके। साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। मेरे आने के बहुत पहले ही वे हम सबके बीच से जा चुके थे। काश मै उनके दर्शन कर पाती और उनसे कुछ शिक्षा ग्रहण कर पाती।

वैसे मैं अपने पापाजी (ससुरजी) से उनकी ज्ञानवर्धक बाते सुनकर ही अनुमान लगा लेती हूँ कि मेरे अजिया ससुर पूज्य पण्डितजी निश्चित रूप से महान् व्यक्ति रहे होगे। मैने जब यह जाना कि वे एक अच्छे कवि भी थे। उन्होनें बारह भावना, द्रोणगिरि अर्चना, गारी सग्रह और जैन भजन सग्रह आदि की रचना की है तो गौरवान्वित होकर मैंने उनके साहित्य को पढा। जो धार्मिक तथा शिक्षाप्रद है। ससार की असारता का दिग्दर्शन वहाँ है। उनके द्वारा लिखीं गईं गारियॉ तो समाज सुधार के क्षेत्र मे बहुत उपयोगी हैं।

अत मे मैं विद्वान्, समाजसेवी, धार्मिक और परोपकारी व्यक्तित्व के धनी अपने पूज्य बब्बाजी के कार्यों से प्रेरणा प्राप्त करती हुई उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ तथा चार पंक्तियो के माध्यम से उनके पदचिन्हो पर चलने की कामना करती हूँ।

"न गगन, न धरा तक, न उन्नति न पतन तक।
हमे तो चलना है सिर्फ, उनके पद चिन्हो तक।।"

• धर्मपत्नी राजीव जैन
आकर्षण वेन्टेक्स एव जनरल स्टोर, छतरपुर (म प्र)

साहित्य सृजन
एवं
समीक्षा

द्रोणगिरि वन्दना

इस महा भयानक अटवी मे, निज आत्म साधना के बल पर।
आ डटे वीर विधि से लडने, ले बॉध खड्ग कर मे यतिवर।।
निश्चल करने चचल मन को, अति कठिन योग से युक्त हुये।
इस द्रोणशैल की पुण्य भूमि से, गुरूदत्तादिक मुक्त हुये।।1।।

इस सिद्धक्षेत्र की पुण्य धरा के, कण–कण को करके पुनीत।
विचरण करते थे शिव पथिको के, उर मे भरने को सुनीत।।
कर तत्व बोध से जग सुबोध, रागादिक मल से रिक्त हुये।
इस द्रोणशैल की पुण्य भूमि से, गुरूदत्तादिक मुक्त हुये।।2।।

निज हित पथभ्रान्त सुपथिको को, यतिवर तुमने दे आलम्बन।
ससार ताप का अति कठोर, मिट गया सदा को आक्रन्दन।।
अति कठिन तपस्या से यतिवर, क्रोधादि खलो से मुक्त हुये।
इस द्रोणशैल की पुण्य भूमि से, गुरूदत्तादिक मुक्त हुये।।3।।

शिव कोटि के कथनानुसार, उपसर्ग सहे तुमने अपार।
पर सुदृढ चित्त मे नहीं हुआ, यतिवर तुममे किचित् विकार।।
परमार्थ तत्व के चिन्तन मे, तुम अधिकाधिक अनुरक्त हुए।
इस द्रोणशैल की पुण्य भूमि से, गुरूदत्तादिक मुक्त हुये।।4।।

करके पवित्र गिरि योगिराज, गिरि हुआ तभी से तीर्थराज।
पाते थे, पायेगे, पाते वदन कर, भविजन शान्ति राज।।
हम पुण्य भावना लेकर निशदिन, गिरिवर मे अनुरक्त हुये।
इस द्रोणशैल की पुण्य भूमि से, गुरूदत्तादिक मुक्त हुये।।5।।

हे पूज्य तपोनिधि तव चरणो मे, निशिदिन करता हूँ प्रणाम।
बस चाह यही ससार भ्रमण से, मैं पा जाऊँ अब विराम।।
तेरी गुण गाथा गा गा कर, अगणित भवि निज अनुरक्त हुये।
इस द्रोणशैल की गुण्य भूमि से, गुरूदत्तादिक मुक्त हुये।।6।।

□□□

सद्नेवज विविध प्रकार, षट् रस युक्त बने।
पूजो त्रिजगत् भरतार, भूख गदादि हने।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिवपद राजत हैं।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नमः क्षुधारोग–विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर दीपक ज्योति प्रकाश, तुम ढिग धारत हो।
अति निविड मोह तम नाश, मोद बढ़ावत हों।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिवपद राजत हैं।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नमः मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ धूप दशाग बनाय, हुतभुक् मे खेऊँ।
रिपु अष्ट करम जर जाय, जिन पद नित सेऊँ।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिवपद राजत है।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।7।।

ॐ ही श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नमः अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

नानाविध के फल लाय, सरस कण प्यारे।
उत्कृष्ट महाफलदाय, श्री जिन ढिग धारे।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिवपद राजत हैं।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।8।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नमः मोक्षफल–प्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

वसु द्रव्य सु सजि हिम थार, अर्घ्य बनाय धरों।
शुभ पद अनर्घ्य दातार, जिनपद पूज करों।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिवपद राजत हैं।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।9।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नमः अनर्घ्यपद–प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

(वसन्ततिलका)

जल गन्ध अक्षत सुगंधित पुष्प लाके।
चरू दीप धूप फल ये सब ही मिलाके।।

हम निजस्वरूप में लीन होंय, भवकारण कर्म कलंक धोय।
भव वास शीघ्र ही छूट जाय, कर जोड "लाल" मस्तक नवॉय।।11।।

(दोहा)

अमित अमल गुणगण सहित, गुरुदत्तादि मुनीश।
तिनके चरण सरोज को, नाऊँ नित प्रति शीश।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नम अनर्घ्यपद–प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जो पूजे गिरिराज स्थित, जिनप्रतिबिम्ब सद्‌भाव से।
लेकर के बहुद्रव्य शुद्ध, मन से भक्ति करे चाव से।।
इस भव परभव मे पुनीत, महिमा पाके सुखी राजते।
वे अतिशययुक्त ज्ञान प्राप्त, कर मुक्तिरमा को पावते।।

(इत्याशीर्वाद)

□□□

द्रोणगिरि स्तुति

हे गुरुदत्तादिक वर ऋषि गण चरण शरण हम आते हैं।
परम पुनीत चरण कमलो की रज को शीश चढाते है।।
इसी भूमि से मुनिवर तुमने तप कर शिव को पाया था।
कर निर्वाण क्रिया देवों ने सिद्धक्षेत्र परकाशा था।।1।।

सुर नर से यह भूमि तभी से, पूज्य भूमि थी कहलाई।
हम सब श्रावक करहिं वन्दना, पूज्य भावना चितलाई।।
भक्ति आपकी करहि निरन्तर, शक्ति प्राप्त वह हो जाये।
जिससे आप समान तपो निधि, बन्ध कर्म का नश जाये।।2।।

बोध सूर्य का उदय हमारे, मन-मन्दिर मे प्रगट करो।
दु ख दायिनी घोर अविद्या, अन्धकार को दूर करो।।
आलस तज हम प्रमुदित मन से, विद्याध्ययन करे निशि दिन।
विघ्न उपस्थित होने पर भी कभी न विचलित होवे मन।।3।।

आत्मिक बल की उन्नति करके, श्री जिन धर्मोत्थान करे।
निज कर्तव्यो के पालन मे, अनवधानता दूर करे।।
हटा मूल मिथ्यात्व भावना, आगम ज्ञान नहि टाले।।4।।

गुरुजन की हम विनय करे नित, भक्तिभाव से नत होकर।
रहे परस्पर प्रेमभाव से, भ्रातृभाव सबसे रखकर।।
फलै भावनाये हम सबकी, यतिवर तुम गुण नित गावे।
"लाल" सभी मिल करहिं प्रार्थना हाथ जोडकर सिर नावे।।5।।

□□□

निर्धन हुये रही धन चिन्ता, धनी हुये तो बढी तृषा।
रही निरन्तर अधिक विभव के, पाने की अभिलाष मृषा।।
प्रिय वियोग अप्रिय सयोग से, सदा काल सन्ताप रहे।
विषय भोग की चाह अनल मे, यह प्राणी निश दिवस दहे।।
सब प्रकार से है असार, संसार प्रकट देखो भाई।
हुये विमुख जो जग से प्राणी, मुक्तिरमा उनने पाई।।

एकत्व भावना

शुभ या अशुभ रूप जिय जैसा, कर्म उपार्जन करता है।
अच्छा और भला फल उसका, वही अकेला सहता है।।
जिस कुटुम्ब के लिये, निरन्तर, बडे-बडे अन्याय किये।
झूठ वचन पर पीडन पर धन, हरण अनेको पाप किये।।
जब विपाक इन दुष्कर्मों का, उदयावलि मे आता है।
वही अकेला बिलख बिलखकर, नाना विध दुःख पाता है।।
धन सम्पदा तिय सुत मित्रादिक, कोई काम नहीं आते।
परभव मे इक धर्म छोड़कर, कोई साथ नहीं जाते।।

अन्यत्व भावना

एकक्षेत्र अवगाह रूप से, देह और देही का मेल।
विघट जात वह क्षण भर में, इन्द्र जालिये जैसा खेल।।
तो फिर प्रगट जुदे सुत तिय धन, मित्रादिक सारे सम्बन्ध।
हो सकते फिर कैसे अपने, तो भी हुये मोह से अन्ध।।
देह अचेतन जिय चेतन है, रूपी देह अरूपी जीव।
ज्ञानी जीव देह अज्ञानी, यही भिन्नता लखो सदीव।।
नहीं जीव का परजीवो से, है कोई सच्चा सम्बन्ध।
भेदज्ञान से जो यह समझे, वह हो जाते हैं निर्बन्ध।।

अशुचि भावना

देह अपावन अशुचि घिनावन, नव मल द्वार बहे भारी।
देखत ही अति घिन आती है, मूरख अति रति विस्तारी।।
मात पिता के रजोवीर्य से, बना अशुचि यह तन तेरा।
आधि व्याधि जनि मरण जरा, ने इसे खूब आकर घेरा।।
चन्दन इत्र पुष्प मालाये, नूतन वस्त्रादिक सारे।
केवल इसके छुये मात्र से होय अपावन दु.ख कारे।।

नभ मे स्वाश्रित सदा काल से, निराधार इसका आवास।
नरक पशु सुर मनुजवृन्द का, इसी लोक के अन्दर बास।।
पी अनादि से मोह वारुणी, भ्रमण करे जग मे प्राणी।
भवसागर मे दुख पाते है, भूल आपको अज्ञानी।।
जो जिय विमुख होय इस जग से, निजपद मे थिरता धारै।
लोकशिखर का ईश होय वह, निजानन्द पद विस्तारैं।।

बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ है एकेन्द्रिय से बे, तिय चउ पंचेन्द्रिय पाना।
मानवता मे उत्तमकुल अरु, जिनवाणी का सरधाना।।
सदा तत्त्व के गहन विषय की, समझ कठिन जग मे भारी।
बुद्धि हुई सर्वार्थसिद्धि के, अहमिन्द्रो तक की हारी।।
स्वपर वस्तु का भेदज्ञान यह, अति दुर्लभ जानो भाई।
दर्शज्ञान चारित रत्नत्रय, पाने की अति कठिनाई।।
सब विधियोग निमित्त पायकर, सद्बोधि प्राप्त करलो भाई।
जन्म जरा अरु मरण रोगत्रय, विनश जायेगे दुखदाई।।

धर्म भावना

मोह भाव से रहित जीव का, जो सद्भाव प्रगट होता।
यही भाव सद्धर्म जगत मे, शान्ति सुधा का वर स्रोता।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण का, होता इसी भाव मे जन्म।
जिसके धारण से हो जाते, निश्चय ही भवि जीव अजन्म।।
वीतराग उपदिष्ट धर्म ही, उत्तम सौख्य प्रदाता है।
इसकी प्राप्ति किये ये सारा, ससृति का दुख जाता है।।
अत इसी सद्धर्म प्राप्ति का, यत्न "लाल" करते रहना।
काल लब्धि के आ जाने पर, निश्चय भव सागर तरना।।

□□□

सब कर्म फन्द दूर कर, प्रभु मोक्ष में गये।
हो ही चुकी उपलब्धि, जिन्हें आत्म रूप की।।6।।

संसार सिन्धु से वही, हो पार जायेगा।
जो भक्ति भाव से त्रिकाल, ध्याय आपको।।7।।

भव दाह शान्त मेरी, प्रभु आप कीजिये।
प्रभु बार बार विनति, यही भक्त "लाल" की।।8।।

भजन (3)

सब मिलके आज जय कहो, श्री जैन धर्म की।
मस्तक झुका के जय कहो, श्री जैन धर्म की।।1।।

जो वीर के मुखारविन्द, से प्रगट हुआ।
जिसने बता दई है राह, मोक्षमार्ग की।।2।।

उत्तम क्षमादि रूप या, वस्तु स्वरूप है।
जो एकता स्वरूप, दर्श–ज्ञान–चरण की।।3।।

जिस धर्म को पाकर के, श्वान देव हो गया।
चाण्डालिनी पुत्री हुई, परभव मे सेठ की।।4।।

इस धर्म से ही भील, चरम तीर्थंकर हुआ।
श्रीपाल नृपति की गई, सब पीर देह की।।5।।

सूली से त्राण पा गये, थे धन्य सुदर्शन।
अगनी से नीर लहर, गया धन्य जानकी।।6।।

इस लोक व परलोक, मे सुख धर्म से मिला।
है सुप्रसिद्ध विश्व मे, यह साख शास्त्र की।।7।।

संसार पार होने की, अभिलाषा हो अगर।
जिनधर्म के धारण से, होगी नाश कर्म की।।8।।

भव–भव मे प्राप्त हो, मुझे जिनधर्म की शरण।
जब तक न प्राप्ति मुक्ति हो, यह चाह "लाल" की।।9।।

भजन (4)

जिन धर्म का झण्डा भारत मे, फिर हम आज गढा देगे।
शुभ गुणाधार अनुपम उदार, यह जीवन प्राण हमारा है।।

स्वस्तिक चिन्हाकित जग विजयी, नव जीवन ज्योति जगा देगे।
जब–जब जिसने अन्याय किये, वह सब इसके बल दूर हुये।।

घाति कर्मों का किया उन्मूल जड़ से आपने।
प्राप्त केवलज्ञान कर भवि जीव तारे आपने।
उसके तत्वो का मर्म सिखा दो कोई।। भगवान् .. ।।5।।

शेष घात अघातिया लोकाग्रवासी हो गये।
संसार के भवि प्राणियो को मोक्षमार्ग बता गये।
उस मार्ग पे शीघ्र चला दो कोई।। भगवान् .।।6।।

पद जो इस संसार मे परमात्म पद ऐसा नहीं।
भगवन्त श्री वृष मेरा सा तारण तरण दूजा नहीं।
उनके पास मे "लाल" पहुंचा दो कोई।। भगवान् . ।।7।।

भजन (6)

प्रभु आदिनाथ स्वामी अरजी सुनो हमारी।
संसार सिन्धु से करो नैया हमारी पारी।।
युग आदि मे जिनेश्वर जग जीव बहु उघारे।
करुण पतन ऋषीश्वर अबके हमारी बारी।।1।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी ..

जिस काल में नहीं था कुछ भी पता धरम का।
उस वक्त नाथ तुमने वृष का किया प्रचारी।।2।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी .

शत पच धनुषधारी उत्तुंग तनु विराजे।
चौरासी लाख पूरब की आयु तुमने धारी।।3।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी .

भवि जीव के सहारे मरुदेवी के दुलारे।
नृप नाभिराय नन्दन सुधि लीजिये हमारी।।4।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी. .

त्रय रत्न के पिटारे केवल प्रदीप वारे।
संसार मे न दूजा तुमसा कलक हारी।।5।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी . ..

सौभाग्य आज आया तुमरे शरण मे आया।
रख लीजिये शरण मे कलि काल पाप हारी।।6।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी. ..

तब तक न मैं तुम्हारे ढिग प्राप्त हो सकूँगा।
तब तक रहे शरण मे यह लाल नाथ धारी।।7।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी. .

भजन (9)

हे जीव तू विषयो मे, क्यो अचेत हो पडा।
इससे किया है बन्ध, तूने कर्म का बढा।।
देख लो स्पर्श इन्द्रिय, से हुआ विकल।
कागज की हथनी के, लिये गज गर्त मे पडा।।
रसना के लोभी मीन को, धीवर ने आय के।
आटे के लोभ से उसे, कटक दिया गढा।।
सन्ध्या समय को जानकर, खुशबू का लालची।
होकर कमल मे बन्द, भ्रमर मृत्यु पर चढा।।
दाहक स्वभाव अग्नि का, यह जानता नहीं।
नयनो के वश पतग, वन्हि बीच मे गिरा।।
फस गया वन मे, बहेलिये के जाल मे।
कर्ण रसास्वाद मे, आसक्त मृग मरा।।
जब एक एक विषय, वशीभूत होयकर।
होता है जग मे प्राणियो,को दु ख अति बडा।।
फिर पॉचों इन्द्रिय विषय, मे है जो फसे हुये।
है क्या ठिकाना क्लेश का,जो उनके सिर मढा।।

भजन (10)

कुछ भी करो शिक्षा ग्रहण, उन रामचन्द्र की।
है कीर्ति व्याप्त विश्व मे, उन रामचन्द्र की।।
जो पिता के हुक्म से, तज राज को वन गये।
लक्ष्मण सहित प्रस्थान किया, सग मे जानकी।।
लकेश ने सूनी सिया को वन मे हर लिया।
रक्षा में मृत्यु हो गई, उस गृद्ध राज की।।
युद्ध से लक्ष्मण सहित, जब राम आ गये।
ज्ञात कर सब हाल कह, आये जानकी।।
एक ही दु ख तो अभी तक, दूर नहीं हुआ।
उर दूसरा यह आ गया, बलिहारी कर्म की।।
सेना को ले लंका को झट, प्रस्थान कर दिया।
रावण को मार छीन लाये, अपनी जानकी।।
करके परीक्षा अग्नि से, सीता की राम ने।
सदेह किया दूर रखी, शान आन की।।

क्या करूँ कैसा करूँ कुछ, भी कहा जाता नहीं।
ससार का दुख एक क्षण भी, अब सहा जाता नहीं।।
अब तो कृपा कर दीनबन्धु, दुख शमन कर दीजिये।
मिलके शरण भव भव तुम्हारी, कामना मेरी यही।।भव,।।
चार गतियों मे मुझे, सताप जो भारी हुये।
आपके बिन दूसरा वह, दूर कर सकता नहीं।।
जानकर तेरा विरह यह, आपके आया शरण।
"लाल" का बिन आप कोई, दुख हर्ता नहीं।।भव ।।

भजन (13)

रे जीव क्यो आसक्त हो, संसार मे पगा।
इससे अभी तक नहीं मिला है, मोक्ष का मगा।।
तन पुत्र धाम वाम है, साथी न जीव के।
है सब कुटुम्ब देख लो, निज स्वार्थ का सगा।। रे जीव.।।
जब अभिन्न देह भी, साथी न जीव का।
तब भिन्न और क्या, पदार्थ साथ जायगा।।
जिस द्रव्य की प्राप्ति मे, तूने पाप नित किये।
वह एक पैर भी, न तेरे साथ जायगा।। रे जीव ।।
नरक स्वर्ग पशु व, मानुष की योनि में।
सुक्ख दुक्ख तो, अकेला जीव सहेगा।।
विषयो मे मुग्ध होयकर, निज को भुला रहा।
इनके विपाक मे, तुझे सताप होयगा।। रे जीव.।।
है अंजुलि के नीर सम, यह आयु की दशा।
काल के वश मे हैं सभी, सुर—असुर खगा।।
संसार की सबही दशा, नश्वर समझ के लाल।
कर त्याग इसे शीघ्र, निजानन्द पायगा।। रे जीव ।।

भजन (14)

यह कर्म बड़े बलवान्, महा दुख कारे।
सुर असुर खगाधिप सभी, स्ववश कर डारे।।
जो नवनिधि रत्नो, के थे स्वामी।
स्वर्गीय सुदर्शन चक्र, जिन्हो के नामी।।
बहु मुकुट बद्ध राजा, नित करे नमामि।
जिनके वश मे थे, अमित बली सुर धामी।।
वह भरत चक्रवर्ती, बाहुबली से हारे।। यह. ।।

हितकारी गुरुओ की सगति का पाना।
सुखकारी शान्तिमयी मुद्रा का ध्याना।
पाकर के यदि नहीं किया स्वपर कल्याणा।
तो फिर यह अवसर नहीं लौटकर आना।।
उपकारी गुरुओ ने यह सीख सुनाई।। कुछ करो ।।
ससार जलधि से पार उतरना होवे।
तो मोह नींद मे व्यर्थ पडा क्यो सोवे।।
तज नींद शीघ्र ही जो आतम हित जोवे।
वह उभय लोक की बाधाये सब खोवे।।
नर गति ही समझो "लाल" यही प्रभुताई।। कुछ करो ।।

भजन (16)

है णमोकार की, महिमा अपरमपारी।
नहि हो यकीन तो, देखो शास्त्र मझारी।।
रस कूप मध्य मे, पड़ा हुआ इक नर था,
तब चारुदत्त ने, सुना दिया मन्तर था।
वह तज प्राण, हो गया अमर था,
अज पुत्र इसी को, सुमर गया सुरपुर था।।
नित जाप जपन ते, टरे आपदा सारी।। नहिं हो ।।
अविवेकी ग्वाला सुभग, चराता पशु था,
पा मत्र मुनी से हुआ, सेठ का शिशु था।
इक श्वान द्विजो से, हुआ कंठ गत असु था,
पा मत्र हुआ यक्षेन्द्र, सहित वसु गुण था।।
भया मत्र से अंजन, भवदधिपारी।। नहि हो ।।
हथिनी कीचड मे फसी, सहे दुख भारी,
यह मत्र सुमर शुभ, गति मे शीघ्र सिधारी।
युग नाग नागिनी, मूर्ख साधु ने जारी,
उपदेशे प्रभु पारस, ने करुणाधारी।।
भये पद्मावती धरणेन्द्र, अमर पदधारी।। नहिं हो ।।
उपदेश मुनी का, मरकट ने पाया था,
जन्मान्तर मे हो गया, सुनिष्काया था।
यह वृत्त सभी, आगम सें बतलाया था,
सत् श्रद्धानी भव्यो, के मन भाया था।।
अब करो अटल विश्वास, समझ हितकारी।। नहि हो.।।

भजन (18)

जयन्ती वीर जिनवर की, मनाना ही मुनासिब है।
सकुचित निज विचारो को, बदलना ही मुनासिब है।।
रूढि से इस जयन्ती को, मनाना छोड अब दीजै।
वास्तविक रूप से इसको, मनाना ही मुनासिब है।
जिन्होनें विश्व को कल्याण, का मारग बताया है।
आज मारग वही सबको, दिखाना ही मुनासिब है।।
न हो उपदेश औरो को, घृणित यह भाव तज दीजै।
वीर वाणी से सबको तृप्त, करना ही मुनासिब है।।
सुप्याला वीर वाणी का, जो पीना चाहते दिल से।
छोडकर निजपना सबको, पिलाना ही मुनासिब है।।
हास इस जैन जाति का, दिनो दिन हो रहा भारी।
जो चाहे जैन दीक्षा को, दिलाना ही मुनासिब है।।
भक्ति यदि वीर प्रभु की है, तुम्हारे शुद्ध मानस मे।
वीर भक्ति लिखित जग को, बताना ही मुनासिब है।।
विश्वविद्यालयो के बिन, नहीं कोई कार्य चल सकता।
शीघ्र विश्व विद्यालय, खुलाना ही मुनासिब है।।
ढाई हजार सम्वतसर के, पहले जो जमाना था।
उसी का रूप सब जग को, दिखाना ही मुनासिब है।।
अहिसा धर्म की जग मे, पुन पहचान हो जावे।
"लाल" कलियुग मे सतयुग ही, दिखा देना मुनासिब है।।

भजन (19)

वीतराग देव भजो, नित्य चित्त लाई।
और देव मॉहि नहिं पूज्य भाव भाई।। टेक।।
राग द्वेष का लेश सुमरत ही दूर क्लेश।
छियालिस गुण युत जिनेश, परम सौख्य दाई।। वीतराग ।।
घाति चतुष्कर्म नाश, विश्व तत्त्व का प्रकाश।
भव्यन की पूर्ण आश निजानन्द पाई।। वीतराग ।।
रोष और कर्म टाल, तज के ससार जाल।
मुक्ति कामिनी विशाल, मांहि प्रीति छाई।। वीतराग ।।
शोभित वसु गुण विशाल, सम्यक्त्वादिक रसाल।
रहेगे अनन्त काल, स्वात्म सुख सुहाई।। वीतराग ।।
ऐसे प्रभु को त्रिकाल, भक्ति भाव युक्त "लाल"।
नावत चरणो मे भाल, भरमता नशाई।। वीतराग ।।

करे गुणगान हम उनका, हृदय की स्वच्छता करके।
मोद मय भक्ति भावो से, उन्हीं का रूप पावेगे।।आज ।।
करे सद्भाव यतियो का, लक्ष्य विधि नाश का रखके।
कुटिलता छोड़कर हम, भावनाये भव्य भावेगे।।आज ।।
सुकृत इस भांति करते, "लाल" तेरा काल बीतेगा।
समय पाकर कभी हम भी, वही सन्मुक्ति पावेगे।।आज ।।

भजन (22)

इतना तो नाथ कीजे, जब जाऊँ देह तजकर।
हो भावना हमारी, अति शान्ति रूप रुचिकर।।
नहि हो विरोध मेरा, ससार मे किसी से।
सबसे क्षमा कराऊँ, मैं भी क्षमूं सभी पर।।इतना ।।
जो हो हितोपदेशी, सर्वज्ञ वीतरागी।
गुरुदेव हो हमारा तारण तरण सुखाकर।।इतना ।।
सब प्राणियो के ऊपर, होवे दया हमारी।
संसार में भरे हैं, सर्वत्र जो चराचर।।इतना ।।
तन धन कुटुम्ब वामा, सुत तात मात धामा।
इनसे ममत्व छूटे, सुख शान्तिमय जिनेश्वर।।इतना ।।
अति शान्ति रूप मूरति, हो सामने तुम्हारी।
दिल भरके देख लूं मैं, उसमे निमग्न होकर।।इतना ।।
नहिं क्रोध लोभ माया, मोहादि मे रहे उर।
जाग्रत रहे हमेशा, शुभ भावनाये अन्तर।।इतना ।।
होवे समाधि मेरी, बेहोश मैं न होऊँ।
निज भाव शुद्ध रक्खूं, अति सावधान रहकर।।इतना ।।
अरि मित्र धाम मरघट, ये काच और कंचन।
सम भाव मन मे रक्खू, यह राग द्वेष तजकर।।इतना ।।
होवे समीप मेरे, यतिगण सुबोध दाता।
विचलित न ध्यान होवे, निज आत्म बोध पाकर।।इतना ।।
चाहूं न मैं किसी की, ससार मे बुराई।
सत्वेषु मित्रता का, यह पुण्य पाठ पढकर।।इतना ।।
हिंसा असत्य चोरी, अब्रह्म व परिग्रह।
होऊँ महाव्रती मैं, ये पांच् पाप तजकर।।इतना ।।

करे गुणगान हम उनका, हृदय की स्वच्छता करके।
मोद मय भक्ति भावो से, उन्हीं का रूप पावेगे।।आज ।।
करे सद्भाव यतियो का, लक्ष्य विधि नाश का रखके।
कुटिलता छोड़कर हम, भावनाये भव्य भावेगे।।आज ।।
सुकृत इस भाति करते, "लाल" तेरा काल बीतेगा।
समय पाकर कभी हम भी, वही सन्मुक्ति पावेगे।।आज ।।

भजन (22)

इतना तो नाथ कीजे, जब जाऊँ देह तजकर।
हो भावना हमारी, अति शान्ति रूप रुचिकर।।
नहिं हो विरोध मेरा, ससार मे किसी से।
सबसे क्षमा कराऊँ, मैं भी क्षमूं सभी पर।।इतना ।।
जो हो हितोपदेशी, सर्वज्ञ वीतरागी।
गुरुदेव हो हमारा तारण तरण सुखाकर।।इतना ।।
सब प्राणियो के ऊपर, होवे दया हमारी।
संसार मे भरे हैं, सर्वत्र जो चराचर।।इतना ।।
तन धन कुटुम्ब वामा, सुत तात मात धामा।
इनसे ममत्व छूटे, सुख शान्तिमय जिनेश्वर।।इतना ।।
अति शान्ति रूप मूरति, हो सामने तुम्हारी।
दिल भरके देख लूं मैं, उसमे निमग्न होकर।।इतना ।।
नहिं क्रोध लोभ माया, मोहादि में रहे उर।
जाग्रत रहे हमेशा, शुभ भावनाये अन्तर।।इतना.।।
होवे समाधि मेरी, बेहोश मैं न होऊँ।
निज भाव शुद्ध रक्खू, अति सावधान रहकर।।इतना.।।
अरि मित्र धाम मरघट, ये काच और कंचन।
सम भाव मन मे रक्खूं, यह राग द्वेष तजकर।।इतना ।।
होवे समीप मेरे, यतिगण सुबोध दाता।
विचलित न ध्यान होवे, निज आत्म बोध पाकर।।इतना.।।
चाहूं न मैं किसी की, संसार मे बुराई।
सत्वेषु मित्रता का, यह पुण्य पाठ पढकर।।इतना ।।
हिंसा असत्य चोरी, अब्रह्म व परिग्रह।
होऊँ महाव्रती मैं, ये पाच पाप तजकर।।इतना ।।

करे गुणगान हम उनका, हृदय की स्वच्छता करके।
मोद मय भक्ति भावो से, उन्हीं का रूप पावेगे।।आज ।।
करे सद्भाव यतियो का, लक्ष्य विधि नाश का रखके।
कुटिलता छोड़कर हम, भावनाये भव्य भावेगे।।आज ।।
सुकृत इस भांति करते, "लाल" तेरा काल बीतेगा।
समय पाकर कभी हम भी, वही सन्मुक्ति पावेगे।।आज ।।

भजन (22)

इतना तो नाथ कीजे, जब जाऊँ देह तजकर।
हो भावना हमारी, अति शान्ति रूप रुचिकर।।
नहि हो विरोध मेरा, संसार मे किसी से।
सबसे क्षमा कराऊँ, मैं भी क्षमूं सभी पर।।इतना ।।
जो हो हितोपदेशी, सर्वज्ञ वीतरागी।
गुरुदेव हो हमारा तारण तरण सुखाकर।।इतना ।।
सब प्राणियो के ऊपर, होवे दया हमारी।
संसार मे भरे हैं, सर्वत्र जो चराचर।।इतना ।।
तन धन कुटुम्ब वामा, सुत तात मात धामा।
इनसे ममत्व छूटे, सुख शान्तिमय जिनेश्वर।।इतना ।।
अति शान्ति रूप मूरति, हो सामने तुम्हारी।
दिल भरके देख लूं मैं, उसमे निमग्न होकर।।इतना.।।
नहि क्रोध लोभ माया, मोहादि मे रहे उर।
जाग्रत रहे हमेशा, शुभ भावनायें अन्तर।।इतना ।।
होवे समाधि मेरी, बेहोश मैं न होऊँ।
निज भाव शुद्ध रक्खूं, अति सावधान रहकर।।इतना ।।
अरि मित्र धाम मरघट, ये कांच और कंचन।
सम भाव मन मे रक्खूं, यह राग द्वेष तजकर।।इतना ।।
होवे समीप मेरे, यतिगण सुबोध दाता।
विचलित न ध्यान होवे, निज आत्म बोध पाकर।।इतना.।।
चाहू न मैं किसी की, संसार मे बुराई।
सत्वेषु मित्रता का, यह पुण्य पाठ पढकर।।इतना ।।
हिंसा असत्य चोरी, अब्रह्म व परिग्रह।
होऊँ महाव्रती मैं, ये पांच पाप तजकर।।इतना.।।

करे गुणगान हम उनका, हृदय की स्वच्छता करके।
मोद मय भक्ति भावो से, उन्हीं का रूप पावेगे।।आज ।।
करे सद्भाव यतियो का, लक्ष्य विधि नाश का रखके।
कुटिलता छोड़कर हम, भावनाये भव्य भावेगे।।आज.।।
सुकृत इस भाति करते, "लाल" तेरा काल बीतेगा।
समय पाकर कभी हम भी, वही सन्मुक्ति पावेगे।।आज ।।

भजन (22)

इतना तो नाथ कीजे, जब जाऊँ देह तजकर।
हो भावना हमारी, अति शान्ति रूप रुचिकर।।
नहि हो विरोध मेरा, संसार मे किसी से।
सबसे क्षमा कराऊँ, मै भी क्षमू सभी पर।।इतना ।।
जो हो हितोपदेशी, सर्वज्ञ वीतरागी।
गुरुदेव हो हमारा तारण तरण सुखाकर।।इतना ।।
सब प्राणियो के ऊपर, होवे दया हमारी।
संसार मे भरे हैं, सर्वत्र जो चराचर।।इतना ।।
तन धन कुटुम्ब वामा, सुत तात मात धामा।
इनसे ममत्व छूटे, सुख शान्तिमय जिनेश्वर।।इतना ।।
अति शान्ति रूप मूरति, हो सामने तुम्हारी ।
दिल भरके देख लू मैं, उसमे निमग्न होकर।।इतना ।।
नहिं क्रोध लोभ माया, मोहादि मे रहे उर।
जाग्रत रहे हमेशा, शुभ भावनायें अन्तर।।इतना ।।
होवे समाधि मेरी, बेहोश मै न होऊँ।
निज भाव शुद्ध रक्खू, अति सावधान रहकर।।इतना.।।
अरि मित्र धाम मरघट, ये कांच और कंचन।
सम भाव मन मे रक्खूं, यह राग द्वेष तजकर।।इतना.।।
होवे समीप मेरे, यतिगण सुबोध दाता।
विचलित न ध्यान होवे, निज आत्म बोध पाकर।।इतना ।।
चाहूं न मैं किसी की, संसार मे बुराई।
सत्वेषु मित्रता का, यह पुण्य पाठ पढकर।।इतना ।।
हिंसा असत्य चोरी, अब्रह्म व परिग्रह।
होऊँ महाव्रती मैं, ये पाच् पाप तजकर।।इतना.।।

भजन (24)

आखो मे बस रहे हो, दिल मे समा रहे हो।
भगवान् अपना जलवा, सबको दिखा रहे हो।
सुखकारी छबि प्यारी, दिल मे बसी तुम्हारी।
दर्शन मुझे दिखादो, देरी लगा रहे हो।।भगवान्...।।
अजन को तुमने तारा, श्रीपाल को उबारा।
है आसरा तुम्हारा, तुम क्यो भुला रहे हो।।भगवान्...।।
तारण तरण तुम्हीं हो, भव दु ख हरण तुम्हीं हो।
कुछ तो तरस करो तुम, मुझ को भुला रहे हो।।भगवान् ..।।
शिव मार्ग को बता दो, आवागमन मिटा दो।
इस प्रेम को क्यो बेहद, इतना भुला रहे हो।।भगवान् ..।।

□□□

गारी (1)

श्री जिन की छबि प्यारी, निरखो नर नारी।। टेक।।

रागद्वेष का लेश नहीं है, समता रस की क्यारी। (निरखो)

क्रोध कषायादिक नहि कोई, क्षमा सखीसों यारी। (निरखो)

उस छबि का नित ध्यान क्रिये ते, हो जाते भव पारी। (निरखो.)

जिन जीवों ने ध्यान किया है, पहुचे मुक्ति मॅझारी। (निरखो.)

तीन रतन की माला पहिने, दर्श बोध व्रत धारी। (निरखो)

निज स्वरूप मे लीन रहे नित, पर परिणति दुखकारी। (निरखो.)

मुक्तिरमा से आलिगन की, लागी लगन अपारी। (निरखो.)

यह नर भव फिर मिलन कठिन है, ज्यो चिन्तामणि भारी। (निरखो)

इससे नर भव पाकर बहिनो, करलो आत्म सुधारी। (निरखो)

"लाल" भाल निज छबि के आगे, नावत सौ–सौ बारी। (निरखो)

□□□

गारी (2)

करती शोक अपारी, उग्रसेन कुमारी।। टेक।।

तुमरे भैया कृष्ण कुँवर है, नारायण पदधारी। (उग्रसेन)

उनने छल से ब्याह रचायो, लोभ राज्य का भारी। (उग्रसेन.)

मरण हेतु वन पशु घिराये, जूनागढ मे भारी। (उग्रसेन)

यह लख प्रभु ने मुनि व्रत धारा, त्यागी सम्पत्ति सारी। (उग्रसेन)

छोडे छप्पन कोट कुटुम्बी, छोडी राजुल नारी। (उग्रसेन)

भव शरीर से हुए विरागी, जोग लिया गिरनारी। (उग्रसेन)

तव वियोग से शोक करे अति, शिवदेवी महतारी। (उग्रसेन)

राजदुलारी राजुल नारी, विलपत करुणा धारी। (उग्रसेन)

द्विविध सग तज भये दिगम्बर, पच महाव्रत धारी। (उग्रसेन)

"लाल" प्रभु ने अब तो जग से, तज दी ममता सारी। (उग्रसेन)

गारी (3)

हम जानी कै तुम जानी।। टेक।।

निज परिणति को भूले चेतन, पर परिणति मे रुचि ठानी। (हम)

विषय महा विष सेये निश दिन, करी प्रीति बहु मनमानी।। (हम)

घर के काम करो चित देकर, देखो जीव निहारी। (री बहिनो,)
यही धर्म है स्त्रीजन का, देखो शास्त्र मॅझारी। (री बहिनो,)
शीलवती नारी के आगे, देवन ने शिरधारी। (री बहिनो,)
जग मे "लाल" शील गहने को, पहिनो बारंबारी। (री बहिनो,)

गारी (5)

तुम सुनो हमारे चेतन भैया, अपनी सुध विसरैया।। टेक।।
मोह महामद पीकर जग मे, निजको वृथा भ्रमैया। (तुम)
स्त्री, पुत्र, कुटुम्बीजन सब, स्वारथ गीत गवैया। (तुम)
तन धन धामा नहि सग जाना, तिनसो मोह करैया।। (तुम)
कुगुरु कुदेव कुशास्त्र भजे नित, जो ससार डुबैया। (तुम)
चतुर्गति के बहु दुख भुगते, बहु पर्याय धरैया। (तुम)
जग मे चक्कर खूब लगाया, जैसे रथ को पैया। (तुम)
पर उपकार करो नहि कबहू, अपनऊ पेट भरैया। (तुम)
स्वात्म प्रशसा पर निदा कर, खोटे कर्म बधैया। (तुम)
देख देख पर की सम्पत्ति को, मन मे बडे जलैया। (तुम)
ब्याह काज मे बहु धन खरचो, धन का धुआ उडैया। (तुम)
भूखो को नहि भोजन दीना, पूजा रथ चलवैया। (तुम)
मान बढाई को धन खरचो, कछू न हाथ लगैया। (तुम)
गाढ नींद मे सोये अब तक, भव दुख माहि रुलैया। (तुम.)
अब सोने का समय नहीं है, देखो ज्ञान तरैया। (तुम.)
पहिले की सब छोड कुटेके, समता नीर पिवैया। (तुम)
नर भव पाकर जिन वृषधारी, जो भव पार लगैया। (तुम)
जैनागम का मनन करो नित, आत्म तत्त्व दरशैया। (तुम)
"लाल" जगत मे निज हितकारी, जिनमत सौं कोउ नैया। (तुम)

गारी (6)

भवि जीवन को सुखदाई हो लला।
शिवदेवी लला।। टेक।।
राजा समुद्रविजय हर्षाई हो लला। (शिवदेवी.)
तुम द्वारका नाथ कहाई हो लला। (शिवदेवी)
शिवदेवी गोद खिलाई हो लला। (शिवदेवी)
तुम सुमरे पाप नशाई हो लला। (शिवदेवी)
तुम ब्याह तजो दुखदाई हो लला। (शिवदेवी)

गारी (8)

ध्यान धरे मुनिवर ज्ञानी, श्री जिनवाणी श्रद्धानी।। टेक।।

त्रस थावर की रक्षा करते, नहि बोले झूठी वाणी। (श्री जिनवाणी)

चोरी और कुशील परिग्रह, तजे पाप ये दुखदानी। (श्री जिनवाणी)

इस विध सो ये पच महाव्रत, पालन करते धर ध्यानी। (श्री जिनवाणी)

ईर्या पथ सो गमन करे नित, हित मित वचन कहे ज्ञानी। (श्री जिनवाणी.)

खडे खडे निज पाणि पात्र मे, शुद्ध लेत भोजन पानी। (श्री जिनवाणी.)

देखभाल कर धरे उठावे, पिछि कमडल जिनवाणी। (श्री जिनवाणी.)

जीव रहित प्रासुक धरणी पर, मल मूत्रादिक छुटकानी। (श्री जिनवाणी)

पच समिति यह निश दिन पाले, सावधानता मन आनी। (श्री जिनवाणी)

मन वच काया वश मे करते, तीन गुप्ति लई पहिचानी। (श्री जिनवाणी)

बाईस परीषह सहन करे नित, बारह तपसो रुचि ठानी। (श्री जिनवाणी)

दश विधि धर्म सदा ही पाले, करे कर्म की नित हानी। (श्री जिनवाणी)

पावस काल तरू तल ठाडे, सहे क्लेश नहि दुखभाणी। (श्री जिनवाणी,)

शीतकाल नदियो के तट पर, भये योग मे मस्तानी। (श्री जिनवाणी)

ग्रीष्म समय पर्वत के ऊपर, ध्यान धरे शिव सुखदानी। (श्री जिनवाणी.)

सब जीवो पर समता धारे, क्रोध तजे तज अभिमानी। (श्री जिनवाणी)

ऐसे मुनियो के चरणो मे, "लाल" करे निज हित जानी। (श्री जिनवाणी,)

गारी (9)

दृग खोलो नजर से निहार लो, उमरिया बीत गई।। टेक।।

तुमने अपनी सुधि विसराई, नीली निज सम्पत्ति छिनाई।
दीनी ये नर देह गमाई, कीनी कुछ नहि स्वपर भलाई।।
यह तो मिले न फिरकी बार हो, उमरिया ।।

पॉचो इन्द्रिय विषय सुहाई, ताते जग मे हुई रुलाई।
नाना विध पर्याय धराई, श्री जिनधर्म न नेक सुहाई।।
भोगे नरको के दुख अपार हो, उमरिया. ।।

कीने जनम मरण बहुभारी, जिससे भोगा दुख अपारी।
नर भव पाया अबकी बारी, इससे करलो आत्म सुधारी।।
मिल है अवसर न बारबार हो, उमरिया ।।

मिथ्याग्रह ने खूब सताया, उसने भारी नाच नचाया।
अब तो फिरके अवसर आया, करलो "लाल" सफल निज काया।।
जिन धर्म करे भव पार हो, उमरिया ।।

गारी (12)

भजलो भजलो प्रभु का नाम हो, नर भव फिर न मिले।। टेक।।
बहु दिन रहे निगोद मँझारी, जनमत मरत अठारह बारी।
कीने एक श्वास मे भारी, जिससे भोगा दुख अपारी।।
वहां पाया न कुछ विश्राम हो।। नर भव फिर न मिले.।।
निकसे जब निगोद से भाई, स्थावर मे भई रुलाई।
जल भू पवन दहन द्रुम ताई, भोग लेश महा दुखदाई।।
भये निशदिन दुखी परिणाम हो।। नर भव फिर न मिले.।।
त्रस पर्याय बडी कठिनाई, जैसे चितामणि मिल जाई।
लट चिटी अलि विकल बताई, इन्हीं मे बहु काल गंवाई।।
नहि इतहो मिला आराम हो।। नर भव फिर न मिले.।।
मन बिन पचेन्द्रिय पशु धारी, सैनी सिह क्रूर अवतारी।
छेदन भेदन आतपकारी, बन्धन क्षुधा तृषा भी न्यारी।।
भोगे पशुगति मे दुख आठो जाम हो।। नर भव फिर न मिले।।
त्यागी अशुभ भाव से काया, जाकर नरको मे दुख पाया।
ताड़न तापन शील चढाया, तामा शीशा ओंट पिलाया।।
भयो आपस मे तिल तिल चाम हो।। नर भव फिर न मिले.।।
नर पर्याय पुण्य से पाई, जन्मादिक के दुख सहाई।
बालकपन बिन ज्ञान गमाई, यौवन मे तरुणी रति छाई।।
वृद्धापन मे न होवे बहु काम हो।। नर भव फिर न मिले.।।
जब कुछ तुमने तप व्रत कीना, तज नर देह देव पद खीना।
सम्यग्दर्शन से हो हीना, अपना रूप वहां नहिं चीना।।
बिलखे औरो का देख धन धाम हो।। नर भव फिर न मिले.।।
इस विधि चतुर्गति के माहीं, नाना विध पर्याय धराहीं।
सम्यग्दर्शन बिन दु.ख पाइहीं, दर्शन "लाल" धरो मन माहीं।।
सम्यक् से मिले मुक्ति धाम हो।। नर भव फिर न मिले.।।

गारी (13)

तनिक उठ देखो भैया, अपना कोऊ न जग में।। टेक।।
जग की सारी झूठी माया, वृथा प्रीति तन धन में। (तनिक.)
स्वारथ के सब सगे कुटुम्बी, कोऊ न जाते संग मे। (तनिक.)
चक्रवर्ती षट्खण्डी राजा, चक्र सुदर्शन घर मे। (तनिक.)
अन्त समय सब छोड़ चले गये, भये काल के वश में। (तनिक.)

स्पेशल ट्रेन सागर स्टेशन पर रोककर बसो से द्रोणगिरि की यात्रा की। पिताजी ने इस अवसर पर छात्रो द्वारा तीर्थयात्रा सघ का तथा विशेषरूप से संघनायक श्रेष्ठी श्री गजराजजी गंगवाल का स्वागत कराया, स्वय स्वागत गीत बनाकर छात्रो से गवाया। इस पर श्री गगवालजी एव यात्रा सघ के सभी यात्री बहुत प्रभावित हुए दान देते समय पिताजी ने मोका देख श्री गगवालजी से कहा । यहा धर्मशाला की कमी होने से तीर्थ यात्रियो को असुविधा होती है। पास मे ही कुछ जमीन पडी है लेकिन क्षेत्र मे जमीन के क्रय करने करने हेतु धनराशि नहीं है। यदि 1000/— या 1500/— की व्यवस्था हो जावे तो जमीन ली जा सकती है। गगवाल साहब पिताजी से बहुत प्रभावित हुए और उन्होने जमीन क्रय करने की अनुमति दे दी तथा क्षेत्र के निरीक्षण रजिस्टर पर लिखा जमीन क्रय कर तुरन्त सूचित करे तुरन्त पैसा भेज देगे। पिताजी ने पुराने मकानो को खरीदा और श्री गगवालजी को सूचित किया उन्होने तुरन्त 1500/— रुपये भेज दिए। गगवाल साहब ने एक बात और पिताजी से की कि हम दो छात्रो को पढाना चाहते है। योग्य दो छात्रो को ईशरी के पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन हाई स्कूल मे भेजो, हम खर्चा वहन करेगे।

जुलाई 1953 मे पूज्य पिताजी ने श्री रतनचन्दजी बरायठा के साथ मुझे गजराजजी गगवाल कलकत्ता की इच्छा से ईशरी भेज दिया। वहा मैं कक्षा सात मे प्रविष्ट हो गया। पूज्य वर्णीजी का वर्षायोग उस वर्ष गयाजी मे हो रहा था। पूज्य वर्णीजी के दर्शनार्थ हम लोग गयाजी गए। वर्णीजी के पास जैसे ही मैं पहुचा देखते ही कहा — "तुम लोग यहा कैसे" वर्णीजी के चरण स्पर्श किए और आने का कारण बताया। वर्णीजी ने पिताजी के समाचार पूछे , विद्यालय द्रोणगिरि के सम्बन्ध मे पूछा, प्रान्त की स्थिति के बारे मे जानकारी ली और हम लोगो से कहा "व्यर्थ ही तुम लोग यहा आये यहा का जलवायु तुम लोगो के योग्य नहीं।" विशेषरूप से मुझे पास मे बुलाया और कहा तुम यहा से घर जाओ और पिताजी से कहना कि वर्णीजी ने वापस भेजकर कहा है कि पिताजी के पास रहकर सस्कृत प्रथमा परीक्षा की तैयारी करो, परीक्षा उत्तीर्ण कर बनारस चले जाना। मैं वर्णीजी का आशीर्वाद लेकर द्रोणगिरि आ गया, पिताजी से वर्णीजी का सन्देश कहा। पिताजी ने पूर्ण मनोयोग से मुझे सस्कृत प्रथमा की तैयारी कराना प्रारम्भ किया। मैंने भी पूर्ण परिश्रम के साथ अध्ययन किया। मेरे साथ 8 छात्र प्रथमा की परीक्षा दे रहे थे। श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय सागर परीक्षा केन्द्र था पिताजी हम सभी छात्रो को परीक्षा दिलाने सागर ले गए। सागर मे जिस विषय का प्रश्न पत्र अगले दिन होता था, सम्पूर्ण कोर्स को दुहराते थे। समझाते थे। पिताजी के पढाने और समझाने का तरीका इतना सरल था कि छात्रो को सभी विषय आसानी से याद हो जाता था। उस समय वहा परीक्षा दे रहे प्राय छात्र पिताजी के पास पढने को आ जाते थे। जून 1954 मे परीक्षाफल आया। विद्यालय से मात्र मैं ही परीक्षा मे उत्तीर्ण हुआ। पिताजी बहुत प्रसन्न हुए मैंने चरण स्पर्श किया। पूज्य वर्णीजी को अपने परीक्षाफल की जानकारी दी। पूज्य वर्णीजी का पत्र आया तुमने प्रथमा परीक्षा पास कर ली अच्छा किया बनारस चले जाओ, स्याद्वाद महाविद्यालय मे भर्ती हो जाओ।

स्याद्वाद महाविद्यालय शिक्षा जगत् मे सुप्रतिष्ठित विद्यालय था। इसमे अध्ययन करने वाला प्रत्येक छात्र अपने को गौरवशाली मानता था। प्रवेश भी बहुत आसानी से नहीं होता था। समय से प्रवेश फार्म मगाकर भरकर भेजने के बाद स्वीकृति आती थी। तभी प्रवेश होता था। मेरे पास पूज्य वर्णीजी का एक मात्र पत्र था। पूज्य पिताजी ने मुझे अपने पूर्व शिष्यो, जो वनारस मे अध्ययन करते थे, के साथ बनारस भेज

दिया। मै प्रथम बार बनारस पहुँचा। स्याद्वाद महाविद्यालय पहुँचकर नहा धोकर तैयार हुआ। दोपहर मे विद्यालय का कर्मचारी आया और सभी नवागत छात्रो को छात्रावास अधीक्षक के पास लिवा ले गया। मै भी गया। उस समय छात्रावास अधीक्षक श्री पदमचन्दजी शास्त्री थे। सभी छात्रो के अनुमति पत्र देखे और आवास हेतु कमरे आवटित कर दिए। मेरा नम्बर आया मुझसे अनुमति पत्र मागा। मैने वर्णीजी का पत्र दिया। छात्रावास अधीक्षक ने कहा यह अनुमति तो नहीं है। रात्रि को अधिष्ठाता जी के पास चलना, उनका जो आदेश होगा करेगे। उस समय अधिष्ठाता श्री हर्षचन्द्रजी वकील थे। रात्रि मे छात्रावास अधीक्षक के साथ अधिष्ठाता जी के पास गये वहा पूज्य वर्णीजी का पत्र दिखाया। अधिष्ठाताजी ने उस पत्र को सबसे बड़ी स्वीकृति मानकर तुरन्त प्रवेश दे दिया। तथा मैं सानन्द अध्ययन करने लगा।

मुझे उस समय का स्मरण है जब पूज्य पिताजी मुझे अपने से विलग कर बनारस भेज रहे थे। पिताजी के चरण स्पर्श कर जैसे ही मै बस पर चढा पिताजी के नेत्रो से अश्रुधारा बहने लगी। मेरे नेत्रो से तो पहले ही जैसे चरण स्पर्श किए अश्रुधारा बहने लगी थी। पिताजी की अश्रुधारा मुझे इगित कर रही थी कि तुम घर छोडकर बहुत दूर पढने के उद्देश्य से जा रहे हो। इससे मनोयोग से अध्ययन कर विद्वान् बनने का प्रयास करना। पिताजी पढाई का महत्व समझते थे फिर भी किसी तरह अध्ययन किया था। लेकिन मेरे सामने यह स्थिति नहीं थी पिताजी ने अध्ययन के सभी साधन जुटाने का पूर्ण प्रयास किया।

बनारस मे पिताजी के सहपाठी श्री प फूलचन्दजी शास्त्री श्री प अमृतलालजी शास्त्री आदि थे। बनारस मे जब घर की याद आवे इनसे मिलते रहने का पिताजी ने कह दिया था। मै श्री प फूलचन्दजी से मिला पिताजी का सन्देश दिया। पिताजी का सन्देश पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए और मुझे पुत्रवत् माना, स्नेह दिया मै उनके संरक्षण मे बनारस मे सानन्द अध्ययन करने लगा।

1956 मे मेरे साथ एक घटना घटित हुई मेरे किसी विद्वेषी साथी ने मेरे पिताजी के नाम मेरी बीमारी का पत्र डाल दिया पत्र का मुझे कोई पता भी नहीं था। पिताजी को पत्र मिला पढकर घबडा गए। घर मे सभी चिन्तित हुए पिताजी ने तुरन्त बनारस के लिए प्रस्थान किया जैसे ही विद्यालय पहुचे। छात्रावास के प्रवेश द्वार पर जो छात्र मिले उनसे पिताजी ने मेरी जानकारी ली। छात्रो ने मुझे आवाज दी। तुम्हारे पिताजी आये हैं पिताजी आये यह शब्द सुनकर आश्चर्य हुआ तुरन्त कमरे से निकला पिताजी को देखा चरण स्पर्श किया। सामान उठाया कमरे मे ले गया और पिताजी से असमय मे बिना सूचना के आने का कारण पूछा, पिताजी ने पत्र दिखाया। सभी साथियो ने जो पिताजी की सुनकर अन्य कमरो से मेरे यहा आ गए थे पत्र पढते ही कहा यह किसी छात्र की शरारत है। पिताजी मुझे स्वस्थ देख प्रसन्न हुए। नहा धोकर पिताजी ने भोजन किया। विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री प. कैलाशचन्दजी, अधीक्षक श्री पदमचन्दजी एव अपने सहपाठी श्री प फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री से मिलकर दो दिन बाद ही बनारस से विद्यालय की, घर की चिन्ता के कारण द्रोणगिरि वापस आ गए।

1958 मे मैं मध्यमा अन्तिम खण्ड मे अनुत्तीर्ण हो गया विद्यालय के नियम के अनुसार अनुत्तीर्ण छात्रों को सशुल्क प्रवेश दिया जाता था। बनारस से पिताजी के नाम पत्र आया कि आपका पुत्र परीक्षा मे अनुत्तीर्ण हो गया है यदि पढाना चाहते हो तो सशुल्क प्रवेश दिया जा सकेगा। मेरे अनुत्तीर्ण होने से पिताजी को बहुत दु ख हुआ लेकिन मेरी पढाई को निरन्तर जारी रखने के लिए मुझे पिताजी ने पुन बनारस भेज दिया। लेकिन मुझे बनारस मे अच्छा नहीं लगा इसी बीच पिताजी के ज्येष्ठ भ्राता श्री बिहारीलालजी, जो

मुझसे अधिक स्नेह करते थे, के स्वर्गवास का समाचार मिला। छुट्टी लेकर घर आया तथा बनारस नहीं गया। क्योंकि अनुत्तीर्ण होने से दुखी था, सस्कृत के प्रति अरुचि भी हो गई थी। अतः मलहरा मे रहकर प्रायवेट रूप से यू पी. से इन्टर की तैयारी करने लगा। 1959 मे इन्टर किया। मई 1959 मे ही मेरी शादी हो गई। पिताजी के प्रयास से जुलाई 1959 मे जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बड़ामलहरा में सर्विस करने लगा। सर्विस करने के साथ ही मैंने अध्ययन करना नहीं छोड़ा। 1963 मे बी. ए, 1965 मे बी एड, 1969 मे एम ए. किया तथा शास्त्री, साहित्य रत्न की परीक्षा उत्तीर्ण की।

पिताजी ने सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि एव श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय की लम्बी सेवा के बाद 1964 मे अवकाश ग्रहण किया सितम्बर मे पर्यूषण पर्व मे प्रवचन हेतु इम्फाल समाज का आमंत्रण प्राप्त हुआ। पिताजी प्रवचन हेतु इम्फाल चले गए। वहां की समाज ने पिताजी के प्रवचनो से प्रभावित होकर कुछ समय के लिए उन्हें रोक लिया और हम लोगो को पत्रो द्वारा मार्गदर्शन देते रहे। 1965 मे जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की दिनोदिन उन्नति से रुष्ट होकर विभागीय अधिकारी संचालन मे बाधा डालने लगे जिससे प्रबन्ध समिति ने सस्था को बद कर दिया। सभी कार्यरत कर्मचारी बेरोजगार हो गए। पिताजी को जब यह पता लगा मुझे इम्फाल आकर जैन मिडिल स्कूल में कार्य करने को लिखा लेकिन एक सामाजिक सस्था से बेरोजगार होकर दूसरी सामाजिक सस्था मे अपना जीवन व्यर्थ नहीं करने का निर्णय लेने से मैं इम्फाल नहीं गया और शासकीय सेवा के लिए प्रयत्नशील रहा। अच्छा यह हुआ कि मैंने बी. एड. कर लिया था जिससे मेरी नियुक्ति शासकीय सेवा मे हो गई और अक्टूबर 1965 को मैंने शासकीय माध्यमिक शाला दरगुवा मे ज्वाईन कर लिया। पिताजी को मेरी सर्विस लगने से अपार प्रसन्नता हुई। इम्फाल से पिताजी अपने पत्रो के माध्यम से अपना कार्य पूर्ण कर्तव्य निष्ठा से करते रहने की शिक्षा देते रहे।

पिताजी ने मेरी सुख सुविधा का पूर्ण ध्यान रखा। 1965 मे ही मेरी पुत्री प्रमिला ने जन्म लिया। छोटी बच्ची के कारण हम लोगो के सहयोग के लिए पिताजी ने द्रोणगिरि ज्येष्ठ भ्राता श्री अजितकुमारजी को लिखा कि कमलकुमार का ध्यान रखना तथा दरगुवा सहयोग के लिए माँ को भेज देना जिससे बच्ची के कारण परेशानी न हो।

पिताजी आशुकवि थे, साहित्यिक अभिरुचि थी। छात्रो मे भी साहित्य की अभिरुचि पैदा करने का प्रयास किया और अध्ययन कराने के साथ–साथ छात्रों मे बोलने लिखने के लिए छात्र सभाओ के आयोजन कराते रहे। साहित्यिक अभिरुचि के लिए मार्तण्ड मासिक हस्तलिखित पत्रिका छात्रो से निकलवाते थे। इस पत्रिका मे माह भर के देश विदेश तथा सामाजिक जगत् के समाचारो के अलावा छात्रो के लेख, कविताओ, कहानियो आदि का सकलन होता था। कवर पेज भी चित्रकारी से आकर्षक बनाया जाता था। यह हस्तलिखित पत्रिका समाज के बीच प्रान्तीय ग्रामो मे अध्ययन हेतु निश्चित तिथियो पर भेजी जाती थी जो पढने के उपरान्त द्रोणगिरि वापस आ जाती थी। इस मार्तण्ड पत्रिका से छात्रो ने लेख, कविता, कहानी लिखना सीखा, पत्रिका का सम्पादन करना सीखा। मुझे भी पिताजी ने ही लिखना, सम्पादन करना सिखाया। पिताजी की ही देन है जिसके कारण मैंने कुछ लिखा। अनेको स्मारिकाओ के सम्पादन से मेरी जो भी पहिचान साहित्य के क्षेत्र मे बनीं वह पिताजी के कारण ही है।

पिताजी ने मुझे सामाजिक क्षेत्र मे कार्य करने के लिए प्रोत्साहन दिया। पिताजी की प्रेरणा से प्रान्तीय नवयुवको की शक्ति को सगठित कर स्वय को समाज सेवा मे अर्पित करने हेतु मैंने 1961 मे द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ की स्थापना की। प्रान्त मे भ्रमण कर समाज बहुल ग्रामो में शाखाये स्थापित कीं

जिसके माध्यम से सामाजिक चेतना, शिक्षा प्रचार, सार्वजनिक मानव सेवा के कार्य हुए। पिताजी की ही प्रेरणा का प्रतिफल है कि मैंनें 30 वर्ष से सामाजिक जीवन में राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कर अपनी पहिचान बनाई है। भगवान् महावीर 2500 वां निर्वाण महोत्सव वर्ष में संभागीय स्तर पर मंत्री के दायित्व का निर्वाह कर कार्यक्रमों का संचालन, नेत्र शिविरो का आयोजन धर्मचक्रो का सफलतापूर्वक प्रवर्तन जैसे महत्वपूर्ण कार्य किए। श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो मे 15 वर्ष तक मंत्री का दायित्व निभाया। 1981 मे खजुराहो में पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव का विशाल स्तर पर आयोजन अपने मत्रित्व काल में सम्पन्न कराया। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी म. प्र. का 12 वर्ष तक मत्री का दायित्व निभाया।

पिताजी ने मेरा सर्वांगीण विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पिताजी ने हर क्षण मेरा ध्यान रखा है, मेरी उन्नति चाही है लेकिन प्रतिफल में कुछ भी नहीं चाहा मुझे अनेकों ऐसे अवसरो की याद है जब पिताजी अस्वस्थ हुए और मैंने उनकी सेवा करनी चाही लेकिन मेरी सर्विस की चिन्ता के कारण उन्होने हमेशा यही कहा कि तुम अपना काम देखो मेरी तो सेवा यहाँ (द्रोणगिरि पर) होती रहेगी। जुलाई 1981 मे मैं खजुराहो क्षेत्र के मत्री के नाते गजरथ महोत्सव के बाद सौधर्म इन्द्र के साथ कुण्डलपुर नारियल चढाने गया, वहीं से पूज्य आचार्य प्रवर विद्यासागरजी के दर्शन करने नैनागिरि गया। वहां पिताजी थे। पिताजी उस समय बहुत अस्वस्थ थे यहां तक कि बेहोशी की अवस्था मे थे मैं तुरन्त उन्हे छतरपुर लाया और इलाज कराया। कुछ ठीक होने पर पिताजी बोले अब हम ठीक हैं, यहा तुम्हारे लिए परेशानी होती है यह कह घर चले गए। 1986 मे भी पिताजी की आंख का आपरेशन कराया उस समय भी कार्य अधिक होने से पिताजी जैसे ही पट्टी खुली द्रोणगिरि चले गए। उन्होनें मुझे परेशान होते नही देखा।

1989 मे मुझे हृदयाघात की बीमारी हुई और 15 दिन जिला चिकित्सालय के गहन चिकित्सा कक्ष मे रहा। पिताजी द्रोणगिरि मे ही रहते हुए अत्यधिक चिंतित रहे और मेरे स्वास्थ्य लाभ की कामना के लिए धार्मिक कार्य करते रहे। स्वस्थ होने पर मैं पिताजी के दर्शन करने द्रोणगिरि गया पिताजी ने मुझे देखा मेरी कमजोरी की हालत देखी, विह्वल हो गए। मैंने चरण वन्दना की और पिताजी को समझाया कि आपकी सद्भावना के कारण जीवन बच गया आप दुःखी न हो मैं शीघ्र ठीक हो जाऊँगा। पिताजी ने पूर्ण सावधान रहने और स्वास्थ्य का ध्यान रखने को कहा। पिताजी को मेरे परिवार की भी चिन्ता थी दो बच्चे निरंजन और राजीव बड़े थे उन्हे काम पर लगाने की चिन्ता थी। 1990 मे मैंने उन्हें दुकान प्रारम्भ कराने के मुहूर्त के लिए पिताजी को बुलाया। पिताजी अस्वस्थ थे अतः वे स्वयं तो नहीं आ पाये। मेरे ज्येष्ठ भ्राता अजितकुमारजी को भेजा और मुहूर्त की सभी प्रक्रियाये उन्हे बता दीं तथा अपना आशीर्वाद भेजा। दुकान का शुभ मुहूर्त हुआ मैंनें पिताजी के लिए बड़े भाई साहब के साथ वस्त्र रख दिए। भाई साहब ने घर पहुंचकर पिताजी से दुकान के समाचार कहे बहुत प्रसन्न हुए। वस्त्रो को दिया तो कहा कि व्यर्थ मे यह खर्च किया अभी तो स्वयं संभलने की जरूरत है, सहयोग चाहिए। उन वस्त्रों को पिताजी ने अन्तिम समय तक उपयोग मे लिया।

पिताजी की अन्तिम अवस्था मे ही मुझे उनके साथ रहने का मौका मिल सका। मार्च 1991 मे पिताजी अस्वस्थ हुए और उदासीनाश्रम से बडे भाई साहब पिताजी को घर ले आये। मुझे खबर मिली उस समय मैं शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय अनगौर में कार्य करता था। प्रतिदिन छतरपुर से आता था। 20 मार्च से मैं अनगौर से घर (द्रोणगिरि) पिताजी को देखने जाने लगा। 25 मार्च को जब मैंनें पिताजी का स्वास्थ्य ज्यादा खराब देखा तो स्कूल की ड्यूटी कर छतरपुर आया रात्रि में ही परिवार के साथ द्रोणगिरि आ गया। पिताजी ने बहू एवं नातिन को देखा, कहा अच्छी आ गयीं सभी ने पिताजी की हालत देखी दुःखी हुए।

मैं उसी दिन से पिताजी की सेवा मे रहा। घटे दो घटे दैनिक क्रियाओ के अलावा पूरा समय पिताजी के पास ही बैठकर उनकी वैयावृत्ति मे लगाता। धार्मिक पाठ, णमोकार मत्र, स्तुतियो का पाठ करता। पिताजी पूर्ण शान्त भाव से अपना चिन्तन करते रहे। 26 मार्च से नियमित समय पर दूध पानी लेकर सारा समय आत्म चिन्तन मे ही बिताने लगे। अन्तिम अवस्था होने के कारण इन्द्रियाँ शिथिल हो रहीं थीं लेकिन पिताजी पूर्ण सजग थे। आत्म चिन्तन करते करते साय 6 40 पर हम लोगो की उपस्थिति मे ही चिरनिद्रा मे लीन हो गए। हम लोगो ने यह सभी प्रत्यक्ष देखा और चिरनिद्रा मे लीन होने पर हम सभी असहाय हुए, विलाप करने लगे। वात्सल्य मूर्ति पूजनीया माँ की गोदी में अपना सिर रख रोने लगे माँ ने रोते रोते हम सभी के सिर पर हाथ रखा। रिश्तेदारो, गांव वालो ने हम सभी को ढाढस बधाया। उस समय अनुभव किया कि पिताजी की छत्रछाया कैसी होती है और छाया हटने पर समर्थवान् व्यक्ति भी कैसा बेसहारा अनुभव करता है।

पिताजी के निधन का समाचार विद्युत् की तरह प्रान्त मे प्रवाहित हुआ और 30 मार्च 1991 को प्रात जब शवयात्रा की तैयारी हुई जन मानस पिताजी के अन्तिम दर्शन एव अन्तिम विदाई के लिए उमड़ पड़ा। अपार जनमानस के साथ शवयात्रा निकली, शवयात्रा जहा–जहा से निकली सभी ने अश्रुपूरित अपनी श्रद्धाजलि दी। आस पास की जनता समाज एव ग्राम का ऐसा कोई व्यक्ति न था जो स्वयं अपनी ही लकड़ी के साथ (पूज्य पिताजी) के अन्तिम सस्कार मे शामिल न हुआ हो। चिता मे अग्नि दी उपस्थित जन समूह के नेत्रो मे अश्रुधारा बहने लगी। घरवाले पिता विहीन हुए, समाज ने सच्चा सेवी खो दिया, स्नातको के सच्चे गुरु, मार्गदर्शक, जनता के सच्चे चिन्तक, हितैषी चले गए। ग्राम ही क्या पूरा द्रोण प्रान्त पण्डितजी के बिना दिशाहीन हो गया। प्रान्त की शोभा ही चली गई। यह दिन था जब पण्डितजी की लोकप्रियता, समाजसेवा शिक्षा क्षेत्र की सेवा का जन मानस द्वारा अहसास किया गया।

पिताजी ने अगुली पकड़कर चलना सिखाया, पेन्सिल पकड़कर लिखना सिखाया, लाड़ प्यार किया मेरी बचपन की हरकतो को, उद्दण्डता को सहन किया लेकिन मुझे पढाने और योग्य बनाने मे यदि मुझे कठोर दण्ड भी देना पड़ा तो दिया। पिताजी ने पढने के लिए निरन्तर प्रेरित किया, जीवन यापन के लिए सर्विस से लगाया, साहित्यिक अभिरुचि पैदा की, समाज सेवा के लिए प्रेरणा दी। मेरे सर्वांगीण विकास मे जो बाधाये आयीं उन्हे दूर कर मार्ग प्रशस्त किया। मेरे विकास मे उन्होने जीवन भर मार्गदर्शन दिया। जन्म देने वाले पिता तो सभी को मिलते हैं लेकिन जन्म के साथ ही सर्वांगीण विकास की चिन्ता करने वाले, सहयोग करने वाले पिता निश्चित रूप से भाग्यशालियो को ही प्राप्त होते है। मुझे गर्व है कि मैं उन भाग्यशालियो मे हूँ जिसे हर क्षण, हर पल पर पिताजी का स्नेह, सहयोग, मार्गदर्शन, प्रेरणा प्राप्त हुई है। पिताजी का वरद हस्त मेरे ऊपर रहा है। धन्य हैं मेरे पूज्य पिताश्री जिन्हे मैं स्वर्गवास के समय अपने नेत्रो को गीला करता हुआ चरणो मे विनम्र श्रद्धाजलि अर्पित करने के अलावा कुछ भी नहीं कर सका। पूज्य पिताजी मानवता, दया, करुणा की मूर्ति थे उन्हे मैं अपने हृदय मे सजोये हुए उनके द्वारा प्राप्त प्रेरणा से अपना शेष जीवन बिताने का प्रयास करता हूँ। मेरा सम्पूर्ण परिवार उनके उपकारो से अत्यधिक उपकृत है।

• व्याख्याता, शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, गुलगज
निवास – जैन धर्मशाला के पास, छतरपुर (म प्र)

□□□

"पिताजी की भावना के अनुरूप नहीं बन पाया"

— रतनचन्द जैन

अपने पिताजी की सबसे छोटी सन्तान होने के कारण मेरा बचपन तो लाड़ प्यार से बीता ही। उसके बाद का भी समय लाड़ प्यार के कारण अधिक उन्नतिशील नहीं रहा। जहां तक पढने लिखने की बात थी, पूज्य पिताजी ने अपने चरण सान्निध्य मे बैठकर सस्कृत प्रथमा तथा धर्म में प्रवेशिका तक जैसे तैसे पढाकर मुझे आगे की शिक्षा के लिए बाहर भेजने का प्रयास किया।

1956 में मुझे अपने भाई कमलकुमार के साथ स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी भेजा। लेकिन उस समय मेरी पूर्व स्वीकृति न होने के कारण वहा प्रवेश न पा सका। वापस घर आया और श्री गोपाल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय मोरेना मे भर्ती करा दिया। घर से बाहर रहने का यह मेरा प्रथम मौका था। इससे सुख से रहने के लिए व्यय हेतु काफी सहयोग मिला। जिसकारण वर्ष भर मैंने खूब मौज मस्ती से समय निकाला। परिणाम हुआ, उस वर्ष की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया। मेरे पूज्य पिताजी ने इसके बाबजूद भी मुझे स्वतंत्रतापूर्वक जीवन यापन हेतु आयुर्वैदिक शिक्षा दिलाकर चिकित्सक बनाने का प्रयास किया। मुझे द्रोणगिरि के ही मेरे साथी शीतलप्रसाद फौजदार के साथ आचार्य दिगम्बर जैन आयुर्वैदिक कॉलेज जयपुर मे प्रवेश करा दिया। उस समय कॉलेज के प्राचार्य जैन जगत् के मान्य विद्वान् पण्डित चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ थे।

जयपुर मैं 1959 मे गया और पिताजी की भावना चिकित्सक बनने की लेकर गया, लेकिन मेरा भाग्य तो मुझे कुछ और ही बनाना चाहता था। जयपुर जैसी सुन्दर गुलाबी नगरी मे रहने का सुख मिला और खर्च करने के लिए पर्याप्त धनराशि मिली, क्योकि उस समय हमारे भाई साहब श्री कमलकुमारजी जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बड़ामलहरा में कार्य करने लगे थे। इससे जब भी खर्च की आवश्यकता हुई, पत्र लिखा कि वहा से भाई साहब ने माग से अधिक राशि इसलिए भेज दी कि शिक्षण कार्य में व्यवधान न आवे और अपने लक्ष्य की ओर ध्यान रहे। लेकिन जयपुर में कौन देखता कि मैं क्या करता, मन पढने मे तो कम गुलाबी शहर की सफर करने में अधिक लगाया। जयपुर का ऐसा कोई सिनेमा नहीं गया, जिसे मैंनें देखा नहीं हो। पिताजी सोचते थे कि लघु पुत्र मन लगाकर पढ रहा होगा और चिकित्सक बनकर अपने जीवन को सुखी बना लेगा। लेकिन जयपुर मे तो मैं कुछ और ही बन रहा था। पैसे की कमी थी नहीं। बस एक पत्र भाई साहब को मलहरा लिखने मात्र की देरी रहती थी। पूरा वर्ष सैर सपाटे मे गया और देहाती वातावरण से शहरी वातावरण मिला। पढाई का समय तो शहर का भ्रमण, शाम का समय तो सिनेमा मे उपस्थिति पढने का समय ही कहॉ। उस समय मैं अपने भविष्य के प्रति अज्ञानी था, दूसरे साथी छात्रो से भी सीख नहीं ली। परिणाम अन्त मे वही हुआ, जो होना था, परीक्षाफल शून्य आया। पिताजी ने इस पर भी सोचा चलो प्रथम वर्ष है, पढाई कठिन होगी, कोई बात नहीं, अगली वर्ष पुन जयपुर भेजा। दूसरी वर्ष भी मुझे पढने के लिए आकर्षित नहीं कर पाई और सैर सपाटे मे दूसरी वर्ष भी गई। पिताजी ने निराश होकर मुझे धन्धे मे लगाना चाहा, लेकिन मेरा मन धन्धा मे भी नहीं लगा। घर मे खेती की जमीन थी, खेती देखने लगा। खेती की ओर मन लग गया और खेती मे ही पूरा समय देने लगा और अब पूरा जीवन एक कृषक का जीवन जी रहा हूँ।

मुझे स्मरण है कि पूज्य पिताजी ने सैंकड़ो छात्रों का जीवन बनाया, उनके पढाने के बाद उच्च शिक्षा के लिए मार्गदृष्टा बने और अपने उज्ज्वल भविष्य के लिए अच्छे–अच्छे पदो पर शासकीय सेवा में जाने का निर्णय लिया। जो शासकीय सेवा मे नहीं गए अपना उद्योग प्रारम्भ किया, राजनीति में भाग लिया। लेकिन मेरा यह दुर्भाग्य ही रहा कि मैं अपने पूज्य पिताजी की भावना के अनुरूप चिकित्सक नहीं बन पाया। जबकि उन्होने तथा भाईयो ने पूर्ण प्रयास किया। लेकिन भाग्य तो और कहीं ले जाना चाहता था। भाग्य चाहता था कृषक का जीवन जीने के लिए, फिर चिकित्सक बनकर आराम की प्रतिष्ठा का जीवन कैसे प्राप्त करता। जबकि मेरे साथी आज कुशल चिकित्सक हैं, विद्वान् हैं, शासकीय सेवा में हैं।

आज मुझे वे दिन याद आते हैं जब मुझे पिताजी ने जो बनाना चाहा नहीं बन पाया। न अपने जीवन को उज्ज्वल बना पाया। जिनके कारण पिताजी को मेरी चिन्ता बनी रही। अन्तिम समय जब उन्होने अपने परिवार वालो को सन्देश लिखा सबसे अधिक मेरी ही चिन्ता रही। मैं पूज्य पिताजी की स्मृतियो को उनके द्वारा मेरे सुखी जीवन के लिए अथक प्रयासों का स्मरण कर जहा उनके उपकारों से उपकृत हूँ वहीं उनकी भावना के अनुरूप न बन सकने के लिए शर्मिन्दा भी हूँ। पूज्य पिताजी के चरण सान्निध्य में रहकर उनकी अन्तिम समय तक परिचर्या करने का अवश्य सौभाग्य प्राप्त रहा है। ममतामयी करुणामूर्ति माताजी का मुझे सहारा मिला और उनकी भी अन्तिम समय तक परिचर्या करते रहने का सौभाग्य मिला। मैं अपने जीवन दाता श्रद्धास्पद माता–पिता के चरणो मे विनम्रतया नत मस्तक हूँ।

• द्रोणगिरि छतरपुर (म प्र)

□□□

मुझे पढ़ने के लिए हमेशा प्रेरित किया

– श्रीमती काशीबाई जैन

50–60 वर्ष पूर्व शिक्षा का अधिक प्रचार नहीं था। बालिका शिक्षा की तरफ तो किसी का ध्यान भी नहीं था। उस समय हमारे पिताजी भी गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला द्रोणगिरि में अध्यापक थे। पढने के लिए आस पास के ग्रामो से जैन समाज के छात्र छात्रावास मे रहकर संस्कृत व जैनधर्म की शिक्षा प्राप्त करते थे। विद्यालय मे ग्राम के जैन जैनेतर सभी छात्र शिक्षा प्राप्त करते थे। उस समय पिताजी ने मुझे भी पढने के लिए प्रेरित किया और ग्राम की अन्य बालिकाओ को भी पढाने का प्रयास किया। मैंने अक्षराभ्यास से शिक्षा प्रारम्भ की। पिताजी ने बढे सरल ढग से अक्षरो का ज्ञान कराया। जैन धर्म के चारो भाग, छहढ़ाला, मोक्षशास्त्र आदि को पढाया। स्तोत्रो व स्तुतियो को याद कराया। देव दर्शन करने की विधि, पूजन करने की विधि बताई और शास्त्र स्वाध्याय करने की ओर प्रेरित किया। जब मेरी शादी मड़देवरा मे हुई तो मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ उस घर मे मैं ही पढी–लिखी महिला थी। ग्राम मे मेरे अलावा एक दो महिलाये ही शिक्षित थीं।

मुझे शिक्षा की ओर पिताजी ने प्रेरित किया। उन्हीं की कृपा से ही अब मैं शास्त्रो का स्वाध्याय करती हूँ स्तुतियो का स्मरण है, पत्र–पत्रिकाओ को पढ लेती हूँ, यदा–कदा आवश्यकता पर पत्रों को लिखती हूँ। शिक्षित होने के कारण ही सम्मान के साथ अपना सुखमय जीवन व्यतीत कर रही हूँ। वर्तमान मे जब शिक्षा

के विकास को देखती हूँ और प्रत्येक ग्राम मे बालिका शिक्षा के प्रोत्साहन कार्यक्रम को देखती हूँ तो मुझे लगता है कि हमारे पिताजी ने मुझे पढने की ओर उस समय प्रेरित किया जिस समय शिक्षा का प्रसार नहीं था। मै अपने लिए सौभाग्यशाली मानती हूँ और पिताजी के उपकारो से खुद को उनका ऋणी अनुभव करती हूँ। निश्चित रूप से यदि पिताजी ने मुझे पढने के लिए प्रेरित न किया होता तो आज निरक्षर महिला के रूप मे अपना जीवन व्यतीत करती और वर्तमान मे शिक्षित बहुओं के बीच असम्मानजनक स्थिति में रहती। सम्मानपूर्वक रहने के लिए बालिकाओ का शिक्षित रहना बहुत आवश्यक है।

● धर्मपत्नी, श्री शाह गनेशीलालजी, मड़देवरा

□□□

पिताजी की परिचर्या में मेरे अन्तिम क्षण

— कमलकुमार जैन

मार्च 1991 को जब पूज्य पिताजी अस्वस्थ हो गए और आश्रम से हमारे बड़े भाई साहब अजितकुमारजी, मझले भाई विमलकुमारजी और लघु भ्राता रतनचन्दजी पिताजी को घर ले आए उस समय मैं शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय अनगौर में कार्यरत था। छतरपुर से आता जाता था। 20 मार्च को मेरी इच्छा द्रोणगिरि जाकर पिताजी से मिलने की हुई। शाम को छतरपुर वापस न होकर द्रोणगिरि चला गया। पिताजी को देखा, स्वास्थ्य खराब था इलाज आयुर्वेदिक ही चल रहा था। पिताजी एलोपेथी लेते नहीं थे। उनके ही शिष्य श्री वैद्य दामोदरजी, घुवारा इलाज कर रहे थे। पिताजी जब भी अस्वस्थ होते थे इन्हीं का इलाज लेकर ठीक होते थे। रात्रि मे पिताजी के साथ रहा। परिचर्या एव चर्या करता रहा। सुबह तैयार होकर अपनी ड्यूटी पर आ गया। लेकिन मन तो पिताजी के ही पास था छतरपुर न जाकर पुन: घर ही वापस आया। पिताजी कहने लगे व्यर्थ आना जाना बनाकर परेशान होते हो, मै अब स्वस्थ हूँ। लेकिन मुझे पिताजी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं दिख रहा था और यह लगा कि कुछ समय तक पिताजी के ही पास रहना चाहिए। यह सोच मैं घर से स्कूल गया और शाम को छतरपुर जाकर परिवार को लेकर रात्रि में ही द्रोणगिरि आ गया। पिताजी ने परिवार के सभी सदस्यों को देखा, अपनी बहु प्रभा, नातिन प्रमिला और नातियो क्रमश निरन्जन, राजीव, पकज पीयूष को देखा तो प्रसन्नता का अनुभव किया। कहा "अच्छे आ गए, हमे अपना अन्तिम समय दिखता है। सभी को देखने की इच्छा थी।" यह 24 मार्च की रात्रि की चर्चा थी। परिवार के प्राय सभी सदस्य घर मे ही थे। नातिन कुसुम दमोह से, सागर से आशा आ गई थीं मडदेवरा से बहिनजी भी आ गईं थीं।

25 मार्च को नाती चि. महेन्द्र इन्जीनियर सोवियत रूस से अध्ययन कर देहली मे सर्विस कर रहा था, अचानक आ गया। पिताजी ने देखकर प्रसन्नता व्यक्त की हम सभी को भी अच्छा लगा। पिताजी शारीरिक स्थिति से तो कमजोर हो रहे थे लेकिन साधना उनकी निरन्तर होती रहती थी। अस्वस्थता मे भी बिना देव दर्शन और पूजन के जल भी ग्रहण नहीं किया। पिताजी की अन्तिम स्थिति का आभास हो रहा था। अन्त समय भाव न बिगडे, इससे ब्र. रामबाईजी पिताजी को बराबर सम्बोधित करतीं रहतीं थीं।

26 मार्च को प्रात पिताजी को दैनिक क्रियाओ से तैयार कर शुद्ध वस्त्र पहिनाकर जिन—मन्दिर ले

जाने के लिए तैयार हुए। बाहर तक आये, पिताजी के पैर आगे नहीं बढ पाये। पिताजी ने कहा कि पैर नहीं चलते, अब जिनेन्द्रदेव के दर्शन कर सकना सभव नहीं। वहीं अन्न का त्याग कर दिया और वापिस कमरे मे आकर जिनेन्द्र स्तवन करने लगे। श्री ब्र रामबाईजी आर्यी और उन्होने दूध और जल देकर साय पाच बजे तक के लिए सभी का त्याग करा दिया। मैं पिताजी के पास ही रहा। और स्तोत्र आदि पढता रहा। पिताजी लेटे–लेटे मन मे शान्त भाव से स्तवन करते रहे। साय 5 बजे पुन श्री ब्र रामबाईजी आईं तो जल एव थोड़ा दूध दिया तथा अगले दिन 8 बजे तक के लिए सभी प्रकार के आहार का त्याग करा दिया।

रात्रि मे हम सभी चारो भाई, तीनो बहुये, सभी नाती, नातिन पिताजी के पास बैठकर परिचर्या करते थे तथा णमोकार मत्र का अखण्ड पाठ भी करते थे। इसी समय गाव के व्यक्ति भी आ जाते थे और पिताजी के पास बैठते थे।

27 मार्च को पिताजी का स्वास्थ्य प्रात से ही बिगडने लगा। शारीरिक कमजोरी तो बढ ही रही थी लेकिन आत्मिक शक्ति पिताजी मे थी और शरीर से भले ही कुछ न कर सके लेकिन अपने अन्दर बराबर जिनेन्द्र स्तवन चलता रहता था। पिताजी से जब भी पूँछते कि कैसा लग रहा है, वे इशारा कर बताते थे "हम अपने मन मे चिन्तवन कर रहे हैं और अन्दर से पूर्ण सजग हैं।" बाईजी ने अपने समय पर पुन शुद्धता से जल और दूध ग्रहण कराकर पुन साय 5 बजे तक के लिए त्याग करा दिया।

दोपहर मे हम लोग बराबर पिताजी के पास ही रहे और परिचर्या करते रहे। पिताजी अपने मे पूर्ण सजग हैं और नियमो मे दृढ है। यह जानने के लिए जब मैने उनसे पानी दूध ग्रहण करने का आग्रह किया तो उन्होनें कहा कि अभी नहीं। साय 5 बजे तक के लिए बाईजी ने त्याग करा दिया है। मैं आत्म चिन्तन कर रहा हूँ। पिताजी के चेहरे पर कभी उदासीनता नहीं आई और न कभी यह अनुभव हुआ कि उन्हे कोई कष्ट है। शाम को बाईजी आईं और पिताजी से कुछ जल दूध लेने का आग्रह किया तो उन्होने अनिच्छा ही प्रगट की, किन्तु गला न सूखे, कुछ ताकत बनी रहे, इस उद्देश्य से थोडा जल ग्रहण कराकर अगले दिन तक के लिए सभी प्रकार के आहार का त्याग करा दिया।

पिताजी की स्थिति निरन्तर कमजोर होती जा रही थी। रात्रि मे बाईजी ने पिताजी की हालत और अधिक कमजोर देखते हुए पूछा कि आपको अपने परिवारजनो से कुछ कहना है, उन्हे सन्देश देना है। पिताजी ने सभी पुत्रो को, बहुओ को, नाती, नातिनो को, समाज के व्यक्तियो को, उपस्थित सम्पर्क वालो को देखा और सभी से हाथ जोडा। हम लोगो ने अनुभव किया कि अब पिताजी कुछ ही समय के हैं क्योकि उन्होने सभी से अन्तिम विदाई का सकेत किया और उन्होने सभी वस्त्रो का त्याग कराने का इशारा किया। बाईजी के सान्निध्य मे हम लोगो ने सभी वस्त्रो का त्याग कराकर चटाई पर लिटा दिया। पिताजी सभी से अपना मोह त्याग कर ध्यान करने लगे। हम लोग सभी रात्रि भर पिताजी के पास ही बैठे रहे और णमोकार मत्र का पाठ करते रहे बीच–बीच मे पिताजी से भी पूछते रहे, उन्होने इशारा कर अपनी सजगता का सकेत दिया।

28 मार्च को प्रात पिताजी को मन मे पढते हुए देखा, यद्यपि शारीरिक स्थिति कमजोर ही हो रही थी, फिर भी आत्म शक्ति बनी थी।

प्रात दैनिक क्रियाओ से निवृत्त कराया। बाईजी आईं और कुछ लेने का आग्रह किया, लेकिन

अनिच्छा प्रगट की। थोडा सा पानी दिया और सायकाल तक के लिए सभी प्रकार का आहार त्याग करा दिया। इस दिन पिताजी को देखने रिश्तेदार, शिष्यगण, उदासीनाश्रम के व्रतीगण बराबर आते रहे और उन सबको पिताजी ने पहिचाना, उनकी ओर देखा और हाथ उठाकर उनको अपनी सजगता का उत्तर दिया। मैंने बराबर पिताजी को मन मे कुछ पढते हुए देखा, हाथ की अगुलियों को चलते देखा जिससे लगा वे सामायिक करते रहे।

शाम को पिताजी ने कुछ ग्रहण नहीं किया और बराबर उनको कुछ स्मरण करते देखा। अति निकट से जब कान लगाकर सुना तो आवाज बहुत धीमी थी, और अन्तर्मन मे चिन्तन चल रहा था।

पिताजी प्राय आध्यात्मिक बारह भावनाओ का चिन्तवन, समाधिमरण का पाठ किया करते थे। समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक आदि ग्रन्थ उन्हे मौखिक याद होने के कारण अस्वस्थ अवस्था मे उनका भी पाठ चलता रहता था। पिताजी का तो अपने मन मे चिन्तवन चलता ही रहता था, परिवार के लोग भी उनके समीप रहकर णमोकार मत्र, बारह भावना, समाधिमरण का पाठ करते रहते थे और पिताजी की सजगता को भी देखते रहते थे।

29 मार्च पिताजी का इस पर्याय का अन्तिम दिन था। लेकिन चेहरे से उनकी क्रियाओ से ऐसा नहीं लगता था कि पिताजी आज के बाद नहीं होगे। प्रात दैनिक क्रिया कराई और अपने आत्म चिन्तन मे लग गए। पूर्ण चैतन्य स्थिति थी, नेत्रो मे पूर्ण ज्योति थी, सिर्फ कमी थी तो शारीरिक बल की। परिवार के सभी सदस्यो को देखते थे लेकिन मोह किसी से नहीं रहा था, जानते सबको थे।

इस दिन पिताजी ने कुछ नहीं लिया, देने को तैयार भी हुए तो अनिच्छा प्रगट की और सभी प्रकार के आहारो का त्याग कर दिया। हम लोगो को भी अनुभव हो गया कि पिताजी कुछ ही समय के मेहमान है। बराबर उनके ही पास बैठे रहे, कुछ न कुछ धार्मिक वातावरण बनाए रहते। समाधिमरण का पाठ चलता रहा। दोपहर मे 3 बजे के करीब सागर से कुछ रिश्तेदार भी आ गए। पिताजी की बोलने की शक्ति क्षीण हो रही थी लेकिन नेत्रो से उन्होने बराबर सबको देखा।

साय 5 बजे के करीब हम लोग णमोकार मत्र पढ रहे थे, पिताजो की ओर निगाह थी। चेहरे मे तेज था, नेत्र बन्द थे, हाथो की अगुलिया ऐसी चल रहीं थी जैसे सामायिक हो रही हो। 5.30 बजे पिताजी को फिर देखा। नाडी चलने का आभास न होने के कारण तुरन्त ब्र. रामबाईजी को बुलाया, वे आर्यी और उन्होने नाड़ी पर हाथ रखा और कान के पास मुँह लगाकर णमोकार मत्र सुनाने लगीं। हम लोगों को उनकी अन्तिम स्थिति का आभास हुआ। पास मे ही थे हम लोग भी णमोकार मत्र पढने लगे। अचानक साय 6 40 पर पिताजी के गले से खट की आवाज हुई, बाईजी ने पिताजी का मुह ढकते हुए पिताजी के इस पर्याय से जाने का सकेत दिया। हम लोग पिता विहीन हो गए और पिताजी के पास से उठकर शोकमग्न हो गए। मुझे रोता देख सभी को आभास हो गया। वियोग से सभी को दु ख हुआ, लेकिन मै बहुत व्याकुल हो रहा था। ज्येष्ठ भ्राता, जिन्हे पिता तुल्य ही माना, ने मुझे समझाया, सान्त्वना दी। ग्राव वालो ने समझाया लेकिन उस समय का वियोग ऐसा था कि सब कुछ समझते हुए भी अनजान था और अपने मन मे साहस नहीं जुटा पा रहा था। मेरे अधिक विलाप का कारण यह था कि पूज्य पिताजी ने मुझे बनाने मे मेरे जीवन निर्माण मे जो उपकार किया है, शताश भी मैं उनकी सेवा नहीं कर पाया। पिताजी को हर समय हमारी सुख सुविधा की चिन्ता

रहती थी। भले ही अस्वस्थ होने के कारण हमारे पास न आ पाये फिर भी समाचार लेते रहते थे। अक्टूबर 1989 मे हृदयाघात हुआ। पिताजी का स्वास्थ्य उस समय ठीक नहीं था, यात्रा करना भी सभव नहीं था। उस समय उन्होनें मुझे जो पत्र लिखा वह मार्मिक था। इदय को द्रवित करने वाला था, मूल पत्र इसप्रकार है –

श्रीमान् चि भाई कमलकुमारजी

शुभाशीष।

उभयत्र कुशल जिनविद्याविद्यातु।

अपरच तुम्हारे कुशलता के समाचार जानकर प्रसन्नता हुई। अब आगे स्वास्थ्य के ठीक बनाने के लिए दिमागी काम नहीं करना। जहा तक बने, छतरपुर ही तबादला करा लेना। निरोगी होने के लिए विभाग ध्यान देगा।

हम तो तुम्हे देखने के लिए आ ही नहीं सके। केवल खबर मिलाते रहे। आगे जब तुम पूर्ण स्वस्थ हो जाओ तो एक दिन को तो घर आ जाना। हमारी भी हालत अच्छी नहीं है। तुम अपने स्वास्थ्य पर ध्यान जरूर रखना। बच्चो की पढाई पर ध्यान देना व एकाध बच्चे को सर्विस मे लगाने की कोशिश अवश्य करना। जिससे तुम्हारा भार कम हो जावे।

इस पत्र के माध्यम से पिताजी को हमारी चिन्ता थी इसका आभास होता है। मेरे लिए मेरे जीवन का वह स्वर्णिम समय था जिसका उपयोग मै पिताजी के अन्तिम क्षणो मे उपयोग कर सका। मै अपने उपकारी, जन्मदाता, मार्गदृष्टा पिताजी के महान् उपकारो से उपकृत हूँ।

● जैन धर्मशाला के पास
छतरपुर (म प्र)

□□□

पिताजी से मुझे पुत्री जैसा ही स्नेह मिला

– श्रीमती प्रभा जैन

7 जून 1959 को मेरी शादी हुई और मैंने बहू के रूप मे सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि मे अपने ससुर श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के घर मे प्रवेश किया। उस समय मेरी आयु 14–15 वर्ष की थी। मै जब अपने पिता श्री पण्डित शीलचन्दजी साढूमल के घर से जाने लगी तब मुझे बहुत दु ख हुआ। पिताजी ने मुझे समझाया " प्रभा दु खी मत होओ, वह भी तुम्हारा घर है और मुझ जैसे पिता ही तुम्हारे ससुर है। उनका स्नेह पाकर तुम्हे हमारा अभाव नहीं रहेगा। "

द्रोणगिरि मे जैसे ही मैंने प्रवेश किया, सब नयापन तो था ही, सभी से अपरिचित थी। एक दो दिन घर साढूमल की, माता पिता की याद आई। लेकिन यहा का वातावरण भी मुझे सुखद ही प्राप्त हुआ। घर के सभी जनो ने पूरा स्नेह दिया और मैं जल्दी ही इस घर मे घुलमिल गई। चूकि यहा हमारे ससुर द्रोणगिरि विद्यालय मे पढाते थे, क्षेत्र का कार्य करते थे, दूसरे सभी लोग पण्डितजी ही कहा करते थे। जो भी आता, चाहे वह घर का व्यक्ति हो, समाज का व्यक्ति हो, गाव का व्यक्ति हो, सभी पण्डितजी शब्द से सम्बोधित करते थे। मैं भी उसी रूप मे जानने लगी। लेकिन जब मेरी पुत्री प्रमिला ने 1965 मे जन्म लिया तब से

उनको मे बब्बा के रूप मे सम्बोधित करने लगी।

सादूमल मे प्रथम शिक्षा ग्रहण करने के कारण ये हमारे से पूर्व परिचित थे। हमारे पिताजी पं. शीलचन्दजी जिन्हे सभी लोग दाऊ से सम्बोधित करते थे, इनके गुरु रहे हैं। इससे इनके सरल और सोम्य स्वभाव से सभी परिचित भी थे। जेसे ही मै इस घर मे आई, मुझे पितृवत् स्नेह मिला, मधुर व्यवहार मिला। अपने गुरु की पुत्री को पाकर मेरे ससुर ने मुझे पुत्रीवत् ही माना।

यद्यपि यह मेरा सौभाग्य नहीं रहा कि पण्डितजी (ससुर) के सम्पर्क मे अधिक रहूँ क्योकि मेरे पति के सर्विस में होने के कारण मुझे घर से बाहर ही रहना पड़ा। अवकाश मे घर जाना तो होता ही रहा।

ससुरजी की धार्मिक क्रियाओ को देखकर मै बहुत प्रभावित थी। उनके मुख से सहस्रनाम, एकीभाव आदि स्तोत्रो का सस्वर उच्चारण सुनकर मेरी भी इन स्तोत्रो को पढने की इच्छा हुई और जब मैने उनसे सहस्रनाम सीखने की इच्छा प्रगट की तो उन्होने मुझे प्रेम से सहस्रनाम पढाया। उन्होने कहा कि कोई भी पढने की इच्छा प्रगट करे तो मुझे आनन्द आता हे, क्योकि मनुष्य जीवन की सार्थकता जिन स्तवन करने में ही है। उन्होंने मुझे सहस्रनाम, भक्तामर स्तोत्र आदि पढ़ना सिखाया, मोक्षशास्त्र को पढाया, मुझे धार्मिक संस्कारो मे ढाला।

द्रोणगिरि मे स्थायी रूप से न रह पाने के कारण मै ससुरजी की सेवा नहीं कर पाई, परन्तु जब–जब अस्वस्थता के कारण, नेत्रो के इलाज के लिए छतरपुर आये उनकी सेवा करने का सोभाग्य अवश्य प्राप्त हुआ। उनके अनुकूल भोजन की व्यवस्था होने के कारण अधिक प्रसन्न रहते थे। मेरे छोटे–छोटे बच्चो के होने के कारण कार्य अधिक होने पर भी जब मे समय पर उनके अनुकूल व्यवस्था बनाती थी तो उन्हे मेरी परेशानी देखकर तकलीफ होती थी। लेकिन मै उनकी सेवा मे अपने को बहुत अधिक प्रसन्नता का अनुभव करती थी। मैने उन्हे कभी गुस्सा करते नहीं देखा और न एक क्षण ऐसा देखा जो व्यर्थ गया हो। धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन करना ओर जब नेत्रो के इलाज के कारण अध्ययन न कर पाये तब कण्ठस्थ ही स्तोत्रो का स्मरण करते उन्हे देखा हे। तीनो समय सामायिक तो उनकी नियमित रही हे। बिना देव–दर्शन, पूजन, स्वाध्याय के अन्न ग्रहण नहीं किया। अन्तिम समय मे जब आप अत्यन्त असमर्थ हो गए ओर मन्दिर जाना सभव नहीं हुआ तभी से अन्न का त्याग कर दिया और घर मे ही देनिक क्रियाओ को करने के बाद जिन स्तवन, सामायिक करने के बाद ही दूध फल स्वीकार किया। धर्म मे दृढ आस्था थी ओर जो नियम धारण करते थे उसे पूर्ण निष्ठा के साथ निभाते थे।

उस समय का मुझे स्मरण हे जब मेरी मंझली जिठानी जमुनादेवी का मस्तिष्क ज्वर से जिला चिकित्सालय छतरपुर मे स्वर्गवास हो गया ओर हम लोग उनके शव को लेकर द्रोणगिरि पहुचे, उस समय ससुरजी उदासीनाश्रम मे रहते थे। जेसे ही हम लोगो के आने का सुना, तुरन्त घर आये ओर बड़े विह्वल होकर बोले कि "मै जर्जर, अशक्त हूँ, जाने लायक हूँ सो तो मै बेठा हूँ, यह हमसे बहुत छोटी ओर स्वस्थ रहती थी, जो हमारे सामने ही चली गई।"

ससुर साहब की ही प्रेरणा से मैं धार्मिक वातावरण मे आयी। उनकी विद्वत्ता ओर सहज शिक्षा के लिए उपलब्धता से मुझे धार्मिक अध्ययन की बहुत इच्छा रही, लेकिन मैं अधिक समय तक साथ रहकर लाभ नहीं ले पाई, यह मेरा दुर्भाग्य ही हे कि साधन होते हुए भी साधनो का लाभ नहीं ले पाई। उनके स्वर्गवास मे

घर सूना–सूना हो गया और घर वीरान सा लगने लगा। पहले जब घर जाती थी तो आनन्द आता था अब नहीं आता। यद्यपि ससुरजी आश्रम मे रहते थे, घर से बहुत कम सम्पर्क रखते थे फिर भी गांव के मन्दिर के दर्शन को आते तब उन्हे देखती थी। आश्रम जिनालय के दर्शन करने जाती तो उन्हे दर्शन पूजन और अपनी मण्डली के साथ स्वाध्याय करते हुए देखती उनकी मधुर वाणी से जिनवाणी के सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता था लेकिन अब वह सब नहीं। मुझे अपने ससुर से जो सीखने को मिला, जिनधर्म का जो अध्ययन किया, वह मेरे प्रति बहुत बड़ा उनका उपकार है। मैं उनके उपकारो से उपकृत उनका पुण्य स्मरण करती हूँ।

• धर्मपत्नी श्री कमलकुमार जैन
जैन धर्मशाला के पास, छतरपुर (म प्र)

□□□

जिन्होंनें मुझे धार्मिक संस्कार दिए

– कुसुम जैन बी ए

जब मेरा जन्म हुआ उस समय बालिकाओ के पढने की व्यवस्था थी। द्रोणगिरि मे जैन पाठशाला मे हमारे बब्बाजी (पण्डित गोरेलालजी शास्त्री) पढाते थे। लौकिक शिक्षा के लिए शासकीय माध्यमिक शाला थी। 5 वर्ष की उम्र से मुझे स्कूल मे जाने के लिए प्रवेश करा दिया। मैं स्कूल मे जाकर रुचि से अध्ययन करने लगी। कक्षा 1 से 5वीं तक उत्तीर्ण की। घर मे बब्बाजी से जैनधर्म की शिक्षा प्राप्त की। सुबह शाम बब्बाजी मुझे अपने पास बैठाकर स्तुतिया, स्तोत्र याद कराते थे, मोक्षशास्त्र, छहढाला का पाठ देते थे और अगले दिन सुनकर आगे का पाठ देते थे।

जब मैंने अपने ग्राम द्रोणगिरि मे पाचवीं कक्षा पास कर ली मुझे आगे पढने की इच्छा थी। उस समय हमारे चाचाजी (श्री कमलकुमारजी) छतरपुर मे सर्विस कर रहे थे। मैंने उनके पास जाकर अध्ययन चालू किया। हायर सैकेण्डरी के बाद स्नातक तक अध्ययन किया। मेरे साथ छतरपुर मे बहुत सी छात्राये उच्च अध्ययन करने की ओर जागरुक थीं। स्नातक तक शिक्षा मैंने छतरपुर मे चाचाजी के पास रहकर प्राप्त की। लौकिक शिक्षा के साथ ही मेरी धर्म के प्रति रुचि बब्बाजी ने पैदा की और जब भी ग्रीष्म अवकाश मे मैं घर आती बब्बाजी बराबर मुझे धार्मिक शिक्षा देते थे। मैने उनसे जैनधर्म की शिक्षा प्राप्त की। देव दर्शन से लेकर शास्त्र स्वाध्याय तक बब्बाजी से सीखा।

मेरी शादी जब हुई तो मुझे धर्म के प्रति रुचि तो थी ही ससुराल मे गृहस्थी के कार्यों के साथ ही बब्बाजी द्वारा दिया धार्मिक ज्ञान का भी मैंने पूर्ण उपयोग किया। साधु–सन्तो का समागम मिला जिससे धार्मिक जागरुकता बढी। अपने जीवन को सयमित बनाने के लिए प्रयास किया। आचार्य प्रवर विद्यासागरजी महाराज से प्रभावित होने के कारण भोजन–पान मे शुद्धता आयी और देव दर्शन पूजन, शास्त्र, स्वाध्याय, प्रवचनो की ओर मैं बढी। प्रेरणा तो मुझे अपने बब्बाजी से प्रारम्भ से ही धर्म की मिली और उसमे साधुओ के समागम ने और दृढता पैदा की। सीमित परिवार होने के कारण गृहस्थी का कार्य अधिक था नहीं उससे प्राय अपना अधिक समय धार्मिक चर्चा मे लगाने लगी। यह सुयोग ही था कि मेरे पति (श्री महेश बड़कुल)

की भी रुचि धर्म की ओर बढी जिसके कारण हम दोनो सयमित जीवन जीकर अपनी मनुष्य पर्याय का उपयोग कर रहे है। मेरे जीवन मे इसप्रकार के परिवर्तन के लिए हमारे बब्बाजी द्वारा दिया गया धार्मिक ज्ञान प्रधान कारण बना। आज हमारे बीच बब्बाजी तो नहीं है लेकिन उनके आदर्श, उनके द्वारा दिया गया ज्ञान हमारे भविष्य के लिए मार्गदर्शन का काम कर रहा है।

• C/o श्री महेश बडकुल
अहिंसा भवन, दमोह (म प्र)

□□□

मुझे अपार स्नेह ही स्नेह मिला

— *प्रमिला सिंघई,* एम एस सी

जब मेरा जन्म हुआ तब मेरे बब्बाजी इम्फाल मे रहते थे। जून 1967 मे जब वे इम्फाल से द्रोणगिरि आये तो पहली बार मैंने बब्बाजी को देखा होगा और बब्बाजी ने भी मुझे पहली बार देखा होगा। उस समय मेरी आयु दो वर्ष की थी। " 3 या 4 जून को बब्बाजी द्रोणगिरि आये बस स्टेण्ड पर ग्रामवासी, समाज के लोग एव स्नातक गणो ने बब्बाजी का स्वागत किया और गाजे बाजे के साथ उन्हे घर लाये थे। बहुत दिनो की प्रतीक्षा के बाद चूकि बब्बाजी प्रवास से आये थे इससे सबके मन मे बहुत खुशी थी। बब्बाजी आकर चबूतरे पर बैठे घर के सभी लोगो ने जिसमे मेरी बड़ी काकी, मझली काकी, मेरी मम्मी एव छोटी काकी सभी ने बब्बाजी के पैर छुए थे। मैं यह सब उत्सुकता से देख रही थी। मेरी बहिन कुसुम एव आशा बब्बाजी के पास पहुच गईं क्योकि वे लोग बब्बाजी को जानतीं थीं। मैं उनके पास खड़ी थी बब्बाजी को किसी ने इशारा किया कि यह गुड्डी है कमलकुमार की पुत्री। बब्बाजी ने बडे स्नेह से मुझे गोद मे उठा लिया था और खिलाने लगे थे।" यह सब मुझे मेरी मम्मी ने बताया था।

मै पापाजी के साथ मलहरा रहती थी क्योकि पापाजी उस समय मातगुवा मे सर्विस करते थे। निवास मलहरा बनाये थे। यदा कदा बब्बाजी द्रोणगिरि से मलहरा आते थे मुझे बब्बाजी के आने से बडा आनन्द होता था।

1969 मे पापाजी का ट्रान्सफर छतरपुर हो गया और हम लोग छतरपुर चले गये थे। बब्बाजी से दूर हो जाने के कारण अवकाश के समय जब घर आना होता था तभी बब्बाजी से मिलना होता था। जब मै कुछ समझदार हुई तो हर ग्रीष्मावकाश मे मम्मी पापा के साथ द्रोणगिरि आती थी बब्बाजी मुझे अपने पास बुलाते और स्नेह के साथ धार्मिक शिक्षा देते थे। णमोकार मत्र मुझे बब्बाजी ने सिखाया, चौबीस तीर्थकरो के नाम, विनती बब्बाजी ने सिखाई। प्रतिदिन देव दर्शन करने की प्रेरणा मुझे बब्बाजी ने ही दी। आज जो धार्मिक सस्कार मुझमे हैं वे सब बब्बाजी ने ही दिए।

बब्बाजी मुझसे अत्यन्त प्रसन्न रहते थे क्योकि मै पढने मे होशियार थी। जब मैंने B sc और M sc की तो इस पढाई से उन्हे बहुत प्रसन्नता हुई बब्बाजी ने मेरे सुखी जीवन के लिए आशीर्वाद दिया। जब–जब भी वे छतरपुर आये या मैं द्रोणगिरि गई मुझे हमेशा ही उनका स्नेह प्राप्त हुआ।

बब्बाजी के अन्तिम समय मे मुझे भी उनके समीप रहने का अवसर मिला क्योकि उस समय मैं

छतरपुर मे ही थी और B ed के लिए टेस्ट दे रही थी। अन्तिम समय 26 मार्च 91 को मम्मी पापा के साथ मैं भी द्रोणगिरि पहुची और उनके निकट रहकर उनकी सेवा की। मुझे भी उस समय उनसे आशीर्वाद लेने का और उनके दर्शन करने का सौभाग्य मिला। 29 मार्च को साय 6 40 पर बब्बाजी पूर्ण चैतन्य अवस्था मे देह छोड़कर चले गए।

आज जो भी मुझे बब्बाजी की स्मृतियॉ हैं। यदा कदा उनका स्फुरण भी आ जाता है। बब्बाजी का मुझे हमेशा स्नेह ही स्नेह प्राप्त हुआ है। मैं अपने बब्बाजी के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ और नमन करती हूँ उनके पावन व्यक्तित्व को, जिसकी छत्रछाया मे मैंने धार्मिक सस्कारो को पाकर अपने मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने की सुध पायी।

• व्याख्याता भौतिकी, राजस्थान शिक्षा विभाग
णमोकार निलय
5/47, मालवीयानगर, जयपुर (राज)

□□□

मेरे प्रेरणास्रोत - पूज्य बब्बाजी

— पीयूष शास्त्री

मेरे पूज्य बब्बाजी जिनसे मैंने उनके अन्तिम क्षण तक धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा ली आज हमारे बीच नहीं हैं। लेकिन उनका सारा व्यक्तित्व आज भी मेरे सामने हैं। लगता है अभी बब्बाजी मेरे सामने हैं और मुझे धार्मिक शिक्षा दे रहे हैं। आखो पर पहले साधारण नजर का चश्मा रहता था जो बाद मे स्वत अलग हो गया क्योकि नेत्रो मे ज्योति आ गई थी और बिना चश्मा के ही शास्त्र, स्वाध्याय, प्रवचन करते थे। उम्र के प्रभाव से शिथिल काया किन्तु अन्त तेज से प्रकाशित चेहरा, अत्यन्त स्नेह से युक्त गभीर वाणी, उन्नत ललाट जिसपर अनगिनत रेखाये, सादा और उज्ज्वल कपडे, एक पहने और दूसरे से बदन ढका हुआ हाथ मे प्रासुक जल की शीशी एव टार्च दूसरे हाथ मे सहारे के लिए छोटी किन्तु मजबूत लाठी और पैरो मे सादा और चर्म रहित चप्पल। दृढ कदम और मुख से स्तुतियो के पढने की आवाज कुल मिलाकर व्रती का जीवन जीने वाले पूज्य बब्बाजी का एक ऐसा चित्र मेरे मानस पटल पर अकित है जिसे दुनिया पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के नाम से जानती है और मैं अपने बब्बाजी के रूप मे ही। यही सम्बोधन मुझे विरासत मे मिला था उनके लिए।

आज भी जब अतीत मे झाककर देखता हूँ तो कानो मे बब्बाजी की छडी की दूर से आती खट–खट की ध्वनि गूज उठती है जिसे सुनते ही हम व्यस्त हो जाते थे छुपने मे या अपने तैयार पाठ को सुनाने की वाह–वाही लूटने मे। टॉप रहने की होड़ मे। यह मेरा दुर्भाग्य ही रहा कि मेरे हिस्से मे बस इतनी ही स्मृतिया आयीं जिन्हे मै अपने बब्बाजी के स्नेह के अमर प्रतीक के रूप मे सजोये रखे हूँ। पूज्य बब्बाजी के निकट रहने का अवसर मुझे कम इसलिए मिल पाया कि बब्बाजी उदासीनाश्रम द्रोणगिरि मे रहते थे और मै अपने माता पिता के साथ छतरपुर मे। जब कभी द्रोणगिरि जाना होता था तभी बब्बाजी की सेवा करने का, वैयावृत्ति करने का, कुछ चर्चा करने का उनके हितकारी उपदेश वचन सुनने का मौका मिलता था।

अस्वस्थतावश पिताजी जब कभी द्रोणगिरि से छतरपुर कुछ दिनों के लिए आते थे तब तथा एक बार नेत्र का आपरेशन कराने आये तब बब्बाजी की परिचर्या करने का मौका मिला। साथ में रहने का तथा उनसे कुछ धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने का मौका मिला। बब्बाजी को स्तुतियां, सिद्धान्तग्रन्थ मौखिक याद रहने के कारण मुझे याद कराते थे। उस समय मुझे उनकी दिनचर्या देखने का समय मिला। अस्वस्थता मे भी उनकी नियमित दिनचर्या रहती थी।

मुझे गर्व है इस बात का कि बब्बाजी की शास्त्री उपाधि को पिताजी (कमलकुमारजी) के बाद अगली पीढी तक ले जाने में मैं ही सक्षम रहा जो सब पूज्य बब्बाजी की ही प्रेरणा और देन मैं समझता हूँ।

मैं अपने पूज्य बब्बाजी का असीम स्नेह कभी भूल नहीं सकता। यह उन्हीं का परिणाम है कि आज जैन दर्शन मे रुचि बढी है। निश्चित रूप से बब्बाजी के आदर्शों पर चलने का प्रयत्न करूँगा। वे भी स्वर्ग में जब कभी अवधिज्ञान से बीते कल को देखते होगे तो अवश्य ही सतोष व्यक्त करते होगे।

अति मानव को, महामानव को शत—शत नमन।

• पण्डित टोडरमल स्मारक
ए—4 बापूनगर, जयपुर

□□□

द्रोणगिरि से द्रोण गिरि तक का सफर

— पंकज जैन एम. ए.

हमारे पूज्य बब्बाजी (स्व. पण्डित गोरेलालजी) का जन्म वि. सं. 1962 के श्रावण मास की 15 को द्रोणगिरि मे हुआ था। हमारे बब्बाजी ने प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय शिक्षक श्री नन्हेलालजी मालाकार से पाटी पर अक्षरज्ञान के रूप मे प्राप्त की। सेठ लक्ष्मीचन्दजी बमराना का शिक्षा प्राप्त करने मे महत्वपूर्ण सहयोग उन्हे मिला। उन्होनें श्री महावीर दिगम्बर जैन पाठशाला सादूमल मे वैशाख वदी 9 वि. स 1977 को प्रवेश करा दिया। दो वर्ष सादूमल अध्ययन करने के बाद उन्होनें डेढ वर्ष श्री दिगम्बर जैन विद्यालय क्षेत्रपाल ललितपुर मे और इसके बाद दो वर्ष श्री सर सेठ हुकमचन्द दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय इन्दौर में अध्ययन किया।

अध्ययन पूर्ण कर जैसे ही वे अपने जन्म स्थान द्रोणगिरि आये इन्दौर विद्यालय मे पढाने हेतु नियुक्ति पत्र भी उनके पास आ गया। बब्बाजी ने इन्दौर जाने का मन बनाया और प्रस्थान किया। लेकिन करनी तो थी उन्हें अपनी जन्मभूमि की सेवा अतः घरवालो, रिश्तेदारो के विशेष आग्रह पर रास्ते से ही वापस लौट आये।

इसी बीच वि. स 1985 में द्रोणगिरि में ही पूज्य वर्णीजी के सद्प्रयासों से श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला की स्थापना हुई और उसमे बब्बाजी को शिक्षक पद पर नियुक्त किया गया। उन्होने खूब परिश्रम किया और पाठशाला प्रगति की ओर बढने लगी। एक वर्ष पूर्ण हुआ विद्यालय की प्रगति से सभी ने सन्तोष प्रगट क्रिया। विद्यालय मे पढाने के अलावा बब्बाजी की कार्यक्षमता को देखते हुए सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि की समस्त व्यवस्थाओ का दायित्व भी उन्हे सौंप दिया गया।

1949 से 1953 तक बब्बाजी द्रोणगिरि से बड़ामलहरा मे रहे। बड़ामलहरा आने पर द्रोणगिरि क्षेत्र

की व्यवस्थाये गड़बड़ाने लगीं। जिसके फलस्वरूप उन्हे पुन मलहरा से द्रोणगिरि वापस आना पड़ा। यहा बब्बाजी ने विद्यालय के साथ–साथ क्षेत्र का भी खूब विकास किया। 36 वर्ष तक क्षेत्र एव विद्यालय की सेवा से अवकाश लेने के बाद बब्बाजी का योग प्रान्त से बाहर जाने का बना और वे 1964 मे दशलक्षण पर्व में प्रवचन करने हेतु मणिपुर चले गए। दशलक्षण पर्व मे प्रवचनो के माध्यम से मणिपुर की समाज को प्रभावित किया। पर्व के बाद समाज का विशेष आग्रह और अपने सकोची स्वभाव के कारण वे मणिपुर मे एक वर्ष के रहने की स्वीकृति देकर रुक गए। एक वर्ष व्यतीत हुआ, समाज ने नहीं आने दिया और इसप्रकार तीन वर्ष सम्मानपूर्वक रहने के बाद प्रान्तवासियो, घरवालो, स्नातको और समाज के विशेष आग्रहो, जो बार–बार पत्रों के माध्यम से हुये, के कारण मणिपुर समाज की अनिच्छा के बावजूद पुन अपनी जन्मभूमि द्रोणगिरि आ गए।

द्रोणगिरि आकर अब पूर्ण रूप से धर्म साधना मे लग गए और श्री गुरुदत्त दिगम्बर उदासीनाश्रम को अपना साधना स्थल बनाया। आश्रम स्थित व्रतियो, साधुओं को स्वाध्याय का लाभ दिया, उन्हे पठन–पाठन कराया। इसी समय पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी, जिन्होने इस प्रान्त मे पूज्य वर्णीजी के ही प्रतिनिधि के रूप मे रहकर प्रान्त मे शिक्षा का अपूर्व कार्य किया, की प्रेरणा आत्म साधना के लिए मिली। आश्रम के विकास मे योगदान देते हुए 29 मार्च 1991 को पूज्य बब्बाजी ने पूर्ण सावधानीपूर्वक आत्म चिन्तन करते हुए समाधि पूर्वक शरीर को त्यागा। यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे उनके अन्तिम क्षणो मे पूज्य बब्बाजी की वैयावृत्ति करने का मौका मिला और साधना करते–करते शरीर छोड़ने का अपूर्व दृश्य देखने को मिला।

आज यद्यपि हमारे बब्बाजी नहीं हैं लेकिन उनके आदर्श हमारे लिए मार्गदर्शक हैं। उनका पवित्र सयमपूर्ण जीवन हमारे विकास के लिए मार्गदर्शक है। "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की उक्ति पूज्य बब्बाजी मे पूर्ण चरितार्थ हुई है। उन्होने द्रोणगिरि मे जन्म लिया, वहाँ स्थित सभी सस्थाओ का चहुमुखी विकास किया। श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय मे शिक्षण कार्य करते हुए शताधिक विद्वानो को तैयार करना उनका प्रमुख अवदान है। उन्होने उदासीनाश्रम मे रहकर अपना और आश्रम का विकास किया अन्य प्रान्तो मे भ्रमण किया लेकिन अन्तिम यात्रा मातृभूमि मे ही पूर्ण कर फिर विराम लिया। जिस मातृभूमि की मिट्टी मे जन्म लिया, खेले, बढे अन्त मे उसी मे अपना जीवन समर्पित किया। इस महामानव के अनन्त उपकारो से उपकृत हम श्रद्धा से नम्रीभूत हैं, शत–शत नमन करते हैं।

□□□

वात्सल्य के धनी - पूज्य बब्बाजी

– सुनील जैन

जिस समय मेरा जन्म हुआ था पूज्य बब्बाजी (स्व पूज्य पण्डित गोरेलालजी) उदासीनाश्रम द्रोणगिरि में रहने लगे थे। ग्राम के मन्दिर के दर्शन प्रतिदिन दोनों समय करने के लिए आते थे उसी समय 10–15 मिनट को घर भी आकर परिवार की जानकारी लेते थे। जब मैं 5 वर्ष का हुआ पूज्य बब्बाजी के निकट आया। उन्होनें मुझे बड़े स्नेह के साथ णमोकार मत्र सिखाना प्रारम्भ किया और प्रतिदिन मन्दिर आने के साथ ही मुझे धार्मिक संस्कार देना प्रारम्भ किया। उनके द्वारा दिया हुआ पाठ मैं याद कर सुनाता था। बब्बाजी बहुत प्रसन्न होते थे। धीरे–धीरे मेरी स्कूल की पढाई प्रारम्भ हुई और बब्बाजी द्वारा धार्मिक शिक्षण प्रारम्भ हुआ। बालबोध प्रथम भाग, द्वितीय भाग पढाना, स्तुतियां, स्तोत्रों को याद कराना, सुनना उनका प्रतिदिन का कार्य हो गया। मुझे भी बब्बाजी के द्वारा प्रेम के साथ पढाना अच्छा लगा।

बब्बाजी द्वारा दिए गए धार्मिक संस्कार ही मेरे जीवन निर्माण में सहयोगी हुए हैं। आज बब्बाजी नहीं हैं लेकिन उनके द्वारा जो मार्गदर्शन मुझे मिला है, धार्मिक ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह मेरे जीवन का आधार बना और उसी के आधार पर आज मुझे संस्कृति संरक्षण संस्थान जयपुर मे अध्ययन करने का मौका मिला है। पूजन विधान आदि कराने की ओर मेरी प्रवृत्ति बढी। बब्बाजी का वात्सल्य आज भी मुझे प्रेरित करता है। दिशा निर्देश देता है और उज्ज्वल भविष्य के लिए प्रगति पथ पर बढने के लिए मार्गदर्शक है। पूज्य बब्बाजी के प्रति शत–शत नमन करता हूँ।

□□□

मेरी स्मृति में पण्डित गोरेलालजी शास्त्री

– डॉ. श्रीयांशकुमार सिंघई

मुझे मेरी सगाई होने के कुछ दिन बाद अवगत हुआ था कि मेरे होने वाले बाबा ससुर साहब पण्डित गोरेलालजी शास्त्री बुन्देलखण्ड में घर–घर तक पहुँच रखने वाले निष्ठा सम्पन्न व्युत्पन्न विद्वान् है। उस समय उनके बारे मे इतना जानने पर भी मेरे मन मे उनके प्रति समादर तो पैदा हुआ पर उनसे कुछ सीखने का बहुमान नहीं आ पाया, इसे मैं अपना दुर्भाग्य ही समझता हूँ। क्योकि आज जब मुझे उनके स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन के प्रसग में उनके परोपकारी, कर्तव्यशील, निरभिमानी, साधक व्यक्तित्व का अनुमान होता है तो लगता है मैंने कुछ खोया है उनसे शास्त्रो के फलसफे ही नहीं जीवन को सार्थक बनाने वाली सयम साधना के सस्कारों की यथोचित सीख पायी जा सकती थी। उनका व्यक्तित्व सच्चे देव–शास्त्र–गुरु के प्रति भक्ति भावो से भरा हुआ था। अपने कर्तव्यो से वे सदैव उत्कर्षोन्मुख होते रहे हैं। सचमुच ही उन्होंने अपने मनुज जन्म को सफल बना पाया – इसमे अब मुझे कोई सशय नहीं है। जो कुछ भी मेरा सम्पर्क उनसे हुआ उसे ही यहाँ शब्दो मे उभारना चाह रहा हूँ।

मैंने सर्वप्रथम उन्हे तब देखा जब मैं दूल्हा के रूप मे और मेरी जीवन सगिनी होने वाली उनकी पौत्री विवाह मडप मे एक दूसरे का वरण कर आशीर्वाद पाने मच पर थे। पण्डितजी, जो उस समय उदासीन आश्रम में रहते थे, हम दोनो को आशीष प्रदान करने मच पर आये थे। तब मुझे कहाँ पता था उनकी आशीष कितनी बहुमूल्य है। वे आये, छायाचित्र (फोटो) खिचा और चले गये। फिर नहीं दिखे, दिखते भी कैसे? उन्हे सासारिकता से अधिक मोह नहीं रहा था। विषय भोगो से उदास तो थे ही ज्ञान–ध्यान का सार्थक स्वोन्मुखी अभ्यास करने आश्रम मे चले गये। जितना राग था उतना कर्तव्य निभा दिया और छुट्टी। इससे उनकी निर्लिप्तता का बोध सहजता से हो जाता है।

मेरा विवाह दिन मे सम्पन्न हुआ था सारे सस्कार हुये और सायकाल हम तो चल दिये अपने बाराती बन्धुजनो के साथ अपने घर की ओर। पण्डितजी अर्थात् आज ही जो मेरे बाबा ससुर हुए थे उनसे उस दिन फिर मेरा मिलान नहीं हुआ।

विवाह के उपरान्त लगभग साल भर बाद जब मैं किसी प्रसग से अपने ससुर साहब के साथ द्रोणगिरि (सेधपा) गया तो पूज्य बब्बाजी से भी मिलना हुआ उनका वह सान्निध्य भी मात्र औपचारिक रहा और मैं उन्हे अन्य उदासीन श्रावको की श्रेणी मे ही समझता रहा।

लगभग साल डेढ साल और बीतने के बाद जब मैं फिर अपने साले चिरजीव पवन के साथ द्रोणगिरि गया था तो बब्बाजी से मिलने उदासीन आश्रम भी पहुँचा। वहाँ बब्बाजी अकेले शास्त्र स्वाध्याय कर रहे थे। मेरे पहुँचते ही उन्होने बिना किसी औपचारिकता के शास्त्र, जो समयसार था, मेरे सम्मुख कर दिया और कहा समझाओ। उस समय मैं शास्त्र प्रवचन करने के लिये तत्पर नहीं था फिर भी तत्त्वचर्चा के उद्देश्य से मैंने प्रारम्भ किया, समय का कुछ ध्यान ही नहीं रहा, मतलब चर्चा खूब चली। उन्हे कैसा लगा यह तो मैं नहीं जानता किन्तु यह अभिव्यक्ति उन्होने जरूर की कि ब्रह्मचारी बाबूलालजी बरायठा वालो से आपके बारे मे सुना था। मेरे बरायठा प्रवास के समय ब्रह्मचारी बाबूलालजी मेरे प्रेरको मे रहे हैं तथा

प्रसंगवश शाहगढ में हुये मेरे प्रवचनो को सुनकर प्रसन्न व प्रभावित भी।

कुछ समय बाद मुझे लगा कि कहीं बब्बाजी का मन मेरी परीक्षा लेने का तो नहीं था, सफल शिक्षक तो वे थे ही अतः मेरे अनुमान का होना असंभव भी नहीं कहा जा सकता है। खैर, जो भी रहा हो यदि यह सही है तो मैं प्रसन्न हूँ कि उन्होंने मुझे जिनवाणी के अभ्यासी शिष्य के रूप मे देखा। मुझे तो यह गौरव की बात है कि उन्होने मेरा मूल्यांकन नतदामाद की दृष्टि से नहीं , शास्त्र स्वाध्यायी विद्वान् की दृष्टि से किया।

इसके अलावा कुछ–कुछ अन्तराल से द्रोणगिरि मे ही एक दो बार मिलना और हुआ। एक बार जब मैं द्रोणगिरि पहुँचा था तो घर पर ही मुलाकात हो गई। वे प्रतिदिन प्रातः आश्रम से ग्रामस्थित आदिनाथ जिनालय मे दर्शन–पूजन हेतु आते थे और घर पर थोड़ा रुककर चले जाते थे। उस दिन वे भोजन के उपरान्त ऑगन मे धूप सेकते हुये कुरसी पर बैठे थे, मैं भी समीप ही था, बातचीत होना भी स्वाभाविक ही था। पुण्य पाप का प्रकरण चल निकला तथा पुण्य के उदय मे अनुकूल बाह्य सामग्री का मिलना होता है और पाप के उदय मे उसका बिछुडना होता है, ऐसी चर्चा चली। "जैनकर्मसिद्धान्ते बन्ध मुक्ति प्रक्रिया" शीर्षक से मैं उस समय पी–एच डी. उपाधि के लिये शोध प्रबन्ध लिख रहा था अत. विषय परिमार्जित व सुविचारित था ही, अच्छा विमर्श हुआ। निष्कर्ष यह रहा कि जीव को अनुकूल बाह्य सामग्री के मिलने व न मिलने या बिछुडने मे क्रमशः पुण्य पाप का निमित्त कारण होता ही है अन्य कारण उपादान, भवितव्यता आदि भी अवश्य होते हैं। सचमुच ही चर्चा से वे मुझे प्रसन्न लगे। जिनवाणी की चर्चा प्रसन्नता का कारण बनती ही है पर उसे जिसे वह समझ मे आये।

पण्डितजी से अन्तिम बार मिलना तब हुआ जब मैं जयपुर से दमोह गया था। दमोह मे साढूभाई श्री महेश बड़कुल के यहाँ पता चला कि बब्बाजी का स्वास्थ्य गिर रहा है तो उनसे मिलने द्रोणगिरि जाने का मन हुआ। द्रोणगिरि आकर मैंने देखा कि बब्बाजी शिथिल हो गये हैं, शायद मरण समय निकट आ रहा था, वे लेटे थे अस्वस्थ होने से कोई बातचीत नहीं हुई, मानो उन्हे बात की फुरसत ही कहाँ थी वे तो समाधिमरण की तैयारी मे थे। मेरे जाने के कुछ दिन बाद ही वे यह पर्याय छोडकर चले गये।

अब आज जब उनके व्यक्तित्व–कृतित्व का बहुमान आता है तो लगने लगता है कि यदि मैं पारिवारिक प्रयोजन से नहीं, अपने आपको उनका अनुसर्ता बनाने की दृष्टि से उनके ससर्ग मे अधिक से अधिक रहता तो कितना अच्छा होता। मै उनके पावन व्यक्तित्त्व को प्रणाम करता हूँ, बस यही अनुभूति–अभिव्यक्ति सम्पदा है उनकी मेरे पास।

• णमोकार निलय
5/47, मालवीयनगर, जयपुर

□□□

महामानव के प्रति नमन

– श्रीमती अवधेश जैन

1994 मे जब मेरी शादी की चर्चा चल रही थी तब मुझे मेरे पिताजी ने बताया कि हम लोग पूर्व निवासी सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के समीपवर्ती ग्राम गोरखपुरा के हैं। हमारे चाचाजी श्री पन्नालालजी एव श्री उदयचन्दजी की शिक्षा श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला द्रोणगिरि मे श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के चरण सान्निध्य मे ही बैठकर हुई है। पण्डितजी मृदुभाषी, सरल, छात्रो के हितैषी और समाजसेवी रहे हैं। अपने इन दोनो चाचाओ से पण्डितजी के सम्बन्ध इसप्रकार सुनती रहती थी।

जून 1994 मे जब मेरी शादी छतरपुर मे तय हुई। शादी के कार्ड मे पौत्र श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का नाम देखा तो मेरे मायके मे सभी को संतोष हुआ कि बच्ची अच्छे घर मे जा रही है। शादी होने के बाद मैने अपने पतिगृह मे भी पण्डितजी की चर्चा सुनी। मैंने अपनी मम्मीजी (सासुजी) से पूछा तो उन्होने कहा कि वे हमारे ससुर थे जो बहुत बड़े विद्वान रहे हैं। शादी के बाद जब पूरा परिवार द्रोणगिरि अपने मूल आवास मे हॉथे लगाने की रस्म करने गया तब वहॉ मैंने विद्यालय, धर्मशाला आदि देखी जो मुझे अपने पिताजी की बात स्मरण आयी। मैंनें कहा – हमारे दो चाचाजी ने यहीं अध्ययन किया है ? उत्तर हॉ में मिला। मुझे तब और अधिक प्रसन्नता हुई कि मैं जिस घर मे आयी हूँ वह उन पण्डितजी का घर है जिन्होनें विद्यालय मे 4 दशक तक पढाकर प्रान्तीय समाज का बहुत बड़ा उपकार किया है।

मैं अपने को सौभाग्यशालिनी मानती हूँ कि ऐसे परोपकारी, समाजसेवी विद्वान् के परिवार मे आने का सुअवसर मुझे मिला। परिवार के एक सदस्य के रूप मे मुझे स्थान मिला। मैंने अपने पापाजी (ससुरजी) को प्राय पत्राचार करते देखा और बाहर से आयी हुई डाक को पढा जो प्राय हमारे पापाजी के पिताजी से सम्बन्धित होती थी। उनका स्मृति ग्रन्थ निकालने की तैयारी थी। अनेको विद्वानो के आलेख, सस्मरण, श्रद्धाञ्जलि, लेख आदि जो ग्रन्थ के लिए आये, उन्हे मैंने पढा। मैं उनकी विद्वत्ता, समाजसेवा, उदारता से परिचित हुई, उनके लिए आये संस्मरणो ने मुझे प्रभावित भी किया।

मैं अपने अजिया ससुर के महान् गुणो से बहुत प्रभावित हूँ और उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर अपने जीवन को उन्नतिशील बनाने का प्रयास करती हुई उनके चरणो मे नमन करती हूँ और अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती हूँ।

• धर्मपत्नी श्री निरजन जैन
सन्मति प्रोवीजन
छतरपुर 471001

□□□

उनके पदचिन्हों पर चलने की कामना करती हूँ

– श्रीमती अरुणा जैन

एम ए (हिन्दी, समाजशास्त्र)

1 जुलाई 1998 को जब मैने अपने नये घर में समाजसेवी विद्वान् श्री कमलकुमारजी के द्वितीय सुपुत्र राजीव जैन की सहधर्मिणी के रूप मे प्रवेश किया तो शादी की चहल–पहल, रिश्तेदारो की भीड़–भाड से युक्त घर मेरे लिए नया था। लेकिन परिवारजनो की आत्मीयता से मै कुछ ही घंटों मे घर मे घुल–मिल गई। भीड़–भाड़ कम होने पर मैंने अपने जीजाजी श्री श्रीयाशजी, जयपुर को किसी ग्रन्थ की प्रूफ रीडिग करते देखा तो उत्सुकतावश उनसे पूछा जीजाजी यह क्या है ? उन्होंने कहा – यह एक स्मृति ग्रन्थ का मैटर है, जो इसी घर से सम्बन्धित है। आपके बाबा ससुर स्व पण्डित गोरेलालजी शास्त्री की स्मृति में यह ग्रन्थ उनके स्नातको, परिवारजनो एव सम्बन्धियो द्वारा प्रकाशित कराया जा रहा है। इससे मुझे अपने अजिया ससुर के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा हुई। उस समय तो शादी के कुछ दिन बाद मैं अपने पितृगृह सागर चली गई। अब जब सागर से पुन: मैं वापिस आई तो मैने पापाजी (ससुरजी) से स्मृति ग्रन्थ के बारे मे पूँछा और खुद कुछ लिखना चाहती हूँ, यह कहा तो पापाजी ने उनका जीवन परिचय मुझे पढने को दिया जिससे मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे अजिया ससुर एक बड़े विद्वान्, समाज सुधारक एव पूरे प्रान्त के गुरु रहे हैं। ऐसे उपकारी व्यक्तित्व के प्रति मेरा माथा सहज ही श्रद्धा से नत हो गया है। उनके सम्बन्ध मे मैं जो कुछ भी लिखूँ वह सूर्य को दीपक दिखाने के समान ही है तथापि उनकी पुण्य स्मृति मे श्रद्धापूर्वक कुछ लिखने का प्रयास कर रही हूँ।

सबसे पहले मैं कल्पनाओ मे डूबकर अपने अजिया ससुर के चरण स्पर्श कर उनके आशीर्वाद की मगल कामना करती हूँ। शायद मुझे भी समाज सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो तथा मेरे इस उत्साह मे कमी न आने पाये। मै अपने आपको बहुत ही सौभाग्यशालिनी समझती हूँ कि मुझे ऐसे विद्वान् के घर में बहू बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ साथ ही दुर्भाग्य भी मानती हूँ कि मुझे उनके दर्शन न हो सके। साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। मेरे आने के बहुत पहले ही वे हम सबके बीच से जा चुके थे। काश मै उनके दर्शन कर पाती और उनसे कुछ शिक्षा ग्रहण कर पाती।

वैसे मै अपने पापाजी (ससुरजी) से उनकी ज्ञानवर्धक बाते सुनकर ही अनुमान लगा लेती हूँ कि मेरे अजिया ससुर पूज्य पण्डितजी निश्चित रूप से महान् व्यक्ति रहे होगे। मैंने जब यह जाना कि वे एक अच्छे कवि भी थे। उन्होने बारह भावना, द्रोणगिरि अर्चना, गारी सग्रह और जैन भजन सग्रह आदि की रचना की है तो गौरवान्वित होकर मैंने उनके साहित्य को पढा। जो धार्मिक तथा शिक्षाप्रद है। ससार की असारता का दिग्दर्शन वहॉ है। उनके द्वारा लिखीं गईं गारियॉ तो समाज सुधार के क्षेत्र मे बहुत उपयोगी हैं।

अंत में मैं विद्वान्, समाजसेवी, धार्मिक और परोपकारी व्यक्तित्व के धनी अपने पूज्य बब्बाजी के कार्यों से प्रेरणा प्राप्त करती हुई उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाजलि अर्पित करती हूँ तथा चार पक्तियों के माध्यम से उनके पदचिन्हो पर चलने की कामना करती हूँ।

"न गगन, न धरा तक, न उन्नति न पतन तक।
हमे तो चलना है सिर्फ, उनके पद चिन्हो तक।।"

• धर्मपत्नी राजीव जैन

आकर्षण वेन्टेक्स एव जनरल स्टोर, छतरपुर (म प्र)

श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के परिवार एवं सम्बन्धीजन एक दृष्टि में

पिता : स्वर्गीय श्री सवाई सिघई भूरेलालजी
माता : श्रीमती रूपा बाईजी
जन्मतिथि : श्रावण शुक्ला 15 वि स 1962
जन्मस्थान : श्री सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि (छतरपुर) म प्र
भाई : स्व. श्री बिहारीलालजी (ज्येष्ठ भाई)
स्व श्री बल्देवप्रसादजी (मझले भाई)
बहिन : स्व श्रीमती मथुराबाई (ज्येष्ठ बहिन)
पत्नी : स्व श्रीमती पूनाबाई
सुपुत्र : (1) श्री अजितकुमारजी पुत्रवधू स्व श्रीमती शान्तिबाई
नातिन : श्रीमती कुसुम धर्मपत्नी श्री महेश बड़कुल, दमोह
श्रीमती आशा धर्मपत्नी श्री राजकुमार गोदरे,सागर
(2) श्री विमलकुमार जैन पुत्रवधू स्व. श्रीमती जमुनाबाई
नाती : इन्जीनियर महेन्द्र जैन
(3) श्री कमलकुमार जैन पुत्रवधू श्रीमती प्रभा जैन
नातिन : श्रीमती प्रमिला सिघई, एम एस-सी , बी एड धर्मपत्नी श्री डॉ श्रीयाशकुमार सिघई, जयपुर
नाती : निरजन, राजीव, पीयूष, पकज
(4) श्री रतनचन्द जैन पुत्रवधू श्रीमती प्रेमलता
नातिन : श्रीमती ऊषा धर्मपत्नी श्री राकेशजी बरखेड़ा, कुमारी नेहा एव शिखा
नाती : सुनील, मनोज
सुपुत्री : श्रीमती काशीबाई धर्मपत्नी श्री शाह गनेशीलालजी मड़देवरा

ससुराल पक्ष :

साले : (1) स्व श्री सेठ प्यारेलालजी, सिमरिया
भतीजे : श्री बुद्धसेन, खुशालचन्द, भैयालाल, भागचन्द जैन
(2) श्री सेठ लख्मीचन्दजी सिमरिया
भतीजे : श्री मुन्नालाल, उत्तमचन्द, महेशकुमार जैन
साली : स्व श्रीमती सुशीलाबाई (शिक्षिका)
श्रीमती नन्नीबाईजी शाहगढ़ जिनके पुत्र श्री गोकलचन्द, माणिकचन्द एव गुलाबचन्द जैन हैं।

महत्वपूर्ण रिश्ते - जिन्हें पण्डितजी ने बहुत माना :

बहिन पक्ष : श्री शाह स्व घनश्यामदासजी (गणेशप्रसादजी)
भानजे : श्री शाह नन्दकिशोरजी, मलहरा
श्री शाह कपूरचन्दजी, मलहरा
भानजियाँ : (1) श्रीमती गोराबाई धर्मपत्नी श्री धनप्रसादजी, शाहगढ़ जिनके पुत्र शिवप्रसाद, दुर्गाप्रसाद हैं।
(2) श्रीमती चलदाबाई धर्मपत्नी श्री सिघई बालचन्दजी बम्हौरी जिनके पुत्र देवेन्द्र, महेन्द्र, अशोक, पवन, राजकुमार हैं।

स्व पण्डित श्री शीलचन्दजी न्यायतीर्थ, सादूमल, जो पण्डितजी के गुरु थे बाद मे तृतीय पुत्र कमलकुमार के ससुर बनने से समधी बन गये।

साहित्य सृजन

एवं

समीक्षा

द्रोणगिरि वन्दना

इस महा भयानक अटवी मे, निज आत्म साधना के बल पर।
आ डटे वीर विधि से लडने, ले बॉध खड्ग कर मे यतिवर।।
निश्चल करने चचल मन को, अति कठिन योग से युक्त हुये।
इस द्रोणशैल की पुण्य भूमि से, गुरूदत्तादिक मुक्त हुये।।1।।

इस सिद्धक्षेत्र की पुण्य धरा के, कण-कण को करके पुनीत।
विचरण करते थे शिव पथिको के, उर मे भरने को सुनीत।।
कर तत्व बोध से जग सुबोध, रागादिक मल से रिक्त हुये।
इस द्रोणशैल की पुण्य भूमि से, गुरूदत्तादिक मुक्त हुये।।2।।

निज हित पथभ्रान्त सुपथिको को, यतिवर तुमने दे आलम्बन।
ससार ताप का अति कठोर, मिट गया सदा को आक्रन्दन।।
अति कठिन तपस्या से यतिवर, क्रोधादि खलो से मुक्त हुये।
इस द्रोणशैल की पुण्य भूमि से, गुरूदत्तादिक मुक्त हुये।।3।।

शिव कोटि के कथनानुसार, उपसर्ग सहे तुमने अपार।
पर सुदृढ चित्त मे नहीं हुआ, यतिवर तुममे किचित् विकार।।
परमार्थ तत्व के चिन्तन मे, तुम अधिकाधिक अनुरक्त हुए।
इस द्रोणशैल की पुण्य भूमि से, गुरूदत्तादिक मुक्त हुये।।4।।

करके पवित्र गिरि योगिराज, गिरि हुआ तभी से तीर्थराज।
पाते थे, पायेगे, पाते वदन कर, भविजन शान्ति राज।।
हम पुण्य भावना लेकर निशदिन, गिरिवर मे अनुरक्त हुये।
इस द्रोणशैल की पुण्य भूमि से, गुरूदत्तादिक मुक्त हुये।।5।।

हे पूज्य तपोनिधि तव चरणो मे, निशिदिन करता हूँ प्रणाम।
बस चाह यही ससार भ्रमण से, मै पा जाऊँ अब विराम।।
तेरी गुण गाथा गा गा कर, अगणित भवि निज अनुरक्त हुये।
इस द्रोणशैल की पुण्य भूमि से, गुरूदत्तादिक मुक्त हुये।।6।।

□□□

श्री सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पूजन

(अडिल्ल छन्द)

पावन परम सुरम्य द्रोणगिरि नाम है।
सिद्धक्षेत्र सुखधाम सु उत्तम धाम है।।
हस्तिनपुर वासी गुरुदत्त महामुनी।
मुक्ति गये धरि ध्यान जिनागम मे सुनी।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बसमूह ! मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादियतिगण अत्र अवतर अवतर संवोषट् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ: स्थापनम् ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् !

(अष्टक — ढार नन्दीश्वर की)

अति मानस सम वर नीर, प्रासुक भरि झारी।
जनि जरा मरण हर पीर, जिनवर पद धारी।।
वर गुरुदत्तादि मुनीश, शिवपद राजत हैं।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नम. जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा।

भव तपन तपत दु ख दाय, नानादु ख पाये।
चन्दन जिन चरण चढाय, भव दु ख नश जाये।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिव पद राजत हैं।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नम. ससारतापविनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ तदुल धवल अखड चुन चुनकर लाऊँ।
पूजो जिन सुगुण करण्ड अक्षय पद पाऊँ।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिव पद राजत हैं।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।3।।

ॐ ही श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नम. अक्षयपदप्राप्तये अक्षत निर्वपामीति स्वाहा।

त्रस वर्जित सुमन अनेक, ऋतु ऋतु के लाऊँ।
नश जाये मदन उद्रेक, श्री जिन गुण गाऊँ।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिवपद राजत हैं।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।4।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नम कामवाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्नेवज विविध प्रकार, षट् रस युक्त बने।
पूजो त्रिजगत् भरतार, भूख गदादि हने।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिवपद राजत हैं।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नमः क्षुधारोग–विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर दीपक ज्योति प्रकाश, तुम ढिग धारत हों।
अति निविड मोह तम नाश, मोद बढावत हो।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिवपद राजत हैं।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नमः मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ धूप दशांग बनाय, हुतभुक् मे खेऊँ।
रिपु अष्ट करम जर जाय, जिन पद नित सेऊँ।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिवपद राजत है।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।7।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नमः अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

नानाविध के फल लाय, सरस कण प्यारे।
उत्कृष्ट महाफलदाय, श्री जिन ढिग धारे।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिवपद राजत हैं।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।8।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नमः मोक्षफल–प्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

वसु द्रव्य सु सजि हिम थार, अर्घ्य बनाय धरों।
शुभ पद अनर्घ्य दातार, जिनपद पूज करो।।
श्री गुरुदत्तादि मुनीश, शिवपद राजत हैं।
पूजौं श्री द्रोणगिरीश, मन हर्षावत हैं।।9।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नम अनर्घ्यपद–प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

(वसन्ततिलका)

जल गन्ध अक्षत सुगधित पुष्प लाके।
चरु दीप धूप फल ये सब ही मिलाके।।

गुरुदत्त आदिक जहाँ मुनिराज राजैं।
पूर्णार्घ्य अर्पण करूँ विधि नाश काजै।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नमः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

द्रोणगिरि के शीश पर, काटा विधि का जाल।
उन गुरुदत्त मुनीश की, वरणूँ वर जयमाल।।

(पद्धडी छन्द)

श्री सिद्धक्षेत्र पर्वत सुधाम, द्रोणगिरि है ताको सुनाम।
पर्वत उत्तुग अति शोभनीक, वृक्षो की पक्ति लगी टीक।।1।।

अष्टाविंशति जिन मन्दिर अनूप, अबर तल स्पर्शी विविध रूप।
जिनबिम्ब चारु शुभ विराजमान, दर्शन से पाप नशे महान्।।2।।

हत्थिनपुर वासी वर मुनीश, गुरुदत्त महाज्ञानी यतीश।
आये द्रोणगिरि के मँझार, उपसर्ग सहा तिनके अपार।।3।।

ध्यानानल से चउ घाति घात, वर केवल ज्योति सुजगमगात।
जग जीवन हित उपदेश दीन, स्याद्वादमयी वाणी प्रवीण।।4।।

पचास्तिकाय अरु सप्त तत्व, षट्द्रव्यमयी जग का प्रभुत्व।
मार्गण प्ररूपणा गुणस्थान, त्रय रत्न मोक्ष मारग महान्।।5।।

इत्यादि और जगहित स्वरूप, उपदेश दिया जय जगत् भूप।
भव जीव किये भव सिधु पार, जिन शरण गही निज हित विचार।।6।।

पुनि घात शेष चउ विधि अघाति, हो गई व्यक्त सब सुगुण पाति।
भये मुक्तिरमा वल्लभ मुनीश, गुरुदत्त महाज्ञानी यतीश।।7।।

इत्यादि और हु तपनिधीश, विधि नाश विराजे लोक शीश।
निज निजानन्द पद को सुपाय, इस दशा माँहि थिरता लहाय।।8।।

स्वात्मोद्भव सुख मे भये लीन, ज्ञाता दृष्टा केवल प्रवीन।
नहिं जग से अब कुछ और काम, कृत कृत्य विराजे परम धाम।।9।।

तब से यह भूमि भई विशुद्ध, वन्दित विधि नाशे पूर्वबद्ध।
हम याचत हैं यह बार-बार, मुनिराज करो भव-सिधु पार।।10।।

हम निजस्वरूप में लीन होंय, भवकारण कर्म कलंक धोय।
भव वास शीघ्र ही छूट जाय, कर जोड़ "लाल" मस्तक नवोंय।। 11।।

(दोहा)

अमित अमल गुणगण सहित, गुरुदत्तादि मुनीश।
तिनके चरण सरोज को, नाऊँ नित प्रति शीश।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरिसिद्धक्षेत्रजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मुक्तिपदप्राप्तगुरुदत्तादिमुनिभ्यश्च नम. अनर्घ्यपद–प्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जो पूजे गिरिराज स्थित, जिनप्रतिबिम्ब सद्‌भाव से।
लेकर के बहुद्रव्य शुद्ध, मन से भक्ति करे चाव से।।
इस भव परभव में पुनीत, महिमा पाके सुखी राजते।
वे अतिशययुक्त ज्ञान प्राप्त, कर मुक्तिरमा को पावते।।

(इत्याशीर्वाद)

❑❑❑

द्रोणगिरि स्तुति

हे गुरुदत्तादिक वर ऋषि गण चरण शरण हम आते हैं।
परम पुनीत चरण कमलो की रज को शीश चढाते है।।
इसी भूमि से मुनिवर तुमने तप कर शिव को पाया था।
कर निर्वाण क्रिया देवो ने सिद्धक्षेत्र परकाशा था।।1।।

सुर नर से यह भूमि तभी से, पूज्य भूमि थी कहलाई।
हम सब श्रावक करहि वन्दना, पूज्य भावना चितलाई।।
भक्ति आपकी करहि निरन्तर, शक्ति प्राप्त वह हो जाये।
जिससे आप समान तपो निधि, बन्ध कर्म का नश जाये।।2।।

बोध सूर्य का उदय हमारे, मन-मन्दिर में प्रगट करो।
दु ख दायिनी घोर अविद्या, अन्धकार को दूर करो।।
आलस तज हम प्रमुदित मन से, विद्याध्ययन् करे निशि दिन।
विघ्न उपस्थित होंने पर भी कभी न विचलित होवे मन।।3।।

आत्मिक बल की उन्नति करके, श्री जिन धर्मोत्थान करे।
निज कर्तव्यो के पालन मे, अनवधानता दूर करे।।
हटा मूल मिथ्यात्व भावना, आगम ज्ञान नहि टाले।।4।।

गुरुजन की हम विनय करे नित, भक्तिभाव से नत होकर।
रहे परस्पर प्रेमभाव से, भ्रातृभाव सबसे रखकर।।
फलैं भावनाये हम सबकी, यतिवर तुम गुण नित गावे।
"लाल" सभी मिल करहि प्रार्थना हाथ जोड़कर सिर नावे।।5।।

❑❑❑

बारह भावना

विधि समूह को नाशकर, पायो अविचल थान।
भये निकल परमात्मा, नमूं सदा हित जान।।
द्वादश भावन के भाने से, शान्ति अनूपम मिलती है।
मोह कर्म की अति दृढ ग्रन्थी, सहज रीति से खुलती है।।
अत. उन्हीं का कुछ दिग्दर्शन, यहाँ कराया जाता है।
भव विराग का एकमात्र, आदर्श बताया जाता है।।

अनित्य भावना

कहाँ गये लंकेश जिन्होंने, गिरि कैलाश उठाया था।
तीन खण्ड का राज्य और बहु, विभव अपरमित पाया था।।
वर्ण महल विभवादिक सारे, नहीं पुरातन कोई रहे।
कालवाहिनी की तरग मे, जग के सकल पदार्थ बहे।।
जल तरग की भाति चपल है, जग मे जीवन प्राणी का।
रहता नहीं सुथिर काया मे, यह सौन्दर्य जवानी का।।
मेघ समय बिजली सम चंचल, भोग समूह अथिर सारे।
स्वार्थ सिद्धि तक ही रहते हैं, एक दूसरे को प्यारे।।
यो लख जग की सारी माया, मोह तजे यतिवर ज्ञानी।
निज स्वरूप मे लीन रहे नित, है यथार्थ जो सुखदानी।।

अशरण भावना

ज्यो कानन के मध्य नहीं मृग, हरि से कोई छुड़ा सकता।
भवारण्य मे नहीं मृत्यु से, जीवन कोई बचा सकता।।
चक्रवर्ती बलदेव तीर्थंकर, सर्वोत्तम पद के धारी।
जिनके आगे इतर जनो ने, विनय सहित मस्तक धारी।।
वह भी अन्त समय मे देखो, काल देव के अतिथि हुये।
तो फिर और जगत् मे को है, जो रह सकता बिना मुये।।
कोई नहीं मरण से जग मे, रक्षा करने वाला है।
उभय लोक मे शान्तिप्रदायक, एक धरम का प्याला है।।

संसार भावना

चतुर्गतिमय भवकानन मे यह, जीव महादु ख पाता है।
सदा काल पन परिवर्तन से, मिली न किंचित् साता है।।

निर्धन हुये रही धन चिन्ता, धनी हुये तो बढी तृषा।
रही निरन्तर अधिक विभव के, पाने की अभिलाष मृषा।।
प्रिय वियोग अप्रिय संयोग से, सदा काल सन्ताप रहे।
विषय भोग की चाह अनल में, यह प्राणी निश दिवस दहे।।
सब प्रकार से है असार, ससार प्रकट देखो भाई।
हुये विमुख जो जग से प्राणी, मुक्तिरमा उनने पाई।।

एकत्व भावना

शुभ या अशुभ रूप जिय जैसा, कर्म उपार्जन करता है।
अच्छा और भला फल उसका, वही अकेला सहता है।।
जिस कुटुम्ब के लिये निरन्तर, बड़े–बडे अन्याय किये।
झूठ वचन पर पीड़न पर धन, हरण अनेको पाप किये।।
जब विपाक इन दुष्कर्मों का, उदयावलि में आता है।
वही अकेला बिलख बिलखकर, नाना विध दु.ख पाता है।।
धन सम्पदा तिय सुत मित्रादिक, कोई काम नहीं आते।
परभव मे इक धर्म छोड़कर, कोई साथ नहीं जाते।।

अन्यत्व भावना

एकक्षेत्र अवगाह रूप से, देह और देही का मेल।
विघट जात वह क्षण भर मे, इन्द्र जालिये जैसा खेल।।
तो फिर प्रगट जुदे सुत तिय धन, मित्रादिक सारे सम्बन्ध।
हो सकते फिर कैसे अपने, तो भी हुये मोह से अन्ध।।
देह अचेतन जिय चेतन है, रूपी देह अरूपी जीव।
ज्ञानी जीव देह अज्ञानी, यही भिन्नता लखो सदीव।।
नहीं जीव का परजीवों से, है कोई सच्चा सम्बन्ध।
भेदज्ञान से जो यह समझे, वह हो जाते हैं निर्बन्ध।।

अशुचि भावना

देह अपावन अशुचि घिनावन, नव मल द्वार बहे भारी।
देखत ही अति घिन आती है, मूरख अति रति विस्तारी।।
मात पिता के रजोवीर्य से, बना अशुचि यह तन तेरा।
आधि व्याधि जनि मरण जरा, ने इसे खूब आकर घेरा।।
चन्दन इत्र पुष्प मालाये, नूतन वस्त्रादिक सारे।
केवल इसके छुये मात्र से होय अपावन दुख कारे।।

धर्म हेतु जो नर इस तन को, सदा समर्पण करते है।
वही पुण्यशाली नर इसकी, महा अशुचिता हरते हैं।।

आस्रव भावना

काय वचन मन की किरिया को, योग कहे मुनिवर ज्ञानी।
योग शक्ति से आत्म बीच, होती सकपता दु खदानी।।
सतत नालियो के द्वारा ज्यो, सर का जल बहता रहता।
त्यो योगो से कर्म जाल का, आस्रव नित होता रहता।।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद भेद इसके सारे।
पन द्वादश पच्चीस पचदश, मिल सत्तावन दु ख कारे।।
राग द्वेष भावो के कारण, आस्रव स्रोत सदा बहता।
दूर किये ही इस परिणति के, जीव निरास्रव पद लहता।।

संवर भावना

जैसे नहीं नाव मे आता, छिद्र बद करने से नीर।
आस्रव रुकने से नहिं रहती, त्यो नूतन कर्मों की पीर।।
गुप्ति समिति परिषहजय चारित, अनुप्रेक्षा वर धर्म उदार।
सत्तावन भावो से रुकते, सत्तावन आस्रव दु ख कार।
पुण्य पाप उपजाने वाले, भाव नहीं जो करते है।
केवल स्वात्म रूप अनुभव मे, लीन हमेशा रहते हैं।।
वही भाग्यशाली नर पुगव, आते कर्म खिपाते हैं।
इसी रीति से अवसर पाकर, अचल अमर पद पाते है।।

निर्जरा भावना

निज निज थिति पूरी कर जो विधि, स्वय पृथक् हो जाते है।
आस्रव की विधि से तब दूजे, कर्म तुरत आ जाते है।।
यह सविपाक निर्जरा निशदिन, सबके होती रहती है।
इससे अपना काज न सरता, नहिं भव बाधा मिटती है।।
तपश्चरण की चण्ड अनल से, कर्म जलाये जाते हैं।
इस अविपाक निर्जरा से ही विधि बन्धन कट जाते है।।
दग्ध बीज ज्यो धरणीतल पर, कभी नहीं है उग सकता।
कर्मदाह से त्यो भव अकुर, कभी नहीं है लग सकता।।

लोक भावना

लोक अनादि अमिट पुरुषाकृति, छहो द्रव्य का मेला है।
कर्ता हर्ता कोई न इसका, पुण्य पाप का खेला है।।

नभ मे स्वाश्रित सदा काल से, निराधार इसका आवास।
नरक पशु सुर मनुजवृन्द का, इसी लोक के अन्दर बास।।
पी अनादि से मोह वारुणी, भ्रमण करे जग मे प्राणी।
भवसागर मे दुख पाते हैं, भूल आपको अज्ञानी।।
जो जिय विमुख होय इस जग से, निजपद मे थिरता धारैं।
लोकशिखर का ईश होय वह, निजानन्द पद विस्तारैं।।

बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ है एकेन्द्रिय से बे, तिय चउ पचेन्द्रिय पाना।
मानवता में उत्तमकुल अरु, जिनवाणी का सरधाना।।
सदा तत्त्व के गहन विषय की, समझ कठिन जग मे भारी।
बुद्धि हुई सर्वार्थसिद्धि के, अहमिन्द्रो तक की हारी।।
स्वपर वस्तु का भेदज्ञान यह, अति दुर्लभ जानो भाई।
दर्शज्ञान चारित रत्नत्रय, पाने की अति कठिनाई।।
सब विधियोग निमित्त पायकर, सद्बोधि प्राप्त करलो भाई।
जन्म जरा अरु मरण रोगत्रय, विनश जायेगे दुखदाई।।

धर्म भावना

मोह भाव से रहित जीव का, जो सद्भाव प्रगट होता।
यही भाव सद्धर्म जगत मे, शान्ति सुधा का वर स्रोता।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण का, होता इसी भाव मे जन्म।
जिसके धारण से हो जाते, निश्चय ही भवि जीव अजन्म।।
वीतराग उपदिष्ट धर्म ही, उत्तम सौख्य प्रदाता है।
इसकी प्राप्ति किये ये सारा, ससृति का दुख जाता है।।
अत इसी सद्धर्म प्राप्ति का, यत्न "लाल" करते रहना।
काल लब्धि के आ जाने पर, निश्चय भव सागर तरना।।

□□□

भक्ति पीयूष (भजन संग्रह)

भजन (1)

सबसे प्रथम, सस्मरण करूँ, उन वीर प्रभु को।
त्रिशला के नन्द, जगद्वन्द्य, श्री जिनन्द को।
वसु द्रव्य, लाय पूजिये, सिद्धार्थ नन्द को।।1।।
करके प्रचण्ड, मदन खण्ड, ब्रह्मपद लिया।
श्रद्धाजलि, अर्पण करूँ, उन वीर प्रभु को।।2।।
जब रुद्र, ने घोरोपसर्ग, आपको किया।
हुआ विफल, प्रयत्न देख, वीर प्रभु को।।3।।
जब आत्म, आराधन मे, हुआ था बोधि का उदय।
अवगत हुये, त्रिलोक सभी, वीर प्रभु को।।4।।
संसार के, जीवो को दिया, मोक्ष मग बता।
हो सर्व, कर्म मुक्त, वरी मुक्तिरमा को।।5।।
नीच हो, या ऊँच हो, ज्ञानी अबोध हो।
वीर के, पूजन का है, अधिकार सभी को।।6।।
ससार सिन्धु, से वही, हो पार जायेगा।
जो भक्ति, भाव से त्रिकाल, ध्याय आपको।।7।।
त्रैलोक्यनन्द, बार बार, अर्ज है यही।
भ्रम छोड, नाय भाल, "लाल" वीर प्रभु को।।8।।

भजन (2)

तन मन वचन से जय कहो, प्रभु आदिनाथ की।
इक बार फिर से जय कहो, प्रभु आदिनाथ की।।
ससार से तारण तरण, कोई दूसरा नहीं।
इससे शरण आइये, प्रभु आदिनाथ की।।1।।
जिनके अनन्त गुणन का, कुछ पार है नहीं।
महिमा प्रसिद्ध विश्व मे, तब स्याद्वाद की।।2।।
मरुदेवी नन्द श्री जिनन्द, नाभिनन्द हैं।
पहले बता दई है राह, मोक्ष मार्ग की।।3।।
कर घाति चतुष्कर्म नाश, केवली हुये।
सुख्यात विश्व मे है तान, दिव्य ध्वनि की।।4।।
मूक प्राणियो को आप, ने भव पार कर दिया।
महिमा अपार आपके धर्मोपदेश की।।5।।

सब कर्म फन्द दूर कर, प्रभु मोक्ष में गये।
हो ही चुकी उपलब्धि, जिन्हें आत्म रूप की।।6।।

संसार सिन्धु से वही, हो पार जायेगा।
जो भक्ति भाव से त्रिकाल, ध्याय आपको।।7।।

भव दाह शान्त मेरी, प्रभु आप कीजिये।
प्रभु बार बार विनति, यही भक्त "लाल" की।।8।।

भजन (3)

सब मिलके आज जय कहो, श्री जैन धर्म की।
मस्तक झुका के जय कहो, श्री जैन धर्म की।।1।।

जो वीर के मुखारविन्द, से प्रगट हुआ।
जिसने बता दई है राह, मोक्षमार्ग की।।2।।

उत्तम क्षमादि रूप या, वस्तु स्वरूप है।
जो एकता स्वरूप, दर्श–ज्ञान–चरण की।।3।।

जिस धर्म को पाकर के, श्वान देव हो गया।
चाण्डालिनी पुत्री हुई, परभव मे सेठ की।।4।।

इस धर्म से ही भील, चरम तीर्थंकर हुआ।
श्रीपाल नृपति की गई, सब पीर देह की।।5।।

सूली से त्राण पा गये, थे धन्य सुदर्शन।
अगनी से नीर लहर, गया धन्य जानकी।।6।।

इस लोक व परलोक, में सुख धर्म से मिला।
है सुप्रसिद्ध विश्व मे, यह साख शास्त्र की।।7।।

संसार पार होने की, अभिलाषा हो अगर।
जिनधर्म के धारण से, होगी नाश कर्म की।।8।।

भव–भव मे प्राप्त हो, मुझे जिनधर्म की शरण।
जब तक न प्राप्ति मुक्ति हो, यह चाह "लाल" की।।9।।

भजन (4)

जिन धर्म का झण्डा भारत मे, फिर हम आज गढा देंगे।
शुभ गुणाधार अनुपम उदार, यह जीवन प्राण हमारा है।।

स्वस्तिक चिन्हांकित जग विजयी, नव जीवन ज्योति जगा देगे।
जब–जब जिसने अन्याय किये, वह सब इसके बल दूर हुये।।

इसके आगे सब दुनिया का, फिर से मस्तक झुकवा देगे।
जब जगती–तलपर बौद्ध धर्म का,जोर अधिक था बढा हुआ।।
निकलंक सदृश जीवन अर्पण, निज धर्म हेतु हम कर देगे।
अकलक प्रभु ने बौद्धो से कर बाद विजय युत इसे किया।।
उसका दिग्दर्शन दुनिया को फिर से हम आज करा देगे।
जब धर्म के नाम से हिंसा का जग मे था खूब प्रचार बढा।।
वह वीर प्रभु ने दूर किया यह भी जग को सिखला देगे।
यह सत्य दया का प्रेमी है जग माहि अहिंसा मर्मी है।।
इस घटा अलौकिक वाले को केशरिया रंग से सजा देगे।
यह है सब जग को अति प्यारा उर सब जग इसको प्यारा है।।
इस विश्व धरा पर मानवता का अनुपम नाद करा देगे।
यह रूढि का सहारक है नित आत्मिक गुण का धारक है।।
वह पूर्व चमक इसकी जग मे इक बार पुन चमका देगे।
यह दुखियो का दुख हारी है विधुरो का एक सहायी है।।
इसके बल पर हम शुष्क जगत् को हरा भरा फिर कर देगे।
आओ आओ मस्तक नाओ प्रिय इसकी महिमा बतलाओ।।
इसकी उन्नति मे तन मन धन सब ही निज अर्पण कर देगे।
दस्सा बीसा का भेद नहीं आओ सब ही इसके आगे।।
उन्नति के मस्तक पर इसको सब मिलकर "लाल" चढा देगे।।

भजन (5)

भगवान् ऋषभ से मिला दो कोई, उनका मजुल दर्शन करा दो कोई।
अवसर्पिणी के उस समय जो सबसे प्रथम जिनराज थे।
नाभिनन्दन और वह मरुदेवी के सिरताज थे।
उनका पावन चरित सुना दो कोई।। भगवान् ।।1।।

जब भोग भूमि की यहाँ रचना समाप्त जो हो गई।
षट् कर्म असि मसि आदि की शिक्षा प्रजाजन को दई गई।
उनके चरणो मे झुका दो कोई।।भगवान् ।।2।।

जब लाख पूरब वर्ष की थी आयु उनकी रह गई।
नीलाजना का नृत्य लख वैराग्य परिणति हो गई।
उस काल का दृश्य दिखा दो कोई।।भगवान् ।।3।।

इक वर्ष तक जब योग विधि आहार की नाहीं मिली।
श्रेयास नृप ने ज्ञान कर आहार विधि कीनी भली।
पात्र दान की रीति सुना दो कोई।। भगवान् ।।4।।

घाति कर्मों का किया उन्मूल जड़ से आपने।
प्राप्त केवलज्ञान कर भवि जीव तारे आपने।
उसके तत्वो का मर्म सिखा दो कोई।। भगवान् ।।5।।

शेष घात अघातिया लोकाग्रवासी हो गये।
संसार के भवि प्राणियो को मोक्षमार्ग बता गये।
उस मार्ग पे शीघ्र चला दो कोई।। भगवान् ।।6।।

पद जो इस ससार मे परमात्म पद ऐसा नहीं।
भगवन्त श्री वृष मेरा सा तारण तरण दूजा नहीं।
उनके पास मे "लाल" पहुंचा दो कोई।। भगवान् ।।7।।

भजन (6)

प्रभु आदिनाथ स्वामी अरजी सुनो हमारी।
ससार सिन्धु से करो नैया हमारी पारी।।
युग आदि मे जिनेश्वर जग जीव बहु उघारे।
करुण पतन ऋषीश्वर अबके हमारी बारी।।1।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी ...

जिस काल मे नहीं था कुछ भी पता धरम का।
उस वक्त नाथ तुमने वृष का किया प्रचारी।।2।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी .

शत पंच धनुषधारी उत्तुंग तनु विराजे।
चौरासी लाख पूरब की आयु तुमने धारी।।3।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी

भवि जीव के सहारे मरुदेवी के दुलारे।
नृप नाभिराय नन्दन सुधि लीजिये हमारी।।4।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी ..

त्रय रत्न के पिटारे केवल प्रदीप वारे।
संसार मे न दूजा तुमसा कलक हारी।।5।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी ..

सौभाग्य आज आया तुमरे शरण मे आया।
रख लीजिये शरण मे कलि काल पाप हारी।।6।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी .

तब तक न मैं तुम्हारे ढिग प्राप्त हो सकूँगा।
तब तक रहे शरण मे यह लाल नाथ धारी।।7।।
प्रभु आदिनाथ स्वामी

भजन (7)

युग आदि मे धर्म प्रकाश किया भगवान् सु आदि जिनेश्वर ने।।

क्षण भगुर जीवन मानुष का क्षण भंगुर सब जग की माया।
नहिं कोई किसी का साथी सगा जतला दिया वीर जिनेश्वर ने ।।

विषयो मे जीव निमग्न रहे जब धर्म का मारग थान खुला।
तब धर्म दिवाकर जग हित को चमका दिया आदि जिनेश्वर ने।।

सब घाति करम कर छार छार उर केवल बोध सुधार धार।
सबसे पहिले शिव मारग को प्रगटा दिया आदि जिनेश्वर ने।।

फिर कर अघातिया करम छार शिव मन्दिर मे कीना बिहार।
आदर्श अनुपम इस जग को बतला दिया आदि जिनेश्वर ने।।

नृप नाभिनन्द मरुदेवी लाल नित नावत उनको लाल भाल।
सन्मारग के तट पर हमको पहुचा दिया आदि जिनेश्वर ने।।

भजन (8)

जिन धर्म का डका त्रिभुवन मे, बजवा दिया वीर जिनेश्वर ने।।
जिस वक्त यहा पर यज्ञो मे, पशु जीव जलाये जाते थे।
उस हिसावाद जमाने को, हटवा दिया वीर जिनेश्वर ने।।
बालकपन मे ही मार मार, भये बाल ब्रह्मचारी उदार।
विषयो मे कुछ भी सार नहीं, बतला दिया वीर जिनेश्वर ने।।
नृप सिद्धारथ के नन्द जान, माता त्रिशला के गर्भ आन।
झट नाद अहिसा का जग मे, गुजवा दिया वीर जिनेश्वर ने।।
हो जन्म किसी भी वर्णों मे, जिन धर्म सभी धर सकते है।
पशु पक्षी तक को भी जिन धर्म, दिलवा दिया वीर जिनेश्वर ने।।
सम्प्रति जिन वृष की दीक्षा से, जो गैरो को रुकवाते हैं।
वे वीर प्रभु के द्रोही हैं, फरमा दिया वीर जिनेश्वर ने।।
जो दस्साओ को पूजन का, अधिकार नहीं बतलाते हैं।
कर गौर लखो वीरोपदेश, बतलाया वीर जिनेश्वर ने।।
थी आयु बहत्तर वर्षों की, तनु सप्त हस्त मित ऊँचा था।
सुख शान्ति मयी शिव मारग को, प्रगटा दिया वीर जिनेश्वर ने।।
विधि के बन्धन का काट जाल, पहुचे शिव मन्दिर मे विशाल।
हे "लाल" यही शिवमारग है, बतला दिया वीर जिनेश्वर ने।।

भजन (9)

हे जीव तू विषयो मे, क्यो अचेत हो पड़ा।
इससे किया हे बन्ध, तूने कर्म का बढा।।
देख लो स्पर्श इन्द्रिय, से हुआ विकल।
कागज की हथनी के, लिये गज गर्त मे पड़ा।।
रसना के लोभी मीन को, धीवर ने आय के।
आटे के लोभ से उसे, कंटक दिया गढा।।
सन्ध्या समय को जानकर, खुशबू का लालची।
होकर कमल मे बन्द, भ्रमर मृत्यु पर चढा।।
दाहक स्वभाव अग्नि का, यह जानता नहीं।
नयनों के वश पतंग, वन्हि बीच मे गिरा।।
फंस गया वन मे, बहेलिये के जाल में।
कर्ण रसास्वाद मे, आसक्त मृग मरा।।
जब एक एक विषय, वशीभूत होयकर।
होता है जग में प्राणियो,को दुःख अति बडा।।
फिर पाँचों इन्द्रिय विषय, मे हैं जो फसे हुये।
है क्या ठिकाना क्लेश का,जो उनके सिर मढा।।

भजन (10)

कुछ भी करो शिक्षा ग्रहण, उन रामचन्द्र की।
है कीर्ति व्याप्त विश्व में, उन रामचन्द्र की।।
जो पिता के हुक्म से, तज राज को वन गये।
लक्ष्मण सहित प्रस्थान किया, संग मे जानकी।।
लंकेश ने सूनी सिया को वन मे हर लिया।
रक्षा मे मृत्यु हो गई, उस गृद्ध राज की।।
युद्ध से लक्ष्मण सहित, जब राम आ गये।
ज्ञात कर सब हाल कह, आये जानकी।।
एक ही दुःख तो अभी तक, दूर नहीं हुआ।
उर दूसरा यह आ गया, बलिहारी कर्म की।।
सेना को ले लंका को झट, प्रस्थान कर दिया।
रावण को मार छीन लाये, अपनी जानकी।।
करके परीक्षा अग्नि से, सीता की राम ने।
संदेह किया दूर रखी, शान आन की।।

पिता का वचन पालनो, सुस्नेह भ्रातृ से।
अटल प्रजानुकूल रखी, विधि सुवृत्त की।।
सेवक के साथ कैसा हो, बर्ताव यह देखो।
पूछो श्री हनुमान् से, करुणा निधान की।।
इत्यादि "लाल" उससे, शिक्षा ग्रहण करी।
होगी व्यवस्था ठीक तभी, लोक--राज की।।

भजन (11)

जब तक न अपने आप ही, अपना पता लगता नहीं।
ससार का मजबूत बधन, तब तलक कटता नहीं।।
पीकर अनादि काल से यह, मोह की मदिरा महा।
पर वस्तुओ मे मान आया, आत्म हित पाया नहीं।। जब ।।
पर वस्तुओ मे आत्म का, सम्बन्ध कुछ भी है नहीं।
चैतन्य व जड वस्तुओ की, एकता होती नहीं।।
ससार मे निज स्वार्थ से, साथी नजर आते सभी।
सर सूखने पर हसगण, सर मे कभी रहते नहीं।। जब ।।
जब आत्म भूमि मे जगेगी, ज्ञान की चिनगारिया।
ज्ञान ज्योति के बिना, परमात्म पद मिलता नहीं।।
अतएव सम्यग्ज्ञान झट, प्राप्त करना चाहिये।
भव जन्म बाधा जीव की, उसके बिना मिटती नहीं।। जब ।।
संसार मे जो है कलाये, सीख सारी लीजिये।
निज रूप की पहिचान बिन, सुख रच भी मिलता नहीं।।
कर प्राप्त भेदज्ञान झट, निज रूप रखना चाहिये।
"लाल" जिसके बिन अभी तक, शान्त रह पाया नहीं।। जब ।।

भजन (12)

भव दुख हरण तारण तरण जिन! आपसा दूजा नहीं।
दर्श दीजे आपना कुछ, और वाछा है नहीं।।
अन्य देवो मे जरा भी, मन मेरा रमता नहीं।
शान्ति का आदर्श जैसा, आपका उनमे नहीं।। भव ।।
मन मोहिनी मूरत तुम्हारी, हे प्रभो दिल मे बसी।
दर्श से ही शान्त मुद्रा, पाप परिणति हरी गयी।।
बहु दिन हुये ससार के है, दुख महा मैंने सहे।
जानते है आप सब मुझसे, कहे जाते नहीं।। भव ।।

क्या करूँ कैसा करूँ कुछ, भी कहा जाता नहीं।
संसार का दुख एक क्षण भी, अब सहा जाता नहीं।।
अब तो कृपा कर दीनबन्धु, दुख शमन कर दीजिये।
मिलके शरण भव भव तुम्हारी, कामना मेरी यही।।भव.।।
चार गतियो मे मुझे, संताप जो भारी हुये।
आपके बिन दूसरा वह, दूर कर सकता नहीं।।
जानकर तेरा विरह यह, आपके आया शरण।
"लाल" का बिन आप कोई, दुख हर्ता नहीं।।भव.।।

भजन (13)

रे जीव क्यो आसक्त हो, संसार मे पगा।
इससे अभी तक नहीं मिला है, मोक्ष का मगा।।
तन पुत्र धाम वाम है, साथी न जीव के।
है सब कुटुम्ब देख लो, निज स्वार्थ का सगा।।रे जीव.।।
जब अभिन्न देह भी, साथी न जीव का।
तब भिन्न और क्या, पदार्थ साथ जायगा।।
जिस द्रव्य की प्राप्ति में, तूने पाप नित किये।
वह एक पैर भी, न तेरे साथ जायगा।।रे जीव.।।
नरक स्वर्ग पशु व, मानुष की योनि में।
सुक्ख दुक्ख तो, अकेला जीव सहेगा।।
विषयो मे मुग्ध होयकर, निज को भुला रहा।
इनके विपाक मे, तुझे सताप होयगा।।रे जीव.।।
है अजुलि के नीर सम, यह आयु की दशा।
काल के वश मे हैं सभी, सुर—असुर खगा।।
संसार की सबही दशा, नश्वर समझ के लाल।
कर त्याग इसे शीघ्र, निजानन्द पायगा।।रे जीव.।।

भजन (14)

यह कर्म बडे बलवान्, महा दुख कारे।
सुर असुर खगाधिप सभी, स्ववश कर डारे।।
जो नवनिधि रत्नो, के थे स्वामी।
स्वर्गीय सुदर्शन चक्र, जिन्हो के नामी।।
बहु मुकुट बद्ध राजा, नित करे नमामि।
जिनके वश मे थे, अमित बली सुर धामी।।
वह भरत चक्रवर्ती, बाहुबली से हारे।।यह.।।

छह मास प्रथम ही, देव बरसाये।
सर्वार्थ सिद्धि तज, मातु गर्भ मे आये।।
जनमत ही मेरू पर, सुर गण ला नहलाये।
बालकपन मे सुर, साथ खेलने आये।।
वह प्रथम तीर्थंकर, फिरे बिना आहारे।। यह ।।
श्री रामचन्द्रजी सिया, सहित वन भटके।
श्री कृष्ण अन्त मे, तुच्छ नीर को अटके।।
रावण भी मरे, स्वकीय चक्र से कटके।
पाण्डव प्रवास के, आतापो से झटके।।
इन सबके देखो, विधि ने मर्म बिदारे।। यह.।।
जब महापुरुष भी, कर्म से नहीं छूटे।
तब औरो की क्या बात, निरन्तर लूटे।।
इनकी झकोर से, नेत्र हृदय के फूटे।
जिन भक्तो के पर, विधि बन्धन सब छूटे।।
जिन भक्ति करो निज, दिये कर्म सब जारे।। यह.।।
जो इन कर्मों का, बन्ध तोड़ना होवे।
तो "लाल" पड़ा क्यो, समय व्यर्थ ही खोवे।।
शुभ कर्तव्यो से, कर्म कालिमा धोवे।
तो समय प्राप्त कर, मुक्ति रमा को जोवे।।
जिन किया यत्न उन, दिये कर्म सब मारे।। यह ।।

भजन (15)

कुछ करो स्व पर, कल्याण मनुष गति पाई।
नर भव का पाना, जग मे अति कठिनाई।।
जब पूर्व जन्म का, सुकृत उदय आता है।
तब मनुज गति मे, जीव जनम पाता है।।
निज हित करने की, मिली कुछ साता है।
यदि करे कर्म का, नाश मोक्ष जाता है।।
इसको पाकर मत, व्यर्थ गमाओ भाई।। कुछ करो ।।
यह श्रावक कुल अरु, जैनधर्म का मिलना।
अन्तर का दीपक, आत्मबोध का लखना।।
पाकर के सब विधि, यो आत्महित करना।
आखिर को होगा, मृत्यु शीर्ष पर चढना।।
ये फिर न मिलि हैं, मणि ज्यो उदधि समाई।। कुछ करो ।।

हितकारी गुरुओ की सगति का पाना।
सुखकारी शान्तिमयी मुद्रा का ध्याना।
पाकर के यदि नहीं किया स्वपर कल्याणा।
तो फिर यह अवसर नहीं लौटकर आना।।
उपकारी गुरुओ ने यह सीख सुनाई।। कुछ करो ।।
ससार जलधि से पार उतरना होवे।
तो मोह नींद मे व्यर्थ पडा क्यो सोवे।।
तज नींद शीघ्र ही जो आतम हित जोवे।
वह उभय लोक की बाधाये सब खोवे।।
नर गति ही समझो "लाल" यही प्रभुताई।। कुछ करो ।।

भजन (16)

है णमोकार की, महिमा अपरमपारी।
नहिं हो यकीन तो, देखो शास्त्र मझारी।।
रस कूप मध्य मे, पडा हुआ इक नर था,
तब चारुदत्त ने, सुना दिया मन्तर था।
वह तज प्राण, हो गया अमर था,
अज पुत्र इसी को, सुमर गया सुरपुर था।।
नित जाप जपन ते, टरे आपदा सारी।। नहिं हो ।।
अविवेकी ग्वाला सुभग, चराता पशु था,
पा मत्र मुनी से हुआ, सेठ का शिशु था।
इक श्वान द्विजो से, हुआ कठ गत असु था,
पा मत्र हुआ यक्षेन्द्र, सहित वसु गुण था।।
भया मत्र से अजन, भवदधिपारी।। नहि हो.।।
हथिनी कीचड मे फसी, सहे दुख भारी,
यह मत्र सुमर शुभ, गति मे शीघ्र सिधारी।
युग नाग नागिनी, मूर्ख साधु ने जारी,
उपदेशे प्रभु पारस, ने करुणाधारी।।
भये पद्मावती धरणेन्द्र, अमर पदधारी।। नहि हो ।।
उपदेश मुनी का, मरकट ने पाया था,
जन्मान्तर मे हो गया, सुनिष्काया था।
यह वृत्त सभी, आगम से बतलाया था,
सत् श्रद्धानी भव्यो, के मन भाया था।।
अब करो अटल विश्वास, समझ हितकारी।। नहिं हो.।।

जो णमोकार मंत्र को, धरूँ भाव से उर में।
वह पाप कालिमा करे, दूर क्षण भर मे।
हो लौकिक सुख से, पूर्ण स्वकीय उमर मे,
भोगेगा आनन्द, महा शिवपुर मे।।
नित जपो "लाल" यह, णमोकार सुखकारी।। नहिं हो।।

भजन (17)

तज विषय भोग नित, भजन करो नित प्यारे,
यह क्षण भंगुर संसार, समझ चित लारे।। टेक।।
इस जग के सकल, पदार्थ अथिर हैं भाई,
सुर धनु अथवा, जैसे चपला चपलाई।
यह दशा आयु की अँजुलि जल की नाई,
यौवन की शोभा विनश, जाय क्षण भाई।।
ये विषय भोग दुख रूप, नाग ज्यो कारे।। यह क्षण।।
तन तात मात धन धाम, वाम सुत प्यारा,
है नहीं समय पर, कोई किसी का यारा।
है अमित दुखो की, खानि सकल ससारा,
तज मोह करो नित, आतम काज सुधारा।।
इस मोह कर्म वश, भुगते दुख अपारा।। यह क्षण।।
इस लाख चौरासी, योनि माँहि तू भटका,
नाना गतियो मे धरे, भेष ज्यो नट का।
तू गया जहा पर रहा, वहाँ ही खटका,
नहि मिला कभी हित मार्ग, जगत् में अटका।।
अति हुए क्लेश धर जन्म, मरण बहु बारे।। यह क्षण।।
निज विषयो को तूने, हितकर माना है,
फँस रात दिवस नहिं, सन्मुख पहिचाना है।
इस निंद्य कार्य का, जब विपाक आता है,
तब भोगो से संताप, अमित पाता है।।
सुख पावेगा वह, जो सत्सयम धारे।। यह क्षण।।
शुभ कर्म योग से, मनुज जनम पाया है,
तप करने लायक, मिली सुदृढ काया है।
कर लो कुछ आत्म भलाई, समय आया है,
गुरुओ ने हमको, सब विधि समझाया है।।
नहिं करो देर अब "लाल", चेत झट जारे।। यह क्षण।।

भजन (18)

जयन्ती वीर जिनवर की, मनाना ही मुनासिब है।
सकुचित निज विचारो को, बदलना ही मुनासिब है।।
रूढि से इस जयन्ती को, मनाना छोड़ अब दीजै।
वास्तविक रूप से इसको, मनाना ही मुनासिब है।
जिन्होनें विश्व को कल्याण, का मारग बताया है।
आज मारग वही सबको, दिखाना ही मुनासिब है।।
न हो उपदेश औरो को, घृणित यह भाव तज दीजै।
वीर वाणी से सबको तृप्त, करना ही मुनासिब है।।
सुप्याला वीर वाणी का, जो पीना चाहते दिल से।
छोड़कर निजपना सबको, पिलाना ही मुनासिब है।।
ह्रास इस जैन जाति का, दिनो दिन हो रहा भारी।
जो चाहे जैन दीक्षा को, दिलाना ही मुनासिब है।।
भक्ति यदि वीर प्रभु की है, तुम्हारे शुद्ध मानस मे।
वीर भक्ति लिखित जग को, बताना ही मुनासिब है।।
विश्वविद्यालयो के बिन, नहीं कोई कार्य चल सकता।
शीघ्र विश्व विद्यालय, खुलाना ही मुनासिब है।।
ढाई हजार सम्वतसर के, पहले जो जमाना था।
उसी का रूप सब जग को, दिखाना ही मुनासिब है।।
अहिसा धर्म की जग मे, पुन पहचान हो जावे।
"लाल" कलियुग मे सतयुग ही, दिखा देना मुनासिब है।।

भजन (19)

वीतराग देव भजो, नित्य चित्त लाई।
और देव मॉहि नहिं पूज्य भाव भाई।। टेक।।
राग द्वेष का लेश सुमरत ही दूर क्लेश।
छियालिस गुण युत जिनेश, परम सौख्य दाई।। वीतराग ।।
घाति चतुष्कर्म नाश, विश्व तत्त्व का प्रकाश।
भव्यन की पूर्ण आश निजानन्द पाई।। वीतराग ।।
रोष और कर्म टाल, तज के ससार जाल।
मुक्ति कामिनी विशाल, माहि प्रीति छाई।। वीतराग ।।
शोभित वसु गुण विशाल, सम्यक्त्वादिक रसाल।
रहेगे अनन्त काल, स्वात्म सुख सुहाई।। वीतराग ।।
ऐसे प्रभु को त्रिकाल, भक्ति भाव युक्त "लाल"।
नावत चरणों मे भाल, भरमता नशाई।। वीतराग ।।

भजन (20)

पकडो ये बाह मेरी, मझधार बह रहा हूँ।
महिमा अपार तेरी, दुख ज्वाल जल रहा हूँ।।
आसक्त हो विषय मे, मत मान सुख हृदय मे।
कर्मों के हो स्व वश मे, दुष्फल मैं पा रहा हूँ।। पकड़ो ।।
मिथ्यात्व की अधेरी छाई निशा घनेरी।
अज्ञान अन्ध होकर, सत्पथ भुला रहा हूँ।। पकड़ो ।।
जो वीतराग देवा, कीनी न उनकी सेवा।
समकित से हीन होकर, कुगति मे जा रहा हूँ।। पकड़ो ।।
दु ख कूप से निकालो, विज्ञान द [illegible] लो।
पा मोह का नशा मैं, दुख खूब स [illegible] हूँ।। पकड़ो ।।
दुष्ट कर्म शत्रु भारी, दी आत्म [illegible] जारी।
आत्मानुभव को खोकर, नि शक्ति बन रहा हूँ।। पकड़ो ।।
प्रभु "लाल" को ही शरण प्राप्त तुम्हारी।
स्वातम का लाभ होवे, नित चाह कर रहा हूँ।। पकड़ो ।।

भजन (21)

आज गिरिराज द्रोणगिरि के, दर्शन हेतु जावेगे।
मुक्तिपद प्राप्त मुनियो के, चरण कमलो को ध्यावेगे।।
वहॉ दो पुण्य सरिताये, विमल जल को बहातीं हैं।
उन्हीं के स्वच्छ जल मे हम, वहा जाकर नहावेगे।। आज. ।।
मुख्य गुरुदत्त मुनिवर को, वहॉ उपसर्ग आया था।
शिव कथन कोटि मुनिवर का, यही सबको सुनावेगे।। आज ।।
सहा उपसर्ग धीरज से, सुकेवल बोध पाया था।
वही सत्यार्थ दिग्दर्शन, वहॉ जाकर करावेगे।। आज ।।
भव्य छब्बीस जिन मन्दिर, गगन के खण्ड छूते हैं।
वहॉ की प्राकृतिक सुषमा, को अपने चित लावेगे।। आज ।।
दृश्य सम्मेदगिरि जैसा, मनोहारी दिखाता है।
धरेगे भावना दिल मे, उस सत्पथ को पावेगे।। आज ।।
जिनायतनो मे भव्याकृति, श्री जिन बिम्ब जो राजे।
भक्ति से नम्र होकर के, उन्हे नित शीश नावेगे।। आज ।।

करे गुणगान हम उनका, हृदय की स्वच्छता करके।
मोद मय भक्ति भावो से, उन्हीं का रूप पावेगे।।आज ।।
करे सद्भाव यतियो का, लक्ष्य विधि नाश का रखके।
कुटिलता छोड़कर हम, भावनाये भव्य भावेगे।।आज ।।
सुकृत इस भाति करते, "लाल" तेरा काल बीतेगा।
समय पाकर कभी हम भी, वही सन्मुक्ति पावेगे।।आज ।।

भजन (22)

इतना तो नाथ कीजे, जब जाऊँ देह तजकर।
हो भावना हमारी, अति शान्ति रूप रुचिकर।।
नहि हो विरोध मेरा, ससार मे किसी से।
सबसे क्षमा कराऊँ, मैं भी क्षमू सभी पर।।इतना ।।
जो हो हितोपदेशी, सर्वज्ञ वीतरागी।
गुरुदेव हो हमारा तारण तरण सुखाकर।।इतना ।।
सब प्राणियो के ऊपर, होवे दया हमारी।
संसार मे भरे हैं, सर्वत्र जो चराचर।।इतना ।।
तन धन कुटुम्ब वामा, सुत तात मात धामा।
इनसे ममत्व छूटे, सुख शान्तिमय जिनेश्वर।।इतना ।।
अति शान्ति रूप मूरति, हो सामने तुम्हारी।
दिल भरके देख लू मैं, उसमे निमग्न होकर।।इतना.।।
नहिं क्रोध लोभ माया, मोहादि मे रहे उर।
जाग्रत रहे हमेशा, शुभ भावनाये अन्तर।।इतना.।।
होवे समाधि मेरी, बेहोश मै न होऊँ।
निज भाव शुद्ध रक्खूं, अति सावधान रहकर।।इतना ।।
अरि मित्र धाम मरघट, ये काच और कचन।
सम भाव मन मे रक्खूं, यह राग द्वेष तजकर।।इतना ।।
होवे समीप मेरे, यतिगण सुबोध दाता।
विचलित न ध्यान होवे, निज आत्म बोध पाकर।।इतना ।।
चाहूं न मैं किसी की, संसार मे बुराई।
सत्वेषु मित्रता का, यह पुण्य पाठ पढकर।।इतना.।।
हिंसा असत्य चोरी, अब्रह्म व परिग्रह।
होऊँ महाव्रती मैं, ये पांच पाप तजकर।।इतना ।।

हो स्मरण हमारे, यह मूल मन्त्र हरदम।
ॐ ॐ उच्चारते ही, जाऊँ मै प्राण तजकर।। इतना।।
उपरोक्त भावनाये, जब हो सफल हमारी।
अन्यत्र "लाल" जाऊँ, तब पूर्व देह तजकर।। इतना।।

भजन (23)

झण्डा ऊँचा रहे हमारा, विजयी प्राण दुलारा . प्यारा।
वीर, मुहम्मद, बुध ईसाई, हरि हर ब्रह्मा आदि सुहाई।
सबने इनकी महिमा गाई, जग मे इसका किया प्रचारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।

कुन्दकुन्द आचार्य हमारे, श्री समन्तभद्रादिक सारे।
हुए सभी इसके रखवारे, मिथ्या कानन तीक्ष्ण कुठारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।

जब जब अत्याचार हुए हैं, अकलकादि प्रगट हुए है।
उनसे बौद्ध परास्त हुए हैं, घट देवी को फटकारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।

श्री अकलक सदृश गुण धारे, धर्म हेतु निज प्राण बिसारे।
अग्रज तज कर स्वर्ग सिधारे, भू मण्डल पर यश विस्तारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।

हम भी अब अकलक बनेगे, धर्म हेतु निज प्राण तजेगे।
इस झण्डे को खूब सजेगे, केशरिया रग रजित सारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।

इसको नित प्रति मस्तक नावे, महिमा इसकी मुख से गावे।
इसकी उन्नति मे ललचाये, स्वस्तिक चिन्ह मनोहर प्यारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।

सत्य अहिंसा पाठ पढाया, हमे अहिंसा मग दर्शाया।
विश्वप्रेम इसने सिखलाया, अनुपमशक्ति सुधारक धारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।

लाल बाल मिल निश दिन, इसकी पूर्व दशा बतलाओ।
उस पर इसको फिर पहुचाओ, होवे विश्व गले का हारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।

भजन (24)

आखो मे बस रहे हो, दिल मे समा रहे हो।

भगवान् अपना जलवा, सबको दिखा रहे हो।

सुखकारी छबि प्यारी, दिल मे बसी तुम्हारी।

दर्शन मुझे दिखादो, देरी लगा रहे हो।।भगवान् ।।

अजन को तुमने तारा, श्रीपाल को उबारा।

है आसरा तुम्हारा, तुम क्यो भुला रहे हो।।भगवान् ...।।

तारण तरण तुम्हीं हो, भव दुःख हरण तुम्हीं हो।

कुछ तो तरस करो तुम, मुझ को भुला रहे हो।।भगवान् .।।

शिव मार्ग को बता दो, आवागमन मिटा दो।

इस प्रेम को क्यो बेहद, इतना भुला रहे हो।।भगवान् .।।

□□□

गारी संग्रह

मंगलाचरण

मैं चतुर्विंशति तीर्थंकर, जिनराज की वन्दन करूँ।
सब कर्म मल को धोयकर, संसार सागर से तरूँ।।
ससार मे इन सम न दूजा, और देव महान् है।
कल्याणकारी सुगुणधारी, सर्वसिद्धि प्रधान है।।

□□□

प्रेरणा

अरी बहिनो तजो निद्रा, सुभग सन्देश यह सुन लो।
गीत फूहड़ न गाने की, प्रतिज्ञा आज ही कर लो।।
बुरे गीतों को मत गाओ, कि जिससे दिल बिगडता है।
तुम्हारी सन्तति पर भी असर, खोटा ही पडता है।।1।।
अविद्या से तुम्हारी आज, अवनति हो रही भारी।
नहीं वह आप मे शिक्षा, कि जो है स्वात्म हितकारी।।
आज बहुभाग महिलाये, श्री जिन दर्श नहिं जाने।
तो फिर स्वाध्याय पूजन की, कहो अब बात क्या कहने।।2।।
अरी प्राचीन महिलाये, बडी विदुषी हुई जग मे।
जिन्होने स्वात्म बल से थीं, हनीं आपत्तियॉ क्षण मे।।
उन्हीं वीरागनाओ की, तुम्हीं सन्तान कहलातीं।
किन्तु शिक्षा रहित होकर, जगत् मे ठोकरे खातीं।।3।।
अत अब शीघ्र ही शिक्षा, सखी का साथ कर लीजे।
और कृत्रिम सखी जो है, सभी से नेह तज दीजे।।
बिना शिक्षा के नर जीवन, पशु के तुल्य बतलाया।
जिन्होने प्राप्त की शिक्षा, उन्होने सौख्य बहु पाया।।4।।
तुम्हारे गर्भ मे पैदा हुए, नर रत्न पदधारी।
तीर्थकर चक्रवर्ती आदि, नारायण सु अवतारी।।
किन्तु अब आपके वैसी, नहीं सन्तान होती है।
"लाल" उत्पत्ति कारण के सदृश ही कार्य होता है।।5।।

गारी (1)

श्री जिन की छबि प्यारी, निरखो नर नारी।। टेक।।
रागद्वेष का लेश नहीं है, समता रस की क्यारी। (निरखो)
क्रोध कषायादिक नहि कोई, क्षमा सखीसो यारी। (निरखो)
उस छबि का नित ध्यान किये ते, हो जाते भव पारी। (निरखो)
जिन जीवों ने ध्यान किया है, पहुंचे मुक्ति मँझारी। (निरखो.)
तीन रतन की माला पहिने, दर्श बोध व्रत धारी। (निरखो.)
निज स्वरूप मे लीन रहे नित, पर परिणति दुखकारी। (निरखो)
मुक्तिरमा से आलिंगन की, लागी लगन अपारी। (निरखो)
यह नर भव फिर मिलन कठिन है, ज्यो चिन्तामणि भारी। (निरखो)
इससे नर भव पाकर बहिनो, करलो आत्म सुधारी। (निरखो)
"लाल" भाल निज छबि के आगे, नावत सौ–सौ बारी। (निरखो)

□□□

गारी (2)

करती शोक अपारी, उग्रसेन कुमारी।। टेक।।
तुमरे भैया कृष्ण कुँवर हैं, नारायण पदधारी। (उग्रसेन)
उनने छल से ब्याह रचायो, लोभ राज्य का भारी। (उग्रसेन)
मरण हेतु वन पशु घिराये, जूनागढ मे भारी। (उग्रसेन)
यह लख प्रभु ने मुनि व्रत धारा, त्यागी सम्पत्ति सारी। (उग्रसेन)
छोड़े छप्पन कोट कुटुम्बी, छोड़ी राजुल नारी। (उग्रसेन)
भव शरीर से हुए विरागी, जोग लिया गिरनारी। (उग्रसेन.)
तव वियोग से शोक करे अति, शिवदेवी महतारी। (उग्रसेन)
राजदुलारी राजुल नारी, विलपत करुणा धारी। (उग्रसेन)
द्विविध सग तज भये दिगम्बर, पच महाव्रत धारी। (उग्रसेन)
"लाल" प्रभु ने अब तो जग से, तज दी ममता सारी। (उग्रसेन)

गारी (3)

हम जानी कै तुम जानी।। टेक।।
निज परिणति को भूले चेतन, पर परिणति मे रुचि ठानी। (हम)
विषय महा विष सेये निश दिन, करी प्रीति बहु मनमानी।। (हम)

सेवत काल लगे ये नीके, अन्त समय मे दुखदानी। (हम)
रागद्वेष तज कबहुं न नीके, आत्म नदी मे स्नानी। (हम)
रात दिना गप्पो मे खोया, शास्त्र सुने नहिं दे कानी। (हम)
मोह महामद पीकर प्यारे, अपनी सम्पत्ति विसरानी। (हम)
भ्रमण किया जग मे बेमतलब, श्रीजिन वचन न श्रद्धानी। (हम)
वीतराग प्रभु को नहिं चीना, नहिं पहिचानी जिनवाणी। (हम)
खोटे देव भजे निश वासर, सत्गुरु शिक्षा नहिं मानी। (हम)
सत्सगति नहिं कीनी कबहु, रहे सदा ही अभिमानी। (हम)
जाप जपी नहिं व्रत हू पाले, नहिं तप कीने धर ध्यानी। (हम)
इस कारण ही चहुगति के दुख, भुगते होकर हैरानी। (हम)
इस नर भव को पाकर अब तो, "लाल" करो निज कल्याणी। (हम)

गारी (4)

कैसी कुमति विचारी, री बहिनो प्यारी।। टेक।।
सास ससुर मे झगड़ा करतीं, देतीं दु ख अपारी। (री बहिनो,)
ननद जिठानी अर देवरानी, जे सब तुमसे हारीं। (री बहिनो,)
गहनो के खातिर निज पति को, देतीं निशदिन गारी। (री बहिनो,)
चाहे घर गिरवी रख आओ, लाओ गहना भारी। (री बहिनो,)
गहना हमको आज गढादो, नातर होय बिगारी। (री बहिनो,)
जब से मैं ई घर मे आई, किलकिल निशदिन जारी। (री बहिनो,)
ई घर से तो मौत भली है, देवै राम हमारी। (री बहिनो,)
देखो कितनो गहनो पैरे, जिजी फतेपुर बारी। (री बहिनो,)
मौको तो एकौ नग नैया, कैसे धीरज धारी। (री बहिनो,)
गहने बिन रिश्तेदारी मे, कैसे जाऊँ बतारी। (री बहिनो,)
अरी जिजी मैं इनके गुण को, कालो कहौ सुधारी। (री बहिनो,)
गहने की सुन बात हमारी, करते सोच विचारी। (री बहिनो,)
सौ वक्ते इनको समझा दव, हो जईये झट न्यारी। (री बहिनो,)
ऐसे वचन न बोलो बहिना, परभव मे दुखकारी। (री बहिनो,)
देखा देखी करो न प्यारी, मिलो कर्म अनुसारी। (री बहिनो,)
भाग्य उदय से जो मिल जावे, उससे होऊ सुखारी। (री बहिनो,)
सास ससुर निज पति के मन को, करो न कभी दुखारी। (री बहिनो,)
शील रत्न का गहना पहिनो, जिससे हो भवतारी। (री बहिनो,)
गुरुजन की आज्ञा का पालन, करिये दुख अपहारी। (री बहिनो,)

घर के काम करो चित देकर, देखो जीव निहारी। (री बहिनो,)
यही धर्म है स्त्रीजन का, देखो शास्त्र मॅझारी। (री बहिनो,)
शीलवती नारी के आगे, देवन ने शिरधारी। (री बहिनो,)
जग मे "लाल" शील गहने को, पहिनो बारबारी। (री बहिनो,)

गारी (5)

तुम सुनो हमारे चेतन भैया, अपनी सुध विसरैया।। टेक।।
मोह महामद पीकर जग मे, निजको वृथा भ्रमैया। (तुम)
स्त्री, पुत्र, कुटुम्बीजन सब, स्वारथ गीत गवैया। (तुम)
तन धन धामा नहि सग जाना, तिनसो मोह करैया।। (तुम)
कुगुरु कुदेव कुशास्त्र भजे नित, जो ससार डुबैया। (तुम)
चतुर्गति के बहु दुख भुगते, बहु पर्याय धरैया। (तुम)
जग मे चक्कर खूब लगाया, जैसे रथ को पैया। (तुम)
पर उपकार करो नहि कबहू, अपनऊ पेट भरैया। (तुम)
स्वात्म प्रशसा पर निदा कर, खोटे कर्म बधैया। (तुम)
देख देख पर की सम्पत्ति को, मन मे बडे जलैया। (तुम)
ब्याह काज मे बहु धन खरचो, धन का धुआ उडैया। (तुम)
भूखो को नहिं भोजन दीना, पूजा रथ चलवैया। (तुम)
मान बढाई को धन खरचो, कछू न हाथ लगैया। (तुम)
गाढ नींद मे सोये अब तक, भव दुख माहि रुलैया। (तुम)
अब सोने का समय नहीं है, देखो ज्ञान तरैया। (तुम)
पहिले की सब छोड कुटेके, समता नीर पिवैया। (तुम)
नर भव पाकर जिन वृषधारी, जो भव पार लगैया। (तुम)
जैनागम का मनन करो नित, आत्म तत्त्व दरशैया। (तुम)
"लाल" जगत मे निज हितकारी, जिनमत सौ कोउ नैया। (तुम)

गारी (6)

भवि जीवन को सुखदाई हो लला।
शिवदेवी लला।। टेक।।
राजा समुद्रविजय हर्षाई हो लला। (शिवदेवी)
तुम द्वारका नाथ कहाई हो लला। (शिवदेवी)
शिवदेवी गोद खिलाई हो लला। (शिवदेवी)
तुम सुमरे पाप नशाई हो लला। (शिवदेवी)
तुम ब्याह तजो दुखदाई हो लला। (शिवदेवी)

पशु जीवन बध छुड़ाई हो लला। (शिवदेवी)
गिरनारी पै जोग लगाई हो लला। (शिवदेवी)
तप करके केवल पाई हो लला। (शिवदेवी)
जग जीवन पार लगाई हो लला। (शिवदेवी)
शत इन्द्रन पूज रचाई हो लला। (शिवदेवी)
गणधर ने तुम गुण गाई हो लला। (शिवदेवी)
तुम गुण महिमा अधिकाई हो लला। (शिवदेवी)
तुम सुमरे नर तिरजाई हो लला। (शिवदेवी)
शिव की तुम राह बताई हो लला। (शिवदेवी)
भव जीवन मे मन लाई हो लला। (शिवदेवी)
उनने भी शिवपद पाई हो लला। (शिवदेवी)
तुम बिन नहि और सहाई हो लला। (शिवदेवी)
तुम उत्तम देव सुहाई हो लला। (शिवदेवी)
"लाल" नमे शिरनाई हो लला। (शिवदेवी)

गारी (7)

हॉ हॉ वे हूँ हूँ वे ।। टेक ।।
जैन धरम नहिं तुमने धारो, विषयो मे रति मानी वे। (हॉ)
सात व्यसन आठो मद सेये, कुमति सो रुचि ठानी वे। (हॉ)
मिथ्या मारग मे रत होकर, सुध बुध सभी भुलानी वे। (हॉ)
दो अर बीस अभक्ष्य भखे नित, दया न चित मे आनी वे। (हॉ)
हिंसादिक पन पाप कुड मे, किये नित्य स्नानी वे। (हॉ)
सुकृत कमाई कछू न कीनी, नीति सुनीति न जानी वे। (हॉ)
जिन दर्शन मे चित नहि दीना, सुने न शास्त्र पुराणी वे। (हॉ)
कर अन्याय बहुत धन जोरा, लखी न पर की हानी वे। (हॉ)
दिन अरु रात गिनो नहि कोई, कीने भोजन पानी वे। (हॉ)
इस कारण ही चतुर्गति मे, सहे क्लेश दुखदानी वे। (हॉ ..)
नर भव पाकर अब तो करलो, निज आतम कल्याण वे। (हॉ)
नातर "लाल" जगत मे फिर भी, होगे बहु हैरानी वे। (हॉ)

गारी (8)

ध्यान धरे मुनिवर ज्ञानी, श्री जिनवाणी श्रद्धानी।। टेक।।
त्रस थावर की रक्षा करते, नहि बोलें झूठी वाणी। (श्री जिनवाणी ..)
चोरी ओर कुशील परिग्रह, तजे पाप ये दुखदानी। (श्री जिनवाणी .)
इस विध सो ये पच महाव्रत, पालन करते धर ध्यानी। (श्री जिनवाणी .)
ईर्या पथ सो गमन करे नित, हित मित वचन कहे ज्ञानी। (श्री जिनवाणी)
खड़े खडे निज पाणि पात्र मे, शुद्ध लेत भोजन पानी। (श्री जिनवाणी)
देखभाल कर धरे उठावे, पिछि कमडल जिनवाणी। (श्री जिनवाणी)
जीव रहित प्रासुक धरणी पर, मल मूत्रादिक छुटकानी। (श्री जिनवाणी.)
पच समिति यह निश दिन पालें, सावधानता मन आनी। (श्री जिनवाणी)
मन वच काया वश मे करते, तीन गुप्ति लई पहिचानी। (श्री जिनवाणी. ..)
बाईस परीषह सहन करे नित, बारह तपसो रुचि ठानी। (श्री जिनवाणी .)
दश विधि धर्म सदा ही पाले, करे कर्म की नित हानी। (श्री जिनवाणी)
पावस काल तरू तल ठाड़े, सहे क्लेश नहि दुखभाणी। (श्री जिनवाणी.)
शीतकाल नदियो के तट पर, भये योग मे मस्तानी। (श्री जिनवाणी . .)
ग्रीष्म समय पर्वत के ऊपर, ध्यान धरे शिव सुखदानी। (श्री जिनवाणी. .)
सब जीवो पर समता धारे, क्रोध तजे तज अभिमानी। (श्री जिनवाणी .)
ऐसे मुनियो के चरणो मे, "लाल" करे निज हित जानी। (श्री जिनवाणी,)

गारी (9)

दृग खोलो नजर से निहार लो, उमरिया बीत गई।। टेक।।
तुमने अपनी सुधि विसराई, नीली निज सम्पत्ति छिनाई।
दीनी ये नर देह गमाई, कीनी कुछ नहि स्वपर भलाई।।
यह तो मिले न फिरकी बार हो, उमरिया.. ।।
पांचो इन्द्रिय विषय सुहाई, ताते जग मे हुई रुलाई।
नाना विध पर्याय धराई, श्री जिनधर्म न नेक सुहाई।।
भोगे नरको के दुख अपार हो, उमरिया .।।
कीने जनम मरण बहुभारी, जिससे भोगा दुख अपारी।
नर भव पाया अबकी बारी, इससे करलो आत्म सुधारी।।
मिल है अवसर न बारबार हो, उमरिया .।।
मिथ्याग्रह ने खूब सताया, उसने भारी नाच नचाया।
अब तो फिरकें अवसर आया, करलो "लाल" सफल निज काया।।
जिन धर्म करे भव पार हो, उमरिया . .. .. ।।

गारी (१०)

बिन देखे परै न चैन हो, मरुदेवी के लला।। टेक।।
जग मे नगर अयोध्या भारी, लेवें तीर्थंकर अवतारी,
वह तो जग मे तीर्थ अपारी, वन्दत पाप होय सब क्षारी।।
वे तो जन्में वहा सुख देन हो, मरुदेवी के लला०।।
राजा नाभिराय गुणधारी, माता मरुदेवी छबि प्यारी।
उनको तुमने सुख विस्तारो, तुमरो जन्म त्रिजग हितकारी।।
देखे होवे न तृप्त दोऊ नैन हो, मरुदेवी के लला०।।
भोगी राज सम्पदा भारी, पूरब तेईस लाख लो सारी।
सब ही प्रजा रही सुखकारी, पद्धति कर्म भूमि की न्यारी।।
बतलाई तुम्हीं ने ऐन हो, मरुदेवी के लला०।।
लख कर जग का जाल असारा, त्यागा तब तुमने संसारा।
धर कर मुनिव्रत अपरम्पारा, केवल लहि जग जीव उधारा।।
सुखदाई तुम्हारे बैन हो, मरुदेवी के लला०।।
तुम तो त्रिभुवन नाथ कहाई, भवि जीवन को शिव सुखदाई।
मोको जग से लेहु कढ़ाई, करता अर्ज "लाल" शिरनाई।।
दर्शन से कटे दिन रैन हो, मरुदेवी के लला०।।

गारी (११)

कब मोपै नजर भर हेर हो, श्री शिवदेवी लला।। टेक।।
तुम तो समुद्र विजय के प्यारे माता शिवदेवी के बारे।
भैया कृष्ण आपसो हारे, तुम तो हुए अतुल बल धारे।।
नहिं हिलवै तुम्हारो तनमेर हो।। श्री शिवदेवी लला०।।
मति श्रुत अवधिज्ञान के धारी, अतिशय चौंतीसो सुखकारी।
गुण छ्यालीसो सोहैं भारी, उनकी महिमा अपरम्पारी।।
वरणत मे लगे बहु देर हो।। श्री शिवदेवी लला०।।
तुमसे वन के जे पशु धारी, सब मिल कीनी बहुत पुकारी।
कारण समझा करुणाधारी, उनकी रक्षा कीनी भारी।।
दीना ब्याह से झट मुख मोर हो।। श्री शिवदेवी लला०।।
तुमरी इन्द्र करे सेवकाई, लखकर अपनी बडी भलाई।
जो जन तुमरे नित गुण गाई, उसके "लाल" करम नश जाई।।
वह न आवे जगत् मे फेर हो।। श्री शिवदेवी लला०।।

गारी (12)

भजलो भजलो प्रभु का नाम हो, नर भव फिर न मिले।। टेक।।
बहु दिन रहे निगोद मॅझारी, जनमत मरत अठारह बारी।
कीने एक श्वास मे भारी, जिससे भोगा दु:ख अपारी।।
वहां पाया न कुछ विश्राम हो।। नर भव फिर न मिले०।।
निकसे जब निगोद से भाई, स्थावर में भई रुलाई।
जल भू पवन दहन द्रुम ताई, भोग लेश महा दुखदाई।।
भये निशदिन दुखी परिणाम हो।। नर भव फिर न मिले०।।
त्रस पर्याय बड़ी कठिनाई, जैसे चिंतामणि मिल जाई।
लट चिटी अलि विकल बताई, इन्हीं मे बहु काल गवाई।।
नहि इतहो मिला आराम हो।। नर भव फिर न मिले०।।
मन बिन पचेन्द्रिय पशु धारी, सैनी सिह क्रूर अवतारी।
छेदन भेदन आतपकारी, बन्धन क्षुधा तृषा भी न्यारी।।
भोगे पशुगति मे दुख आठो जाम हो।। नर भव फिर न मिले।।
त्यागी अशुभ भाव से काया, जाकर नरको मे दुख पाया।
ताडन तापन शील चढाया, तामा शीशा ओट पिलाया।।
भयों आपस मे तिल तिल चाम हो।। नर भव फिर न मिले०।।
नर पर्याय पुण्य से पाई, जन्मादिक के दु:ख सहाई।
बालकपन बिन ज्ञान गमाई, यौवन मे तरुणी रति छाई।।
वृद्धापन मे न होवे बहु काम हो।। नर भव फिर न मिले०।।
जब कुछ तुमने तप व्रत कीना, तज नर देह देव पद खीना।
सम्यग्दर्शन से हो हीना, अपना रूप वहां नहिं चीना।।
बिलखे औरो का देख धन धाम हो।। नर भव फिर न मिले०।।
इस विधि चतुर्गति के मांहीं, नाना विध पर्याय धराहीं।
सम्यग्दर्शन बिन दु:ख पाइहीं, दर्शन "लाल" धरो मन माहीं।।
सम्यक् से मिले मुक्ति धाम हो।। नर भव फिर न मिले०।।

गारी (13)

तनिक उठ देखो भैया, अपना कोऊ न जग में।। टेक।।
जग की सारी झूठी माया, वृथा प्रीति तन धन में। (तनिक०)
स्वारथ के सब सगे कुटुम्बी, कोऊ न जाते संग मे। (तनिक०)
चक्रवर्ती षट्खण्डी राजा, चक्र सुदर्शन घर में। (तनिक०)
अन्त समय सब छोड़ चले गये, भये काल के वश मे। (तनिक०)

तीन खण्ड का राजा रावण, भये हेम लका मे। (तनिक०)
पुण्य क्षीण से लक्ष्मणजी ने, हरे प्राण क्षणभर मे। (तनिक०)
रामचन्द्रजी कर्मोदय से, भ्रमे बहुत वन वन मे। (तनिक०)
क्षण क्षण मे यह आयु घटत है, जैसे जल अजुल मे। (तनिक०)
भोग विलास अथिर है सबही, बिजुली सदृश गगन मे। (तनिक०)
नरतन के खातिर सुरपति से तरस रहे सुरगन मे। (तनिक०)
इससे जिन वृष धारण करलो, जैहे सग परभव मे। (तनिक०)
छोड़ हाल जग जाल "लाल", सब धर्म धरो निज मन मे। (तनिक०)

गारी (14)

राजमती के प्यारे जू, त्रिभुवन नाथ हमारे जू।। टेक।।
लीना सुर पद से अवतारी, तुम प्रभु जग जीवन हितकारी।
सुर नर जय जय शब्द उचारी, हर्षित हुई द्वारका सारी।।
यदुकुल के उजियारे जू।। त्रिभुवन नाथ हमारे जू०।।
सुरपति जन्मोत्सव करवाये, क्षीरोदधि से कलश भराये।
सुरगण हाथहि हाथ जु ल्याये, कर अभिषेक महा सुख पाये।।
शिवदेवी के तारे जू।। त्रिभुवन नाथ हमारे जू०।।
तुमने वन के पशु छुड़वाये, तज कर ब्याह न भव सुख भाये।
तप कर केवल ज्योति जगाये, भव जीवन को पार लगाये।।
दर्श बोध व्रत धारे जू।। त्रिभुवन नाथ हमारे जू०।।
तुमने कर्म शत्रु सब मारे, हो गये मुक्तिरमा के प्यारे।
सम्यक्त्वादिक बसु गुण धारे, तुमको "लाल" नमे चित धारे।
हो गये जग से न्यारे जू।। त्रिभुवन नाथ हमारे जू०।।

(नोट – पण्डितजी द्वारा लिखित "जैन गारी" का प्रकाशन दो भागों मे हुआ था तथा इन गारियों की सख्या 50–60 थी, किन्तु असावधानीवश दोंनो भाग अभी मिल नहीं पा रहे हैं, जिससे इतनी ही गारियाँ यहाँ दी गयीं हैं।)

□□□

सुमन संचय

वर्णमाला अड़तालीसी

(मगलाचरण)

वीतराग सर्वज्ञ अर हित उपदेशी होय।
चाहे जिन हर विष्णु हो, जोड़ूँ निजकर दोय।।1।।

अ— अरि से सजग रहो सदा, करे समय पर वार।
दगली का लम्पा तनिक, करे रात दिन ख्वार।।2।।

आ— आये मानुष कुल विषे, करने को शुभ काम।
पर हित के कारण तजो, अपना सब धन धाम।।3।।

इ— इस असार संसार मे, दो बाते हैं सार।
इक विवेक का पावना, दूजा पर उपकार।।4।।

ई— ईश्वर के शुभ भजन बिन, नर जीवन निस्सार।
जैसे विधवा नारि का निष्फल है श्रृंगार।।5।।

उ— उनकी संगति छोड़िये, ज्वारी चुगल गमार।
वे खल अपने साथ ही, सबका करे बिगार।।6।।

ऊ— ऊसर पृथिवी में गया, बीज विफल ही जाय।
त्यों दुर्जन उपदेश सुन, देते शीघ्र गमाय।।7।।

ए— एक समय भी नहिं तजे, धरम करम की बात।
नहि जाने यमराज की, कब आ जावे घात।।8।।

ऐ— ऐसी संगति कीजिये, दुर्गुण रहे न कोय।
पारस के संयोग ते, लोहा कंचन होय।।9।।

ओ— ओर नहीं है शास्त्र अर, विद्या का जग मांहि।
पर गह लीजे सार ज्यो, हंस क्षीर जल मांहि।।10।।

औ— और नहीं इस जगत में, सुख दुख दाता कोय।
अच्छे बुरे स्वकर्म से, सुख दुख जिय को होय।।11।।

अं— अंतर बाहर रिपु नहीं, क्षमावान् के कोय।
जैसे निर्मल नीर मे, कींच कहाते होय।।12।।

अः— अः यह कैसा जगत् मे, सज्जन जन का ढंग।
पर सुख के कारण करे, अपने सुख को भग।।13।।

क — कर्म उदय से जो मिले, अन्न पान धन मान।
उसमे ही सतोष कर, रहते चतुर सुजान।।14।।
ख — खल की सगति छोड़िये, जो होवे गुणवान्।
विषधर मणि से युक्त भी, हरे सदा ही प्राण।।15।।
ग — गहिये सदा सुरीति को, लोक धर्म अविरुद्ध।
यद्यपि होवे शुद्ध जो, तजिये लोक विरुद्ध।।16।।
घ — घर सम्पत्ति परवार सब, कोई न जाता साथ।
धर्म एक आगे चले, गह लीजे निज हाथ।।17।।
न — नर वे ही जग मे भले, करे अन्य उपकार।
अपना अपना पेट तो, भर लेता ससार।।18।।
च — चलिये सदा विचार कर, सब जग के अनुकूल।
जगत् विरोधी जनन के, मित्र होय प्रतिकूल।।19।।
छ — छल बल कर धन जोरकर, गाड़ धरे भू माहि।
बिन भोगे ही जात हैं, जल का धन जल माहि।।20।।
ज — जैसा जग मे और से, तुम चाहो व्यवहार।
वैसा ही उनसे तुम्हे, करना होगा यार।।21।।
झ — झेल न कीजे तनिक भी, शुभ कामो के काज।
अवसर चूके जात है, राजन का भी राज।।22।।
न — नर जीवन अर श्रेष्ठ कुल, विद्या धन सन्मान।
पाय व्यर्थ ही जो तजे, उन सम जड नहिं आन।।23।।
ट — टरै बिना भोगे नहीं, लिखी करम की रेख।
सिया सहित वन का गमन, रामचन्द्र का देख।।24।।
ठ — ठलुआ नर संसार मे, बुद्धिमान् भी होय।
बुरा लगे सब जगत् को, बात न पूँछे कोय।।25।।
ड — डरिये सदा अधर्म से, करिये धर्म विचार।
दुख सुख के कारण यही, कर लीजे निरधार।।26।।
ढ — ढोर तुल्य वे नर निपट, विद्या शिल्प विहीन।
बिना पूँछ बिन सींग के, क्षमा विनय से हीन।।27।।
न — नरम वचन कहिये सदा, तजिये वचन कठोर।
खर्च कछू होवे नहीं, यश फैले चहु ओर।।28।।

त — तप तपते वे नर सदा, इच्छाये सब रोक।
उनके चरण सरोज को, सदा दीजिये धोक ।।29।।

थ — थोड़ा साधन पायकर, करिये नहिं अभिमान।
इन्द्रादिक के विभव का, हो जाता अवसान ।।30।।

द — दया हृदय में धारिये, दया धर्म का मूल।
दयावान् के शत्रु भी, हो जाते अनुकूल ।।31।।

ध — धर्म घातकर मोह से, भोगे भोग निशक।
तरुवर जड़ से काटकर, फल चाहे वे रंक ।।32।।

न — नयनवाल वह नर सदा, जो न होंय विषयान्ध।
यद्यपि होवे कर्म वश, चर्म चक्षु से अन्ध ।।33।।

प — परम पदारथ जगत् मे, देव शास्त्र गुरु तीन।
गहिये सदा विवेक से, राग द्वेष से हीन ।।34।।

फ — फिरिये सकल जहान मे, मिले भाग्य अनुकूल।
कोट यत्न कर भी नहीं, मिले गगन का फूल ।।35।।

ब — बहुत द्रव्य किस काम की, जो नहिं आवे काम।
तृषित जनन को सिन्धु जल, नहीं करे आराम ।।36।।

भ — भक्ति सहित निज दीजिये, दान चार परकार।
विद्या औषधि अभय अर यथायोग्य आहार ।।37।।

म — मान न जग मे कीजिये, मान दुःख की खान।
रावण के अभिमान से, रण मे खो दय प्राण ।।38।।

य — योद्धा गण सग्राम मे, आते रिपु को जीत।
हार जाय तो प्राण तज, यह सुभटो की रीति ।।39।।

र — रहिये जैसे देश मे, करिये वैसा भेष।
रहन सहन भूषण वसन, सब व्यवहार विशेष ।।40।।

ल — लक्ष्मी की गति तीन है, दान भोग अर नाश।
दान भोग जो नहि करे, होवे शीघ्र विनाश ।।41।।

व — वहां न बसिये भूलकर, जहां न धन सन्मान।
इस जग मे धनमान को, रक्षा करत सुजान ।।42।।

श — शील सहित गुरुकुल विषै, बीस वर्ष पर्यन्त।
करके विद्याभ्यास पुन गृहवासी हो संत ।।43।।

ष — षट्खण्डी का भी विभव, जब हो जाता नाश।
और अपुण्यी नरन की, कैसे करिये आश।।44।।

स — सार जगत् मे है यही, नर जीवन का मूल।
करिये पर उपकार नित, मेट स्वार्थ की धूल।।45।।

ह — हर्ष न कीजे जगत मे, निर्धन जन को देश।
जगदानन्दी सूर्य का उदय अस्त युत पेख।।46।।

क्ष — क्षण भर भी तजिये नहीं, सत्य धरम की टेक।
प्राण जाये पर धर्म की रक्षा करते नेक।।47।।

त्र — त्रस्त अन्न अरु पान से, जो होवे जग जीव।
उनकी भोजन पान से, रक्षा करो सदीव।।48।।

ज्ञ — ज्ञानवान् अति चतुर नर, यदपि न हो धनवान्।
जहाँ जाय पर वहाँ ही, पावे बहु सन्मान।।49।।

अड़तालीसी "लाल" यह रची बाल हित जान।
भूल शोध अल्पज्ञ पर, क्षमा करो मतिमान्।।50।।

शिक्षाप्रद दोहे

नहीं भरोसे और के छोडे अपने काम।
अपने मरने बिन कभी, नहीं मिले सुरधाम।।1।।

अच्छे कामो के किये, शुभ होता परिणाम।
खरी मजूरी के दिये, चोखा होता काम।।2।।

एक एक जल बिन्दु से, घट पूरा भर जात।
क्रम क्रम के अभ्यास से, शठ पण्डित बन जात।।3।।

जिसे अदालत मे नहीं, जाना हो गम खाय।
नहीं देखना वैद्य को, होवे तो कम खाय।।4।।

क्षण कण से सचय करो, विद्या धन जग मांहि।
क्षण त्यागे विद्या कहा, कण त्यागे धनं नाहि।।5।।

सज्जन से भी भय करे, दुष्टो से हैरान।
पय से जल कर छाछ को, करे फूक के पान।।6।।

भले बुरे नर की प्रकृति, केवल परखी जात।
हंडी मे का एक ही, चावल देखा जात।।7।।

सत्संगति से भी नहीं, शठ की शठता जाय।
विषधर पय के पान से नहिं निर्विष हो जाय।।8।।
वीणा पुस्तक वचन नर, हय नारी हथियार।
योग्य पुरुष को प्राप्त कर, हो जाते हुशियार।।9।।
धन उर निज जीतव्य को, पर हित तजे सुजान।
पर हित तजना श्रेष्ठ है, नाश नियत परमान।।10।।
दान भोग से रहित जो, धन से हो धनवान्।
निर्धन भी फिर क्यो नहीं, कहलावे श्रीमान्।।11।।
स्वाभिमान धन से धनी, वही महा धनवान्।
स्वाभिमान बिन जगत मे, धन जीवन दुःखदान।।12।।
देखे से मन को हरे, छुये शक्ति हर लेत।
वीर्य हरे सभोग से, तिया महादुख देत।।13।।
दुख आने के प्रथम ही, करिये शीघ्र उपाय।
जब घर मे आगी लगे, कुआ न खोदा जाय।।14।।
दाद कलह उद्यम जुआ, मद्य तिया आहार।
मैथुन निद्रा युक्त नव, सेवत बढें अपार।।15।।
एक ग्रास से कुछ नहीं, होवे गज की हानि।
सह कुटुम्ब चिटी करे, उससे अपना त्राण।।16।।
पराधीन सम दुख नहीं, सुख नहिं स्ववश समान।
सुख दुख के संक्षेप से, यह लक्षण पहिचान।।17।।
वचन वहाँ ही बोलिये, जहाँ सफल हो जाय।
जैसे निर्मल वस्त्र पर, चोखो रंग चढ जाय।।18।।
अन्धा है व्याकरण बिन, बहिरा कोश विहीन।
लूला बिन साहित्य का, मूक तर्क से हीन।।19।।
सज्जन जन से प्रथम ही, दुर्जन पूजे जात।
मुख धोने के पूर्व ही, गुदा पखारी जात।।20।।
लोभी मानुष द्रव्य को, नहिं देवे नहिं खाय।
इक दमड़ी जावे नहीं, चाहे चमड़ी जाय।।21।।
पर के सुख को घात कर, सुख चाहे जो भूल।
फल चाहे वह आम का, बोकर पेड बबूल।।22।।

करे खराबी एक ही, दुष्ट सभा मे आय।
एक मीन तालाब को, देता शीघ्र मचाय।।23।।
पुण्य उदय जब तक रहे, सब कोई पूछें बात।
चार दिना की चादनी, फिर अधियारी रात।।24।।
गुण्डा लुच्चा चुगल नर, हरै और का वित्त।
टुकड़ा जुरै न पेट खो, पान खाय अलवत्त।।25।।
जब तक रहती एकता ,तब तक रहती बात।
जुग टूटे ते नर्द को, देखो मारी जात।।26।।
मूर्खों मे अल्पज्ञ भी, बनते पण्डितराज।
ज्यो अँधो के बीच मे, सोहे काने राज।।27।।
करे नहीं कछु काम जड़, भाग्ये दोष लगाय।
नाच न आवै आपको, आगन टेढ बताय।।28।।
करिये जो धन पास हो, उससे ही व्यवसाय।
लेना कर देना करे, बिना मौत मर जाय।। 29।।
पानी पियो छानकर, गुरु करिये पहिचान।
छाने पहिचाने बिना, नहीं होत मतिमान्।।30।।
सज्जन निज मन्तव्य को, कहते एकहि बार।
जैसे हाडी काठ की, चढे न दूजी बार।।31।।
घर मे फूट न कीजिये, कठिन भेद पड जाय।
घर भेदी ने हेम की, लंका दई लुटाय।।32।।
रहिये जिसकी शरण मे, रखिये उससे खैर।
जल मे रहकर को करै, कहो मगर से बैर।।33।।
समरथ नर ससार मे, लेवे निबल लुटाय।
लाठी जिसके पास है, भैंस उसी की आय।।34।।
इधर उधर दोनो तरफ, मिलते चुगली खोर।
कहे साहू से जाग रे, चोरी कर तू चोर।।35।।
उछलकूद जो जन करे, वही करे अन्याय।
नगी नाचे जो तिया, वही पूत को खाय।।36।।
पाकर जो अधिकार को, करे न पर उपकार।
तो अकार का लोपकर, करिये द्वित्व ककार।।37।।

जिसका जौन स्वभाव है, किसी तरह नहिं जाय।
कुत्ता को राजा किये, जूता चाटन जाय।।38।।
मुख सरोज के पत्र सम, शीतल बोले बैन।
हृदय कतरनी तुल्य है, धूर्त जानिये ऐन।।39।।
राई सम खल और के, छिद्र लखे दिन रैन।
पर पहाड़ सम आपने, नहीं लखे निज नैन।।40।।
दुखित जनो को देखकर, हसते अधम अधीर।
जिसे बिवांई नहीं फटी, क्या जाने पर पीर।।41।।
हरि ब्रह्मा त्रिपुरारि भी, सुर इन्द्रादिक सोय।
रेखा लिखी ललाट की, मिटा सके नहि कोय।।42।।
कृपण तुल्य दानी नहीं, हुआ न होगा और।
बिन भोगी निज सम्पदा, देय और को जोर।।43।।
धन यौवन जीतव्य सब, बिजली की उनहार।
यह विचार कर चतुर नर, करते स्वात्म विचार।।44।।
आने जाने के समय, द्रव्य करे हैरान।
दुखदायी सम्पत्ति से, मोह तजें मतिमान्।।45।।
जहाँ नहीं आत्मीय जन, भेद वहाँ नहि होय।
नहीं कुल्हाड़ी वेट बिन, काट सके द्रुम कोय।।46।।
कलह कभी नहिं कीजिये, करता कलह बिगार।
दुष्ट कलह से विपुल धन, यश हो जाता क्षार।।47।।
उद्यम बिन नहिं धन कभी, सिर्फ भाग्य से होय।
ताली एकहि हाथ से, नहीं बजावे कोय।।48।।
जिस घर मे हर रोज ही, कलह अकारण होय।
उस घर को मतिमान् नर, तजे शीघ्र दुख जोय।।49।।
गन्ना तिल भू क्षुद्र नर, कान्ता हेम समेत।
चन्दन दधि ताम्बूल ये, मर्दन से गुण देत।।50।।
ऐसे गुरु बहु जगत् मे, हरें शिष्य का वित्त।
पर हैं दुर्लभ सुगुरु जो, हरें शिष्य का चित्त।।51।।
स्वय न खावें वृक्ष फल, नदी न पीवे नीर।
पर हित निज सम्पत्तियां, तज देते नर वीर।।52।।

यह धन यह सुत यह त्रिया, यह शुभ लक्षण काय।
जब ऑखे मिच जायेगी, कुछ भी नहीं दिखाय।।53।।
भोजन भाषण के समय, जिह्वा होत प्रमाण।
बहु भोजन अरु बहु कथन, हरे शीघ्र ही प्राण।।54।।
लोभी नर परधन हरे, लखे न आपद कोय।
बिल्ली निर्भय दूध को, पिये न लाठी जोय।।55।।
धन चाहत हैं अधम नर, मध्यम धन अरु मान।
उत्तम केवल मान ही, मान महा धन जान।।56।।
आयुष धन गृहछिद्र अर, दान, दवा अपमान।
मैथुन तप मन्तव्य नव, गोपै चतुर सुजान।।57।।
मधुर वचन युत दान अर, बिना गर्व का ज्ञान।
क्षमावान् के शूरता, तीनो दुर्लभ जान।।58।।
कहे सामने प्रिय वचन, पीछे करे बिगार।
उन मित्रो को दूर ते तजिये स्वहित विचार।।59।।
नहि हितकारी मित्र के, वचन सुने दे कान।
वे जड बहु आपत्ति मे, फसे शत्रु ढिग आन।।60।।
श्वान पूछ सम व्यर्थ है, विद्या बिन नर काय।
नहिं गुप्तेन्द्रिय ढॅक सके, मक्खी नहीं भगाय।।61।।
भाई विद्या सम नहीं, रिपु नहि व्याधि समान।
अनुकम्पा सम धर्म नहि, मित्र न सुत सम आन।।62।।
धर्म हरै बहु व्याधि का, धर्म हरै गृह दुक्ख।
धर्महि ते रिपु जीतिये, धर्म जहॉ तहॉ सुक्ख।।63।।
पितृ देह धन गेह मे, कुटुम एकता सोय।
जेठे सुत की श्रेष्ठ मति, नहिं घर घर मे होय।।64।।
क्रोधी अभिमानी हठी, अप्रिय बोले बैन।
पर का कहना मानवै, मूर्ख कहावै ऐन।।65।।
हर गज मे मुक्ता नहीं, हर गिरि मे मणि नाहि।
वन वन मे चन्दन नहीं, साधु न सब जग माहि।।66।।
वृद्धापन मे तिय मरण, बन्धु हाथ धन जाय।
पराधीन आहार ये, तीन महादुखदाय।।67।।

प्रात काल पानी पिये, दूध पिये निशि मॉहि।
छाछ पिये आहार कर, उन घर वैद्य न जॉहि।।68।।
दुर्जन पर के दोष को, कहे बिना नहिं राय।
कौवा मीठा खायकर, टट्टी बिन न अघाय।।69।।
बिन सहाय के जगत मे, कार्य सिद्ध नहिं होय।
तुष विहीन तन्दुल नहीं, उगै भूमि में सोय।।70।।
पढने से जडता भगै, तप से पाप नशाय।
कलह न होवे मौन से, जगने से भय जाय।।71।।
पाय तनिक अधिकार खल, फूलो नहीं समाय।
गदहा ज्यो वैशाख मे, मदन मस्त हो जाय।।72।।
लेन देन व्यापार मे, विद्या संचय माहि।
भोजन अर व्यवहार मे, लज्जा सुख तज पांहि।।73।।
विद्वानो का अमित श्रम, पहिचानत बुध लोय।
नहिं जाने बन्ध्या त्रिया, प्रसव वेदना सोय।।74।।
पराधीन जीतव्य से, भला नरक का वास।
वह प्रसून किस काम का, जिसमे नहीं सुवास।।75।।
क्षमावान् का शीघ्र ही, क्रोध शान्त हो जाय।
तृण विहीन भूपर गिरी, अग्नि स्वय बुझ जाय।।76।।
जिसमे जो गुण होत है, होता स्वयं प्रकाश।
कस्तूरी की जानिये, नहीं शपथ से वास।।77।।
पाय विपुल धन जो करे, दुखित जनो की याद।
वह जीते हैं जगत् मे, मरने के भी बाद।।78।।
पाय द्रव्य जो नित करे, दुखितो को हैरान।
उनका जीवन जगत् मे, व्यर्थ मृतक सम जान।।79।।
केवल कर्म प्रधान है, शुभ ग्रह से क्या काम।
दी वशिष्ठ ने लग्न थी, वन वन भटके राम।।80।।
करे महा दुष्कर्म नित, चाहत है सुर धाम।
आंखो से अधे फिरे, धरे नयनसुख नाम।।81।।
नीचो की सगति किये, नीच बुद्धि हो जाय।
दूध सर्प के पेट मे, तुर्त महा विष थाय।।82।।

मूरख भी सत्संग से, हो जाता विद्वान्।
स्वाति बिन्दु ज्यो सीप मे, मुक्ता होत महान्।।83।।
गये समय के सोच को, तजते चतुर सुजान।
गये सर्प की रेख को, ठोकत फिरत अजान।।84।।
पारस लोहे को करे, केवल सोना रूप।
पर ईश्वर की भक्ति से, मनुज होय उन रूप।।85।।
दुख कम हो ससार मे, नाहिं नरक का वास।
पराधीनता की प्रभो, मुझे न आवे वास।।86।।
मरघट मैथुन शास्त्र मे, जैसी मति हो जात।
वैसी मति हरदम रहे, दुख की रहे न बात।।87।।
धर्माराधन कीजिये, जब तक मृत्यु न आय।
नेदिया आने के समय, पुल नहि बांधा जाय।।88।।
रजनी दीपक चन्द्रमा, दिन का दीपक भान।
दीपक धर्म त्रिलोक का, सुत कुल दीपक जान।।89।।
तप एकहि द्वय से पठन, गान तीन पथ चार।
कृषी पात्र स्व बहुत मिल, करे चतुर निरधार।।90।।
स्वार्थी तब तक ही भजे, जब तक कारज होय।
नदी पार जब हो गये, नाव न पूँछे कोय।।91।।
ज्ञान पाय नर जो नहीं, करे आत्म कल्याण।
कर मे दीपक लेय कर, गिरे कुये मे आन।।92।।
बहुत कथन लघुता करे, मौन करे सन्मान।
नूपुर पहिने पांव मे, हार कण्ठ मे जान।।93।।
करिये नहीं विवाद कुछ, लख दुर्जन अति ढीठ।
हवा जिधर को ही चले, देय उधर को पीठ।।94।।
अपना पेट न भर सके, पर को क्या वह देय।
स्वय गिरे जो और को, नहिं अवलम्बन देय।।95।।
धर्माराधन से सभी, दुख दारिद्र नशाय।
रवि प्रकाश से विश्व का, ज्यो तम शीघ्र पलाय।।96।।
पापी नर स्वयमेव ही, भोगे दुख दिन रात।
दीपक नाशे ध्वान्त को, कौन बुलाने जात।।97।।

पुण्यी नर स्वयमेव ही, भोगे सुख दिन रात।
ज्यो दिन मे चकवी मिथुन, कौन मिलाने जात।।98।।
धर्म वासना से रहित, जन को धर्म न भाय।
जली भूमि मे बीज का, अकुर नाहि उगाय।।99।।
आमद देखकर, खर्च करे जो कोय।
तीन काल मे, कभी दुखी नहीं होय।।100।।
योग्य कार्य नर वरन के, मूर्खों से नहिं होंय।
ज्यो पलान गज कागदा, लाद सके नहिं कोय।।101।।

□□□

मुक्तक दोहे

वेश्या वानर अग्नि जल, कूटी कटक कलार।
ये दश हू नहिं आपके, सूई सुआ सुनार।।1।।
पय पानी अर पाहुनो दान ज्ञान सन्मान।
ये नौं मोटे चाहिये राजा साहु दिवान।।2।।
चन्दन चावल चून तिय सिह लंक सनसूत।
इनके मिलते चाहिये तुला राग रजपूत।।3।।
खत डंगरा वनवोगरा लाई फूटा पेख।
ये नौ फूटे चाहिये दाडिम कुसुम विशेष।।4।।
ऑख दाढ मोती मती गढ तिय नौका ताल।
भाई नौ साबुत भले फूटे हों बेहाल।।5।।
भाई भतीजा भानजा भांड भाट भूपाल।
इतने भभ्भा छोड़के करो वणिज तत्काल।।6।।
लंपा सांप सनौड़िया कनबजिया श्री गौर।
ढका लगें उरजत फिरें लड़ने को शिरमौर।।7।।
भूप कृपण कलहन तिया और कुटिल परधान।
ये तीनो इक क्षणिक में नाश करे धन प्राण।।8।।

□□□

प्रहेलिका दोहे

आधा रहे कुमार गृह आधा हाथिन पूर।
पूरा लंका मे रहे वह है कौन हजूर।।1।।
कस्तूरी किससे मिले को गज मार भगाय।
कातर रण मे क्या करे मृग से सिंह पलाय।।2।।
कू.1ख सहित पर सिर रहित भुजयुत अगुलि हीन।
पैर हीन नर को भखै क्या जाने मतिहीन।।3।।
बसे पेड़ पर पक्षी नहीं तीन नेत्र नहि शम्भु।।
बल्कल धारी ऋषि नहीं मेघ न धारी अम्बु।।4।।
बिना पैर भारी चलै साक्षर पडित नाहिं।
बिन मुख ज्यो का त्यो कहे क्या कहियत है ताहिं।।5।।
लक्ष्मी रहती कमल मे शम्भु रहे कैलाश।
क्षीर समुद्र मे हरि बसें लख खटमल की भास।।6।।
को काटे धरिणी बिषे किसे केशरी हन्त।
गर्भवती तिय क्या करे चिटी व्याल प्रसूत।।7।।
रहे विवर में सर्प नहिं मांसाशी नहीं रक्ष।
सत्वरगामी वाण नहिं पण्डित करो प्रत्यक्ष।।8।।
भस्म किया क्या शम्भु ने कर्ण हता किन चीन।
कौन बिदारे नदी तट को पर कान्ता लीन।।9।।
किसकी रण न हार हो क्या कुचका श्रृंगार।
क्या हो हानि कुसग से मान पूजापहार।।10।।
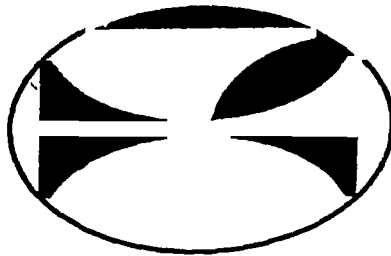
सम्यक्त्व विमर्श

जैनदर्शन मे श्रद्धा को सर्व प्रथम स्थान प्राप्त है। इसी श्रद्धा का नाम सम्यग्दर्शन है।। यदि यह नहीं हुआ तो, व्रत लेना नींव के बिना महल बनाने के सदृश है। इसके होते ही सब व्रतो की शोभा है। सम्यग्दर्शन आत्मा का वह गुण है जिसका विकास होते ही अनन्त ससार का बन्धन छूट जाता है। आठो कर्मों से सबकी रक्षा करने वाला यही है। यह तो ऐसा शूर है कि अपनी रक्षा करता है और शेष गुणो की भी ।

सम्यग्दर्शन का लक्षण आचार्यों ने " तत्त्वार्थ श्रद्धानं " लिखा है। जैसा कि दशाध्याय तत्त्वार्थसूत्र के प्रथम अध्याय मे आचार्य गृद्धपिच्छ ने लिखा है –

"तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्"

श्री नेमीचन्द्र स्वामी ने द्रव्य सग्रह मे लिखा है –

"जीवादिसद्दहणं सम्मत्तं"

यही समयसार में लिखा है तथा ऐसा ही लक्षण प्रत्येक ग्रन्थ मे मिलता है, परन्तु पचाध्यायीकर्ता ने एक विलक्षण बात लिखी है। वे लिखते हैं कि यह सब तो ज्ञान की पर्याय है। सम्यग्दर्शन आत्मा का अनिर्वचनीय गुण है, जिसके होने पर जीवो के तत्वार्थ का परिज्ञान अपने आप हो जाता है। वह आत्मा का परिणाम सम्यग्दर्शन कहलाता है।

ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम आत्मा मे सदा विद्यमान रहता है, सज्ञी जीवो के और भी विशिष्ट क्षयोपशम रहता है। सम्यग्दर्शन के होते ही वही ज्ञान सम्यग्व्यपदेश को पा जाता है। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय मे श्री अमृतचन्द्राचार्य ने भी लिखा है –

" जीवाजीवादीनां तत्वार्थानां सदैव कर्तव्यम्
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत्। "

अर्थात् जीवाजीवादि सात पदार्थों का विपरीत अभिप्राय से रहित श्रद्धान सदैव करना चाहिये इसी का नाम सम्यग्दर्शन है, वह सम्यग्दर्शन ही आत्मा का पारमार्थिक रूप है। इसका तात्पर्य यह है कि इसके बिना आत्मा अनन्त ससार का पात्र रहता है।

यह गुण अतिसूक्ष्म है। केवल उसके कार्य से ही हम उसका अनुमान करते हैं। जैसे अग्नि की दाहकत्व शक्ति का ज्ञान हमें प्रत्यक्ष नहीं होता केवल उसके ज्वलनकाय से ही हम उसका अनुमान करते हैं। अथवा जैसे मदिरापान करने वाला उन्मत्त होकर नाना कुचेष्टाये करता है पर जब मदिरा का नशा उतर जाता है तब उसकी दशा शान्त हो जाती है। उसकी वह दशा उसी के अनुभवगम्य होती है। दर्शक केवल अनुमान से जान सकते हैं कि इसका नशा उतर गया। मदिरा मे उन्मत्त करने की शक्ति है पर हमे उसका प्रत्यक्ष नहीं होता, वह अपने कार्य से ही अनुमानित होती है। अथवा जिसप्रकार सूर्योदय होने पर सब दिशायें निर्मल हो जाती हैं उसीप्रकार सम्यग्दर्शन के होने पर आत्मा का अभिप्राय सब प्रकार से निर्मल हो जाता है। पर के उस गुण का प्रत्यक्ष मति, श्रुति तथा देशावधि ज्ञानियो के नहीं होता किन्तु परमावधि, सर्वावधि, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान से युक्त जीवो के ही होता है। उनकी कथा करना तो हमें आता है क्योकि उनकी महिमा का यथार्थ आभास होना कठिन है। बात हम अपने ज्ञान कीं करते हैं। यही ज्ञान हमे

कल्याण के मार्ग में ले जाता है।

वस्तुत आत्मा मे अचिन्त्य शक्ति है और उसका पता हमे स्वयमेव होता है। सम्यग्दर्शन गुण का प्रत्यक्ष हमे न हो परन्तु उसके होते ही हमारी आत्मा मे जो विशदता का उदय होता है वह तो हमारे प्रत्यक्ष का विषय है। यह सम्यग्दर्शन की अद्‌भुत महिमा है कि हम लोग बिना किसी शिक्षक व उपदेश के उदासीन हो जाते हैं। जिन विषयो मे इतने अधिक तल्लीन थे व जिनके बिना हमें चैन ही नहीं पड़ता था सम्यग्दर्शन के होने पर हम उनकी एकदम उपेक्षा कर देते हैं।

इस सम्यग्दर्शन के होते ही हमारी प्रवृत्ति एकदम पूर्व से पश्चिम हो जाती है। प्रशम, सवेग, अनुकम्पा आस्तिक्य का आविर्भाव हो जाता है। श्री पचाध्यायीकार नें प्रशम गुण का यह लक्षण माना है –

"प्रशमो विषयेषूच्चैर्भवक्रोधादिकेषु च
लोकासंख्यातमाख्येषु स्वरूपाच्छिथिलं मनः।।"

अर्थात् असख्यात लोक प्रमाण जो कषाय और विषय हैं उनमे स्वभाव से ही मन का शिथिल हो जाना प्रशम है। इसका यह तात्पर्य है कि आत्मा अनादिकाल से अज्ञान के वशीभूत हो रहा है और अज्ञान में आत्मा तथा पर का भेदज्ञान न होने से पर्याय मे ही आपा मान रहा है, अत जिस पर्याय को पाता है उसी में निजत्व की कल्पना कर उसी की रक्षा के प्रयत्न मे सदा तल्लीन रहता है। पर उसकी रक्षा का कुछ भी अन्य उपाय इसके ज्ञान मे नहीं आता केवल पचेन्द्रियो के द्वारा स्पर्श, रस, गध, वर्ण एव शब्द को ग्रहण करना ही इसे सूझता है। प्राणी मात्र ही इसी उपाय का अवलम्बन कर जगत् मे अपनी आयु पूर्ण कर रहे हैं।

जब बच्चा पैदा होता है तब मॉ के स्तन को चूसने लगता है। इसका मूल कारण यह है कि अनादि काल से इस जीव के चार सज्ञाये लग रही है उनमे एक आहार सज्ञा भी है, उसके बिना इसका जीवन रहना असम्भव है। केवल विग्रह गति के 3 समय छोडकर सर्वदा आहार वर्गणा के परमाणुओ को ग्रहण करता रहता है अन्य कथा कहॉ तक कहे इस आहार की पीडा जब असह्य हो उठती है तब सर्पिणी अपने बच्चो को आप ही खा जाती है। पशुओ की कथा छोड़िये जब दुर्भिक्ष पड़ता है तब माता अपने बालको को बेचकर खा जाती है। यहॉ तक देखा गया कि कूड़ा-घर मे पड़ा हुआ दाना चुन चुनकर मनुष्य खा जाते हैं, जूठी पत्तलो के दाने भी बीन बीनकर खा जाते हैं। यह एक ऐसी सज्ञा है कि जिससे प्रेरित होकर मनुष्य अनर्थ से अनर्थ कार्य करने को प्रवृत्त हो जाता है। इस क्षुधा के समान अन्य दोष संसार मे नहीं है। कहा भी है –

"सब दोषन मांही या सम नाहीं।" (इसकी पूर्ति के लिये लाखो मनुष्य सैनिक हो जाते हैं।) जो भी पाप हो इस आहार के लिये मनुष्य कर लेता है। इसका मूल कारण अज्ञान ही है। शरीर मे निजत्व बुद्धि ही इन उपद्रवो की जड है। जब शरीर को निज मान लिया तब उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य हो जाता है और जब तक यह अज्ञान है तभी तक हम ससार के पात्र हैं।

यह अज्ञान कब तक रहेगा इस पर श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने अच्छा प्रकाश डाला है –

"कम्मे णोकम्मम्मि य, अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी, अप्पडिबुद्धो हवदि ताव।।"

भावार्थ – जब तक ज्ञानावंरणादि कर्मों और औदारकादि शरीर मे आत्मीय बुद्धि होती है और आत्मा मे ज्ञानावरणादि कर्म तथा शरीर की बुद्धि होती है अर्थात् जब तक जीव ऐसा मानता है कि

ज्ञानावरणादिक कर्म और शरीर मेरे हैं तथा मैं इसका स्वामी हूँ तब तक यह जीव अज्ञानी है और तभी तक अप्रतिबुद्ध है। यदि शरीर मे अहबुद्धि मिट जावे तो आहार की आवश्यकता न रहे। जब शरीर की शक्ति निर्बल होती है तभी आत्मा मे आहार ग्रहण करने की इच्छा होती है। यद्यपि शरीर पुद्गल पिण्ड है तथापि उसका आत्मा के साथ सम्पर्क है और इसीलिये उसकी उत्पत्ति दो विजातीय द्रव्यो के सम्पर्क से होती है। पर यह निश्चय है कि शरीर का उपादान कारण पुद्गल द्रव्य ही है आत्मा नहीं। दोनो का यह सम्बन्ध अनादिकाल से चला आता है इसी से अज्ञानी जीव दोनो को एक मान बैठता है। शरीर को निज मानने लगता है।

इस शरीर को स्थिर रखने के लिए जीव को आहार ग्रहण की इच्छा होती है और इससे आहार ग्रहण करने के लिए रसना इन्द्रिय के द्वारा रस को ग्रहण करता है। ग्रहण करने मे प्रदेश प्रकम्पन होता है उससे हस्त के द्वारा ग्रास ग्रहण करता है। जब ग्रास के रस का रसना इन्द्रिय के साथ सम्बन्ध होता है तब उसे स्वाद आता है। यदि अनुकूल हुआ तो प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करता जाता है। ग्रहण का अर्थ यह है कि रसना इन्द्रिय के द्वारा रस का ज्ञान होता है, इसका यह अर्थ नहीं कि ज्ञान रसमय हो जाता है। यदि वह रसरूप हो जाता तो आत्मा जड़ ही बन जाता।

इस विषयक ज्ञान होते ही जो रस ग्रहण की इच्छा उठी थी वह शान्त हो जाती है और इच्छा के शान्त होने से आत्मा सुखी हो जाता है। सुख का बाधक है दु ख और दु ख है आकुलतामय। आकुलता की जननी इच्छा है, अत जब इच्छा के अनुकूल विषय की पूर्ति हो जाती है तब इच्छा स्वयमेव शान्त हो जाती है। इसी प्रकार सब व्यवस्था जानना चाहिये। जब जब शरीर नि शक्त होता है तब तब आहारादि की इच्छा उत्पन्न होती है। इच्छा के उदय मे आहार ग्रहण करता है और आहार ग्रहण करने से आकुलता शान्त हो जाती है। इसप्रकार यह चक्र बराबर चला जाता है और तब तक शान्त नहीं होता जब तक कि भेदज्ञान के द्वारा निज का परिचय नहीं हो जाता।

इसीप्रकार इसको भय सज्ञा होती है। यथार्थ मे आत्मा तो अजर अमर है, ज्ञान गुण का धारी है और इस शरीर से भिन्न है फिर भय का क्या कारण है ? यहाँ भी वही बात है अर्थात् मिथ्यात्व के उदय से यह जीव शरीर को अपना मानता है अतएव इसके विनाश के जहा कुछ कारण इकट्ठे हुए वहीं भयभीत हो जाता है। यदि शरीर मे अभेदबुद्धि नहीं होती तो भय के लिए स्थान ही नहीं मिलता। यही कारण हे कि शरीर नाश के कारणो का समागम होने पर यह जीव निरन्तर दु खी रहता है।

वह भय सात प्रकार का है – (1) इहलोक भय (2) परलोक भय (3) वेदना भय (4) असुरक्षा भय (5) अगुप्ति भय (6) आकस्मिक भय और (7) मरण भय। इनका सक्षिप्त स्वरूप यह है –

इहलोक का भय तो सर्वानुभवगम्य है, अत इसके कहने की आवश्यकता नहीं। परलोक का भय यह है कि जब यह पर्याय छूटती है तब यही कल्पना होती है कि स्वर्गलोक मे जन्म हो तो भद्र–भला है, दुर्गति मे जन्म हो तो नाना दु.खो का पात्र होना पड़ेगा। असाता के उदय मे नानाप्रकार की वेदनाये होती हैं, यह वेदना भय है। कोई त्राता नहीं किसकी शरण मे जाऊँ ? यह अशरण असुरक्षा का भय है। कोई गोप्ता नहीं यही अगुप्ति भय है। आकस्मिक वज्रपातादिक न हो जावे यह आकस्मिक भय है और मरण न हो जावे यह मृत्यु भय है। इन सप्त भयो से यह जीव निरन्तर दुखी रहता है। भय के होने पर उससे बचने की इच्छा

होती है और उससे जीव निरन्तर आकुलित रहता है। इस तरह यह भय संज्ञा अनादि काल से जीवो के साथ चली आ रही है।

ससार मे जो मिथ्या प्रचार फैल रहा है उसमे मूल कारण राग द्वेष की मलिनता से लिखा गया साहित्य है। जो कालान्तर मे धर्म शास्त्र के रूप मे माना जाता है। लोग तो अनादि काल से मिथ्यात्व के उदय से शरीर को ही आत्मा मानते हैं। जिनको अपना ही बोध नहीं वे पर को क्या जाने ? जब अपना पराया ज्ञान नहीं तब कैसा सम्यग्दृष्टि ? वही समयसार मे लिखा है –

"परमाणुमित्तयंपि हु, रायादीणं तु विज्जदे जस्स।
णवि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागम धरो वि।।"

जो सर्वागम को जानने वाला है, उनके रागादिको का अशमात्र भी यदि विद्यमान है तो वह आत्मा को नहीं जानता है। जो आत्मा को नहीं जानता है वह जीव और अजीव को नहीं जानता। जो जीव अजीव को नहीं जानता वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है? कहने का तात्पर्य यह है कि आगमाभ्यास ही जीवादिको के जानने मे मुख्य कारण है और आगमाभ्यास ही जीवादिको को अन्यथा जानने मे कारण है। जिनको आत्म कल्याण की लालसा है वे आप्त कथित आगम का अभ्यास करे। क्षेत्रो पर ज्ञान के साधन कुछ नहीं, केवल रुपये इकट्ठे करने के साधन हैं। कल्पना करो यदि धन एकत्रित होता रहे और व्यय न हो तो अन्त मे नहीं के तुल्य हुआ। अस्तु इस कथा से क्या लाभ ?

सम्यग्दर्शन का अर्थ आत्मलब्धि है। आत्मा के स्वरूप का ठीक ठीक बोध हो जाना आत्मलब्धि कहलाती है। आत्मलब्धि के सामने सब कुछ धूल है। सम्यग्दर्शन आत्मा का महान् गुण है। इसी से आचार्यों ने सबसे पहले उपदेश दिया – "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग." – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मौक्षमार्ग है। आचार्य की करुणाबुद्धि तो देखो, मोक्ष तब हो जबकि पहले बन्ध हो। यहाँ पहले बन्ध का मार्ग बतलाना था फिर मोक्ष का, परन्तु उन्होने मोक्षमार्ग का पहले वर्णन इसीलिये किया है कि ये प्राणी अनादि काल से बन्धजनित दु ख का अनुभव करते–करते घबड़ा गये हैं, अत पहले उन्हे मोक्ष का मार्ग बतलाना चाहिये। जैसे कोई कारागार मे पड़कर दु खी होता है, वह यह नहीं जानना चाहता कि मैं कारागार मे क्यो पडा ? वह तो यह जानना चाहता है कि मैं इस कारागार से कैसे छूटूँ, यही सोचकर आचार्य ने पहले मोक्ष का मार्ग बतलाया है।

सम्यग्दर्शन के रहने से विवेक शक्ति सदा जाग्रत रहती है। वह विपत्ति मे पड़ने पर भी कभी न्याय को नहीं छोडता। रामचन्द्रजी सीता को छुडाने के लिये लका गये थे। लका के चारो ओर उनका कटक पडा था। हनुमान् आदि ने रामचन्द्रजी को खबर दी कि रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है, यदि उसे यह विद्या सिद्ध हो गई तो फिर वह अजेय हो जायेगा, आज्ञा दीजिये जिससे कि हम लोग उसकी विद्या की सिद्धि मे विघ्न डाले।

रामचंद्रजी ने कहाँ – "हम क्षत्रिय हैं, कोई धर्म करे और हम उसमे विघ्न डाले, यह हमारा कर्तव्य नहीं है।" हनुमान ने कहा – "सीता फिर दुर्लभ हो जायेगी।" रामचन्द्रजी ने जोरदार शब्दो मे उत्तर दिया – "एक सीता नहीं दशो सीताये दुर्लभ हो जाये, पर मैं अन्याय करने की आज्ञा नहीं दे सकता।" रामचन्द्रजी मे इतना विवेक था, उसका कारण उनका विशुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शन था।

सीता को तीर्थयात्रा के बहाने कृतान्तवक्र सेनापति जंगल मे छोड़ने गया, उसका हृदय वैसा करना चाहता था क्या ? नहीं, वह स्वामी की आज्ञा – परतन्त्रता से गया था। उस समय कृतान्तवक्र को अपनी पराधीनता काफी खली थी। जब वह निर्दोष सीता को जगल में छोड़ अपने अपराध की क्षमा माग वापस आने लगता है तब सीताजी उससे कहती है – "सेनापति मेरा एक संदेश उनसे कह देना। वह यह कि जिसप्रकार लोकापवाद के भय से आपने मुझे त्यागा उसप्रकार लोकापवाद के भय से धर्म को न छोड देना।"

उस निराश्रित अपमानित दशा मे भी उन्हे इतना विवेक बना रहा। इसका कारण था उनका सम्यग्दर्शन। आजकल की स्त्री होती तो पचास गालिया सुनाती और अपने समानता के अधिकार बतलाती। इतना ही नहीं सीताजी जब नारदजी के आयोजन द्वारा कुश लव के साथ अयोध्या वापिस आती है, एक वीरतापूर्ण युद्ध के बाद पिता पुत्र का मिलाप होता है, सीताजी लज्जा से भरी हुईं राज दरबार मे पहुचती हैं, उन्हे देखकर रामचन्द्रजी कह उठते हैं – "तुम बिना शपथ दिये, बिना परीक्षा दिये यहॉ कहॉ ?"

सीता ने विवेक और धैर्य के साथ उत्तर दिया – "मै समझती थी कि आपका हृदय कोमल है पर क्या कहूँ ? आप मेरी जिसप्रकार चाहे शपथ ले।"

रामचन्द्रजी ने कहा –"अग्नि मे कूदकर अपनी सच्चाई की परीक्षा दो।" बडे भारी जलते हुए अग्नि कुण्ड मे सीताजी कूदने को तैयार हुईं। रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से कहते हैं कि "सीता जल न जाय।" लक्ष्मणजी ने कुछ रोषपूर्ण शब्दो मे उत्तर दिया – "यह आज्ञा देते समय नहीं सोचा ? वह सती है, निर्दोष है आज आप उनके अखण्ड शील की महिमा देखिये।"

उसीसमय दो देव केवली की वन्दना से लौट रहे थे, उनका ध्यान सीताजी का उपसर्ग दूर करने की ओर गया, सीताजी अग्निकुण्ड मे कूद पडीं, कूदते ही सारा अग्निकुण्ड जलकुण्ड बन गया। लहलहाता कोमल कमल सीताजी के लिए सिहासन बन गया। पुष्पवृष्टि के साथ "जय सीते जय सीते" के नाद से आकाश गूँज उठा उपस्थित प्रजाजन के साथ राजा राम के भी हाथ स्वय जुड़ गये, आखो से आनन्द अश्रु बरस उठे, गदगद कण्ठ से एकाएक कह उठे – "धर्म की सदा विजय होती है, शील व्रत की महिमा अपार है।"

रामचन्द्रजी के अविचारित वचन सुनकर सीताजी को संसार से वैराग्य हो चुका था, पर "निःशल्यो व्रती" व्रती को नि शल्य होना चाहिये। इसीलिये उन्होने दीक्षा लेने से पहले परीक्षा देना आवश्यक समझा था। परीक्षा मे वह पास हो गईं।

रामचन्द्रजी ने उनसे कहा – "देवी घर चलो, अब तक हमारा स्नेह हृदय मे था पर अब लोकलाज के कारण आखो मे आ गया हे।"

सीताजी ने नीरस स्वर मे कहा – "नाथ यह संसार दु ख रूपी वृक्ष की जड़ है, अब मैं इसमे न रहूगी। सच्चा सुख इसके त्याग मे ही है।"

रामचन्द्रजी ने बहुत कुछ कहा – "यदि मै अपराधी हूँ तो लक्ष्मण की ओर देखो, यदि यह भी अपराधी है तो अपने बच्चो लव कुश की ओर देखो और एक बार पुनः घर मे प्रवेश करो।" पर सीताजी अपनी दृढता से च्युत नहीं हुईं। उन्होने उसी समय केश उखाड़कर रामचन्द्रजी के सामने फेक दिये और जंगल में जाकर आर्या हो गईं। यह सब काम सम्यग्दर्शन का हे, यदि उन्हे अपने आत्म–वल पर विश्वास न होता तो वह क्या यह सब कार्य कर सकतीं थीं ? कदापि नहीं।

अब रामचन्द्रजी का विवेक देखिये जो रामचन्द्र सीता के पीछे पागल हो रहे थे, वृक्षो से पूछते थे कि क्या तुमने मेरी सीता देखी है ? वही जब तपश्चर्या मे लीन थे सीता के जीव प्रतीन्द्र ने कितने उपसर्ग किये पर वह अपने ध्यान से विचलित नहीं हुए। शुक्ल ध्यान धारण कर केवली अवस्था को प्राप्त हुए।

सम्यग्दर्शन से आत्मा मे प्रशम, सवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य गुण प्रगट होते हैं। जो सम्यग्दर्शन के अविनाभावी है। यदि आपमे यह गुण प्रकट हुए हैं तो समझ लो कि हम सम्यग्दृष्टि हैं। कोई क्या बतलायेगा कि तुम सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि। अप्रत्याख्यानावरण कषाय का सस्कार छह माह से ज्यादा नहीं चलता। यदि आपके किसी से लडाई होने पर छह माह के बाद तक बदला लेने की भावना रहती है तो समझ लो अभी हम मिथ्यादृष्टि हैं। कषाय के असख्यात लोक प्रमाण स्थान है उनमे मन का स्वरूप यो ही शिथिल हो जाना प्रशम गुण है। मिथ्यादृष्टि अवस्था के समय इस जीव की विषय कषाय मे जैसी स्वछन्द प्रवृत्ति होती है वैसी सम्यग्दर्शन होने पर नहीं होती। यह दूसरी बात है कि चारित्र मोह के उदय से वह उसे छोड नहीं सकता हो पर प्रवृत्ति मे शैथिल्य अवश्य आ जाता है।

प्रशम का एक अर्थ यह भी है जो पूर्व की अपेक्षा अधिक ग्राह्य है — "सद्य कृतापराधी जीवो पर भी रोष उत्पन्न नहीं होना" प्रशम कहलाता है। बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करते समय रामचन्द्रजी ने रावण पर जो रोष नहीं किया था वह इसका उत्तम उदाहरण है।

प्रशम गुण तब तक नहीं हो सकता जब तक अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी क्रोध विद्यमान है। उसके छूटते ही प्रशम गुण प्रकट हो जाता है। क्रोध ही क्या अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी मान, माया, लोभ— सभी कषाये प्रशम गुण के घातक हैं।

ससार और ससार के कारणो से भयभीत होना ही सवेग है। जिसके सवेग गुण प्रकट हो जाता है, वह सदा आत्मा मे विकार के कारणभूत पदार्थों से जुदा होने के लिए छटपटाता है।

सब जीवो मे मैत्री भाव का होना ही अनुकम्पा है। सम्यग्दृष्टि जीव सब जीवो को समान शक्ति का धारी अनुभव करता है। वह जानता है कि ससार मे जीव की जो विविध अवस्थाये हो रहीं हैं उनका कारण कर्म है,इसलिये वह किसी को ऊँचा नीचा नहीं मानता वह सबसे समभाव धारण करता है।

ससार, ससार के कारण, आत्मा और परमात्मा आदि मे आस्तिक्य भाव का होना ही आस्तिक्य गुण है। यह गुण भी सम्यग्दृष्टि के ही प्रकट होता है, इसके बिना पूर्ण स्वतत्रता की प्राप्ति के लिये उद्योग कर सकना असभव है।

ये ऐसे गुण हैं जो सम्यग्दर्शन के सहचारी हैं और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव मे होते हैं।

जिसको हेयोपादेय का ज्ञान हो गया वही सम्यग्दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि को आत्मा और अनात्मा का भेद विज्ञान प्रकट हो जाता है। वह सकल बाह्य पदार्थों को हेय जानने लगता है। पर पदार्थों से उसकी मूर्च्छा बिल्कुल हट जाती है। यद्यपि वह विषयादि मे प्रवर्तन करता है परन्तु वेदना का इलाज समझकर। क्या करे, जो पूर्व बद्ध कर्म हैं उनको तो भोगना ही पड़ता है। हॉ, नवीन कर्म का बन्ध उस चाल का उसके नहीं बधता। हमको चाहिये कि हमने अज्ञानावस्था मे जो कर्म उपार्जन किये हैं, उनको हटाने का प्रयत्न न करे, बल्कि आगामी नूतन कर्म का बन्ध न होने दे। अरे जन्मान्तर मे जो कर्म उपार्जन किये गये हैं वे तो

भोगने ही पडेगे। चाहे रोकर भोगो, चाहे हँसकर। फल तो भोगना ही पडेगा, यह निश्चित है। यदि "हाय हाय" करके भइया रोग की शान्ति हो जाय तो उसे भी कर लो, परन्तु ऐसा नहीं होता। हाय हाय की जगह भगवान् भगवान् कहे और उस वेदना को शान्ति से सहन कर ले और ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे आगे वैसा बन्ध न हो। हाय हाय करके होगा क्या? हम आपसे पूछते है इससे उल्टा कर्मबन्ध होगा। सो ऐसा हुआ जैसे किसी मनुष्य को पाच सौ रुपये मय ब्याज के देना थे सो दे तो दिया छ सौ रुपया और कर्ज भी सिर पर ले लिया। जैसा दिया वैसा न दिया। हमको पिछले कर्मों की चिन्ता न करनी चाहिये, बल्कि आगामी कर्म का सवर करे, जिसको शत्रुओ पर विजय प्राप्त करना है वह नवीन शत्रुओ का आक्रमण रोक देवे और जो शत्रु गढ मे है वे तो चाहे जब जीते जा सकते है। इनकी चिन्ता न करे। चिन्ता करे तो आगामी नवीन बन्ध की, जिससे फिर बन्ध मे न पड़े और जो पिछले कर्म है वे तो रस देकर खिरेगे ही, उनको शान्तिपूर्वक सहन कर ले। आगामी कर्मबन्ध हुआ नहीं, पिछले कर्म रस देकर खिर गये। आगामी कर्जा लिया नहीं पिछला कर्जा अदा किया, चलो छुट्टी पाई। आगे आने वाले कर्मों के सवर करने का यही तात्पर्य है।

सम्यग्दृष्टि का आत्म परिणाम

वेदक भाव

वेदने वाला भाव और वेद्यभाव (जिसको वेदे) इन दोनो मे काल भेद है। जब वेदकभाव होता है तब वेद्य भाव नहीं होता और जब वेद्य भाव होता है तब वेदक भाव नहीं होता। क्योकि जब वेदक भाव आता है तब वेद्य भाव नष्ट हो जाता है तब वेदक भाव किसको वेदे ? और जब वेद्य भाव आता है तब वेदक भाव नष्ट हो जाता है तब वेदक भाव के बिना वेद्य को कौन वेदे ? इसलिये ज्ञानी जन दोनो को विनाशीक जान आप जानने वाला ज्ञाता ही रहता है। अत सम्यक्त्वी के कोई चाल का बन्ध ही नहीं होता।

भोगों में अरुचि

भोगो मे मग्न होने के अलावा और कुछ दिखता ही नहीं है। भोग भोगना ही मानो अपना लक्ष्य बना लिया है। हम समझते है कि हम मोक्षमार्ग मे लग रहे है पर यह मालूम ही नहीं कि नरक जाने की नसैनी बना रहे है।

स्वास्थ्य वही जो कभी क्षीण न हो। क्षीणता को प्राप्त हो वह स्वास्थ्य किस काम का ? और स्वार्थी पुरुषो के भोग भी विषम एव क्षणभगुर हैं। जब तक भोग भोगते है तब तक उसे सुख नहीं कहा जा सकता क्योकि वह सुख भी आताप का उपजाने वाला है, उसमे तृष्णा रूपी रोग लगा हुआ है। अत. भोगो से कभी तृप्ति नहीं मिल सकती। भोगो से तृप्ति चाहना ऐसा ही है जैसे अग्नि को घी से बुझाना। मनुष्य भोगो मे मस्त हो जाता है और उसके लिए क्या क्या अनर्थ नहीं करता। सम्यग्दृष्टि मे विवेक है वह भोगो से उदास रहता है उनमे सुख नहीं मानता। वह स्वर्गादिक की विभूति प्राप्त करता है और नाना प्रकार की विषय सामग्री भी। पर अन्त मे देवो की सभा मे यही कहता है कि कब मैं मनुष्य योनि पाऊँ ? कब भोगो से उदास होऊँ ? और नाना प्रकार के तपश्चरणो का आचरण कर मोक्ष रमणी वरूँ ? उसके ऐसी ही भावना निरन्तर बनी रहती है क्या उसे मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती ? अवश्यमेव होती है। इसमे सन्देह को कोई स्थान नहीं।

विषाद से निवृत्ति

अब कहते हैं कि जब सम्यग्दृष्टि को पर पदार्थों से अरुचि हो जाती है तब घर मे क्यों रहता है, और कार्य क्यो करता है ? इसका उत्तर यह है कि वह करना कुछ नहीं चाहता पर क्या करे, जो पूर्वबद्ध कर्म हैं उनके उदय से करना पड़ता है। वह चाहता अवश्य है कि मैं किसी कार्य का कर्ता न बनूं। उसकी पर पदार्थों से स्वामित्व बुद्धि हट जाती है पर जो अज्ञानावस्था मे पूर्वोपार्जित कर्म हैं, उनके उदय से लाचारीवश होकर घर गृहस्थी मे रहकर उपेक्षाबुद्धि से करना पड़ता है। वह अपनी आत्मा का अनाद्यनन्त अचल स्वरूप देखकर तो प्रसन्न होता है, उसके अपार खुशी होती है, पर अज्ञानावस्था मे जो जन्मार्जित कर्म हैं उसका फल तो भोगना ही पड़ता है। वह बहुत चाहता है कि मुझे कुछ भी नहीं करना पड़े। मैं कब इस उपद्रव से मुक्त हो जाऊँ ? पर करना पड़ता है चाहता नहीं है। उस समय उसकी दशा मरे हुए व्यक्ति के समान हो जाती है। उसको चाहे जितना साज श्रृगार करो पर उसे कोई प्रयोजन नहीं। इसी भाति सम्यक्त्वी को चाहे जितनी सुख दुख की सामग्री प्राप्त हो जाय पर उसे कोई हर्ष विषाद नहीं।

भोगेच्छा से मुक्ति

भोग तीन तरह का होता है – अतीत, अनागत और वर्तमान। सम्यग्दृष्टि के इन तीनो मे से किसी की भी इच्छा नहीं होती। अतीत मे जो भोग भोग लिया उसकी तो वह इच्छा ही नहीं करता। वह तो भोग ही चुका। अनागत मे वह वांछा नहीं करता कि अब आगे भोग भोगूगा और प्रत्युत्पन्न कहिये वर्तमान मे उन भोगों को भोगने मे कोई रागबुद्धि नहीं है। अत इन तीनो कालो मे पदार्थों के भोगने की उसके सब प्रकार से लालसा मिट जाती है। अतीत मे भोग चुका, वाञ्छा नहीं और वर्तमान मे राग नहीं तो बतलाओ उसके बध हो तो कहाँ से हो। क्या सम्यग्दृष्टि भोग नहीं भोगता क्या उसके राग नहीं होता ? राग करना पड़ता है पर राग करना नहीं चाहता। उसकी राग मे उपादेयबुद्धि मिट जाती है। वह राग को सर्वथा हेय ही जानता है। पर क्या करे प्रतिपक्षी कषाय जो चारित्र मोह बैठा है उसका क्या करे ? उसको उदासीनता से सहन कर लेता है। उदय मे आओ और फल देकर खिर जाओ। फल देना बन्ध का कारण नहीं है। अब क्या करे जो पूर्वबद्ध कर्म हैं उसका तो फल उदय मे आयेगा ही परन्तु उसमे राग द्वेष नहीं। यदि फल ही बन्ध का कारण होता तो कभी भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती। इससे मालूम हुआ कि राग द्वेष और मोह बन्ध का कारण है।

कषाय और रागादिक में अरुचि वृत्ति

योग और कषाय ये दो ही तो चीजे हैं उनमे योग बन्ध का कारण नहीं कहा, बन्ध का कारण बतलाया है कषाय। कषाय से अनुरंजित प्राणी ही बन्ध को प्राप्त होता है। देखिये 13वे गुणस्थान मे केवली के योग होते हैं; हुआ करो परन्तु वहां कषाय नहीं है इसलिये अबन्ध है। अब देखो, ईंट पर ईंट धरकर मकान तो बनालो जब तक उसमे चूना न हो। आटे मे पानी मत डालो देखे कैसे रोटी हो जायेगी ? अग्नि पर पानी से भरी हुई बटलोई रक्खी है और खलबल खलबल भी हो रही है पर इससे क्या होता है जब तक उसमे चावल नहीं। ऐसे ही बाह्य मे समवशरण आदि विभूति हैं पर अन्तरग मे कषाय नहीं है – तो बताओ कैसे बन्ध होगा ? इससे मालूम पड़ा कि कषाय ही बन्ध को कराने वाली है। सम्यग्दृष्टि को कषायो से अरुचि हो जाती है इसीलिए उसका राग रस वर्जनशील स्वभाव वाला हो जाता है। सम्यक्त्वी को रागादिको से अत्यन्त अरुचि हो जाती है। वह किसी पर पदार्थ की इच्छा ही नहीं करता। इच्छा करे तो होता क्या है ? वह अपनी

चीज हो तब न। अपनी चीज हो तो उसकी इच्छा करे। इच्छा को ही वह परिग्रह मानता है। सम्यग्दृष्टि बाह्य पदार्थों को तो जुदा समझता ही है पर अन्तरंग परिग्रह जो रागादिक हैं उनको भी वह हेय ही जानता है, क्योकि सम्यग्दृष्टि वास्तव मे एक टंकोत्कीर्ण अपनी शुद्धात्मा को ही अपनाता है। वह किन्हीं पर पदार्थों पर दृष्टिपात नहीं करता, क्योकि जिसके पास सूर्य का उजाला है, उसे दीपक की क्या आवश्यकता ? उसकी केवल एक शुद्ध दृष्टि ही रहती है और संसार में देखो पाप--पुण्य, धर्म--अधर्म और खान--पान के सिवाय है क्या ? उसके अतिरिक्त कुछ और है तो बताओ। सब कुछ इसी में गर्भित है।

सम्यग्दृष्टि बाह्य पदार्थों को तो जुदा समझता ही है पर अन्तरंग परिग्रह जो रागादिक हैं उनको भी वह हेय जानता है। क्योकि बाह्य वस्तु को अपना मानने का कारण अन्तरंग के परिणाम ही तो हैं। यदि अन्तरग से छोड़ दे तो वह छूटी ही है। सम्यग्दृष्टि बाह्य पदार्थों की चिन्ता नहीं करता, वह उसके मूल कारण को देखता है इसीलिये उसकी परिणति निराली ही रहती है।

सम्यक्त्वी की श्रद्धा

सूर्य पूर्व से पश्चिम मे भी उदित होने लगे परन्तु मनुष्य को अपनी श्रद्धा पर अटल रहना चाहिये। लोकापवाद के कारण जब कृतान्तवक्र श्री राम की आज्ञा से सीता महारानी को वन मे ले गया, जहा नाना प्रकार के सिह, चीते, व्याघ्र अपना मुंह बाये फिर रहे थे। सीता ऐसे भयंकर वन को देखकर सहम गई और बोली – "मुझे यहाँ क्यो लाये ?" कृतान्तवक्र कहते हैं – "महारानीजी जब आपका लोकापवाद हुआ, तब राम ने आपको वन मे त्यागने का निश्चय कर लिया और मुझे यहाँ भेज दिया।"

उसी समय सीताजी कहती हैं – "जाओ, राम से जाकर कह देना कि जिस लोकापवाद से तुमने मुझे त्याग दिया, कहीं उसी लोकापवाद के कारण तुम अपने धर्म श्रद्धान से विचलित मत हो जाना।"

इसे कहते हैं श्रद्धान। सीता को अपना आत्म विश्वास था शुद्धोपयोग प्राप्ति के लिये इसका बड़ा महत्व है। जब वह जान जाता है कि मोक्ष का मार्ग यही है तब उसकी गाडी लाइन पर आ जाती है।

जिन लोगो के पास सम्यक्त्व श्रद्धा का यह मंत्र नहीं प्राय. वही लोग सोचते हैं – "क्या करे ? मोक्षमार्ग तलवार की धार है मुनिव्रत पालना बड़ा कठिन है। परीषह सहना उससे कठिन है। तिल को ताड तो पहले ही बना देते हैं, मोक्ष मन्दिर मे प्रवेश हो तो कैसे ? उस तरफ दृष्टिपात तो करे, उसके सन्मुख तो हो, फिर तो वहा तक पहुचने मे कोई संशय नहीं है कभी न कभी पहुंच जावेगे। परन्तु उस तरफ दृष्टि हो तभी।" सम्यग्दृष्टि की उस तरफ उत्कट अभिलाषा रहती है। उसकी श्रद्धा पूर्णरूपेण मोक्ष के सन्मुख हो जाती है। रहा चारित्र मोह सो वह क्रमश धीरे धीरे गल जाता है। वह उतना घातक नहीं जितना दर्शन मोह है। जब फोड़े मे से कीली निकल गई तो घाव धीरे धीरे भर ही जाता है। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य को सर्वप्रथम अपनी श्रद्धा को सुधारने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

सम्यक्त्वी की प्रवृत्ति

सम्यग्दृष्टि पिछले कर्मों की चिन्ता नहीं करता बल्कि आगामी जो कर्म बंधने वाले हैं उनका संवर करता है। जिससे उसके उस चाल का बन्ध नहीं होता। रहे पिछले कर्म सो उनको ऐसे भोग लेता है जैसे कोई रोगी अपनी वेदना को दूर करने के लिये कड़वी औषधि का सेवन करता है तब विचारे रोगी को कड़वी औषधि से प्रेम है या रोग निवृत्ति से। ठीक यही हाल सम्यग्दृष्टि का चारित्र मोह के उदय से होता है। वह

अशुभोपयोग को तो हेय समझता ही है और शुभोपयोग पूजा दानादि मे प्रवृत्ति करता है उसको भी वह मोक्षमार्ग मे बाधक जानता है। वह विषयादि मे भी प्रवर्तन करता है अन्तरग से यही चाहता है कि कब इस उपद्रव से छुट्टी मिले ? जेलखाने मे जेलर हटर लिये खडा रहता है, कैदी को सडाक–सड़ाक मारता भी है और आज्ञा देता है कि चलो चक्की पीसो, बोझा अठाओ आदि। तब वह कैदी लाचार हो उसी माफिक कार्य करता है परन्तु विचारो, अन्तरग से यही चाहता है कि हे भगवान् कब इस जेलखाने से निकल जाऊँ। पर क्या करे, परवश दु ख भोगना पड़ता है। यही हाल सम्यग्दृष्टि का होता है। वह चारित्रमोह की जोरावरी वश अशक्य हुआ गृहस्थी मे अवश्य रहता है पर जल से भिन्न कमल की तरह। यह सब अन्तरग के अभिप्राय की बात है। अभिप्राय निर्मल रहना चाहिए। कोई भी कार्य करते समय अपने अभिप्राय को देखे कि उस समय कैसा अभिप्राय है ? यदि वह अपने अभिप्रायो पर दृष्टिपात नहीं करता तो वह मनुष्य नहीं पशु है। सबसे पहले अपने अभिप्राय को निर्मल बनाये। अभिप्राय के निर्मल बनाने मे ही अपना पुरुषार्थ लगा देवे। जिन जीवो के निरन्तर निर्मल परिणाम रहते हैं वे नियम से सद्गति के पात्र होते है। हा तो सम्यग्दृष्टि के परिणाम निरन्तर निर्मल होते जाते हैं। वह कभी अन्याय मे प्रवृत्ति नहीं करता। अच्छा बताओ जिसकी उपर्युक्त जैसी भावना है वह काहे को अन्याय करेगा। अरे, जिसने राग को हेय जान लिया वह क्या राग के लिए अन्याय करेगा ? जो विषयो के त्यागने का इच्छुक है वह क्या विषयो के लिए दूसरो की गाठ काटेगा ? कदापि नहीं। वह गृहस्थी मे उदासीनता से रहता हुआ जब चारित्र मोह गल जाता है तब तुरन्त ही व्रत को धारण कर लेता है। भरतजी घर मे ही वैरागी थे। उनको अन्तर्मुहूर्त मे ही केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इसका कारण यही कि इतनी विभूति होते हुए भी वह अलिप्त थे। किसी पदार्थ मे उनकी आसक्ति नहीं थी। पर देखो भगवान् को वह यश प्राप्त नहीं। क्या वह वैरागी नहीं थे ? अस्तु, सम्यग्दृष्टि की महिमा ही विलक्षण है, उसकी परिणति वही जाने, अज्ञानियो को उसका भेद मालूम नहीं होता शुद्ध दृष्टि अपनी होनी चाहिए। बाह्य नानाप्रकार के आडम्बर किया करो, कुछ नहीं होता। गधी के सौ बच्चे होते हुए भी भार ढोती रहती है और सिहनी के एक बच्चा होता है तो निर्भय सोती रहती है।

एक मनुष्य था। वह हीरो की खान मे काम करता था। वह आदमी था तो लखपति पर परिस्थिति वश गरीब हो गया था, एक दिन खदान मे काम करते हुए कुछ नहीं मिला, एक छोटी शिला मिल गई। वह उसे लेकर घर आया। उसकी स्त्री उस पर मसाला पीस लिया करती थी। एक दिन एक जौहरी को उसने निमत्रण दिया। वह आया और शिला को देखकर बोला – तुम इसके सौ रुपये ले लो। वह आदमी अपनी स्त्री से पूछने गया। स्त्री बोली, अरे बेचकर क्या करोगे, मसाला पीसने के काम आ जाती है। वह सौ रुपये देता था अब बोला यह लो मुझसे एक हजार के गहने। इसे बेच डालो। वह आदमी जौहरी के पास आकर बोला स्त्री नहीं बेचने देती। मैं क्या करूँ ? तब जौहरी ने कहा यह लो दो हजार, अच्छा तीन हजार रुपये ले लो। वह समझ गया और उसने नहीं दी। उसने उसी समय सिलावट को बुलाकर उसके दो टुकड़े करवाये। टुकडे करवाते ही हीरे निकल पड़े। मालामाल हो गया। ऐसे ही आत्मा कर्मों के आवरण ढका पड़ा है। वह हीरो की ज्योति के समान है। जब वह निरावरण हो जाता है तो अपना पूर्ण प्रकाश विकीर्ण करता है। हीरे की ज्योति भी उसके सामने कुछ नहीं। उस समय आत्मा केवल ज्ञायक स्वभाव ही हैं सम्यग्दृष्टि उसी ज्ञायक स्वभाव को अपनाकर कर्मों के ठाट को फटाक से उड़ाकर परमात्म स्थिति तक क्रमश पहुच जाता

है और सुखार्णव मे डूबा हुआ भी अघाता नहीं।

अब कहते हैं कि एक टंकोत्कीर्ण शुद्ध आत्मा ही पद है। इसके बिना और सब अपद हैं। वह शुद्ध आत्मा कैसा है ? ज्ञानमय एवं परमानन्दमय स्वरूप है। ज्ञान के द्वारा ही ससार का व्यवहार होता है। ज्ञान न हो तो देखलो कुछ नहीं। यह वस्तु त्यागने योग्य है और यह ग्रहण करने योग्य है – इसकी व्यवस्था कराने वाला कौन है ? एक ज्ञान ही तो है।

वास्तव मे अपना स्वरूप तो ज्ञाता दृष्टा है। केवल देखना एवं जानना मात्र है। यदि देखने मात्र से ही पाप होता है तो मैं कहूंगा कि परमात्मा सबसे बड़ा पापी है, क्योंकि वह तो चराचर वस्तुओ को युगपत् देखता और जानता है। तो इससे सिद्ध हुआ कि देखना और जानना पाप नहीं, पाप तो अन्तरग का विकार है। यदि स्त्री के रूप को देख लिया तो कोई हर्ज नहीं पर उसको देखकर राग करना यही पाप है। जो यह पर्दे की प्रथा चली, इसका मूल कारण यही कि लोगों के हृदय मे विकार पैदा हो जाता था। इन लम्बे लम्बे घूंघटो में क्या रखा है, आत्मा का स्वरूप ही ज्ञाता दृष्टा है। नेत्र इन्द्रिय का काम ही पदार्थों को दिखाना है। दर्शक बनकर दृष्टा बने रहो तो कुछ विशेष हानि नहीं किन्तु यदि उनमे मनोनीत कल्पना करना, राग करना तभी फंसना है। राग से ही बन्ध है। परमात्मा का नाम जपे जाओ "ॐ नम. वीतरागाय" इससे क्या होता है ? कोरा जाप मात्र जपने से उद्धार नहीं होता। उद्धार तो होता है परमात्मा ने जो कार्य किये, राग को छोड़ा संसार को त्यागा, तुम भी वैसा ही करो । सीधी सी बात है दो पहलवान हैं। एक को तेल का मर्दन है दूसरे को नहीं। जब वे दोनो अखाड़े में लडे तो एक को मिट्टी चिपक गई, दूसरे को नहीं। अतः राग की चिकनाहट ही बन्ध का कराने वाली है। देखो दो परमाणु मिले, एक स्कन्ध हो गया। अकेला परमाणु कभी नहीं बधता। आत्मा का ज्ञान गुण बध का कारण नहीं। बध का कारण उसमे रागादिक की चिकनाहट है।

ससार के सब पदार्थ जुदे जुदे हैं। कोई भी पदार्थ किसी भी पदार्थ से बधता नहीं है। इस शरीर को ही देखो कितने स्कन्धो का बना हुआ है? जब स्कन्ध जुदें जुदे परमाणु मात्र रह जांय तो सब स्वतंत्र हैं, अनादि निधन हैं। केवल अपने मानने मे ही भूल पडी हुई है। उस भूल को मिटा दो, चलो छुट्टी पाई। और क्या धरा है ? ज्ञान का काम तो केवल पदार्थों को जानना मात्र है। यदि उस ज्ञान मे इष्टानिष्ट कल्पना करो, तो बताओ किसका दोष है ? शरीर को आत्मा जानलो तो किसका दोष है ? पर शरीर कभी आत्मा होता नहीं। जैसे बहुत दूर सीप पडी है और तुम उसे चादी मान लो तो क्या सीप चादी हो जायेगी ? वैसे ही शरीर कभी आत्मा होता नहीं। अपने विकल्प किया करो। क्या होता है ? पदार्थ तो जैसा का तैसा है। लेकिन मानने मे ही गलती है कि "इद मम" यह मेरी है। उस भूल को मिटा दो शरीर को शरीर और आत्मा को आत्मा जानो यही तो भेदविज्ञान है। और क्या है ? बताओ।

अत उस ज्ञायक स्वभाव का वेदन करो। सोना जड है वह अपने स्वरूप को नहीं जानता। लेकिन आत्मा शुद्ध चैतन्य धातुमय पिण्ड है, वह उसको जानता है। उस ज्ञायकस्वभावमयी आत्मा मे जैसे जैसे विशेष ज्ञान हुआ वह उसके लिए साधक है या बाधक। देखिये जैसे सूर्य मेघपटलो से आच्छादित था। मेघपटल जैसे जैसे दूर हुए वैसे वैसे उसकी ज्योति प्रकट होती गई। अब बताओ वह ज्योति जितनी प्रगट हुई वह उसके लिए साधक है या बाधक ? दरिद्री के पास पाच रुपये आये वह उसके लिए साधक हैं या बाधक ? हम आपसे पूछते है। अरे! साधक ही है, वैसे इस आत्मा के जैसे जैसे ज्ञानावरण हटे, मतिश्रुतादि

विशेष ज्ञान प्रकट हुये, वह उसके साधक ही हैं। अर्थात् ज्ञानार्जन का निरन्तर प्रयास करता रहे।

मनुष्यो को पदार्थों के हटाने का प्रयत्न न करना चाहिए। बल्कि उनमे राग–द्वेषादि के जो विकल्प उठते है, उन्हे दूर करने का प्रयत्न करे। मान लिया स्त्री खराब होती है नहीं हटी तो बेचैनी बढ़ेगी। परन्तु उसे हटा सकना कठिन है अत स्त्री को नहीं हटा सकते तो मत हटाओ उसके प्रति जो तुम्हारी राग बुद्धि लगी है उसे हटाने का प्रयत्न करो। यदि राग बुद्धि हट गई तो फिर स्त्री को हटाने मे कोई बड़ी बात नहीं है। पदार्थ किसी का, भला बुरा नहीं करते। बुरा भलापन केवल हमारे अन्तरंग परिणामो पर निर्भर है। कोई पदार्थ अपने अनुकूल हुआ उससे राग कर लिया और यदि प्रतिकूल हुआ उससे द्वेष। किसी ने अपना कहना मान लिया तो वाहवा, बड़ा अच्छा है और कदाचित् नहीं माना तो बड़ा बुरा है। इस दृष्टि से विचारो तो वह मनुष्य न तो बुरा है और न भला। वह तो केवल निमित्त मात्र है। निमित्त कभी अच्छे बुरे होते नहीं। यह तो मनुष्य के आत्मा की दुर्बलता है जो अच्छे बुरे की कल्पना करता है। कोई कहता है – "स्त्री मुझे नहीं छोडती, पुत्र मुझे नहीं छोड़ता, क्या करूँ धन नहीं छोड़ने देता ?" अरे मूर्ख, यो क्यो नहीं कहता कि मेरे हृदय मे राग है यह नहीं छोड़ने देता। यदि इस राग को अपने हृदय से निकाल दे तो देखे कौन तुझे नहीं छोड़ने देता ? कौन तुझे विरक्त होने से रोकता है ? अपने दोष को नहीं देखता। मैं रोगी हूँ ऐसा अनुभव नहीं करता। यदि ऐसा ही हो जाए तो ससार से पार होने मे क्या देर लगे। यह पहले ही कह चुके हैं कि पदार्थ अपने अपने स्वरूप मे हैं। कोई पदार्थ किसी पदार्थ के आधीन नहीं, केवल मोही जीव ही सशक हुआ उनमे इष्टानिष्ट की कल्पना कर अपने स्वरूप से च्युत हो निरन्तर बधता रहता है। अत हमारी समझ मे तो शान्ति का वैभव रागादिको के अभाव मे ही है।

निर्भयता

संसार मे सात भय होते हैं उनमे से सम्यग्दृष्टि को किसी प्रकार का भय नहीं।

(1) लोक भय

सम्यग्दृष्टि को इस लोक का भय नहीं होता। वह अपनी आत्मा के चेतना लोक मे रहता है और लोक क्या कहलाता है ? जो नेत्रो से सबको दीख रहा है इस लोक से उसे कोई मतलब नहीं रहता, वह तो अपने चेतना लोक मे ही रमण करता है। इस लोक मे भी भैया तभी भय होता है जब हम किसी की चीज चुरायें। परमार्थ दृष्टि से हम सब चोर है जो परद्रव्यो को अपनाये हुए हैं। उन्हे अपना मान बैठते हैं। सम्यग्दृष्टि परमाणु मात्र को अपना नहीं समझता। इसलिए उसे किसी भी प्रकार का लोकभय नहीं है।

(2) परलोक भय

उसे स्वर्ग नरक का भय नहीं। वह तो अपने कर्तव्य पथ पर आरूढ है। उसे कोई भी उस मार्ग से च्युत नहीं कर सकता। वह तो नित्यानन्दमयी अपनी ज्ञानात्मा का ही अवलोकन करता है। यदि सम्यक्त्व के पहले नरकायु का बंध कर लिया हो तो नरक की वेदना भी सहन कर लेता है। वह अपने स्वरूप को समझ गया है। अत उसे परलोक का भी भय नहीं होता।

(3) वेदना भय

वह अपनी भेद विज्ञान की शक्ति से शरीर को जुदा समझता है और वेदना को समता से भोग लेता

है। जानता है कि आत्मा मे तो कोई वेदना है ही नहीं इसलिए खेदखिन्न नहीं होता। इसप्रकार उसे वेदना का भय नहीं होता।

(4) अरक्षा भय

वह किसी को भी अपनी रक्षा के योग्य नहीं समझता। अरे इस आत्मा की रक्षा कौन करे ? आत्मा की रक्षा आत्मा ही स्वयं कर सकता है। वह जानता है कि गढ, कोट और किले आदि कोई भी यहा तक तीनो लोको मे भी इस आत्मा का शरण स्थान नहीं। गुफा, मसान, शैल, कोटर मे वह नि शंक रहता है। शेर, चीते, व्याघ्रों आदि का भी वह भय नहीं करता। आत्मा की पर पदार्थों से रक्षा हो ही नहीं सकती। अत उसे अरक्षा भय भी नहीं।

(5) अगुप्ति भय

व्यवहार मे माल असवाव के लुट जाने का भय रहता है तो सम्यक्त्वी निश्चय से विचार करता है कि मेरा ज्ञान–धन कोई चुरा नहीं सकता। मैं तो एक अखण्ड ज्ञान का पिण्ड हूँ। जैसे नमक खारे का पिण्ड है। खारे के सिवाय उसमे और चमत्कार ही क्या है ? वैसे ही चेतना हर समय मुझ मे मौजूद बनी रहती है। ऐसा ज्ञानी अपनी ज्ञानात्मा के ज्ञान मे ही चिन्तवन करता रहता है।

(6) आकस्मिक भय

वह किसी भी आकस्मिक विपत्ति का भय नहीं करता। भय तो तब करे जब भय की आशका हो। उसका आत्मा निरन्तर निर्भय रहता है। अत उसे आकस्मिक भय भी नहीं होता।

(7) मरण भय

मरण क्या है ? दश प्राणो का वियोग हो जाना ही तो मरण है। पाच इन्द्रिय, तीन बल, एक आयु, एक श्वासोच्छवास इनका वियोग होते ही मरण होता है। परन्तु वह अनाद्यनन्त, नित्योद्योत और ज्ञान स्वरूपी अपने को चिन्तवन करता है। एक चेतना ही उसका प्राण है। तीन काल मे उसका वियोग नहीं होता। अत चेतनामयी ज्ञानात्मा के ध्यान से उसे मरण का भी भय नहीं होता।

इसप्रकार सात भयो मे से वह किसी प्रकार का भय नहीं करता। अत सम्यग्दृष्टि पूर्णत· निर्भय है।

अंग परिपूर्णता

अब सम्यक्त्व के अष्ट अंगो का वर्णन करते हुए बतलाते हैं कि सम्यक्त्वी के ये अग भी पूर्णतया होते है।

(1) नि:शंकित अंग

उसे किसी प्रकार की शंका नहीं होती। वह निधड़क होकर अपने ज्ञान मे ही रमण करता है। सुकौशल स्वामी को व्याघ्र भक्षण करता रहा, पर वह नि शक होकर अन्तर्मुहूर्त मे केवलज्ञानी बने। शंका को तो उसके पास स्थान ही नहीं रहता। उसे आत्मा का स्वरूप भासमान हो जाता है। अत नि·शंकित है।

(2) नि:कांक्षित अंग

आकांक्षा करे तो क्या भोगो की, जिसको वर्तमान मे ही दुखदायी समझ रहा है। वह क्या लक्ष्मी की चाहना करे ? अरे क्या लक्ष्मी भी कहीं स्थिर होकर रही है ? तुम देख लो जिसके लिये अनुकूल निमित्त हुए

उसी के पास दौड़ी चली आई। अत ज्ञानी पुरुष तो इसको स्वप्न मे भी नहीं चाहते। वे तो अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्रमयी आत्मा का ही सेवन करते है।

(३) निर्विचिकित्सा अंग

सम्यग्दृष्टि को ग्लानि तो होती ही नहीं। अरे, वह क्या मल से ग्लानि करे ? मल तो प्रत्येक शरीर मे भरा पड़ा है। तनिक शरीर को काटो तो सिवाय मल के कुछ नहीं। वह किस पदार्थ से ग्लानि करे। सब परमाणु स्वतत्र हैं। मुनि भी देखो, किसी मुनि को वमन करते देखकर ग्लानि नहीं करते और अपने दोनो हाथ पसार देते है। अत सम्यग्दृष्टि इस निर्विचिकित्सा अग का भी पूर्णतया पालन करता है।

(४) अमूढ़दृष्टि अंग

मूढदृष्टि तो तभी है जब पदार्थों के स्वरूप को न समझे और आत्मा मे आत्मबुद्धि न रक्खे। मूढदृष्टि का नहीं होना ही अमूढदृष्टि अग है। सम्यक्त्वी के यह अंग भी पूर्णतया पलता है। क्योकि उसकी निज में अनात्मबुद्धि नहीं होती, तथा उसे भेद विज्ञान प्रकट हो गया है।

(५) उपगूहन अंग

सम्यग्दृष्टि अपने दोषो को नहीं छिपाता। अमोघवर्ष राजा ने लिखा है कि प्रछन्न (गुप्त) पाप ही सबसे बड़ा दोष है जिससे वह निरन्तर सशकित बना रहता है। प्रछन्न पाप बडा दुखदायी होता है। जो पाप किये है उन्हे सामने प्रकट कर देने पर उतना दुख नहीं होता। सम्यग्दृष्टि अपने दोषो को एक एक करके निकाल फेकता है और एक निर्दोष आत्मा को ही ध्याता है।

(६) स्थितिकरण अंग

जब अपने ऊपर कोई विपत्ति आ जाय अथवा आधि व्याधि हो जाय और रत्नत्रय से अपने परिणाम चलायमान हुए मालूम पडे, तब अपने स्वरूप का चिन्तवन कर ले और पुन अपने को उसमे स्थित करे। व्यवहार मे पर को चिगते से सभाले। इस अग को भी सम्यक्त्वी विस्मरण नहीं करता।

(७) वात्सल्य अंग

गौ और वत्स का वात्सल्य प्रसिद्ध है। ऐसा ही वात्सल्य भाईयो से करे। सच्चा वात्सल्य तो अपनी आत्मा ही है। सम्यक्त्वी समस्त प्राणियो से मैत्री भाव रखता है। उसके सदा जीवन पर्यन्त के रक्षा के भाव होते हैं। एक जगह लिखा है –

अय निज परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्कम्।।

"यह वस्तु पराई है अथवा निज की है ऐसी गणना क्षुद्र चित्त वालो के होती है। जिनका चरित्र उदार है उनके तो पृथ्वी ही कुटुम्ब है।" सम्यग्दृष्टि भगवान् की प्रतिमा के दर्शन करता है पर उसमे भी वह अपने स्वरूप की झलक देखता है। जैसा उनका स्वरूप चतुष्टय है वैसा मेरा भी है। वह अपने आत्मा से अगाढ वात्सल्य रखता है।

(८) प्रभावना अंग

सच्ची प्रभावना तो वह अपनी आत्मा की ही करता है पर व्यवहार मे रथ निकालना, उपवास करना

आदि द्वारा प्रभावना करता है। हम दूसरो को धर्मात्मा बनाने का उपदेश करते है परन्तु स्वयं धर्मात्मा बनने की कोशिश नहीं करते। यह हमारी कित्ती भूल है ? अरे, पहले अपने को धर्मात्मा बनाओ दूसरो की चिन्ता मत करो। वह तो स्वयं अपने आप हो जायगा। ऐसी प्रभावना करो जिससे दूसरे कहने लगे कि ये सच्चे धर्मात्मा है। भगवान् को ही देखो उन्होनें पहले अपने को बनाया दूसरो को बनाने की परवाह उन्होने कभी नहीं की।

इसप्रकार सम्यग्दृष्टि उक्त अष्ट अगो का पूर्णतया पालन करता हुआ अपनी आत्मा की निरन्तर विशुद्धि करता रहता है। अत सम्यग्दृष्टि बनो। समता को लाने का प्रयत्न करो। समता और तामस ये दो ही तो शब्द हैं। चाहे समता को अपना लो या चाहे तामस को। समता मे सुख है तो तामस मे दुख है। समता यदि आ जायगी तो तुम्हारी आत्मा में भी शान्ति प्राप्त होगी। सन्देह मत करो।

मिथ्यादृष्टि

जो आत्मा और अनात्मा के भेद को नहीं जानता वह मिथ्यादृष्टि है। वास्तव मे देखो तो यह मिथ्यात्व ही जीव का भयकर शत्रु है। यही चतुर्गति मे रुलाने का कारण है। दो मनुष्य है। पहले को पूर्व की ओर जाना है और दूसरे को पश्चिम की ओर। जब दोनो एक स्थान पर आये तो पहले को दिग्भ्रम हो गया और दूसरे को लकवा लग गया। पहले वाले को जहा पूर्व की ओर जाना चाहिए था किन्तु दिग्भ्रम होने से वह पश्चिम की ओर जाने लगा। वह तो समझता है कि मै पूर्व की ओर जा रहा हूँ वास्तव मे वह उस दिशा से उतना ही दूर होता जा रहा है और दूसरे लकवे वाले को हालाकि पश्चिम की ओर जाने मे उतनी दिक्कत नही है, क्योकि उसे तो दिशा का परिज्ञान है। वह धीरे धीरे उस अभीष्ट स्थान पर पहुँच ही जायगा। परन्तु पहले वाले को तो हो गया है दिग्भ्रम। अत ज्यो ज्यो वह जाता है त्यो त्यो उसके लिए वह स्थान दूर होता जाता है। इसी तरह यह मोह मिथ्यात्व मोक्षमार्ग से दूर ला पटकता है। शेष तीन घातिया कर्म तो जीव के उतने घातक नहीं। वे तो इस मोह के नाश हो जाने से शनै शनै क्षय को प्राप्त हो जाते है पर बलवान् है तो यह मोह मिथ्यात्व, जिसके द्वारा पदार्थों का स्वरूप विपरीत भासता है। जैसे किसी को कामला रोग हो जाय तो उसे अपने चारो ओर पीला ही पीला दिखाई देता है। शख यद्यपि श्वेत है परन्तु उसे पीला ही दिखाई देता है। उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय होने से पदार्थ दूसरे रूप मे दिखलाई देता है।

मिथ्यादृष्टि शरीर के मरण मे अपना मरण शरीर के जन्म मे अपना जन्म और शरीर की स्थिति मे अपनी स्थिति मान लेता है। कदाचित् गुरु का उपदेश भी मिल जाय तो उसे विपरीत भासता है। इन्द्रियो के सुख मे ही अपना सच्चा सुख समझता है। पुण्य भी करता है तो आगामी भोगो की वाञ्छा से। ससार मे वह पूर्ण आसक्त रहता है और इसीलिए बहिरात्मा कहलाता है।

अत मिथ्यात्व के समान इस जीव का कोई अहितकर नहीं। इसके समान कोई बडा पाप नहीं। यही तो कर्मरूपी जल के आने का सबसे बडा छिद्र है जो नाव को ससार रूपी नदी मे डुबोता है। इसी के ही प्रसाद से कर्तृत्व बुद्धि होती है। इसलिए यदि मोक्ष की ओर रुचि है तो इस महान् अनर्थकारी विपरीत बुद्धि को त्यागो। पदार्थों का यथावत श्रद्धान करो। देह मे आपा मानना ही देह धारण करने का बीज है।

सम्यक्त्वी मिथ्यात्वी में अन्तर

(क) लक्ष्य की अपेक्षा

सम्यक्त्वी का लक्ष्य केवल शुद्धोपयोग मे ही रहता है वह बाह्य मे वैसा ही प्रवर्तन करता है जैसे मिथ्यादृष्टि परन्तु दोनो के अन्तरग अभिप्राय प्रकाश और तम के समान सर्वथा भिन्न है।

मिथ्यादृष्टि भी वही भोग भोगता है और सम्यक्त्वी भी वही। बाह्य मे देखो तो दोनों की क्रियाये समान है। परन्तु मिथ्यादृष्टि राग मे मस्त हो झूम जाता है और सम्यक्त्वी उसी राग को हेय जानता है यही कारण है कि मिथ्यादृष्टि के भोग बन्धन के कारण हैं और सम्यक्त्वी के निर्जरा के लिए हैं।

(ख) निर्मल अभिप्राय की अपेक्षा

सम्यक्त्वी बाह्य मे मिथ्यादृष्टि जैसा प्रवर्तन करता हुआ भी श्रद्धा मे राग द्वेषादि के महत्व का अभाव होने से अबन्ध है, और मिथ्यादृष्टि राग द्वेषादि के स्वामित्व के सद्भाव से निरन्तर बधता ही रहता है, क्योकि आन्तरिक अभिप्राय की निर्मलता मे दोनो के जमीन—आकाश सा अन्तर है।

(ग) दृष्टि की अपेक्षा

सम्यक्त्वी की अन्तरग दृष्टि होती है तो मिथ्यात्वी की बहिर्दृष्टि। सम्यक्त्वी ससार में रहता है पर मिथ्यात्वी के हृदय मे ससार रहता है। जल के ऊपर जब तक नाव है तब तो कोई विशेष हानि नहीं; पर जब नाव के अन्दर जल बढ जाता है तो वह डूब जाती है। एक रईस है तो दूसरा सईस। रईस के लिए बग्गी होती है तो बग्गी के लिए सईस। मिथ्यात्वी शरीर के लिए होता है तो सम्यक्त्वी के लिए शरीर। दोनो बहिरे होते हैं, वह उसकी बात नहीं सुनता और वह उसकी नहीं सुनता। वैसे ही मिथ्यात्वी सम्यक्त्वी की बात नहीं समझता और सम्यक्त्वी मिथ्यात्वी की। वह अपने स्वरूप मे मग्न है और वह अपने रग मे मस्त है।

(घ) भेद-विज्ञान की अपेक्षा

देखिये जो आत्मा और अनात्मा के भेद को नहीं जानता वह आगम मे पापी ही बतलाया है। द्रव्यलिगी मुनि को ही देखो वह बाह्य मे सब प्रकार की क्रिया कर रहा है। अट्ठाईस मूलगुणो को भी पाल रहा है। बडे—बड़े राजे महाराजे नमस्कार कर रहे हैं। कषाय इतनी मन्द है कि घानी मे भी पेल दो तो त्राहि न करे। पर क्या है ? इतना होते हुए भी यदि आत्मा और अनात्मा का भेद नहीं मालूम हुआ तो वह पापी ही है। अवश्य मुनि है पर अन्तरग की अपेक्षा से मिथ्यात्वी है। उसकी गति नव ग्रैवेयक के आगे नहीं। ग्रैवेयक से च्युत हुआ और फिर वहीं पहुँचा। फिर आया फिर गया। इस तरह उसकी गति होती रहती है।

द्रव्यलिगी चढता उतरता रहता है पर भावलिगी एक दो भव मे ही मोक्ष चला जाता है। तो कहने का प्रयोजन यह है कि सम्यक्त्वी उस अनादिकालीन ग्रन्थी को जो आत्मा और अनात्मा के बीच पड़ी हुई थी अपनी प्रज्ञारूपी छैनी से छेद डालता है। वह सबको अपने से जुदा समझता हुआ अन्तरग मे विचार करता है —"मैं एकमात्र सहज शुद्ध ज्ञान और आनन्द स्वभाव हूँ। एक परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है।" उसकी गति ऐसी हो जाती हैं जैसे जहाज का पक्षी उडकर जाय तो बताओ कहा जाय। इस ही को एकत्व एव अद्वैत कहते है। "ससार मे यावत् जितने पदार्थ है वह अपने स्वभाव से भिन्न है।" ऐसा चिन्तवन करना यही तो अन्यत्व भावना है। अत सम्यक्त्वी अपनी दृष्टि को पूर्णरूपेण स्वात्मा पर केन्द्रित कर देता है।

(ङ) सहनशीलता की अपेक्षा

देखिये मुनि जब दिगम्बर हो जाते हैं तो हमको ऐसा लगता है कि कैसे परीषह सहन करते हैं ? पर हम रागी और वे वैरागी उनसे हमारी क्या समता ? उनके सुख को हम रागी जीव नहीं पा सकते। सुकुमाल स्वामी को ही देखिये। स्यालिनी ने उनका पैर विदारण करके अपने क्रोध की पराकाष्ठा का परिचय दिया, किन्तु वे स्वामी उस भयकर उपसर्ग से विचलित न होकर उपशम क्षेणी द्वारा सर्वार्थसिद्धि के पात्र हुए। तो देखो यह सब अन्तरंग की बात है। लोग कहते हैं कि भरतजी घर मे ही वैरागी थे। अरे, वह घर मे वैरागी थे तो तुम्हे क्या मिल गया ? उनको शान्ति मिली तो क्या तुम्हे मिल गई ? उनने लड्डू खाये तो क्या तुम्हारा पेट भर गया ? अरे, यो नहीं, "हमे भी घर मे वैरागी" ऐसी रटना लगाओ। यदि तुम घर में वैरागी बनकर रहोगे तो तुम्हे शान्ति मिलेगी। उनकी रटना लगाये रहो तो बताओ तुमने क्या तत्व निकाला ? तत्व तो तभी है जब तुम वैसे बनोगे। ज्ञानार्णव मे लिखा है कि सम्यग्दृष्टि दो तीन ही हैं। तो दूसरा कहता है कि अरे, दो तीन तो बहुत कह दिए यदि एक ही होता तो हमारा कहना है कि हम ही सम्यग्दृष्टि हैं। अत. अपने को सम्यग्दृष्टि बनाओ। ऊपर से छल कपट किया तो क्या फायदा ? अपने को माने सम्यग्ज्ञानी और करे स्वेच्छाचारी यह तो अन्याय हुआ। सम्यग्दृष्टि निरन्तर अपने अभिप्रायो पर दृष्टिपात करता है। भयंकर से भयकर उपसर्ग मे भी वह अपने श्रद्धान से विचलित नहीं होता, सम्यक्त्वी को कितनी भी बाधा आये तो भी वह अपन को मोक्षमार्ग का पथिक ही मानता है।

सम्यक्त्वी का लक्ष्य शुद्धोपयोग

सम्यक्त्वी भगवान् के दर्शन करता है पर उस मूर्ति मे भी वह अपने शुद्ध स्वरूप की झलक पाता है। हम भगवान् के दर्शन करते हैं तो हमे उनके दर्शन, ज्ञान, चारित्र ही तो रुचते हैं और है क्या ? क्योकि जैसा अर्थ चाहता है उसी अर्थी के पास जाता है। जो धन का अर्थी होगा वह धनिको की सेवा करेगा। वह हम सरीखो के पास क्यो आवेगा ? और जो मोक्षमार्गी होगा वह भगवान् की सेवा करेगा। हमे भगवान के दर्शन, ज्ञान और चारित्र रुचते हैं, तभी तो हम उनके पास जाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्वी का लक्ष्य केवल शुद्धोपयोग रहता है, लेकिन फिलहाल वह शुद्धोपयोग पर चढने के लिए असमर्थ है, इसलिए शुभोपयोग रूप प्रवर्तता है, पर अन्तरग मे जानता है कि वह मेरे शान्ति मार्ग मे बाधा करने वाला है। यदि शुभोपयोग से स्वर्गादिक की प्राप्ति हो जाय तो उसमे उसके लक्ष्य का तो दोष नहीं है। देखिये, मुनि तपश्चरणादि करते हैं जिससे उन्हे स्वर्गादिक मिल जाता है। पर तप का कार्य स्वर्ग की विभूति दिलाना तो नहीं है। चूंकि उस तप से वह मुनि शुद्धोपयोग की भूमि को स्पर्श नहीं कर सका इसलिए शुभोपयोग द्वारा स्वर्गादिक की प्राप्ति हो गई। जैसे किसान का लक्ष्य तो बीज बोकर धान्य उत्पन्न करना है पर उसको घास फूसादि की प्राप्ति स्वयमेव हो जाती है। यथावत् शुभोपयाग होने से स्वर्गादिक मिल जाता है। पर स्वर्गों मे बेसी क्या है ? तनिक वहाँ ज्यादा भोग है। कल्पवृक्षो की छाया है। यहाँ ईंट चूने के मकान है वहाँ हीरे कंचन के प्रासाद हैं और क्या ? ज्यादा से ज्यादा अप्सराओ के आलिंगन का सुख है, सो भी क्षणिक और अनन्त दुखदायी। लेकिन अनुपम, अलौकिक, अतीन्द्रिय सच्चा शाश्वत सुख तो सिवाय अपनी आत्मा के और कहीं नहीं है। इसी की प्राप्ति के लिए सम्यक्त्वी का लक्ष्य एकमात्र शुद्धोपयोग होता है।

(पण्डितजी ने यह आलेख सन् 1947 मे सागर में लिखा था – सम्पादक)

स्व.पण्डित गोरेलालजी द्रोणगिरि का लोकोपयोगी धार्मिक साहित्य

— *पण्डित विजयकुमार जैन*

यो तो प्राय कोई भी साहित्यकार स्वान्त सुखाय ही साहित्य रचना करता है, पर स्वत. ही वह लोकोपयोगी और मानवतावादी हो जाता है। स्व श्री प गोरेलालजी शास्त्री जब अध्यापन कार्य सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि से सम्बन्धित सस्थाओ के प्रबन्ध, लेखा—जोखा तथा समाजिक एव पारिवारिक कार्यो से निवृत्त हो जाते थे तब एकान्त मे बैठकर स्वान्त सुखाय साहित्य रचना मे सलग्न हो जाते थे। भले ही उन्होनें अपने साहित्यकार को सचित और सुरक्षित न रखा हो पर वे अपने अधिकाधिक व्यस्त जीवन मे से कुछ समय साहित्य रचना की प्रवृत्ति मे अवश्य लगाते थे। उनका साहित्य हमे 5—6 छोटी—छोटी रचनाओ मे ही मिलता है। रीतिकालीन कविवर — महाकवि विहारी की यशश्चन्द्रिका का आधार भी तो केवल 700 दोहे हैं ठीक इसी प्रकार से श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री की कीर्ति एक साहित्य कार के रूप में है। श्री प जी के द्वारा लिखित साहित्य मे (1) बारह भावना (2) जैन गारी सग्रह भाग—1,2 (3) भजन संग्रह (4) द्रोणगिरि अर्चना (5) सुमन सचय रचनायें प्रकाशित हैं। उनकी अधिकतर रचताये तो साधनो के अभाव मे अप्रकाशित ही रहीं व विलुप्त हो गयीं। कारण उन दिनो द्रोणगिरि क्षेत्र प्रिटिग.प्रेसो से दूर पडता था तथा प्रकाशित करने की सुव्यवस्था मे उस समय अनेक व्यवधान थे।

स्व पण्डितजी की साहित्यिक रचनाओ का साहित्यिक वैशिष्ट्य मैं इसप्रकार देखता हूँ।

बारह भावना

आत्मकल्याणार्थी को वस्तु स्वरूप के यथार्थ परिज्ञान के लिये, ससार और भोगो से विरलता की ओर ले जाने वाली बारह भावनाओं का निरन्तर चिन्तवन करना चाहिए। इसकी प्रस्तावना मे कहा गया है — संसार शरीर आदि के यथार्थ स्वरूप का बार—बार चिन्तवन करने को भावना कहते हैं कारण इनका चिन्तवन करने से वस्तु स्वरूप की अनुभूति और कर्मों का आस्रव मन्द होता है यही कारण है कि इनके चिन्तवन को कारणो मे गिनाया गया है। श्री पण्डितजी द्वारा रचित बारह भावना मे चिन्तवन का उद्देश्य यहाँ बताया गया है —

द्वादश भावन के भावन से शक्ति अनूपम मिलती है।
मोह कर्म की अतिदृढ ग्रन्थी सहज रीति से खुलती है।।

अनुपम शान्ति रसास्वादन के इच्छुक व्यक्ति मोह की दृढ ग्रन्थियो को भावनाओ के चिन्तवन से ही शिथिल करते हुए खोल पाते हैं।

अनित्य भावना मे पौराणिक गाथा का तो उल्लेख किया ही गया है जग के सकल पदार्थो को जल तरग की तरह चपल बताया गया है। जवानी मे सौन्दर्य और भोगोपभोगो की उपलब्धि को मेघाच्छन्न समय मे बिजली की भाति अस्थिर और चपल बताया गया है। साथ ही निज़ स्वरूप की लीनता को ही सुखदायी कहा गया है। कितनी उद्‌बोधक पक्तिया हैं—

कोई नहीं मरण से जग में रक्षा करने वाला है।
उभय लोक में शान्तिप्रदायक एक धरम का प्याला है।।

एकत्व भावना के चिन्तन मे कहा गया है –

शुभ या अशुभ रूप जिय जैसा कर्म उपार्जन करता है।
अच्छा और बुरा फल उसका वही अकेलां सहता है ।।

देह और चेतन की भिन्नता बताते हुए कहा गया है –

देह अचेतन जिय चेतन है रूपी देह अरूपी जीव।
ज्ञानी जीव देह अज्ञानी यही भिन्नता लखो सदीव।।

निर्बन्ध होने के लिये कैसी सुन्दर सूक्ति कही गयी है –

नहीं जीव का पर जीवो से है कोई सच्चा सम्बन्ध।
भेद ज्ञान से जो यह समझे हो जाते हैं वह निर्बन्ध।।

सासारिक दु खो के कारण कर्मो को नष्ट करने के लिए यहाँ राग–द्वेष मय परिणामों के स्थान पर आत्म परिणति मे लीन होना बतलाया गया है। यथा –

राग द्वेष भावों के कारण आस्रव स्रोत बहा करता।
दूर किये ही इस परिणति को जीव निरास्रव पद लहता ।।

धर्म की परिभाषा धर्म भावना मे बड़ी सुन्दर रीति से दी गई है –

मोहभाव से रहित जीव का जो सद्‌भाव प्रकट होता।
यही भाव सद्धर्म जगत् में शान्ति सुधा का वर स्रोता ।।

इस प्रकार बारह भावनाओ की प्रसाद पूर्ण रचना मे अन्तस् को छूने वाली अनेक सूक्तियो मे वस्तु स्वभाव का विवेचन किया गया है साथ ही कल्याणार्थी पुरुष को मोह निद्रा से जागने की प्रेरणा की गई है। काव्य की दृष्टि से भी रचना बडी महत्वपूर्ण है।

हिन्दी के विष्णुपद छन्द मे निबद्ध इस रचना मे पूरी तरह गेयात्मकता है। शब्द चयन प्रसन्न है तथा अलकारो का प्रयोग भी स्वाभाविक है।

भावन–भावत मे सुन्दर अनुप्रास है। मोह कर्म की दृढ ग्रन्थी काल–वाहिनी भवारण्य भवकानन मुक्ति रमा मोह वारुणी, आदि शब्दो मे स्वाभाविक रूप से रूपकालकार द्वारा अर्थ को हृदयगम कराया गया है। उपमालकार का भी यथावस्थित प्रयोग मिलता है। यथा –

"जल तरग की भाति चपल है जग में जीवन प्राणी का" – यहाँ पूर्णोपमा देखिये – उपमा के चारो अग यहाँ है –

प्राणी का जीवन – उपमेय।	जल तरग – उपमान।
चपल– साधारण पद।	भाँति– वाचक पद।

इसीतरह – *"मेघ समय बिजली सम चंचल; भोग समूह अथिर सारे।"* तथा

"ज्यो कानन के मध्य नहीं मृग हरि से कोई बचा सकता।
भवारण्य मे नहीं मृत्यु से जीवन कोई बचा सकता।" आदि मे वाक्योपमा का सुन्दर निर्बहण है।

उपमा का एक उदाहरण यह भी हे –

सदा नालियों के द्वारा ज्यो सर का जल बहता रहता।
त्यो भोगों से कर्म जाल का आस्रव नित होता रहता।।

सुमन संचय

सुमन सचय मे अकारादि कम से वर्णमाला अडतालीसी लिखने के बाद अनेक नीति परक दोहे लिखे गये है। इन दोहो में जीवन को उन्नत बनाने की प्रेरणा की गई है। काव्य दृष्टि से रचना उत्कृष्ट है बोध की सरलता हेतु दृष्टान्तादि अलकारो का भी समुचित प्रयोग हुआ है। यथा –

"ईश्वर के शुभ भजन विन नर जीवन निस्सार।
जैसे विधवा नारि का निष्फल है श्रृंगार।।"

"ऊसर पृथ्वी मे पड़ा बीज विफल हो जाये।
ज्यों दुरजन उपदेश सुन देते शीघ्र गमाय।।"

इस पुस्तिका मे लगभग 250 दोहो का सचय है, जो बालको, बूढो सभी को उपयोगी है। सचमुच ही इसका एक–एक दोहा एक–एक रत्न है।

द्रोणगिरि अर्चना

यह सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि जी की पूजन है। प्रारम्भ मे द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र की महिमा, पवित्रता एव प्राकृतिक शोभा का प्राञ्जल वर्णन है। यथा –

इस महा भयानक अटवी मे निज आत्म साधना के बल पर।
आ गये वीर विधि से लडने ले बाँध खड्ग कर में यतिवर ।।

यह पूजन प्रसाद गुण से भरी एक भाव पूर्ण रचना है। जयमालिका मे गुरुदत्त मुनीश्वर के कठोर तप का सार्थक वर्णन तपश्चरण की गरिमा प्रकट करता है।

जैन गारी संग्रह

बुन्देलखण्ड की समाज मे महिलाओ द्वारा सामाजिक उत्सव, विवाह, सगाई, बालको के जन्मोत्सव, सामूहिक आनन्दोत्सव आदि के समय गीत गाने की प्रथा है। इन अवसरो पर महिलाए एकत्र होकर क्रम–क्रम से गाया करती हैं। हँसी मजाक के बीच कभी सीमा को लाँघकर फूहड अश्लील गीत गाये जाने से बालकों पर बुरा असर पडता था अतएव उनकी रुचि को परिष्कृत कर के फूहड और अश्लील गीतो के स्थान पर धार्मिक गीत गाने की प्रेरणा से यह कृति लिखी गई है। इन गीतो मे अनेक पौराणिक उपाख्यानो से युक्त गीत गारियाँ बडी आकर्षक हैं जिनसे जीवन मे तात्कालिक मनोरजन के अतिरिक्त त्याग, तपस्या, दया, सयम, शील, सदाचार की भी प्रेरणा मिलती है। नेमिनाथ भगवान् को लेकर गायी गई गारी इसप्रकार है –

लीना सुरपद से अवतारी,
तुम प्रभु जगजीवन हितकारी।
सुरनर जय–जय शब्द उचारी,
हर्षित हुई द्वारिका सारी,

यदुकुल उजियारे जू,
त्रिभुवन नाथ हमारे जू।।

संसार की क्षणिकता निम्न गारी मे दर्शायी गई है –

जग की सारी झूठी माया वृथा प्रीति तन धन में।
स्वारथ के सब सगे कुटुम्बी कोउ न जाते संग मे।
तनिक उठ देखो भैया अपना कोउ न जग में।।

एक गारी मे प्रभु का नाम जपने की प्रेरणा की गई है और बताया गया है कि नरभव का फिर मिलना कठिन है –

बहुदिन गये निगोद मंझारी जन्म–मरण अठारहवारी,
कीने एक श्वास मे भारी जिससे भोगा दु.ख अपारी।
वहाँ पाया न कुछ विश्राम हो नरभव फिर न मिले।।

निम्न गारी मे मोह नींद मे सोयो को जगाया गया है –

तुम सुनो हमारे चेतन भैया अपनी सुधि विसरैया।
मोह महामद पीकर जग मे निज को वृथा भ्रमैया।।
तुम सुनो हमारे चेतन भैया . .....।

बुन्देलखण्डी भाषा मे महिला लोक गीतो को जो महिला समूह मे मिल कर गाये जाते हैं, "गारी" शब्द से सम्बोधित किया जाता है। गारी शब्द मे गा–प्रेरणार्थक गाने अर्थ मे क्रिया है तथा री अपनी सखियो के लिये सम्बोधित शब्द है। गा ' अरी सरकी तगा – से गारी बन गया। गारी गीत लिखने का प्रयोजन श्री पण्डितजी ने इसी गारी सग्रह की छह पक्तियो मे इस प्रकार बताया है –

अरी बहनो तजो निद्रा सुभग सन्देश यह सुन लो।
गीत फूहड न गाने की प्रतिज्ञा आज ही कर लो।।
बुरे गीतो को मत गाओ कि जिससे दिल बिगड़ता है।
तुम्हारी सन्तति पर भी असर खोटा ही पडता है।।
अविद्या से तुम्हारी आज अवनति हो रही भारी।
नहीं वह आप में शिक्षा कि जो है आत्म हितकारी।।

भक्ति पीयूष

स्व श्री पण्डित जी की एक अन्य रचना भजन संग्रह है जो "भक्ति पीयूष" नाम से है। लगभग 25–30 भजनो का सग्रह इसमे है।

भगवान् की भक्ति मे रगने हेतु या आत्म कल्याण की प्रेरणा करने वाले गीतो को भजन कहते हैं। भजन संग्रह मे कुछ गीत समाज सुधार के प्रेरक है, कुछ आध्यात्मिक हैं, कुछ भक्ति रस से लवालव हैं तो कुछ पौराणिक उपाख्यानो की स्मृति दिलाने वाले है।

भगवान् ऋषभ से मिला दो कोई।
उनका मुझको दर्श करा दो कोई।।

एक भजन मे पचेन्द्रिय विषयो की लालसा छोडने की प्रेरणा भी है –

रे जीव तू विषयों में क्यों अचेत हो पडा।
इससे किया है कर्म का बन्धन तूने बडा।।

धार्मिक समारोहो मे गाकर प्रेरणा उत्पन्न करने वाले भी कुछ गीत है। यथा –

1 सब मिल के आज जय कहो श्री जैन धर्म की।
2 जिन धर्म का झण्डा भारत में, फिर हम मिल आज गढा देगे।
3 जयन्ती वीर की मनाना ही मुनासिब है।

इसी प्रकार व्यक्ति सम्बोधनकारी भी कुछ भजन दृष्टव्य है। यथा –

1 कुछ करो स्वपर कल्याण मनुष गति पाई।
2 कुछ भी करो शिक्षण ग्रहण उन रामचन्द्र की।
3. रे जीव क्यों आसक्त हो संसार मे पगा।
4. तज विषय भोग नित भजन करो हे प्यारे।

इसप्रकार उनका प्रकाशित साहित्य सख्यात्मक दृष्टि से कम जरूर है पर सामाजिक सुसस्कारो की दृष्टि से महनीय है, पाठको, चिन्तको एव आत्म कल्याण के इच्छुको को तो अति महत्वपूर्ण है। पुरुष हो या महिलायें, विद्वान् हो या विचारक भगवद् भक्त हो या सुसस्कार इच्छुक सभी के लिये उनके साहित्य मे मननीय सामग्री है।

• एम ए. साहित्याचार्य
श्री महावीरजी (राज)

□□□

बारह भावना : एक समीक्षा

— *लक्ष्मण प्रसाद "प्रशान्त"*

अनन्तानन्त भव धारण करने के बाद चिन्तामणी रत्न की तरह मनुष्य पर्याय प्राप्त होती है। यही एक ऐसी पर्याय है जिसे प्राप्त करने के लिये देवँता भी तरसते हैं। *"नंर काया को सुरपति तरसें सो दुर्लभ प्राणी"* मनुष्य पर्याय मिलने के बाद भी उसका सदुपयोग कर जीवन सुफल बनाने वाले व्यक्ति ढूँढने पर मुश्किल से ही मिलते हैं। महाकवि तुलसीदासजी ने रामचरित मानस मे ईसी भाव को इसप्रकार लिखा है— *"बड़े भाग्य मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ मुनि ग्रन्थन गावा।"* इस हकीकत का आभास भोग विलासो मे डूबे हुये व्यक्ति को तब तक नहीं होता जब तक उसे सासारिक दु ख—थपेडे उसकी अन्तरात्मा को उद्विग्न नहीं कर देते। थपेड़े खाने के बाद ही उससे छुटकारा पाने के लिये मानव मस्तिष्क मे वस्तु स्थिति का यथार्थ रूप उपस्थित होता है जिससे मनुष्य को ससार की प्रत्येक वस्तु मे छिपी असलीयत का भान होने लगता है ओर वह अनुभव शून्य रूप न हो इसलिये उसे बार—बार दोहराता है जिससे उसकी मनोवृत्ति विषयासक्ति से हटकर विराग की ओर बढने लगती हे। इसी चिन्तन की धारा को महापुरुषो ने अनुप्रेक्षा का नाम दिया है जिसे बोलचाल की भाषा मे हम "भावना" कहते हैं। ससार के दु खो से मुक्ति पाने के लिये विभिन्न विषयो की असलीयत पर दृष्टि जाती हे वह द्वादशानुप्रेक्षा या बारह भावना कहलाती हे।

मैने बचपन मे अपनी मां से चक्की से आटा निकालते समय इस तरह के वैराग्य वर्धक स्वर सुने थे जो वज्रजघ चक्रवर्ती की 12 भावनाओ के नाम से जाने जाते थे। बचपन से पाठशाला मे प्रवेश करने पर मैंनें उन्हीं विचारो को भूधरदास कृत 12 भावनाओ के नाम से पढा। और उन्हीं विचारो को मेरे आद्यगुरु पूज्य प गोरेलालजी ने अपने छन्दो मे बाधकर हम विद्यार्थियो को गेय रूप मे देकर गुनगुनाने का सुअवसर प्रदान किया। निश्चय ही पण्डितजी द्वारा रचित भावनाये विचारो की यथार्थता के साथ धारावाहिक लय प्रदान कर गाने वाले के मन को आनन्द से भर देती हैं। रचनाकार का मन किंसी भी वस्तु को नित्य रूप मे नहीं देख पाता और उसकी अस्थिरता को निम्न शब्दो मे कह उठता है —

जल तरंग की भांति चपल है
जग में जीवन प्राणी का,
रहता नहीं सुथिर काया में
यह सौन्दर्य जवानी का।।

कवि कह उठता है कि जिस जवानी पर हम दीपक पर पतंगे की भांति मोहित हो रहे हैं वह हमे बहुत कष्टदायी है। उससे मोह छोड़ देने पर ही हमारा कल्याण हो सकता है। यह होना संभव है —

यों जीव जग की सारी माया
मोह तजे यतिवर ज्ञानी।
निज स्वरूप में लीन रहे नित
है यथार्थ जो सुखदानी।।

ससार मे जो जन्म लेता है, उसे मरण अवश्य करना पड़ता है परन्तु मरण की कल्पना ही कितनी भयावह होती है यह तो वही जानता है जिसके मन मे मरण का विचार आ गया हो। उस मृत्यु से बचने के

हजारो उपाय व्यक्ति करता है परन्तु यथार्थ स्थिति को जानने वाला कवि कह उठता है —

" ज्यो कानन के मध्य नहीं मृग हरि से कोई छुड़ा सकता।
भवारण्य मे नहीं मृत्यु से जीवन कोई बचा सकता।। "

सभी पुत्र पुत्री आदि को अपना मानने वाला यह ससारी प्राणी उनके भरण—पोषण के लिये न्याय अन्याय सभी कुछ भूलकर जघन्य से जघन्य पाप करता है वह यह भूल जाता है कि मैं जिन के लिये यह पाप करे रहा हू वे इसका फल भोगने मे सहायक होगे क्या ? यहाँ कवि सचेत करता हुआ कह उठता है —

" जब विपाक इन दुष्कर्मों का उदयाबलि में आता है।
वही अकेला विलख विलख कर नाना विध दुःख पाता है।। "

इस ससार मे व्यक्ति स्वय सुख दु:ख को अकेला ही भोगता है अन्य नहीं।

मेहमान को बुलाने की जब हम पूरी तैयारी करते हैं तो मेहमान नि सकोच चला आता है उसे आने मे देर नहीं लगती। चेतन आत्मा कर्मों की अगवानी करने को जब उद्यत हो जाती है तभी कर्म आते हैं अन्यथा मजाल कि कोई विना मर्जी के घर मे प्रवेश पाले — इसी भाव को कवि ने सवर भावना मे चित्रित किया है —

जैसे नहीं नाव में आता
छिद्र बन्द करने से नीर।
आस्रव रुकने से नहि रहती
त्यो नूतन कर्मों की पीर।।

ससार मे क्या अच्छा है ? क्या बुरा है ? किसका, किससे क्या सम्बन्ध है ? मैं कौन हूँ ? और वह कौन है ? इसका ज्ञान भलीभाति हो जाये तो व्यक्ति उत्तम सुख पाने मे सफल जो जाता है। इस प्रकार के मार्मिक विचार रखते हुये कवि बोधिदुर्लभ भावना के माध्यम से कहता है — ससार मे प्रत्येक को वस्तु की चाहना कठिन नहीं है, यदि कठिन है तो केवल भेदज्ञान की समझ पाना।

स्वपर वस्तु का भेदज्ञान वह, अतिदुर्लभ जानो भाई।।

पण्डितजी द्वारा रचित बारह भावनाये शब्द—सगठन, भावचयन एव लय प्रवीण है। ये भावनाये अपने भूले प्रिय को पाने मे सकेतो का काम करती हैं। इन भावनाओ को अधरों पर बिठाते ही मुझे रामकुमार वर्मा की वह पक्तिया याद आ जाती हैं —

हाय स्वप्न संकेतो से मै कैसे तुमको पास बुलाऊँ
प्रिय ! तुम भूले मैं क्या गाऊँ।।

हमारी भावनाओ मे शक्ति है तो प्रिय का पाना कठिन नहीं है। चिन्तन की धारा " गहरे पानी बैठ " मे ही सफल होती है।

व्यक्ति ससार के सघर्षों से जब ऊब जाता है तब उसे किसी भी ओर आशा की किरण दिखाई नहीं देती। उसे यह ससार धन—धान्य, महल ,मकान, स्त्री—पुत्र सब व्यर्थ दिखते है। उसे कोई शरण दिखाई नहीं देता तब निराश होकर उसकी शरण को अगीकार करता है जिसे धर्म कहते है। जिसे मनीषियो ने "धर्म एव सदा बन्धु स एव शरण मम। इह वान्यत्र ससारे इति त पूजयेऽधुना" लिखा है। इसी धर्म की आराधना की ओर कवि भी सचेत करता हुआ कहता है —

वीतराग उपदिष्ट धर्म ही
उत्तम सौख्य प्रदाता है।
इसकी प्राप्ति किये बिना नहीं
संसृति का दु ख जाता है।।

दु खो से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय धर्माराधना है दूसरा नहीं। इसप्रकार कवि की यह "बारह भावना" हृदय से निकले सच्चे उदगारो की प्रतीक सरस, सफल एव सार्थक शब्द विन्यास से गुम्फित रचना है।

जीवन को उन्नति या अवनति को ओर ले जाने मे परिणामो की प्रमुख भूमिका होती है व्यक्ति के परिणाम शुभ–अशुभ या शुद्ध रूप से परिणत होते हैं। जब परिणाम शुभ की ओर झुकते हैं तो अच्छी गति या शुभ फल प्राप्त होता है। स्वर्गादिक की प्राप्ति शुभ परिणामो का फल है। जब परिणामो मे विकलता या व्यग्रता आती है आत्म स्वरूप से हटकर पर की बुराई की ओर जाते है तब जीव को अशुभ का बन्ध कराकर नरकादि योनियो मे परिभ्रमण कराने वाले जो परिणाम होते है जिन्हे अशुभ कहते है। किन्तु जब दोनो प्रकार के परिणामो से हटकर आत्मा मे निर्मलता जग जाती है तो उसे शुद्ध कहते है। शुभ या अशुभ, पुण्य या पाप सब क्रियाओ से दूर रहने से ही साम्यभाव जागृत होता है और यही भाव दु ख से मुक्ति दिलाने मे सहायक होता है। शाश्वत, अविचल पद भी इसी प्रक्रिया से प्राप्त होता है। देखिये एक छन्द –

पुण्य पाप उपजाने वाले भाव नहीं जो करते है।
केवल स्वात्मरूप अनुभव में लीन हमेशा रहते है।
वही भाग्यशाली नर पुगव आते कर्म खिपाते है।
इसी रीति से अवसर पाकर अचल अमल पद पाते है।

अचल अमल पद पाने मे निर्जरा का प्रमुख हाथ है। राही के सिर पर रखा हुआ बोझ उसे मजिल तक पहुँचने मे बाधक होता है। यदि उसका भार हल्का हो जाये तो उसकी राह सुगम हो जाती है और वह सुगमता से बढता हुआ मजिल तक पहुँच जाता है। बोझ दु खदायी होता है और भारहीनता आनन्द दायक होती है। मोक्ष के मार्ग मे भार बाधक है अत. निर्भार होना अति आवश्यक है। यह भार हम अपने द्वारा किये हुये शुभाशुभ कर्मो के बन्धन रूप है जिसे दूर किये बिना अगुरुलघुत्व की प्राप्ति नहीं होती है। इस भार को जिस रीति से कम किया जाता हे उसे निर्जरा कहते है। शास्त्रो मे निर्जरा दो प्रकार की है सविपाक और अविपाक। सविपाक यथा समय होती रहती है किन्तु अविपाक् तपश्चरणादि किये बिना नहीं होती जो निश्चय ही मुक्ति का साधक होती है। इसी भाव को कवि ने इस छन्द मे कुशलता के साथ चित्रित किया है।

तपश्चरण चण्ड अनल से कर्म जलाये जात्ते है।
इस अविपाक निर्जरा से ही विधि बन्धन कट जाते है।।
दग्धबीज ज्यों धरणी तल पर कभी नहीं है उग सकता।
कर्मदाह से त्यो भव अंकुर कभी नहीं है लग सकता।।

कोल्हू का बैल आखो पर पट्टी बधी होने से जैसे कोल्हू के चारो ओर अनवरत चक्कर लगता रहता है ठीक इसी प्रकार मोह रूपी शराब पीकर यह ससारी प्राणी भी चतुर्गति रूप कोल्हू मे पिसता हुआ

दु ख भोगता हुआ ही इस ससार मे घूमता रहता है। इस परिभ्रमण रूप ससार का बनाने वाला कोई नहीं है जिसे कवि भूधरदास जी ने स्पष्ट किया है –

"किनहू न करै न धरै को षट्‌द्रव्य मयी न हरै को।
सो लोक मांहि बिन समता दु.ख सहे जीव नित भ्रमता ।।

पण्डितजी का मन भी उक्त पक्तियो को पढकर उद्विग्न हो उठा होगा और उनके अन्तरंग से जो टीस पैदा हुई उसे उन्होनें निम्नाकित छन्द मे बाध दिया –

पी अनादि से मोह वारूणी भ्रमण करे इसमे प्राणी।
पुण्य पाप से सुख दु·ख पर वे बने हुये है अज्ञानी।।
जो जीव विमुख होय इस जग से निजपद में थिरता धारै।
लोक शिखर के ईश होय वह निजानन्द पद विस्तारै।।

पण्डितजी ने इस मोहवारुणी की मादकता से मुक्त होकर अपनी आत्मशक्ति को पहिचान कर निजानन्द स्वरूप को पाने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की है एव मुमुक्षुओ को इस ओर सचेत किया है।

पण्डितजी की यह कृति निर्विवाद रूप से उत्तम है जिसमे उन्होने अध्यात्म की गहराईयो से अनुभव के मोती ही पाठको को समर्पित किये हैं।

ज्ञेय हेय की सीमाओ से परे निजानन्द पद को पाने के लिये जो गेय छन्द पाठको को दिये हैं वे निश्चय ही आत्मविभोर करने वाले है।

जैन–भ्रातृ–सघ सागर ने इस कृति का प्रकाशन कर मैत्रीभाव का उदाहरण प्रस्तुत किया है। जैन भ्रातृ सघ द्वारा प्रकाशित इस कृति की छपाई उत्तम है। उस समय जब मुद्रण की पर्याप्त सुविधाये नहीं थीं ऐसी कृतियो के प्रकाशन की ओर लोगो का ध्यान ही नहीं जाता था तब संघ की कार्यकारिणी ने इसकी उपयोगिता का मूल्याकन कर प्रकाशन का जो पुनीत कार्य किया है वह प्रशसनीय है। कृति लोक प्रिय होने के कारण वर्तमान मे उसके अनेको सस्करण निकल चुके हैं।

कृतिकार के चरणो मे मेरा शत्–शत नमन है।

• पूर्व मत्री भ्रातृ सघ
अकुर कालौनी, मकरोनिया, सागर (म प्र)

□□□

पण्डितजी की बालोपयोगी कृति : सुमन संचय

– कुमारी प्रभा सिंघई, एम ए

"क्षण कण मे सचय करो विद्या धन जग माहि।
क्षण त्यागे विद्या कहाँ, कण त्यागे धन नांहि।।"

पडित गौरेलालजी शास्त्री द्वारा रचित बालोपयोगी कृति सुमन–सचय का प्रकाशन मोतीलाल पन्नालाल फौजदार चादेलीय मु सेधपा (द्रोणगिरि), स्टेट बिजावर द्वारा वीर निर्वाण सवत् 2462 मे हुआ था।

प्रस्तुत कृति मे 48 दोहे वर्णमाला के क्रमानुसार हे, साथ ही 101 अन्य मार्मिक दोहो की भी अभिव्यजना है।

प्राथमिक शिक्षण पाने वाले बालक उन "अ,आ" आदि अक्षरो को जोड़कर सहज मे ही याद कर सकते हे। सम्पूर्ण पुस्तक को पढने से लगता है कि पडित जी के मन मे ऐसी चुभन रही होगी, कि बालको के लिये ऐसा क्या लिखा जाये, जिससे बालक बचपन से ही अपने कर्त्तव्य को समझ सके। शायद यही विचार उन्हे आन्दोलित करते रहे होगे और जिनसे प्रेरित होकर पडितजी ने इस कृति की रचना की होगी।

"सुमन सचय" कृति द्वारा पडित जी बालको को एक साथ दो लाभ कराना चाहते हे। एक ओर तो अक्षर ज्ञान देना चाहते हे और दूसरी ओर मानव जीवन की सार्थकता को बालमन मे ही समाहित करना चाहते हे।

पडित जी ने सबसे पहले पुस्तक की उपयोगिता को बताते हुए मुख्य पृष्ठ पर निम्न पक्तिया उद्धृत की है –

लीजिये पुस्तक महोदय आप यह बिलकुल नई
नव नव सुमन सचय सुकर शुभ माल यह गूँथी गई।
होय इसमें सार कुछ भी तो इसे अपनाईये
उक्तिया इसकी हमेशा निज अमल मे लाईये।

पण्डितजी ने अपनी रचना का प्रारम्भ वर्णमाला क्रम मे अ आ से प्रारम्भ कर ज्ञ तक 48 दोहो की रचना करने के बाद कहा है –

अड़तालीसी लाल यह रची बाल हित जान।
भूल शोध अल्पज्ञ पर क्षमा करो मतिमान्।।

रचनाकार ने इस कृति की रचना कर अपने लिये अल्पज्ञ समझते हुए विद्वानो से क्षमायाचना करते हुये विनम्रता प्रगट की है। साथ ही रचना के प्राक्कथन मे पण्डित जी ने कृति के सम्बन्ध मे लिखा है "यद्यपि यह पुस्तक साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त गिरी हुई है और इसीलिये विद्वानो के समक्ष आदरणीय नहीं होगी तथापि बालको ने इससे कुछ भी लाभ लिया तो मै अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।"

वर्णमाला के आधार पर दिये गये दोहो के अलावा एक सौ एक दोहे मार्मिक, [illegible] एवं नीतिपरक है। प्रहेलिका रूप दोहे तो अपने आप मे [illegible] [illegible]

युवको व वृद्धो को भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। रचना की उपयोगिता के सम्बन्ध मे कुछ प्रकाश डालने का प्रयास कर रही हूँ।

मेरी मान्यता तो यह है कि यह पुस्तक बालको के लिये न होकर भौतिकता की चकाचौध मे भ्रमित सामान्य जन को एक दिशा निर्देश की काति लैस करती प्रतीत होती है। वे ससारी प्राणी को शत्रु से बचने के लिये सुझाव देते हुए कहते है –

"अरि से सजग रहो सदा, करे समय पर वार।
दगली का लम्पा तनिक, करे रात दिन ख्वार।।"

इस असार ससार मे दो बाते ही सार स्वरूप है। एक तो विवेकवान् होना, दूसरा परोपकारी होना। जिसे पण्डितजी अपने शब्दो मे व्यक्त करते हुये कहते हैं –

"इस असार संसार मे, दो बातें है सार।
इक विवेक का पावना, दूजा पर उपकार।।"

सप्त व्यसनो से ग्रसित मानव अपने दुष्कर्मों द्वारा नरक गति मे जाता है। ऋषि मुनियो ने सदैव ही इनका त्याग करने के लिये कहा है। पडितजी इसकी अभिव्यक्ति इस रूप मे करते है –

"उनकी संगति छोडिये, ज्वारी चुगल गमार।
वे खल अपने साथ ही, सबका करें बिगार।।"

जो जीव ससार मे आया है, उसे निश्चित ही जाना है। पता नहीं कब यमराज आ जाये, ऐसी विषम स्थिति मे धर्म को कभी नहीं छोडना चाहिए क्योकि अच्छे बुरे कर्म ही जीव के साथ मे जाते हैं, अन्य सभी कुछ यहीं पड़ा रह जाता है इस सत्य को पण्डितजी इस रूप मे व्यक्त करते हैं –

एक समय भी नहीं तजो, धरम करम की बात।
नहि जाने यमराज को, कब आ जावे घात।।

ससार सागर मे मनुष्य की इच्छाये समुद्र की लहरो की तरह अनन्तानन्त हैं, परन्तु मनुष्य अपनी प्रत्येक इच्छा को पूरा करना चाहता है। इच्छाओ के पूरा न होने पर वह निराश हो जाता है और वह यह भूल जाता है कि "भाग्य से ज्यादा और समय से पहले न किसी को कुछ मिला है और न मिल सकता है।" यदि मनुष्य उतने मे ही सतोष कर ले जितना उसे मिला है, तो वह जीवन मे कभी दु खी नहीं होगा। पण्डितजी लिखते हैं कि समझदार मनुष्य उतने मे ही सतोष रखता है, जितना उसे मिला है। यथा –

कर्म उदय से जो मिले अन्न, पान, धन,मान।
उसमें ही सतोषकर रहते चतुर सुजान।।

गरीबो को छल कर प्राप्त हुए धन की गति के बारे मे पण्डितजी लिखते हैं कि ऐसे धन की गति जल के समान होती है। पण्डितजी सदेश देते हुए कहते हैं –

छल बल कर धन जोर कर, गाढ धरे भूमांहि।
बिन भोगे ही जात है जल का धन जल मांहि।।

विद्या से रहित मनुष्यो को पशुओ की सज्ञा तथा क्षमा और विनय से रहित मनुष्य को बिना पूछ और सींग से रहित पशुओ के समान माना गया है। इस सत्य को पण्डितजी इस रूप मे लिखते हैं –

ढोर तुल्य वे नर निपट, विद्या शिल्प विहीन।
बिना पूछ बिन सींग के, क्षमा विनय से हीन।।

पण्डितजी ने ससारी प्राणी को मृदु वचन बोलने की प्रेरणा इन रूपो मे दी है –

नरम वचन कहिये सदा, तजिये वचन कठोर।
खर्च कछू होवे नहीं, यश फैले चहुँ ओर।।

मनुष्य को ससार की क्षणभगुर "साधन, सम्पत्ति" पर अभिमान नहीं करना चाहिए। क्योकि इन्द्रो को भी स्वर्ग की विभूति को छोडना पडता है, फिर हम क्यो थोड़ी सी सम्पत्ति पाकर अभिमान करे? पण्डितजी कहते हैं –

थोड़ा साधन पायकर, करिये नहिं अभिमान।
इन्द्रादिक के विभव का, हो जाता अवसान।।

हमारे ऋषि मुनि हमेशा ही लक्ष्मी का सदुपयोग करने के लिए कहते आये है तथा चचल लक्ष्मी के परिणाम को भी समझाते रहे है। पण्डितजी लक्ष्मी के प्रति अपने उद्‌बोधन देते हुए अभिव्यक्त करते है –

लक्ष्मी की गति तीन हैं, दान भोग अरु नाश।
दान भोग जो नहि करे, होवे शीघ्र विनाश।।

ससार मे मनुष्य जीवन की सार्थकता स्वार्थपना त्यागने मे है। पण्डितजी ने स्वार्थ की धूल को छोड़ने (त्यागने) के लिए कहा है –

सार जगत मे है यही, नर जीवन का मूल।
करिये पर उपकार नित, मेट स्वार्थ की धूल।।

चूकि सत्य वचन हमेशा सभी को प्रिय रहे हैं तथा सत्य की ही सदैव विजय हुई है। पण्डितजी ससारी मनुष्य से क्षण भर के लिए भी सत्य को नहीं त्यागने की बात कहते है –

क्षण भर भी तजिये नहीं, सत्यधर्म की टेक।
प्राण जायें पर धर्म की रक्षा करते नेक।।

पण्डितजी के मन मे जगत् के सभी जीवो के प्रति करुणा का भाव समाहित था। ऐसा इस दोहे से विदित होता है –

त्रस्त अन्न अरु पान से, जो होवे जग पीव।
उनकी भोजन पान से, रक्षा करो सदीव।।

ज्ञानवान् एव चतुर मनुष्य की महत्ता के बारे मे पण्डितजी अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहते है –

ज्ञानवान् अति चतुर नर, यदपि न हो धनवान्।
जहां जाय पर वहां ही, पावे बहु सन्मान।।

क्रम–क्रम के अध्ययन से सामान्य व्यक्ति विद्वान् बन जाता है अथवा हम यह कह सकते हैं कि ससारी प्राणी क्रम–क्रम से अपनी इन्द्रियो पर रखे सयम से ससार से पार हो सकता है। पण्डितजी इस पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं –

एक एक जल बिन्दु से, घट पूरा भर जात।
क्रम क्रम के अभ्यास से , शठ पण्डित बन जात।।

पण्डितजी जीवन को सुखमय बनाने के लिए कहते है –

जिसे अदालत मे नहीं, जाना हां गम खाय।
नहि देखना वैद्य को, होवे तो कम खाय।।

स्वाभिमान को धन से भी बडा धन बताते हुए पण्डितजी लिखते हैं –

स्वाभिमान धन से धनी, वही महा धनवान्।
स्वाभिमान बिन जगत मे, धन जीवन दुखदान।।

पण्डितजी वचन बोलने के लिए हिदायत देते है वचन वहीं बोलना उचित है, जहा सफल हो।

वचन वहां ही बोलिये, जहा सफल हो जाय।
जैसे निर्मल वस्त्र पर, चोखो रग चढ जाय।।

साहित्य मे व्याकरण, शब्दकोश की उपयोगिता के बारे मे पण्डितजी लिखते है –

अन्धा है व्याकरण बिन, बहिरा कोश विहीन।
लूला बिन साहित्य का, मूक तर्क से हीन।।

लोभी मनुष्य की प्रकृति के बारे.मे पण्डितजी लिखते हैं –

लोभी मानुष द्रव्य को, नहि देवे नहि खाय।
इक दमडी जावे नहीं, चाहे चमडी जाय।।

ससारी प्राणी का जब तक पुण्य सचित रहता है, तभी तक उसकी पूँछतॉछ होती है। इन्हीं शब्दो की अभिव्यक्ति पण्डितजी इस रूप मे करते है –

पुण्य उदय जब तक रहे, सब कोई पूँछे बात।
चार दिना की चादनी, फिर अधियारी रात।।

सज्जन मनुष्य अपनी निजी भावना को उसीप्रकार एक बार व्यक्त करता है, जिसप्रकार काठ की हॉडी को एक ही बार आग मे रखा जाता है –

सज्जन निज मन्तव्य को, कहते एकहि बार।
जैसे हॉडी काठ की, चढे न दूजी बार।।

घर मे परिवार, समाज, राष्ट्र मे फूट होने पर स्वय अपनो मे उसीप्रकार कठिन भेद पड जाता है, जैसे लका मे रावण की विभीषण से फूट हो जाने पर लका लुट गई थी। इन्हीं सम शब्दो मे पण्डितजी लिखतें है –

घर मे फूट न कीजिये, कठिन भेद पड जाय।
घर भेदी ने हेम की, लका दई लुटाय।।

मनुष्य को अपने अधिकार से दूसरो का उपकार करते रहना चाहिये इसी मे मनुष्य की मनुष्यता प्रतिबिम्बित होती है। पण्डितजी उपकार न करने वालो के लिये कहते हैं –

पाकर जो अधिकार को, करे न पर उपकार।
अ अक्षर का लोप कर, करिये द्वित्व ककार।।

ससार मे दुखी लोगो का सहाय कोई नहीं रहता। उन्हे देखकर अन्य मनुष्य, जिनपर कभी दुख नहीं पडा है, हसी उडाते है। पण्डितजी ऐसी स्थिति का चित्रण अपने काव्य मे करते हुए कहते हैं –

दुखित जनों को देखकर, हंसते अधम अधीर।
जिसे विवॉई नहीं फटी, क्या जाने पर पीर।।

ससार मे परोपकारी चेतन अचेतन की पहिचान बताते हुए पण्डितजी लिखते है –

स्वयं न खाये वृक्ष फल, नदी न पीवे नीर।
पर हित निज सम्पत्ति यों, तज देते नर वीर।।

जो मित्र मुह पर प्रसन्नता करते है एव पीछे भला बुरा कहते है, ऐसे लोगो से पण्डितजी सदैव बचते रहने का सदेश देते है –

कहे सामने प्रिय वचन, पीछे करे बिगार।
उन मित्रो को दूरतें, तजिये स्वहित विचार।।

पण्डितजी ससारी जीवो के हित स्वरूप हिदायते देते हुए कहते है कि इस ससार सागर मे विद्या के समान कोई मित्र नहीं है और शत्रु के समान कोई रोग नहीं है, अनुकम्पा के समान कोई दूसरा धर्म नहीं है, साथ ही मित्र भी पुत्र से कम हितैषी नहीं है। यथा –

कोई विद्या सम नहीं, रिपु नहि व्याधि समान।
अनुकम्पा सम धर्म नहि, मित्र न सुत सम आन।।

पण्डितजी एक कुशल रचनाकार होने के साथ साथ अच्छे अनुभवी वैद्य भी थे। जिसका पता हमे उनकी इन पक्तियो से स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार शरीर को निरोग रखा जा सकता है। यथा –

प्रात काल पानी पिये, दूध पिये निश मांहि।
छाछ पिये आहार कर, उन घर वैद्य न जाहि।।

प्राचीन काल से ही हमारे ऋषि मुनियो ने जडता, पाप एव कलह आदि मानसिक तनावो से बचने के लिए अनेक उपाय बताये है। पण्डितजी ने इन तनावो से बचने के लिये निम्न हिदायते देते है –

पढने से जडता भगे, तप से पाप नशाय।
कलह न होवे मौन से, जगने से भय जाय।।

इस ससार मे प्रत्येक मनुष्य जन्म लेता है एव एक निश्चित अवधि मे मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। उन्हीं मनुष्यो का अस्तित्व जगत मे रहता है जिन्होने सदैव दुखियो को याद किया है तथा जिनका ह्रदय सदैव करुणा से भरा हुआ रहा है –

पाय विपुल धन जो करे, दुखित जनो की याद।
वह जीते है जगत मे, मरने के भी बाद।।

पण्डितजी ने सदैव ही रूढियो, आडम्बरो का विरोध किया है। पण्डितजी एक जगह कर्म की प्रधानता को महत्व देते हुए शुभ ग्रह सुधवाने की रूढि का विरोध करते है। यथा –

केवल कर्म प्रधान है, शुभ ग्रह से क्या काम।
दी वशिष्ट ने लग्न थी, वन वन भटके राम।।

सत्सगति ही मनुष्य को देवत्व प्रदान कर सकती है। मनुष्य जैसी संगति मे रहता है वैसे ही उसके मनोबल का विकास होता है। विद्वानो की सगति से मूर्ख भी विद्वान् बन जाता है, उसीप्रकार जिसप्रकार स्वाति नक्षत्र मे बूद सीप मे पड़ने से मोती बन जाती हे। पण्डितजी सत्संगति के बारे में लिखते हैं –

मूरख भी सत्संग से, हो जाता विद्वान्।
स्वाति बिन्दु ज्यों सीप में, मुक्ता होत महान्।।

पण्डितजी ससारी मनुष्य को धर्माराधन्न के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं कि जब तक मृत्यु न आ जावे, तब तक धर्माराधना करते रहना चाहिये। क्यो धर्माराधना ही ससार सागर से पार करने मे सेतु स्वरूप है –

धर्माराधना कीजिये, जब तक मृत्यु न आय।
नदि आने के समय मे, पुल नहि बाधा जाय।।

पण्डितजी पाप कर्मों की गति के बारे मे कहते हैं कि पापी मनुष्य दिन रात अपने किये हुये पाप कर्मों को उसीप्रकार भोगता है, जिसप्रकार दीपक अधकार को स्वयमेव नष्ट करता रहता है। यथा –

पापी नर स्वयमेव ही भोगे दुख दिन रात।
दीपक नाशे ध्वान्त को, कौन बुलाने जात।।

उपरोक्त सभी दोहो से स्वत स्पष्ट होता है कि पण्डितजी ने ससार मे भटकते हुए जीवो को अपने काव्य के माध्यम से दिशा निर्देशित किया है।

वर्तमान समय मे भौतिकता की चकाचौंध मे ग्रसित मनुष्यो के लिए पण्डितजी की यह कृति सुमन सचय सुयोग्य दिशा देंने मे सेतु स्वरूप है।

मैं ऐसे रचनाकार, प्रज्ञापुरुष को कोटिश नमन करती हूँ, वन्दन करती हूँ तथा उनकी इस श्रेष्ठ उपयोगी कृति के प्रति पूर्ण आदर भाव व्यक्त करती हुई कामना करती हूँ कि आज का दिग्भ्रान्त समाज सचेत होकर पण्डितजी के सचित सुमनो से अपने घर–आगन के सुमनो – बालको के भविष्य का निर्माण करने मे, उनके सदाचारी – परोपकारी सस्कारो की नींव मजबूत करने मे उनकी इस अमूल्य कृति "सुमन सचय" का सदुपयोग करे।

● छतरपुर (म प्र)

□□□

जैन गारी संग्रह का औचित्य

— डॉ. श्रीयांशकुमार सिंघई

मैने जब गोरेलालजी शास्त्री द्वारा रचित जैन गारी सग्रह की बात सुनी तो मेरे मन मे कई प्रश्नो ने जन्म लिया। जैसे क्या गारियो या गालियो का सग्रह करने लायक लेखन ठीक है ? क्या गालियॉ भी हिन्दू, जैन या मुसलमान होती है जो जैन गारी संग्रह नाम रखा गया ? क्या उज्ज्वल चारित्र से अपने जीवन को सम्पन्न बनाने वाले पण्डित गोरेलालजी जैसे सेवा भावी विद्वान् भी गारियॉ लिखकर उन्हे प्रकाशित कर सकते हैं ?

जैन गारी सग्रह भाग –1 व भाग–2 पण्डितजी के जीवनकाल मे प्रकाशित हुये थे उस समय उनके इन गारी गीतो ने समाज मे सात्त्विक चेतना का सचार किया था। प्राय हम सभी जानते है कि शादी–विवाह के अवसर पर समधी–समधिनों या बारातियो को लक्षितकर गारियो का गान हुआ करता था, कुछ–कुछ अब भी है। बुन्देलखण्ड मे यह प्रथा उस समय जोर–शोर से प्रचलित थी। पण्डितजी ने इस प्रथा मे अश्लीलता के दर्शन किये होगे और उनका विचार गारी शैली मे जैन तत्त्वज्ञान गर्भित भजनो को लिखने का बना होगा।

पण्डितजी ने स्वय लिखा भी है –

गीत फूहड़ न गाने की प्रतिज्ञा आज ही कर लो।
बुरे गीतो को मत गाओ कि जिससे दिल बिगड़ता है।
तुम्हारी सन्तति, पर भी असर खोटा ही पडता है।।

यहॉ पण्डितजी के मन मे अश्लीलता से समाज को बचाने की भावना अभिव्यक्त तो होती ही है भावी सन्तति को बिगड़ने से बचाने की चिन्ता भी आभासित होती है।

पण्डितजी यह जानते थे कि केवल चिन्ता करने से क्या ? सुधार तो तभी होगा जब सामाजिको माताओ–बहिनो को गारी शैली मे लिखकर गीत दे देवें और शादी विवाह के समय उन्हे ही गाने को प्रेरित करे। पण्डितजी अपने इस अभियान मे सफल हुये थे। बुन्देलखण्ड का पूरा द्रोण प्रान्त इस बात को जानता है कि उस समय पण्डितजी के इन गारी गीतो ने धूम मचा दी थी। अनपढ महिलाओ को भी ये गीत याद हो चुके थे।

आज मै यह जानने मे असमर्थ हूँ कि पण्डितजी द्वारा लिखे गये गारी गीत कितने थे। दो भागो मे प्रकाशित हुये थे इतनी जानकारी मात्र मुझे है। आज दुर्भाग्य से वे दोनो भाग भी हमें उपलब्ध नहीं है इसमें अवश्य ही परिवारजनों की लापरवाही और पण्डितजी की उदासीनवृत्ति ही कारण है।

आज से 50–60 वर्ष पूर्व प्रकाशित ये दो लघु पुस्तिकाये काल कवलित हो गयीं, फट–फटाकर रद्दी कागज मे बिक गयीं, फिक गयीं या कहीं किसी के पास पडीं हुईं है, शायद हमें मिल जायें और हम उनसे आज फिर सामाजिक चेतना जागृत कर अश्लीलता को मिटा पाये।

स्मृति ग्रन्थ मे पण्डितजी की साहित्य साधना को ज्यो का त्यो छापने का हमारा मन था तदनुरूप उपलब्ध सारी सामग्री सकलित भी हो चुकी थी किन्तु उसमे जैनगारी संग्रह नहीं था। मैने उसे ढूढने को कहा, बार–बार बल दिया तो कुछ सफलता मिली और एक आधी सी फटी पुस्तिका जैन गारी संग्रह की पण्डितजी के पुत्रो ने कहीं से खोज पाई। मेरे हिसाब से पण्डितजी की गारी गीतो को लिखने की भावना का मूल्याकन मात्र 13–14 गीतो से संभव नहीं हैं।

जैंसाकि हम सब जानते हैं कि गाली का व्यवहार व्यग प्रधान होता है, सामान्यत जिसे गाली दी जाती है उसे सचेत करने का ही उद्देश्य होता है। द्वेष या बैरभाव से गाली प्रयोग की बात यहाँ नहीं हैं। पण्डितजी ने तो रागान्वित माताये बहिने, जो गारियॉ गा–गाकर व्यग वाण छोडतीं थीं, कुछ अश्लील शब्दो का प्रयोग भी कर देतीं थीं, को तत्त्वज्ञान व पौराणिक आख्यानों से परिचित कराने के लिये इन गारी गीतो को लिखा था।

उपलब्ध गारी गीतो मे से यह एक गीत गाली शैली की स्पष्ट झलक प्रस्तुत करता है। इसमे पण्डितजी हा हा वे हू हू वे से प्रारम्भ करते है। देखिये –

हॉ हॉ वे हूॅ हूॅ वे।। टेक।।
जैन धरम नहि तुमने धारो, विषयो मे रति मानी वे। (हॉ .)
सात व्यसन आठो मद सेये, कुमति सो रुचि ठानी वे। (हॉ)
मिथ्या मारग मे रत होकर, सुध बुध सभी भुलानी वे। (हॉ)
दो अर बीस अभक्ष्य भखे नित, दया न चित मे आनी वे। (हॉ)
हिसादिक पन पाप कुड मे, किये नित्य स्नानी वे। (हॉ)
सुकृत कमाई कछू न कीनी, नीति सुनीति न जानी वे। (हॉ)
जिन दर्शन मे चित नहि दीना, सुने न शास्त्र पुराणी वे। (हॉ)
कर अन्याय बहुत धन जोरा, लखी न पर की हानी वे। (हॉ)
दिन अरु रात गिनो नहिं कोई, कीने भोजन पानी वे। (हॉ)
इस कारण ही चतुर्गति मे, सहे क्लेश दुखदानी वे। (हॉ)
नर भव पाकर अब तो करलो, निज आतम कल्याणी वे। (हॉ)
नातर "लाल" जगत मे फिर भी, होगे बहु हैरानी वे। (हॉ)

उपर्युक्त गीत मे जैनत्व के सस्कारो को दृढ करने की प्रबल प्रेरणा उपलब्ध है, समाज की शिथिलता पर सीधा व्यग भी है और है उसके परिणाम से परिचित कराने की कवि की सद्भावना।

एक और गीत हैं जिसमे पण्डितजी ने महिलाओ की मनोवृत्ति का जीता जागता चित्रण किया है। अर्थ–भाव सभी कुछ स्पष्ट है। इसी ग्रन्थ के पेज 164 पर गारी सख्या 4 देखे। उसका प्रारम्भ इसप्रकार है–

कैसी कुमति विचारी, री बहिनो प्यारी।। टेक।।
सास ससुर मे झगडा करतीं, देतीं दु ख अपारी। (री बहिनो,)
ननद जिठानी अर देवरानी, जे सब तुमसे हारीं। (री बहिनो,)

पण्डितजी ने यहॉ महिलाओ को सचेत किया है उन्हे इस भव और पर भव मे दु.खदायी क्रियाकलापो से बचने की प्रेरणा दी है तथा शीलवती नारी के गौरव को समझाया है और उन्हे शील रत्न के गहने पहिनने की प्रेरणा दी है। सचमुच शील ही सबसे बडा आभूषण है।

इसप्रकार हम पाते है कि पण्डितजी ने अपने गारी गीतो के माध्यम से समाज को जैन सस्कारो से सुसस्कारित करने का स्तुत्य कार्य किया है और साबित कर दिया है कि गारी गीत जैन हिन्दू आदि नहीं होते किन्तु उनके माध्यम से भी जैनत्व आदि को पुष्ट किया जा सकता है।

सामाजिक जन पण्डितजी के इस अवदान से लाभान्वित हो ऐसी मेरी भावना है तथा यह भी कि पण्डितजी द्वारा लिखित सारे गारी गीतो को खोज लिया जाये।

❑❑❑

पण्डितजी की साधना स्थली सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि

सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि : जैसा मुझे लगा

— डॉ. श्रीयांशकुमार सिंघई

ससारी जीव अपने–अपने मोह राग द्वेष के कारण चौरासी लाख योनियों में दुःख ही भोगता है। चारो गतियो मे कहीं भी सुख नहीं है, मात्र इन्द्रिय सुख का भ्रम ही है। जिसके भ्रमजाल मे फॅसकर वह अपने इर्द गिर्द दु खो का असहनीय बधन निर्मित कर लेता है, छटपटाता भी रहता है और उन दु खो से मुक्त होने के लिए उपाय भी करता है। सचमुच दु खो से मुक्ति का उपाय क्या है ? इसे जानना यदि सरल है तो कठिन भी है। सरल है उन्हे जो दुराग्रहो से मुक्त होकर निश्छलवृत्ति से आत्म केन्द्रित होते हुए ससार के विषय भोगो से उदास हुए है तथा कठिन है उन कूटनीतिज्ञ बुद्धिजीवियो व कुरीतियो–कुटिलताओ से जर्जरित भोले भाले लोगो को जो मात्र लौकिक कामनाओ की पूर्ति व भौतिक स्वार्थो के लिए धर्म का सहारा लेते है। शेष के लिए तो भुक्ति ही सब कुछ होती है। अत उनके लक्ष्य से मुक्ति के उपाय को जानने की चर्चा यहॉ है ही नहीं।

सर्वविध दु खो से मुक्ति पाने का पुरुषार्थ स्वाधीन व आत्म केन्द्रित होकर ही सभव होता है। आत्मा की शक्तियो को पहिचानकर जब अपने उपयोग अर्थात् प्रगट क्षयोपशम ज्ञान (बुद्धि) का सर्वाशतया समर्पण निज आत्मा मे कर लिया जाता है तो आत्मा मे आविर्भूत सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय ही सचमुच मुक्ति का उपाय होते है। जिन्हे आविर्भूत होते रहने के लिए यथायोग्य विधीयमान प्रयत्न मुक्तिपरक पुरुषार्थ कहलाता है। अढाई द्वीप मे भरत, ऐरावत और विदेह क्षेत्रो से सज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य इस पुरुषार्थ की परिपूर्णता से ही मुक्ति प्राप्त करते है।

भरत,ऐरावत क्षेत्रो से मुक्ति गमन का क्रम दु खमा–सुखमा काल के अलावा अवसर्पिणी–उत्सर्पिणी के अन्य कालो मे थम जाता है अर्थात् इन दो क्षेत्रो से दु खमा–सुखमा काल मे ही मुक्ति सभव होती है। तात्पर्य यह है कि कर्मभूमि के मनुष्य ही वीतरागी, निरारम्भी–निष्परिग्रही सत साधना से मुक्ति प्राप्त करते है।

आदि तीर्थकर भगवान् ऋषभदेव के समय से लेकर चतुर्विंश तीर्थंकर भगवान् महावीर तक कोटि–कोटि मुनिवरो ने कैवल्यलाभ सहित मुक्ति पाई है। केवलज्ञानी मुनिवर, जो अर्हन्त परमेष्ठी होते है, जहॉ से अर्थात् जिस विशेष भूभाग से मुक्ति यात्रा की परिपूर्णता हेतु सिद्धशिला पर्यन्त उर्ध्वगमन करते है वह भूभाग लोक मे सिद्धक्षेत्र के नाम से विश्रुत हो जाता है। इस दृष्टि से द्रोणगिरि का सिद्धक्षेत्र होना पुराकाल से ही निर्णीत माना जा सकता है क्योकि गुरुदत्तादिक ऋषीश्वर द्रोण शैल से मुक्ति गये थे इसकी पुष्टि क्रमश बृहद् कथाकोष, प्राकृत निर्वाण काण्ड एव आराधना सार के निम्न वचनो से सहज ही हो जाती है। यथा –

(1) *हत्थिणपुर गुरुदत्तो सम्मलिथालीव द्रोणमंत्तम्मि।*
उज्झन्तो अधियासय पढिवण्णो उत्तं अठ।।

(2) *फलहोणी वरगामे पच्छिमभायम्हि द्रोणगिरि सिहरे।*
गुरुदत्ताइमुणिंदा णिव्वाणगया णमो तेसिं।।

(3) वास्तव्यो हास्तिनो धीरो, द्रोणीमति महीधरे।
गुरुदत्तो यतिः स्वार्थं जग्राहानलवेष्ठित ।।

अब हम यदि इतिहास के परिप्रेक्ष्य मे विचार करे तो ज्ञात होता हे कि गुरुदत्तादिक मुनिवरो की मुक्ति भगवान् महावीर के निर्वाण से पूर्व ही हुई होगी क्योकि भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद मात्र तीन केवली गौतम गणधर, सुधर्मा स्वामी (लोहाचार्य) और जम्बू स्वामी ही मुक्त हुए हैं, ऐसा स्पष्ट निर्देश आगम मे उपलब्ध है।

इसप्रकार हम पाते है कि द्रोणगिरि पर गुञ्जायमान होती भव्यता, पुरुषार्थ प्रेरक वायुमण्डल की मनोरमता, सिद्धत्वसाधक सयमसयत्र की स्वरता, वीतरागता से भरपूर प्रसूनो की सुगधता, शुक्लध्यानाग्नि तप पूत मुनिवरो की पावनता आदि भगवान महावीर के समय से या उससे भी पूर्व काल से ही भव्यजनों, साधु– सन्तो को दृष्टिगोचर होती रही है, महसूस होती रही है।

सिद्धक्षेत्रो की उपादेयता आज भले ही भोतिक व मोहान्ध समाज के लिए ऐसी न रह गई हो किन्तु सद्वृत्तविहारी , सदाचारी, सतोषी, शुभलेश्याधारी, मदकषायपरिणामी एव विरागी व्यक्तित्व के धनी मुक्ति पिपासु सामाजिको को सिद्धक्षेत्रो पर सिद्धत्व साधना की गूज अवश्य सुनाई देती है। जिन मुनिवरो–केवलियो के सिद्धत्व गमन से यह पावन स्थल सिद्धक्षेत्र कहलाया, उन मुनिवरो का स्मरण तो उन्हे वहॉ आता ही हे स्वय भी सिद्धत्व प्राप्ति की कामना से अभिभूत होकर वे आनन्दविभोर हो जाते है। धन्य है वे भव्यजन जो इस भावना से सिद्धक्षेत्रो पर आते है और तदनुकूल प्रयत्न पुरुषार्थ से अपना मानव जीवन सार्थक बनाने मे सफलता पाते है।

इस युग मे सत व्यक्तित्व के पुरोधा प्रात स्मरणीय परम पूज्य 105 क्षुल्लक श्री गणेशप्रसादजी वर्णी को भला कौन भुला सकता है। जिन्होने अन्तरोन्मुखी आध्यात्मिक साधना से जहॉ अपने जीवन को उत्कर्षोन्मुख किया वहीं अज्ञानान्धकार मे मदमस्त सर्वथा अशिक्षित एव कुरीतियो–पाखण्डो के मोह जाल मे फॅसे समाज को उबारने मे तथा अबोध, असहाय, होनहार बालको को शिक्षित बनाने मे एक महनीय भूमिका का निर्वाह किया। उनका यह अवदान अमर है। वे त्याग निस्पृहता, दयालुता, परोपकारिता, करुणाशीलता आदि की भव्य मूर्ति थे तो ज्ञाननिधान न्यायाचार्य होकर भी सहजता–सरलता और सयम साधना के जीते जागते प्रतीक भी थे।

महनीय व्यक्तित्व के धनी इस आध्यात्मिक सत ने सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि को भी अपनी साधना स्थली बनाया था। सचमुच, पूरे बुन्देलखण्ड मे साधना हेतु उन्हे यह सिद्धक्षेत्र भा गया था। यहॉ की भव्यता व शातिमय वातावरण की प्राकृतिक सरचना से वे इतने आल्हादित हुए थे कि उन्हे द्रोणगिरि को लघु सम्मेद शिखर कहने मे सकोच नहीं हुआ। ऐसा कहकर उन्होने जो बहुमान द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र का प्रतिपादित किया था। क्या वह बहुमान आज हमे है ? सिद्धक्षेत्र तो आज भी वही है पर बहुमान वैसा ही अब क्यो नहीं है ? होना चाहिए अत वहॉ जाना, शाति के लिए साधना करना या करने का मन बनाना, हमारा कर्तव्य है। सचमुच ही इस कर्तव्य निर्वाह के बिना सिद्धक्षेत्रो के प्रति हमारे अपने बहुमान की प्रतीति अजागलस्तन के समान निष्फल एव नगण्य ही समझी जानी चाहिए।

सम्पूर्ण राष्ट्र विशेषकर बुन्देलखण्ड के धर्माभिलाष सम्पन्न सामाजिको से मुझे आशा है कि वे

वर्णीजी के अवदान को मात्र याद ही नहीं रखेगे उसे साकार बनाने हेतु अपने जीवन की ढलती उम्र मे ही सही अपना थोडा बहुत समय अन्तरोन्मुखी साधना मे लगाने के लिए सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पर गुजारेगे। साधना हेतु यह स्थल उन्हे अत्यधिक अनुकूल रहेगा।

गुरुदत्तादिक मुनिवरो के निर्वाण काल मे द्रोणगिरि एव आस पास के भौगोलिक परिदृश्य की तो हम कल्पना ही कर सकते है किन्तु साम्प्रतिक परिदृश्य को नयनाभिराम बनाकर, उसे मन मे बसाकर वहॉ कुछ अन्तरोन्मुखी स्वाधीन पुरुषार्थ कर अपने जीवन को धन्य भी बना सकते है। इससे हमे कौन रोकता है?

यह सिद्धक्षेत्र भारत के भौगोलिक मानचित्रीय वर्गीकरण के अनुसार मध्यप्रदेश प्रान्त मे बुन्देलखण्ड क्षेत्र के अन्तर्गत छतरपुर जिले मे बडा मलहरा के समीप सेधपा ग्राम मे सुस्थित है। मानो द्रोणगिरि के पादमूल मे बसकर यहॉ सेधपा गाव अपने सौभाग्य पर हॅस रहा है और हमे कह रहा है कि सेध लगाकर तुम भी पाओ ऐसा भाग्य अथवा गुरुदत्तादिक मुनिवरो के व्यक्तित्व व पुरुषार्थ को सेन/सकेत से बुद्धि मे धारण करो, अमरता को पाओ और खुद भी मुक्त हो जाओ। यह स्थान रेलमार्ग – रेलवे स्टेशनो से लगभग 100–150 कि मी दूर है अत यहॉ पहुँचना सडकमार्ग से ही सभव है। जब मै यहॉ पहुँचा तो सचमुच ही अनिर्वचनीय प्रसन्नता मुझे हुई। बस मे यहॉ आते दूर से ही गिरिस्थित शिखरगुम्फित धवल जिनालयो की भव्य शोभा ने मेरे मन को मोह लिया था। धर्मशाला पहुँचा। कोई असुविधा नहीं हुई। पर्यावरण की दृष्टि से धर्मशाला प्रदूषण मुक्त एव सभी आवश्यक सुविधाओ से सम्पन्न है। प्रबन्ध समीचीन है। यात्रियो को अपेक्षित सुविधाये मुहैया कराने का ध्यान भी रखा जाता है।

सेधपा ग्राम मे 8–10 जैन परिवार रहते है, उनके तथा यात्रियो के आवागमन से यहॉ धार्मिक उत्साह बना रहता है। सिद्धक्षेत्र के रूप मे प्रसिद्ध द्रोणगिरि पर एव यहॉ ग्राम मे विद्यमान जिन धर्मायतनो मे धर्माराधना का सुयोग जिज्ञासु को प्राप्त होता है, उनका किञ्चित् परिचय इसप्रकार हे –

(1) आदिनाथ जिनालय

धर्मशाला के समीप ही एक विशाल उत्तुग शिखर जिनालय यहॉ है जिसमे आदि तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ की मूलनायक प्रतिमा होने से इसे आदिनाथ जिनालय कहा जाता है। इसमे दो वेदिया है। मुख्य वेदी पर आदि तीर्थकर भगवान् ऋषभदेव की पाषाण निर्मित पद्मासन मुद्रा मे सातिशय वीतरागी छवि सयुक्त मनोहारी प्रतिमा विराजमान है तथा मुख्य वेदी वाले विशाल कक्ष से सटे हुए नवीन कक्ष मे दूसरी वेदी है जिस पर सोलहवे तीर्थंकर शातिनाथ की तीन फुट ऊँची पद्मासन मे पाषाण निर्मित प्रतिमा सुस्थापित है।

दोनो ही वेदियो के सम्मुख दर्शन पूजन करते हुए भावो की विशुद्धि बढती है और अपार शाति–सतुष्टि का अनुभव होता है। इस मदिर मे रात्रि के समय प्रतिदिन शास्त्र सभा भी होती है।

ग्राम के बाहर नातिदूर श्यामरी नदी के किनारे सडक के दोनो ओर दो भव्य विशाल धर्मायतनो का निर्माण हुआ है। एक है चौबीसी जिनमदिर तो दूसरा है गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम।

(2) चौबीसी जिन मन्दिर

इसका निर्माण प्रायोजित मानचित्र के अनुसार हुआ है। इसकी भव्यता एव विशालता का अनुमान उसके मुख्य प्रवेश द्वार को देखकर ही होने लगता है। जैसे ही दर्शनार्थी द्वार से अन्त प्रविष्ट होता है तो

सुविशाल हॉल के मध्य स्थित एक बडी भव्य वेदी को अपने सम्मुख पाता है। इस वेदी पर तीन प्रतिमाये हैं। बीचो बीच आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की साढे पाच फुट उत्तुग पद्मासन मुद्रा मे विराजित प्रतिमा की भाव भगिमा का उत्कृष्ट, आकर्षक एव कलापूर्ण सयोजन है। इस प्रतिमा के दॉये बॉये क्रमश चौबीसवे तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी एव भगवान् बाहुबली स्वामी की कायोत्सर्ग मुद्रा मे 5–5 फुट की प्रतिमाये सुशोभित है। पूजन, चिन्तन–मनन, स्वाध्याय आदि के लिए अभ्यागत दर्शनार्थी को यह स्थल अत्यन्त शातिप्रद एवं भावानुकूल पुरुषार्थ के स्फुरण हेतु सार्थक लगने लगता है। मदिर के इस प्रमुख हॉल के दोनो तरफ मध्य मे लगभग 50 x 30 फुट का उद्यान स्थल पर्यावरणीय शुद्धता के लिये छोडा गया है तथा उद्यानो को घेरते हुए दोनो तरफ सुदर आकर्षक 12–12 वेदियो का निर्माण पक्के भवन मे किया गया है। इन वेदियो मे क्रमश आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से प्रारम्भ होकर अतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरो की लगभग 3–3 फुट उत्तुग पाषाण की प्रतिमाये तीर्थंकरो के परिचायक वृषभ आदि चिन्हो सहित सुप्रतिष्ठित है।

मदिर का बाहरी परिदृश्य भी प्राकृतिक दृष्टि से मनोहारी है। चारो ओर परकोटा है, जिसके भीतर बगीचा एव अन्य उपयोगी निर्माण सम्पन्न होने को है। मुख्य द्वार के सामने टीन शेड निर्मित एक विशाल व स्थायी सभामण्डप तो आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज के चातुर्मास वर्षायोग के अवसर पर तैयार हो ही चुका है।

इस जिनालय से श्यामरी नदी तक सिञ्चित कृषि योग्य भूमि भी क्षेत्र के स्वामित्व मे है जिसमे फलदार वृक्षो सहित सुन्दर उद्यान विकसित करने की योजना है।

(३) श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम

चौबीसी मदिर के सामने ही दूसरा धर्मायतन–साधना स्थल है श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम। जिसकी स्थापना पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी की प्रेरणा से क्षुल्लक चिदानन्दजी ने की थी। यहॉ सासारिक विषय भोगो से उदास अनेक लोगो ने वर्षों तक साधना करने की अनुकूलता पाई है और दर्शन, पूजन, स्वाध्याय, सामायिक आदि के द्वारा सुव्यवस्थित दिनचर्या का निर्वाह कर उन्होने अपने जीवन का सदुपयोग भी किया है।

सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के प्रत्येक विकास कार्य मे जिनका लगभग 60 वर्ष तक सक्रिय सहयोग रहा उन पण्डित गोरेलालजी के निर्देशन मे यह आश्रम आध्यात्मिक एव सयम परक गतिविधियो का केन्द्र बना रहा। फलस्वरूप उस समय यहॉ साधको की बहुलता रही। क्षुल्लक चिदानन्दजी और ब्र दयासिन्धु के समर्पित व्यक्तित्व से आश्रम सतत अपने उद्देश्य की पूर्ति मे सफलता अर्जित करता रहा है। पण्डितजी विद्यालय से सेवानिवृत्त होने के बाद आश्रम मे ही रहने लगे थे और अन्तिम समय से एक सप्ताह पूर्व तक रहे। आज इन तीनो व्यक्तियो के अभाव मे आश्रम मे शून्यता का सा वातावरण बन रहा है। जिसका समाधान प्रबन्धको को करना चाहिए।

आश्रम का अपना ट्रस्ट और विशाल भवन पर्याप्त सुविधाओ सहित है। यहॉ एक सुन्दर चैत्यालय भी है। साधको को आवास भोजन आदि की सुयोग्य सुविधा तो है ही उन्हे तात्त्विक चिन्तन–मनन, अध्ययन की अनुकूलता के साथ सामायिक आदि के लिए साधनामय वातावरण भी आश्रम मे मिले – यह प्रयास

शुभचिन्तको को करना चाहिए। आश्रम सुसंचालित रहे– यह दायित्व प्रबधको का है, जिसे उन्हे भूलना नहीं है।

देव शास्त्र गुरु की आराधना–उपासना करने के लिए आश्रय स्थल स्वरूप जो धर्मायतन ग्राम मे विद्यमान है उनका थोडा सा उल्लेख करने क उपरान्त अब हम सिद्धक्षेत्र के गौरव से मडित द्रोणगिरि का अवलोकन करना चाहते है।

निर्वाण भूमि द्रोणगिरि

सेधपा ग्राम स्थित धर्मशाला से लगभग दो फर्लांग दूर निर्वाण भूमि के गौरव से उन्नत नातिलघु नातिदीर्घ एक पर्वत है, जो द्रोणगिरि कहलाता है। इसकी भौगोलिक परिणति पुराकाल मे कैसी रही होगी, इसे द्रोणगिरि नाम से क्यो अभिहित किया गया होगा, क्या और भी कोई द्रोणगिरि है ? इत्यादि प्रश्न अनुसधान की अपेक्षा रखते है। अनुसधान पर्याप्त समय, श्रम और समर्पण के बिना सभव नहीं होता है। शायद कोई अनुसन्धाता इस ओर आकर्षित हो।

किन्तु पर्वत के वर्तमान स्वरूप को देखकर लगने लगता है कि सचमुच यही द्रोणगिरि है क्योकि द्रोण या दोन विशेषण इस गिरि के लिए प्रयुक्त होकर सार्थक प्रतीत होते है। द्रोण या दोन का अर्थ होता है मापने–नापने के काम मे आने वाला लकडी का बना एक पात्र विशेष (बर्तन) या दोना। यदि हम लकडी के बने इस पात्र विशेष अर्थात् मापक काष्ठ पात्र या दोना का ओधा या उल्टा करके जमीन पर रखे तो हमे प्राय ठीक वैसा ही आकार इस गिरि का लगता है। अत द्रोण या दोन के आकार की होने से इस गिरि को द्रोणगिरि कहा जाना अनुपयुक्त नहीं है।

पुनश्च, द्रोण या दोन उस भूमि या भूभाग को भी कहते है जो दो पहाडियो के बीच हो अथवा जहॉ दो नदियो का सगम हुआ हो। इस दृष्टि से भी सुस्पष्ट है कि गुरुदत्तादिक मुनीश्वरो की निर्वाण भूमि के रूप मे पूरे देश मे पीढी दर पीढी विख्यात होती रही यह गिरि ही द्रोण भूभाग मे विद्यमान होने से द्रोणगिरि कही गयी है। सेधपा ग्राम , जो उक्त गिरि की उपत्यका भूमि तलहटी मे बसा है, वहॉ श्यामरी और चन्द्रहासा (काठन) नामक दो नदियो का सगम है तथा यह स्थान 40–50 गावो के बृहद् भूभाग , जो दो पहाडियो के बीच है, के अन्तर्गत ही है। इसप्रकार सेधपा और आस पास की भूमि को द्रोण या दोन कहना, मानना समीचीन दृष्टि है। इसप्रकार द्रोण प्रान्त–प्रदेश या भूभाग पर सुस्थित गिरि को द्रोणगिरि ही कहा–माना जायेगा, यह सुस्थिर हो जाता है।

गुरुदत्तादिक ऋषीश्वरो की सिद्धत्व सम्प्राप्ति की स्मृतिं को सजोये हुये निर्वाण भूमि की वन्दना के लिये जब पर्वतारोहण हेतु कदम बढते है तो सचमुच ही यहॉ के भव्य वातावरण मे मन पुनीत हो जाता है। लगभग 200 सीढियॉ आसानी से चढकर ऊपर पहुँचनें पर बॉयीं ओर विश्राम स्थल सा एक कक्ष दिखाई देता है, इसी रूप मे इसका उपयोग होता भी है, किन्तु यह वह स्थान है जहॉ पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी स्वाध्याय किया करते थे। लगता है उनकी इस परम हितकारी सत्प्रवृत्ति से तीर्थयात्रियो को प्रभावित/प्रेरित करने के लिए प्रबन्धको ने यहॉ वर्णी स्वाध्याय मदिर का निर्माण किया है। इससे यह भावना भी बलवती होती है कि सिद्धक्षेत्रो पर आकर जिज्ञासुओ को स्वाध्याय जरूरी है क्योकि स्व माने अपनी आत्मा को, अध्याय माने गहराई से – अनुभूति से–जानने रूप स्वाध्याय के बिना सिद्धत्व की वन्दना कैसी ? वह तो

स्वाध्याय से ही सार्थक होती है। इस प्रकार स्वाध्याय के महान् पुरुषार्थ से द्रोणगिरि की वन्दना का शुभारम्भ होता है। स्वाध्याय मन्दिर से पूर्वोन्मुखी होकर बॉयीं ओर के क्रमश सात जिनालयो की वन्दना करते हुए हम पुन वापिस वहीं स्वाध्याय मदिर के सामने वाले भाग मे आते है और मध्यवर्ती दस जिनालयो की वन्दना करते–करते छोर पर पहुॅच जाते है जहॉ ग्यारह जिनालयो की वन्दना दॉयी ओर घूमकर होती है और हम उस गुफा स्थान पर पहुच जाते है जिस गुफा मे ध्यानावस्थ हो गुरुदत्त ऋषि उपसर्ग केवली होकर निर्वाण गये थे। गुफा का अपना वैशिष्ट्य है और पुरातात्त्विक दृष्टि से उसका खनन, सरक्षण आदि होना चाहिये। गुफा के समीप ही इधर–उधर से प्राप्त खण्डित मूर्तियो का सग्रह कर सग्रहालय स्थापित किया गया यह सग्रहालय सूचित करता है कि इस गिरि के आस–पास पुरातात्त्विक महत्व की बहुत सारी सामग्री मौजूद होना चाहिये। सभवत फलहोणी गाव जो निर्वाण काण्ड की गाथा मे वर्णित है, के अवशेष ही गिरि के समीप पूर्व की ओर विद्यमान खडहर के रूप मे हो। यदि यहॉ अन्वेषण हो तो दो हजार वर्ष पूर्व से लेकर पॉच हजार वर्ष पूर्व तक की सस्कृति को जानने समझने का प्रामाणिक आधार/साक्ष्य प्राप्त हो सकता है। ऐसा मेरा अनुमान है।

सग्रहालय से थोडा बॉयी ओर आगे चलकर हम पुन स्वाध्याय मदिर मे आ जाते है और वरवश वहॉ बैठने का मन हो जाता है। कितना अच्छा हो कि वन्दना के उपरान्त हम वहॉ आत्मालोचन करने का तात्त्विक चिन्तन–मनन स्वरूप सामायिक करने का पुरुषार्थ करे इससे हम वर्णीजी के सच्चे अनुयायी तो बनेगे ही अपना जीवन भी सार्थक कर पायेगे। मुझे तो प्रतीत होता है कि इस स्वाध्याय मन्दिर का सदुपयोग किये बिना मानो हमारी वन्दना का उपक्रम अधूरा ही रहेगा।

पर्वत पर विद्यमान जिनालयो को सामान्यत तीन समूहो मे बॉटकर लोग–बाग बॉयी ओर के सात जिनालयो को सुपार्श्वनाथ टोक, मध्यवर्ती दस जिनालयो के समूह को चन्द्रप्रभु टोक तथा दायी ओर के ग्यारह जिनालय समूह को आदिनाथ टोक पर मानते है और क्रमश उस–उस स्थान को उन्हीं टोको के नाम से कहते है। यह कितना सही है ? विचारणीय है।

मुझे तो यह अनुमान होता है कि जैसे सिद्धक्षेत्र सम्मेद शिखर पर निर्वाण भूमि स्वरूप चरण स्थलो को अमुक–अमुक टोक कहा जाता है वैसे ही लोगो ने यहॉ भी नामकरण किये है। नामकरण मे जिस मन्दिर समूह मे जिन भगवान का मन्दिर प्रथम है उनके नाम पर टोक का नाम रख दिया है। परन्तु ऋषीश्वर गुरुदत्त टोक नामकरण क्यो नहीं हुआ ? जबकि उनके और अन्य अनेक अज्ञात मुनिवरो का निर्वाण इस गिरि से होना असदिग्ध है तथा सुपार्श्वनाथ आदि तीर्थंकर , जिनकी यहॉ मूर्तियॉ है, यहॉ से मोक्ष नहीं गये, यह भी सुनिश्चित है।

सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के परिप्रेक्ष्य मे इतना लिख जाने पर भी मेरा मन तोष के मोद को प्राप्त नहीं कर पा रहा है। ऐसा लगता है मानो अभी कुछ शेष है लिखने को। क्या है वह इस विचार से जब मन ने ही प्रयास किया तो पता चला कि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पर सचालित होते रहे जीवन्त तीर्थ या ज्ञानतीर्थ के प्रतीक श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन विद्यालय का उल्लेख प्रकृत लेख मे कहीं हुआ ही नहीं। क्या यह ठीक है ? नहीं, उसका उल्लेख तो होना ही चाहिए। क्योकि यह लेख पण्डित श्री गोरेलालजी शास्त्री के स्मृति ग्रन्थ मे छप रहा है। पण्डितजी जब तक थे सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के लिए समर्पित रहे उनका तन मन सब कुछ सिद्धक्षेत्र

और सिद्धत्व की साधना के लिए ही रहा। विद्यालय के तो वे प्राण थे। लगभग 4 दशक तक उनकी अविस्मरणीय, निस्पृह, निरपेक्ष सेवाये विद्यालय को प्राप्त होती रही। सिद्धक्षेत्र के प्रबन्धन व विकास मे उनका अपरिहार्य योगदान क्या कोई भुला सकता है ? नहीं, अतएव आवश्यक व अपरिहार्य लगता है इस लेख मे पण्डितजी के जीवन की सजीवनी से गतिशील रहे विद्यालय के बारे मे कुछ लिखना।

मै जब पहली बार सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पहुँचा था तब मेरी दृष्टि विद्यालय के बोर्ड पर गयी थी किन्तु इस विषयक कोई तफतीश मैने नहीं की। हो सकता है तफतीश का मन ही नहीं हुआ होगा और छात्र, अध्यापक, कक्षा आदि का साक्षात् सामना भी नहीं हो पाया होगा।

प्रत्येक द्रव्य का परिणमन, परस्पर सयोग वियोग वगैरह उपादन, निमित्त, भवितव्यता, काललब्धि एव पुरुषार्थ सापेक्ष तो होता ही है, सुनिश्चित भी होता है। कौन जीव किसका कब और कैसा सबधी, शत्रु-मित्र, हितैषी-द्वेषी है, हुआ है व होगा इत्यादि सभी कुछ जीवो के परस्पर कृत कर्मो के फलादेश से सर्व कारण सामग्री के मिलने पर ही होता है जैन कर्म सिद्धान्त की अवधारणा से यह बात सुस्पष्ट है। मेरे साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ कृत कर्मों के फलानुसार मेरा सबध पण्डितजी के परिवार से बना और बार-बार सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि आने-जाने का सुयोग मुझे मिला तो श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन विद्यालय के बारे मे बहुत कुछ जानकारियॉ तफतीश के बिना ही अधिगत हो गयीं। मुझे यह जानकर अच्छा भी नहीं लगा कि परम पूज्य श्री 105 क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी द्वारा सस्थापित विद्यालय बद हालत मे ही मेरी जानकारी मे आया था। आज भी वह बद है। जबकि बुन्देलखण्ड के अनेको छात्र आज भी अन्य प्रान्तो मे जाकर जैनधर्म दर्शन की शिक्षा ग्रहण करते है। कितना अच्छा होता कि आज भी वह विद्यालय वटवृक्ष की तरह फलता-फूलता और पूरे द्रोण प्रान्त के लिए वरदान स्वरूप जाना जाता। पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी और श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री की स्मृति को बचाये रख पाने के लिए हमे उनके विद्यालय विषयक अवदान को तो याद रखना ही होगा, श्री गुरुदत्त जैन विद्यालय को भी द्रोणगिरि मे पुनर्जीवित कर उसे सुसचालित करना होगा तभी शायद सिद्धक्षेत्र की सार्थकता से सुपरिचित होता समाज पूज्य वर्णीजी व पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के उपकारो से लाभान्वित होता रह पायेगा।

● अध्यक्ष, जैनदर्शन विभाग
केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ, जयपुर
सम्पर्क – णमोकार निलय
5/47, मालवीयानगर,
जयपुर - 302017 (राज)

पावन भूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के प्रकाश स्तम्भ

(पूज्य वर्णीजी – क्षुल्लक चिदानन्दजी एवं पण्डित गोरेलालजी शास्त्री)

– लक्ष्मणप्रसाद जैन

श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि उन पुनीत भूमियो मे अपना विशेष स्थान रखता है जहा से ऋषियो, मुनियो ने साधना करते हुए अपने कर्मों की निर्जरा करते हुए जन्म जरा मृत्यु से छूटकर मोक्ष प्राप्त किया है। यही स्थान आध्यात्मिक सन्त परम पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी ने अपनी साधना के लिए चुना था

पूज्य वर्णीजी का उदय उस समय हुआ जब प्रान्त मे चारो ओर अज्ञान ही अज्ञान था प्रकाश की किरणे कहीं भी दिखाई नहीं देतीं थीं। शिक्षा की व्यवस्था न होने के कारण प्राय जनता अपढ थी। जिसकारण समाज मे कुरीतियो, कुरूढियो ने अपनी जडे गहरी जमा लीं थीं। यह दशा देखकर वर्णीजी का हृदय द्रवित हो गया और उन्होने जीवित मूर्तियो को गढने का सकल्प लिया था। उन्होने सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि मे वि स 1985 की वैशाख सुदी सप्तमी को श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला की स्थापना की और द्रोणगिरि के ही शास्त्रीजी विद्वान् पण्डित गोरेलालजी को पाठशाला का भार सौपा।

पाठशाला मे पढने के लिए छात्रो को इकट्ठा करने के उद्देश्य से पूज्य वर्णीजी ने पूरे प्रान्त मे विहार किया और छिपी प्रतिभाओ को तलाशा और द्रोणगिरि भेजा। पण्डितजी ने बडे मनोयोग से उन्हे उज्ज्वल हीरा बनाने का अथक परिश्रम किया। थोडे ही समय मे पाठशाला की प्रगति समाज को दिखाई देने लगी। फलस्वरूप छात्रो की भीड पढने के लिए आने लगी मानो समाज मे विकास के द्वार खुलने लगे, ज्ञान का प्रकाश फैलने लगा।

यदि पूज्य वर्णीजी ने अज्ञान तिमिर को दूर करने के लिए विद्यालय स्थापित किये तो पूज्य पण्डित गोरेलालजी ने दीप ज्योति का काम किया और ज्योति से ज्योति जलाते हुए अगणित ऐसे दीपो को प्रज्ज्वलित किया जो कहीं गर्त मे पडे थे। उन्होने छात्र दीपको को अपने स्नेह के तेल से प्रज्ज्वलित करते हुए प्रकाशित कर दिया। इतना ही नहीं तीर्थक्षेत्र के विकास के लिए भी पण्डितजी ने अमूल्य योगदान किया।

पूज्य वर्णीजी देशाटन करते हुए तीर्थक्षेत्रो पर रहे और पुन बुन्देलखण्ड वापिस आये तथा अपने द्वारा स्थापित सस्थाओ की प्रगति से प्रसन्नता अनुभव करते हुए द्रोणगिरि पहुचे तो सिद्धक्षेत्र की रमणीयता व प्रशान्त वातावरण को देख उन्होने इस भूमि को लघु सम्मेदशिखर का सम्बोधन दिया।

इसके अलावा पूज्य वर्णीजी ने प्रान्त मे फैली सामाजिक बुराईयो को मिटाने का भी उल्लेखनीय कार्य किया। पूज्य वर्णीजी सन् 1950 मे बुन्देलखण्ड से विहार करते हुए सम्मेद शिखरजी के पादमूल मे साधना करने लगे। तो उनके ही सुयोग्यतम शिष्य पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज यहा के सवाहक बने। उन्होने वर्णीजी के शिक्षा मिशन को सचालित किया। नगर–नगर मे घूमकर बच्चो के लिए पाठशालाये प्रारम्भ करायीं तथा अन्ध बच्चो के लिए अन्ध विद्यालय भी सचालित किया। उन्होने पूरे प्रान्त मे भ्रमण कर ऐसे तीर्थ क्षेत्रो को प्रकाश मे लाने का महनीय कार्य किया जो जैन मूर्तिकला के अनुपम भण्डार थे। श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र नवागढ जिला ललितपुर इसका एक उदाहरण है। विषय भोगो से उदास श्रावको को धर्मसाधना के लिए जगह–जगह उदासीनाश्रम स्थापित किए जिनमे आहार, नवागढ तथा रेशन्दीगिरि के आश्रम है। द्रोणगिरि के आश्रम को सभी आश्रमो का केन्द्र बनाया गया। इनके प्रयास से

आश्रम का विशाल भवन, संचालन के लिए ट्रस्ट का निर्माण, आर्थिक समस्या के हल हेतु स्थायी ध्रौव्य फण्ड बनाना इत्यादि कार्य सम्पन्न हुए। पूज्य क्षुल्लकजी उदासीन श्रावको को आश्रम मे लाते थे और उनकी साधना के योग्य अनुकूल वातावरण तैयार करते थे।

पूज्य वर्णीजी एव पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी की श्रृखला में पूज्य पण्डित गोरलालजी के योगदान को भी कम करके नहीं आका जा सकता। पूज्य वर्णीजी ने प्रान्त मे भ्रमण किया, द्रोणगिरि मे कुछ वर्षों रहे और सम्मेदशिखर के पादमूल मे समाधि तक स्थित हो गए और पत्राचारो से प्रान्त की जानकारी लेते रहे। पूज्य क्षुल्लकजी भी द्रोणगिरि से सागर, इन्दौर, सोनगढ, देहली मे भी साहित्य एवं शिक्षा के प्रचार मे योगदान देते रहे। तथा पूज्य पण्डित गोरेलालजी का तो जन्म ही द्रोणगिरि मे हुआ था अध्ययन के बाद उन्होनें सत्तर वर्ष का अपना लम्बा जीवन मात्र द्रोणगिरि को ही समर्पित किया है। प्रारम्भ मे सन् 1928 से श्री गुरुदत्तादि दिगम्बर जैन पाठशाला द्रोणगिरि के सचालन का दायित्व योग्यता, निष्ठा तथा पूर्ण समर्पण भाव से सभाला। कार्य क्षमता और योग्यता को देखते हुए प्रान्तीय समाज की क्षेत्रीय प्रबन्ध समिति ने सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि का भी दायित्व उन्हें सौप दिया।

पण्डितजी का कार्य छात्रों को पढाना उनकी दैनिक दिनचर्या पर निगाह रखने के साथ–साथ सिद्धक्षेत्र की व्यवस्था यात्रियो की सुविधाओ, जीर्णोद्धार, नया निर्माण, धर्मशालाओ की व्यवस्था आय व्यय का लेखा जोखा रखना आदि था जिसे पण्डितजी ने पूर्ण निष्ठा के साथ निष्पादित किए।

पूरे प्रान्त मे अज्ञान अन्धकार को मिटाकर ज्ञानसूर्य के प्रकाश का जो काम हुआ, वह पण्डितजी जैसे समर्थ व्यक्ति का ही कार्य था। इस विद्यालय मे बुन्देलखण्ड प्रान्त तथा सुदूरवर्ती प्रान्तो यथा उत्तरप्रदेश, मद्रास, महाराष्ट्र आदि के छात्रो ने विद्यालय मे प्रवेश लेकर पूज्य पण्डितजी के चरण सान्निध्य मे बैठकर अपने उज्ज्वल भविष्य का निर्माण किया है। पण्डितजी सचमुच पारस पत्थर के समान थे जिसे छू लिया वह सोना बन गया। विद्यालय की सेवा मे रहते हुए पण्डितजी ने समाज के उत्थान के लिए अथक परिश्रम किया है, समाज मे व्याप्त बुराईयो, कुरूढियो को दूर करने मे सघर्ष किया।

साहित्य सृजन मे भी पण्डितजी का योगदान है। वे आशुकवि थे। उनके द्वारा रचित बारह भावना, सुमन सचय, जैन गारी सग्रह, भजन संग्रह, उल्लेखनीय कृतिया है।

विद्यालय की सेवा से अवकाश ग्रहण करने के बाद पण्डितजी ने अपना शेष जीवन निवृत्ति से बिताया। श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम मे रहना, वहा स्थित त्यागियो को पढाना, स्वाध्याय कराना प्रतिदिन का कार्य था। मुनियो, ऐलको, क्षुल्लको और व्रतियो को पण्डितजी से सिद्धान्त ग्रन्थो के स्वाध्याय का लाभ मिलता रहा है। तथा आश्रम के विकास मे भी बहुत योगदान रहा है।

नि सन्देह द्रोणगिरि के विकास मे पूज्य वर्णीजी, पूज्य क्षुल्लकजी एव पूज्य पण्डितजी का होना त्रिवेणी सगम के समान था। यह लिखते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव होता हे कि उक्त तीनो विभूतियो के चरण सान्निध्य का लाभ मैने लिया है। पूज्य वर्णीजी से कम लेकिन क्षुल्लकजी एव पण्डितजी से तो बहुत समय तक मेरा सान्निध्य रहा है। मेरे जीवन मे जो संस्कार हे उनका श्रेय इन्हीं को है। मैं उनके उपकारो से उपकृत हूँ।

• प्राचार्य सेवा निवृत्त,
बडामलहरा, छतरपुर (म प्र)

□□□

पण्डितजी से लाभान्वित आश्रमवासी

— चन्द्रभान जैन

श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम द्रोणगिरि, 1970 मे जब पण्डितजी पूर्णरूप से आश्रमवासी हो गए थे, प्रगति पर था। आश्रम मे रहने वाले व्रतियो की पर्याप्त सख्या थी। अनेको मुनियो, ऐलको, क्षुल्लको के आश्रम मे पर्याप्त समय तक रहने का कारण पण्डितजी द्वारा जैन सिद्धान्त ग्रन्थो का अध्ययन, स्वाध्याय करने का लाभ उन्हे मिलेगा, यह था। विद्वद्‌वर्ग भी प्रशान्त वातावरण से प्रभावित होकर आश्रम मे आकर तत्वचर्चा मे अपना समय व्यतीत करते थे। श्री ब्र राजारामजी भोपाल, श्री ब्र पण्डित मुन्नालालजी राधेलीय सागर, श्री पण्डित धन्नालालजी ग्वालियर, श्री ब्र बाबूलालजी बेटिया जबलपुर, पण्डित ताराचन्दजी सागर आदि विद्वानो ने आश्रम मे पण्डितजी के साथ पर्याप्त समय बिताया। आध्यात्मिक ग्रन्थो का स्वाध्याय किया। यहा हम उन कतिपय व्रतियो का उल्लेख कर रहे है जो आश्रम मे अधिक समय तक रहे और पण्डितजी से लाभान्वित हुए।

श्री ब्र. दयासिन्धुजी

उदासीनाश्रम से ब्र दयासिन्धुजी महाराज का सम्बन्ध 1960 से है। पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी की प्रेरणा से यह अपने पूरे परिवार से उदासीन होकर आश्रम मे आये और आश्रम के विकास मे अपना योगदान देते रहे। आत्म साधना, चिन्तन, मनन तो उनके जीवन का प्रमुख कार्य था ही।

इनका जन्म सागर जिले के हीरापुर ग्राम मे भादो सुदी 4 स 1964 मे हुआ था। इन्होनें शिक्षा मात्र कक्षा 5 तक ही प्राप्त की थी परन्तु हिसाब किताब मे आप योग्य थे। इनके यहा खेती, साहूकारी और मालगुजारी होती थी। सामाजिक और सार्वजनिक क्षेत्र मे उन्होने उल्लेखनीय कार्य किए। द्रोण प्रान्तीय सेवा परिषद् के माध्यम से सामाजिक समस्याओ का समाधान करते हुए परोपकार के अनेक कार्य किए। स्वतत्रता सग्राम मे भी इनका सक्रिय सहयोग था। लेकिन उसका प्रतिफल प्राप्त करने की कोई भावना भी नहीं की। यह मिलनसार और मधुरभाषी थे। ईशरी मे वि स 2099 मे इन्होने पूज्य वर्णीजी से पहली प्रतिमा क़े व्रत ग्रहण किए। आचार्य विमलसागरजी महाराज से दूसरी प्रतिमा तथा तीसरी चौथी प्रतिमा क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज से ग्रहण की थी।

उदासीनाश्रम द्रोणगिरि के विकास मे इनका सारा जीवन व्यतीत हुआ। आश्रम मे आने वाला ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होगा जो आश्रम मे आया हो और ब्र दयासिन्धुजी क़े व्यवहार से प्रभावित नहीं हुआ हो। आश्रम स्थित साधुओ, व्रतियो की उत्तम व्यवस्थाये बनाना इनका प्रमुख कार्य रहा है। सचमुच मे ब्र दया सिन्धुजी आश्रम के पर्याय बन गए थे। यदि दयासिन्धुजी है तो आश्रम होता था उनके अभाव मे आश्रम चेतना शून्य सा हो जाता। इनका अति उदार हृदय था। दया, करुणा आपके गुण थे।

ये साधुओ, मुनियो को आश्रम मे वर्षायोग करने एवं पण्डितजी की विद्वत्ता का लाभ लेने की प्रेरणा देते रहते थे। अस्वस्थता के कारण जब परिवार वाले पण्डितजी को घर वैयावृत्ति के लिए ले जाने लगे तब ब्र दयासिन्धुजी भावविह्वल होकर रो पड़े और कहने लगे कि अब आश्रम निर्जन हो रहा है। पण्डितजी आश्रम के गौरव हैं और आप उनके साथ आश्रम की गरिमा ही ले जा रहे हैं। ब्र दयासिन्धुजी पण्डितजी के

वियोग से दुखी हुए। महान् निहायत सयोग ही था कि ब्र दयासिन्धुजी अस्वस्थ हुए और अप्रेल मे उनका भी स्वर्गवास हो गया। इसप्रकार आश्रम एक साथ पण्डितजी और ब्र दयासिन्धुजी के अभाव से वीरान सा हो गया। आश्रम मे अब वह रौनक नहीं जो इन दोनो महानुभावो के कारण रहती थी।

श्री पण्डित मूलचन्दजी प्रतिष्ठाचार्य

पण्डितजी द्वारा प्रवाहित आध्यात्मिक रसधारा से प्रभावित श्री ब्र पण्डित मूलचन्दजी प्रतिष्ठाचार्य का जन्म कुवार सुदी 15 शनिवार वि स 1955 को द्रोणाचल के ग्राम गोरखपुरा मे हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज द्वारा स्थापित जैन पाठशाला गोरखपुरा मे हुई। ब्र भगवानदासजी इनके प्रारम्भिक गुरु थे। इसके बाद स्वय अध्ययन करते हुए जैन ग्रन्थो का ज्ञान प्राप्त किया तथा वि. स 1970 से 1976 तक गोरखपुरा, बरेठी, हटा, भोयरा आदि स्थानो की जैन पाठशालाओ मे अध्यापन कार्य किया।

वि स 2004 मे बरुआसागर मे कलशारोहण एव व्रती सम्मेलन था । जहा इन्होने क्षुल्लक क्षेमसागरजी के सामने जिन मन्दिर मे पहली प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। नैनागिरि पचकल्याणक जिनबिम्ब प्रतिष्ठा एव गजरथ महोत्सव के समय वि स 2008 मे तप कल्याणक के दिन क्षुल्लक क्षेमसागरजी के सामने द्वितीय प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। आप इस प्रतिष्ठा मे सहायक प्रतिष्ठाचार्य भी थे। वि स 1916 मे ललितपुर पचकल्याणक प्रतिष्ठा मे तीसरी प्रतिमा 1919 मे दाता पचकल्याणक प्रतिष्ठा मे चौथी और पाचवी प्रतिमा के व्रतो को धारण किया। पण्डितजी इन सभी प्रतिष्ठाओ मे सहायक प्रतिष्ठाचार्य थे।

पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज की प्रेरणा से यह उदासीनाश्रम द्रोणगिरि मे आये और श्री पण्डित गोरेलालजी के सान्निध्य मे जैन शास्त्रो का अध्ययन किया। स्वाध्याय, मनन, चिन्तन और तात्विक चर्चा का लाभ लिया।

यह मिलनसार, उदार और शान्तिप्रिय थे सामाजिक क्षेत्र मे भी सक्रिय कार्य करना इनका स्वभाव था। आप जैन आध्यात्मिक ग्रन्थो विशेषरूप से समयसार का स्वाध्याय करते थे। इनका अन्तिम समय द्रोणगिरि आश्रम मे ही व्यतीत हुआ।

श्री पण्डित पदमचन्दजी शास्त्री

इनका जन्म द्रोणाचल के ही गोरखपुरा मे कार्तिक वदी 13 स 1972 मे हुआ था तथा शिक्षा दीक्षा श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला द्रोणगिरि मे पण्डित गोरेलालजी के सान्निध्य मे ही हुई। वि स. 2013 मे पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज की प्रेरणा से इन्होने उदासीनाश्रम द्रोणगिरि मे ही पहली प्रतिमा के नियम लेकर अध्ययन मनन मे अपना जीवन लगा दिया तथा पुन पण्डितजी के सान्निध्य मे ही अनेक जैन ग्रन्थो का अध्ययन कर बम्बई परीक्षा बोर्ड से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। समयसार, नियमसार, प्रवचनसार आदि आध्यात्मिक ग्रन्थो के अध्ययन मे इनकी विशेष रुचि थी। सादगीपूर्वक जीवन के पक्षधर ब्र.जी हमेशा मितभाषी, परोपकारी और सेवाभावी होने के कारण आश्रमवासियो के लिए आदरणीय बने रहे। तथा अन्तिम अवस्था तक आश्रम मे ही साधनारत रहे। सरल परिणामो के साथ इनका समाधिमरण भी आश्रमवासियो के लिए अनुकरणीय रहा।

श्री ब्र. छिमाधरजी

इनका जन्म भादो वदी दसवीं स 1978 मे जसोड़ा (सागर) मे हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा रेशन्दीगिरि के विद्यालय मे हुई। स. 2019 मे पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी के प्रेरणा से इन्होने अपना सभी कारोबार छोड़

द्रोणगिरि आश्रम मे पहली प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर आत्म चिन्तन मे लग गये।

हीरापुर की जैन पाठशाला मे अध्यापन कार्य फिर उदासीनाश्रम द्रोणगिरि मे ही साधना मय जीवन प्रारम्भ किया। बाल ब्रह्मचारी तो थे ही तत्व जिज्ञासा के लिए इन्होनें सयम की पालना के साथ स्वाध्याय अन्तिम समय तक जारी रखा।

श्री ब्र. फूलचन्दजी मड़ावरा

मडावरा ललितपुर (उ प्र) के निवासी श्री प फूलचन्दजी 57 वर्ष की आयु मे एक बार सौंरई मे पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज से भेट हुई। प्रवचन सुना तो वैराग्य हो गया। इन्होने महाराजजी से पहली प्रतिमा के व्रत ले लिए तथा हमेशा के लिए धर्म लाभ तथा ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से महाराजजी के सत्सग मे ही रहने का सकल्प ले लिया और निभाया भी। द्रोणगिरि आश्रम मे साधना की।

इन्हे चर्म रोग था जिसे पूज्य क्षुल्लकजी महाराज ने चिकित्सा से दूर किया। चिकित्सा मे नमक का त्याग सहित एक माह तक 1 उपवास 1 एकाशन कराया गया। इससे एक माह मे ही सारा शरीर निरोग हो गया। न कोई दवा खानी पडी और न ही किसी डाक्टर की शरण मे जाना पड़ा। इसप्रकार द्रोणगिरि आश्रम इनके स्वास्थ्य के लिए वरदान तो सिद्ध हुआ ही साथ ही सयम पूर्ण साधना से जीवन सफल हो गया। इनके ज्ञानाभ्यास मे श्री प गोरेलालजी शास्त्री का विशेष योगदान रहा।

श्री ब्र. बाबूलालजी बरायठा

इनका जन्म वैशाख सुदी 12 मगलवार स 1985 मे बरायठा मे हुआ था। प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने के बाद इनका मन घर गृहस्थी मे नहीं लगा तो उदासीनाश्रम मे रहने लगे। जिज्ञासु प्रकृति के थे अत. ब्रह्मचर्य व्रत लेकर स्वत अध्ययन से धार्मिक ज्ञान प्राप्त करते रहे। उदासीनाश्रम द्रोणगिरि मे पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज की प्रेरणा से आये और श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री से भी अनेक जैन शास्त्रो के पढा। प्रवचन आदि करने मे इनका विशेष योग था।

जगह—जगह भ्रमण कर अनेक वीतराग विज्ञान पाठशालाओ का निरीक्षण कर इन्होने उनके सचालन मे सोत्साह कार्य किया। आप उदासीनाश्रम द्रोणगिरि की प्रबन्ध समिति के अनेकों वर्षों तक सहमत्री, मत्री रहे हैं। सोनगढ शिविरो मे जाना इन्हे अच्छा लगा फिर पूज्य मुनि आचार्य विद्यासागरजी महाराज के सत्सग से भी प्रभावित रहे।

क्षुल्लक स्वरूपानन्दजी महाराज

इनका जन्म दरगुवा (म प्र) मे वि स 1969 मे हुआ। इनका पूर्व नाम ब्र नाथूराम जी था। यह पूज्य वर्णीजी के साथ उनकी समाधि तक निरन्तर रहे। पूज्य वर्णीजी की समाधि के बाद यह द्रोणगिरि आश्रम मे रहे और पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी को इन्होने अपना आदर्श मान लिया था। तथा तत्व जिज्ञासु होकर हमेशा अध्ययन मे रत रहने लगे। वर्षायोग मे जहा भी रहते थे पाठशाला चालू कर बालको, युवाओं, वृद्धो को ज्ञानार्जन कराते थे। शास्त्र, स्वाध्याय, पूजन आदि की प्रवृतियो को बढाते रहते थे। वर्तमान मे द्रोणगिरि आश्रम मे ही साधना कर रहे हैं।

• ट्रस्टी, श्री गुरुदत्त दि जैन उदासीनाश्रम
द्रोणगिरि

□□□

पूज्य पण्डितजी की साधना स्थली

उदासीनाश्रम - द्रोणगिरि

– महेश बड़कुल

श्री.दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि में आध्यात्मिक सन्त पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी की प्रेरणा से पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज द्वारा आत्म साधना के इच्छुक श्रावको के लिए श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम की स्थापना सन् 1955 मे गजरथ महोत्सव के बाद हुई। वैसे 1940 से यहां उदासीनाश्रम संचालित होने के उल्लेख है। परन्तु विधिवत् स्थापना तो 1955 मे ही है। जबसे व्रतियों, साधुओं का बराबर आना हुआ एवं उनकी साधना का स्वर वहा गूंजने लगा।

पण्डितजी उस समय क्षेत्र एव विद्यालय का कार्य सँभालते थे। आश्रम का स्वतंत्र भवन न होने के कारण सामने ही धर्मशाला के द्वितीय खण्ड में आश्रम था और नीचे विद्यालय चलता था। पण्डितजी छात्रों के शिक्षण के बाद आश्रम स्थित व्रतियो को पढाते थे, स्वाध्याय कराते थे। उस समय आश्रम मे 10–15 त्यागी रहते थे। क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज भी रहते थे।

1966 मे आश्रम के लिए स्वतत्र भवन बनाने का उपक्रम प्रारम्भ हुआ और श्यामली नदी के तट पर सुरम्य वातावरण मे भवन की नींव पड़ी।

आश्रम के लिए कर्मठ, लगनशील श्री ब्र दयासिन्धुजी जैसे व्यक्ति मिले जिन्होने पूर्ण निष्ठा और समर्पण भाव से आश्रम का सचालन किया। उन्होंने आश्रम भवन के निर्माण मे बहुत अधिक श्रम किया। श्री पं गोरेलालजी शास्त्री ने 1964 मे क्षेत्र के कार्यों से पूर्ण अवकाश.लेकर पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी की प्रेरणा से उदासीनवृत्ति को धारण कर आश्रम मे अपना शेष जीवन संयम साधना के साथ व्यतीत करने का संकल्प किया। मार्च 1970 से पण्डितजी पूर्णरूप से आश्रमवासी हो गये थे।

आश्रम मे पण्डितजी ने जहा अपनी साधना करना प्रारम्भ की वहीं आश्रम स्थित व्रतियो को स्वाध्याय मनन, चिन्तन मे लगाये रखा तथा जैन सिद्धान्त ग्रन्थो का पठन–पाठन भी कराया। पण्डितजी के पूर्णरूप से आश्रम में रहने के कारण स्वाध्याय, पठन–पाठन की समुचित व्यवस्था को देखते हुए इस आश्रम मे राजस्थान, बिहार, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के सुदूरवर्ती स्थानो से व्रतियो का आना प्रारम्भ हुआ। विद्वानों का समागम हुआ। श्री पण्डित मुन्नालालजी न्यायतीर्थ राघेलीय सागर, पण्डित ताराचन्दजी सागर, प. धन्नालालजी ग्वालियर, डॉ. राजारामजी भोपाल आदि विद्वानो ने पण्डितजी के सान्निध्य मे आध्यात्मिक ग्रन्थो का स्वाध्याय किया है। अनेको व्रतियो ने पण्डितजी से जैन ग्रन्थों का अध्ययन कर माणिकचन्द दिगम्बर जैन परीक्षालय बम्बई से शास्त्री परीक्षा भी उत्तीर्ण की हे।

ब्र. दयासिन्धुजी के साथ प्रान्त मे जगह–जगह भ्रमण कर पण्डितजी ने जहां समाज को प्रवचनो का लाभ दिया वहीं आश्रम को स्थायित्व देने के लिए धन संग्रह भी कराया। तथा आश्रम मे रहने के लिए श्रावको को प्रेरित किया।

आश्रम को व्रतियो का केन्द्र बनाया और अनेको व्रती सम्मेलनो का आयोजन हुआ। क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज स्वय आश्रम मे रहे और अन्य साधुओ को भी आश्रम मे रहने की प्रेरणा दी। क्षुल्लक

दयासागरजी, क्षुल्लक पूर्णसागरजी, क्षुल्लक चन्द्रसागरजी आदि ने पर्याप्त समय तक आश्रम मे रहकर आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय किया। पण्डितजी के सान्निध्य मे अध्ययन के लाभ से पूज्य मुनि नेमिसागरजी महाराज ने आश्रम मे वर्षायोग स्थापित कर व्याकरण एव आध्यात्मिक ग्रन्थो का पण्डितजी से अध्ययन किया।

पण्डितजी ने आश्रम को अपने श्रमकणो से सिंचित किया। ध्रौव्य कोष की स्थापना, आश्रम के स्वतत्र विशाल भवन का निर्माण, जिनालय, वर्णी स्वाध्याय भवन, एव स्वतत्र ट्रस्ट के निर्माण मे पण्डितजी की प्रमुख भूमिका रही है।

आश्रम सस्थापक पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज 5 मई 1970 को पथरिया (दमोह) में चिरनिद्रा मे लीन हो गये तो उस समय प्रान्तीय समाज ने आश्रम को पूर्णरूप से सरक्षण देने हेतु पण्डितजी से आग्रह किया। श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के तत्कालीन मत्री श्री बालचन्दजी मलैया सागर ने तो तुरन्त एक पत्र लिखकर पण्डितजी से उनका स्थान ग्रहण करने का आग्रह किया था। श्री मलैयाजी द्वारा दिनाक 6 3 70 को पण्डितजी के लिए लिखा गया पत्र निम्नप्रकार है —

प गोरेलालजी शास्त्री

सादर जय जिनेन्द्र।

कल शाम को हमे समाचार मिला कि क्षुल्लक चिदानन्दजी का देहावसान पथरिया मे हो गया है। ऐसी परिस्थिति मे द्रोणगिरि क्षेत्र पर प्रारम्भ उदासीन आश्रम का नेतृत्व एव मार्गदर्शन करने वाले व्यक्ति को उनका स्थान ग्रहण करना होगा। सो आप सुझाव दे कि कौन व्यक्ति उनका स्थान ग्रहण करे। मेरा तो सुझाव है कि आप अब योग्य व्रत धारण कर उनका स्थान ग्रहण करे, योग्य होगा। इसके लिए आवश्यक है कि समारोहपूर्वक आप पदारूढ हो, ऐसी मेरी विनम्र प्रार्थना है।

विनम्र

बालचन्द मलैया

उपरोक्त पत्र मे उल्लिखित दायित्व को तो पण्डितजी ने स्वीकार करने मे असमर्थता व्यक्त की परन्तु तब से पण्डितजी ने पूर्ण समर्पण भाव से आश्रम की गतिविधियो को सचालित करने मे अपने को समर्पित कर दिया।

पण्डितजी के समय उदासीनाश्रम वास्तविक रूप से आत्म साधना का केन्द्र था। सुबह व दोपहर मे शास्त्र प्रवचन, रात्रि मे स्वाध्याय, मनन, चितन, प्रश्नोत्तरो आदि से आश्रम का वातावरण आध्यात्मिक था। आने वाले यात्रियो को बरबस ही पण्डितजी के शास्त्र प्रवचन मे बैठने के लिए मन हो जाता था। उनके शास्त्र प्रवचन से प्रभावित होकर वे आश्रम की सुन्दर व्यवस्था के लिए भरपूर आर्थिक सहयोग देते थे।

पण्डितजी ने 1970 से 1991 तक अपना पूर्ण जीवन आश्रम मे रहकर बिताया। मार्च 1991 मे अस्वस्थ होने के कारण जैसे ही परिवारजन उन्हे वैयावृत्ति के लिए अपने घर लाने लगे तो आश्रम के समस्त व्रतीगण उदास हो गये। भवन वीरान सा होने लगा क्योकि सभी लोग पण्डितजी की अन्तिम स्थिति को देख रहे थे। इसी समय ब्र दयासिन्धुजी भी अस्वस्थ हो गये और इन्हे भी परिवार वाले अपने घर हीरापुर ले गये।

29 मार्च 1991 को पण्डितजी पूर्ण समाधिपूर्वक णमोकार मत्र का ध्यान करते हुए साय 6 40 पर

इस देह ससार से हमेशा के लिए विलग हो गये। आश्रम स्थित व्रतियो में शोक छा गया। परिवारजन तो दु खी हुए ही पूरा प्रान्त ही पण्डितजी की छत्रछाया से सदैव के लिए वंचित हो गया। पण्डितजी के स्वर्गवास के साथ ही कुछ समय पश्चात् ब्र दयासिन्धुजी का भी स्वर्गवास हो गया। इन दोंनो महापुरुषो के अभाव मे आश्रम पूर्णरूप से खाली–खाली सा लगने लगा आश्रम की सभी प्रवृतियो ने मानो विराम ले लिया और यहां आने वाले व्रतीगणो, यात्रीगणो को पण्डितजी की ओजस्वी मधुर वाणी मे सरलता से जो आध्यात्मिक प्रवचन मिलते थे, उनका अभाव हो गया।

मेरा यह सौभाग्य है कि मुझे पण्डितजी के परिवार से निकट का सम्पर्क मिला है। पण्डितजी के ज्येष्ठ सुपुत्र श्री अजितकुमारजी का ज्येष्ठ दामाद होने के नाते मुझे अनेको अवसर उनके सम्पर्क मे रहने के प्राप्त हुए है, मैने निकट से उनकी दिनचर्या देखी उनके साथ मे बैठकर उनकी मधुर वाणी द्वारा जिनवाणी को सुना। आश्रम की व्यवस्थाओ को सचालित करते देखा। मेरे व्यक्तिगत जीवन मे धर्म के प्रति आकर्षण आत्म साधना की ओर प्रवृत्ति होने व साधुओ, आचार्यों, मुनियो के प्रति श्रद्धा का भाव बनने मे पूज्य पण्डितजी की ही प्रेरणा मैं मानता हूँ। उनके सयमी जीवन का प्रभाव मेरे जीवन पर पड़ा है। ऐसे आत्मार्थी विद्वत्रत्न पण्डितजी के लिए मै शत-शत नमन करता हूँ।

● अहिंसा भवन
दमोह (म प्र)

□□□

द्रोणगिरि की विद्वत् परम्परा

— डॉ ऋषभ जैन, फौजदार

पावन भूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि का प्राचीन काल से ही बहुत अधिक महत्त्व रहा है। गुरुदत्तादि मुनिवरो ने इसे अपनी साधना का केन्द्र बनाकर कठोर साधना करते हुए मोक्ष को प्राप्त कर मानो इसके कण कण को भी पवित्र बनाया। आध्यात्मिक सतो ने सत्य अहिंसा, अपरिग्रह का पावन सन्देश देकर विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास किया। गिरिराज पर स्थित जिनालयो के उन्नत शिखर विश्व कल्याणकारी, मानवतावादी सन्देशो को दिग् दिगन्तरो मे फैला रहे हैं। ऋषि–मुनियो, सन्तो की साधना, तपस्या एव निर्वाण स्थली होने के साथ –साथ यह विद्वानो की खान भी है। यहा के विद्वानो ने आध्यात्मिक सन्देश तो मानव मात्र के लिए दिया ही है शैक्षणिक क्षेत्र मे अभूतपूर्व कार्य कर देश के लिए विद्वानो को तैयार किया है। साहित्यिक क्षेत्र मे उपयोगी साहित्य सृजन कर साहित्य भण्डार की अभिवृद्धि की है। चिकित्सा, प्रतिष्ठा आदि के क्षेत्र मे भी उल्लेखनीय योगदान किया है।

श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री इसी पुण्य भूमि के जगमगाते सूर्य थे जिन्होने अज्ञान अन्धकार को मिटाकर अशिक्षित जैन–जैनेतर समाज को शिक्षित कर प्रकाशित करने का महत्वपूर्ण कार्य कर सहस्रो विद्वानो को तैयार करते हुए शिक्षा के क्षेत्र मे उल्लेखनीय कार्य किया है। पण्डितजी ने लोकोपकारी, शिक्षाप्रद साहित्य का सृजन कर साहित्य के क्षेत्र मे भी जहाँ महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है वहीं सामाजिक सुधार एव आध्यात्मिक प्रचार के क्षेत्र मे भी उनके द्वारा किए गए बीसवीं सदी के इस योगदान को सदैव स्मरण किया जायेगा।

द्रोणगिरि की विद्वत् परम्परा मे जहा हम पूज्य पण्डित गोरेलालजी के योगदान का स्मरण कर रहे हैं, वहा यह भी प्रासगिक ही है कि इस पावन धरा के पण्डितजी के अलावा अन्य विद्वानो का भी स्मरण कर लिया जाये। इस परम्परा मे मुख्य रूप से निम्न विद्वान् उल्लेखनीय है।

श्री नन्हेलालजी मालाकार

विश्व वन्द्य भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तो से मात्र जैन जगत् ही नहीं मानव जगत् लाभान्वित हुआ है। उनके दिव्य सन्देश मानव मात्र के जीवन निर्माण व विकास के लिए रहे हैं, और रहेगे। महावीर के सिद्धान्तो ने कभी भी वर्गभेद, जातिभेद नहीं किया है तभी तो सभी वर्गों ने इन सिद्धान्तो को अगीकार करते हुए अपने जीवन को सार्थक किया है।

श्री नन्हेलालजी जाति से अवश्य माली थे लेकिन मनसा, वाचा, कर्मणा वे जैन थे और जैन सिद्धान्तो पर उनकी दृढ आस्था थी। उन्होने द्रोण प्रान्त मे पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज द्वारा सस्थापित पाठशालाओ मे शिक्षा देने का कार्य किया है। उन्होने साहित्य सृजन के क्षेत्र मे लोकोपकारी जैन भजनो, गारियो का सृजन कर जहा जैन सिद्धान्तो का प्रचार किया है वहीं सामाजिक बुराईयो को दूर करने मे भी इस साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आप कुशल चिकित्सक थे। शुद्ध आयुर्वेदिक औषधियो के माध्यम से आपने चिकित्सा कर मानव सेवा की है। यहा विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि ये पूज्य पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के भी प्रारम्भिक शिक्षा गुरु रहे हैं। श्री मालाकारजी सेवाभावी, जैनधर्म के दृढ आस्थावान्,

समाज सुधारक विद्वान् थे। उनसे न केवल द्रोणगिरि ही बल्कि पूरा प्रान्त गौरवान्वित हुआ है और रहेगा।

श्री मकुन्दीलाल फौजदार

पण्डित मकुन्दीलालजी अपने समय के कुशल चिकित्सक, सगीतज्ञ तथा जैन परम्परा के विधि–विधान सम्बन्धी कार्यों के अच्छे ज्ञाता थे। इनके पूर्वजो का परिचय उपलब्ध नहीं है। पण्डितजी अध्यात्मप्रेमी श्रावक थे। उन्होने अनेक आध्यात्मिक भजन लिखे है, किन्तु प्राय सब काल के गाल मे समा गये। इनका एक भजन जो मिल सका वह यह है –

स्वरूप निज मे समायेगे हम।
कभी भी अवसर मिलेगा हमको निज मे समायेगे हम।। टेक।।
कुटुम्ब तन–धन आदिक जो पर हैं किया है उनमे ममत्व भारी।
जगत के फदे से तर्क होकर विभाव परिणति हटायेगे हम।
कभी भी।। 1।।
बस देह इन्द्रियॉ पुष्ट कर–कर किये है निशदिन अनर्थ नाना।
धरेगे चारित्र नि सग जिस दिन तो पाप पकज हटायेंगे हम।।
कभी भी।। 2।।
मोह माया लगी है पीछे कि जिसकी सगति से खूब भटके।
कुमति वामवश कुदेव पूजे तिन्हे न अब शिर नवायेगे हम।।
कभी भी।। 3।।
योग कषायो के द्वारा जो जो, हुआ है आस्रव करम का भारी।
बध पड़ा है अनेक भव का समय मे वसुविध जलायेगे हम।।
कभी भी।। 4।।
लगी आशा "मुकुन्द" ऐसी सुमति सखी सग रमेगे शिव मे।
जो बालापन मे करेगे साधन तो काललब्धि को पायेगे हम।।
कभी भी।। 5।।

पण्डित रामबगस फौजदार

कविवर पण्डित रामबगसजी पण्डित मकुन्दीलालजी के पुत्र थे। ये कुशल चिकित्सक एव अच्छे कवि थे। आप एक अच्छे समाजसेवी एव कुशल सामाजिक कार्यकर्ता थे। आपने लम्बे समय तक द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र की देखरेख एव व्यवस्था सम्बन्धी कार्य किया। पण्डित रामबगसजी अच्छे प्रतिष्ठाचार्य भी थे, उन्होने अनेक पचकल्याणक प्रतिष्ठाये तथा गजरथ महोत्सव कुशलतापूर्वक सम्पन्न कराये। जिनमे पन्ना एव द्रोणगिरि के गजरथ महोत्सव प्रमुख थे। इनका उल्लेख अनेक क्षेत्रीय लेखको ने भी किया है। पण्डितजी का परिचय कराते हुए श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी शास्त्री ने "रामविलास" की भूमिका मे इसप्रकार लिखा है – स्वर्गीय पण्डित रामबगसजी ने बुन्देलखण्डान्तर्गत सेधपा (द्रोणगिरि) नगर मे जन्म लेकर गोलापूर्व जाति को अलकृत किया था। आप ज्योतिष, वैद्यक तथा प्रतिष्ठादि कार्यो मे पूर्ण निष्णात होते हुए जाति व राज्य मे एक माननीय व्यक्ति समझे जाते थे। धर्मशास्त्रो मे भी आपकी अच्छी गति थी। आपने अपने जीवनकाल मे अनेक उपयोगी भजन, कवित्त, सवैया आदि का निर्माण किया था किन्तु वे तज्जन्य यश के अभिलाषी नहीं थे, अतएव आपने स्वनिर्मित कविता सग्रह करने की चेष्टा नहीं की। आप प्रतिष्ठादि कार्यों के

लिए मय गायन मडली के दूर–दूर तक जाया करते थे और जहॉ पर जिस भजन की आवश्यकता होती थी, वहाँ उसी वक्त समयानुकूल नई तर्जो पर उसे तैयार कर गाने वालो के ऊपर निर्भर करके उससे कोई प्रयोज़न नहीं रखते थे। यही कारण है कि कुछ भजन तो तत्कालीन गायको के उदर मे ही निमग्न रह गये और कुछ भजन आपके स्वर्गवास के पश्चात् अनायास ही कवि के यश को लूटने वाले कवि–चोरो ने तोड–मरोडकर अपने नाम की मुद्रा से जाहिर कर लिए है। कुछ भजनो मे तो सिर्फ नाममात्र ही परिवर्तन कर लिया है। ऐसे लोग ठीक उन स्त्रियो की तरह है जो स्वय प्रसव वेदना न सहकर दूसरे के पुत्रो से तज्जन्य सुख का अनुभव करना चाहती है। अस्तु आपकी कविता पर इस तरह आक्रमण हो जाने से यद्यपि सबका सग्रह करना दुस्साध्य हो गया है तथापि जितनी उपलब्ध हैं उतने से भी कम सतोष नहीं हैं। आप कविता करने मे सिद्धहस्त थे।

एक समय आप पन्ना स्टेट मे प्रतिष्ठा कराने गये थे, वहॉ जलयात्रा के समय जलयात्रा स्थल से थोडी दूर वेश्या नृत्य हो रहा था तब जो अजैन जनता जलयात्रा मे शरीक हुई थी वह धीरे–धीरे वेश्या नृत्य मे भाग लेने लगी। तब आपने वेश्या के गाये हुये गीतो की तर्ज पर भजन रच दिये। वेश्या ने पहले यह गाया "मोती खोय गया नग वेशर का" इस तर्ज पर "मेरी भूल मुझे दुख दाह दिया" यह भजन बनाया। तथा दूसरा वेश्या ने यह गाया कि "अटरिये लागो चोर ननदी धीरे बोली बोल" इस तर्ज पर "शरणवा लीना तोर प्रभु जी हेरो मेरी ओर" यह रचा। उक्त दोनो भजन उसी समय रचकर गायको से गवाये। तब जो लोग वेश्या नृत्य मे चले गये थे सुनकर पुन यहॉ आ गये और पण्डितजी के कविता कौशल से मुग्ध होकर उनकी भूरि–भूरि प्रशसा करने लगे। आपके भजन सरस भाव व प्रभाविकता से ओत–प्रोत होते थे।

पण्डित कमलापत फौजदार

पण्डित कमलापतजी के पिता रामबगसजी फौजदार थे, इसलिए चिकित्सा एव पूजा प्रतिष्ठा आदि का कार्य इन्हे परम्परा से विरासत मे मिला था। कहा जाता है कि इन्होने भी अपने परिवार की परम्परा के अनुसार ज्योतिष एव प्रतिष्ठा सम्बन्धी अनेक कार्य किए। समाज सेवा के क्षेत्र मे भी आपका स्मरणीय योगदान रहा।

पण्डित मोतीलालजी फौजदार

स्व पण्डित मोतीलालजी का जन्म श्रावण कृष्ण 14 वि स 1964 मे हुआ था। इनके पिता पण्डित कमलापत फौजदार तथा माता इन्द्राणीदेवी थीं। आप बचपन से ही तीक्ष्ण बुद्धि एव प्रतिभा सम्पन्न थे। आपके जन्म काल तक शिक्षा का प्रचार प्रसार प्राय अत्यल्प था, शिक्षण सस्थाये भी उस समय नहीं थीं। इसलिए व्यवस्थित रूप से आपका अध्ययन नहीं हो सका। आरम्भिक अवस्था मे आपके अध्ययन मे पिता कमलापतजी एव नन्हेलालजी मालाकार का सहयोग रहा। अनन्तर स्व पण्डित गोरेलालजी शास्त्री आपके अध्ययन मे विशेष सहयोगी रहे। स्वाध्याय के बल पर आप एक कुशल ज्योतिषी एव विख्यात प्रतिष्ठाचार्य बने।

आप आजीवन नि स्वार्थ भाव से समाज की सेवा करते रहे। कभी किसी अनुचित कार्य का समर्थन नहीं किया और न ही किसी पक्षपातपूर्ण कार्य करने वाले सामाजिक या विद्वत् सगठन से जुड़े। आपने कभी भी धार्मिक कार्यों के बदले धन और यश की कामना नहीं की। समाज द्वारा इन्हे भेट देने के अनेक प्रयत्न

किए गए, किन्तु पण्डितजी ने उसे कभी स्वीकार नहीं किया। वे एक आयोजन मे केवल एक फल ही स्वीकार करते थे।

उन्होने समाज मे व्याप्त रूढियो मृत्यु भोज, बाल विवाह, वृद्ध विवाह आदि कुरीतियो को रोकने के लिए स्व पण्डित गोरेलालजी के साथ निरन्तर सघर्ष किया। ये लोग समाज मे लुहरीसेन (विनेकावार) लोगो को देव पूजा आदि के समान अधिकार दिलाने के लिए हमेशा सघर्ष करते रहे और इस कार्य मे भी उन्हे सफलता मिली। उनका मूल उद्देश्य यह था कि हमारा अल्प समाज कहीं तितर बितर न हो जाय। हमारे समाज के सदस्य उपेक्षा के कारण सस्कार विहीन न हो जाये। इसलिए वे समाज को संगठित करने हेतु आजीवन प्रयत्नशील रहे।

आपने जिनवाणी के प्रचार प्रसार हेतु ग्रन्थमाला की स्थापना की जिसके द्वारा निम्नाकित पुस्तके प्रकाशित की गईं।

(1) रामविलास (गायन मजरी)
रचयिता कविवर प रामबगस फौजदार, सम्पादक प गोरेलाल शास्त्री
(2) नाममाला सम्पादक प गोरेलाल शास्त्री
(3) सुमन सचय रचयिता प गोरेलाल शास्त्री
(4) द्रोणगिरि पूजन रचयिता प गोरेलाल शास्त्री

आपका निधन हो जाने से ग्रन्थमाला का कार्य अवरुद्ध हो गया। आपने बृहत्‌निर्वाण पूजा विधान (दीपावली पूजन विधि सहित) एव स्व प देवीदास रचित "श्री,वर्तमान चतुर्विंशति जिन पूजा मण्डल विधान" नामक कृतियो का कुशल सम्पादन किया। जिसका प्रकाशन द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ द्रोणगिरि ने किया। आप ज्योतिष के क्षेत्र मे भी निष्णात थे। जैन ज्योतिष पर आपकी असीम श्रद्धा थी, आप जो मुहूर्त निकालते थे, उसे सभी लोग निष्ठा से स्वीकार करते थे।

आपके सकलन मे अनेक डायरिया हैं जिनमे कवित्त, सवैया, दोहा सकलित हैं। इससे ज्ञात होता है कि पण्डितजी अच्छे कवि रसिक भी रहे है।

उपरोक्त विद्वानो के अतिरिक्त हमे यह लिखते हुए गर्व का अनुभव होता है कि द्रोणगिरि की यह विद्वत् परम्परा अक्षुण्ण बनी हुई है। पूज्य पण्डित गोरेलालजी शास्त्री की विद्वत् परम्परा मे उन्हीं के तृतीय पुत्र श्री कमलकुमारजी वर्तमान मे शिक्षण के क्षेत्र मे कार्य करते हुए सामाजिक साहित्यिक क्षेत्र मे भी बराबर अभिरुचि रखते है।

(इस आलेख का प्रस्तुतकर्ता मै स्वय (डॉ ऋषभ जैन) भी शोध शैक्षणिक कार्यों मे सलग्न हूँ तथा फौजदार वश की परम्परा को बनाये रखने मे प्रयासरत है। श्री डॉ नरेन्द्रकुमार जैन भी यहीं के एक व्युत्पन्न विद्वान् हैं जो शैक्षणिक कार्यों को करते हुए शोध आलेखो के सृजन मे,सलग्न हैं। श्री शीलचन्दजी प्राकृताचार्य भी यहीं के विद्वान् है।)

• व्याख्याता, प्राकृत और जेन शास्त्र, अहिसा शोध सस्थान
वेशाली, बिहार

□□□

सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के संस्कार प्रदाता

— डॉ. रमेशचन्द जैन

सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि की पवित्र भूमि पर्वत पर स्थित विशाल गगनचुम्बी मन्दिरो के लिए प्रख्यात है और तीर्थयात्रियो के आकर्षण का केन्द्र रही है। पूज्य श्रद्धास्पद श्री गणेशप्रसादजी वर्णी द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र को छोटा शिखरजी कहकर इस क्षेत्र की प्रशसा करने में निरन्तर अग्रणी रहते थे। इस क्षेत्र से इस शताब्दी मे क्षुल्लक चिदानन्दजी, ब्र. दयासिन्धुजी एव पण्डित गोरेलालजी शास्त्री प्रभृति जागृत विभूतियो ने अनेक महान् कार्य किये। इनमे पण्डित गोरेलालजी का व्यक्तित्व ऐसा है, जिसने इस क्षेत्र पर सुदीर्घकालीन आवास कर तथा एक लम्बे अर्से तक श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन विद्यालय मे अध्यापन करके छोटे–छोटे बच्चो मे धार्मिक सस्कार जागृत करने का अनूठा कार्य किया। सस्था की प्रगति की उन्हे निरन्तर चिन्ता रही। धीरे–धीरे वे विरक्त रहकर उदासीन जीवन व्यतीत करने लगे और क्षेत्र पर ही स्थित उदासीन आश्रम मे रहकर युवा और प्रौढ साथियो को विरक्ति के सस्कार दिए। मेरे पूज्य बाबा श्री सिघई भागचन्द्र जैन सोरया, मडावरा यदा कदा द्रोणगिरि के आश्रम मे रहकर पण्डित गोरेलालजी के साथ शास्त्र स्वाध्याय मे रत रहते थे और पण्डितजी की विद्वत्ता, निस्पृहता, सज्जनता, नम्रता एव निरीहवृत्ति की प्रशसा किया करते थे। जिनेन्द्र वाणी को आत्मसात् कर तथा उसके अनुसार गृहस्थ जीवन यापन करने का पण्डित गोरेलालजी ने सफल प्रयोग किया था। पूज्य वर्णीजी की प्रेरणा से वे जीवन के अन्त तक द्रोणगिरि से जुडे रहे और क्षेत्र की अभ्युन्नति मे उन्होने बहुत बड़ा योग दिया। वे प्रवचनकला मे निपुण थे। अनेक वर्षों से एक बार भोजन करते थे। नित्य सामायिक, पूजन, अभिषेक वगैरह नियमपूर्वक किया करते थे और एक धार्मिक का सुखी जीवन व्यतीत करते थे। जिन छात्रो को उन्होने विद्या से सस्कारित किया, वे आज भी उन्हे याद करते हैं और उनके प्रति कृतज्ञता की भावना से भरे रहते है। पण्डितजी का पुण्य स्मरण करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। गुणी व्यक्तियो के गुणो का स्मरण होना ही चाहिए। उनकी स्मृति मे प्रकाशित यह स्मृति ग्रन्थ निश्चित रूप से भव्यजनो के लिए प्रेरणादायी होगा।

• जैन मन्दिर के पास
बिजनौर, (उ.प्र)

□□□

श्रद्धा सुमन

एवं

शुभकामनायें

आत्म परिणति विशुद्ध करते हुए मोक्ष पद पावें

— क्षुल्लक चिदानन्द महाराज

श्रीयुत् पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि के साथ मेरा करीब 25 वर्ष से समागम रहा है। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल है। आपके अन्दर सम्यग्ज्ञान के विकास की लगन है। आपमे यह गुण है कि जो कोई भी आपके पास अध्ययन हेतु आते है उनको अध्ययन कराने मे हृदय मे जरा भी सकोच नहीं होता। जब से सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पर उदासीनाश्रम की स्थापना हुई उसी समय से ही चार समय एक–एक घटे सभी त्यागियो को अध्ययन कराना और शास्त्र प्रवचन करना आपका कार्य रहा है। आपने लगभग 35 वर्ष तक प्रात स्मरणीय पूज्य वर्णीजी द्वारा सस्थापित श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय द्रोणगिरि मे छात्रो को बहुत ही योग्यतापूर्वक अध्ययन कराया है। आपने लगभग 10 वर्ष पूर्व से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है और बारह मास को अष्टमी चतुर्दशी उपवास करते है। रात्रि जल का त्याग तो विद्यार्थी जीवन से ही है। आप शुद्ध भोजन करते है। आप आत्म कल्याण के विशेष इच्छुक है। मेरी भावना है कि वे अपने आत्म परिणामो को विशुद्ध करते हुए मोक्ष पद को पावे।

(पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज ने यह भावना जून 1967 मे आयोजित पण्डितजी के सम्मान मे व्यक्त की। वर्तमान मे पूज्य क्षुल्लकजी एव पण्डितजी दोनो स्वर्गवासी हो गए है। — सम्पादक)

□□□

बड़े पण्डितजी

— क्षुल्लक नित्यानन्दजी महाराज

द्रोणगिरि विद्यालय मे श्री पण्डित गोरेलालजी छात्रो को पढाते थे, क्षेत्र का सारा काम सभालते थे। प्रान्तीय समाज आपको बडे पण्डितजी के नाम से जानती थी। द्रोण प्रान्त मे उस समय द्रोणगिरि विद्यालय का विशेष महत्व था। प्रान्त के छात्र विद्यालय मे पढते थे। छात्रावास मे रहते हुए सदाचार की शिक्षा ग्रहण करते थे। जिसमे बडे पण्डितजी का ही योगदान होता था। पूज्य वर्णीजी पण्डितजी को बहुत मानते थे। प्राय वर्णीजी के पत्र पण्डितजी के पास आते रहते थे। सन् 1955 मे जब मै द्रोणगिरि मे था उस समय मेरे नाम वर्णीजी का एक पत्र आया वह मेरे लिए तो था ही साथ मे क्षुल्लक चिदानन्दजी और पण्डितजी को भी था। पत्र मे पण्डितजी को लिखा —

श्री पण्डित गोरेलालजी योग्य कल्याण भाजन हो, मेले का समाचार देना आपके द्वारा हमको जो सर्व प्रकार का सुभीता रहता है इसमे आपकी प्रशसा नहीं करता केवल गुण है वह कहना पडता है।

शु चि
गणेश वर्णी
16.2 55

उपरोक्त पत्र मे वर्णीजी ने पण्डितजी की महानता को लिखा है।

पण्डितजी ने क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज की प्रेरणा से उदासीनाश्रम द्रोणगिरि मे रहकर देशव्रती

का जीवन व्यतीत किया तथा आश्रम मे स्थित ब्रह्मचारियो को अध्ययन–स्वाध्याय कराया। मैने भी पण्डितजी से अध्ययन एव स्वाध्याय का लाभ लिया। आपके द्वारा प्रान्त का बहुत बडा उपकार हुआ हे।

वि स 2007 मे फिरोजाबाद मे वर्णीजी का हीरक जयन्ती उत्सव था जिसमे पण्डितजी भी सम्मिलित हुए। उसी समय आचार्य सूर्यसागरजी महाराज की अध्यक्षता मे व्रती सम्मेलन था। विशारद पास व्रतियो को व्रती योंग्यता प्रमाणपत्र दे देने का प्रस्ताव हुआ। पण्डितजी को भी उस समय व्रती योग्यता प्रमाणपत्र दिया गया। आप कठोर नियमो का पालन करते थे। आपने पूर्ण सावधानीपूर्वक जिनेन्द्रदेव का स्मरण करते हुए समाधिमरण को प्राप्त किया है। यह आपकी साधना एव जिनेन्द्रदेव के प्रति दृढ आस्था का ही फल है।

□□□

मेरे उपकारी

– ब्र रामबाई, द्रोणगिरि

पूज्य पण्डितजी (स्व श्री गोरेलालजी शास्त्री) से मेरा सम्पर्क सन् 1958 से रहा है। पण्डितजी का मुझ पर पुत्रीवत् स्नेह था। मेरे माता पिता ने मुझे अल्प आयु मे ही गृहस्थ जीवन मे प्रवेश करा दिया, लेकिन गृहस्थ जीवन का सुख ज्यादा समय तक नहीं मिला। वैधव्य जीवन मे कुछ पढ लिखकर प्रान्त से दूर मणिपुर इम्फाल मे जाकर वहा बच्चो को शिक्षा देने के साथ ही धार्मिक जीवन बिताने लगी। लेकिन अपने प्रान्त का मोह, समाज का स्नेह मुझे अपने प्रान्त मे लाया। सन् 1954 मे जब बहुत वर्षों के बाद सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि मे श्री मज्जिनेन्द्र पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ, मेरा मन अपने प्रान्त मे आने का बना, जिसमे पण्डितजी का विशेष आग्रह था। सन् 1958 मे मै इम्फाल छोडकर पूर्णरूप से द्रोणगिरि आकर रहने लगी और पण्डितजी के सरक्षण मे धार्मिक जीवन व्यतीत करती हुई जैन शास्त्रो का अध्ययन करने लगी। पण्डितजी ने अत्यन्त सरल, सुबोध शैली मे जैन शास्त्रो का अभ्यास कराते हुए मुझे तत्त्वज्ञान कराया, इस कारण गुरु शिष्य का नाता भी जुड गया। जैन शास्त्रो का अध्ययन कराकर पण्डितजी ने मेरे ऊपर जो महान् उपकार किया है वह मै कभी भूल नहीं सकती। उन्हीं के द्वारा कराये हुए अभ्यास के बल पर समाज मे शास्त्र प्रवचन करने व गूढ प्रश्नो के उत्तर देने मे मैं सक्षम हूँ और अपने द्वारा दिए हुए समाधान से समाज को सन्तुष्ट कर पाती हूँ।

पण्डितजी अत्यन्त सरल, मधुर भाषी, परोपकारी, निष्परिग्रही व्यक्ति रहे है। श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि एव गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय द्रोणगिरि से पूर्णत अवकाश प्राप्त करने के बाद वे पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज की प्रेरणा से उनके द्वारा स्थापित श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम मे रहकर त्यागमय जीवन व्यतीत करते हुए आश्रम स्थित व्रतियो को अध्ययन कराते हुए शास्त्र प्रवचन करने लगे। उस समय आश्रम मे यथायोग्य मुनि, क्षुल्लक और त्यागी रहते थे और पण्डितजी से अध्ययन, शास्त्र प्रवचन का निरन्तर लाभ लेते थे। पण्डितजी ने आश्रम की व्यवस्थाओ को भी सुधारने मे व्यवस्थित करने मे अपना योगदान किया। आश्रम के स्थायी कोष और सुन्दर विशाल भवन के निर्माण मे श्री दयासिन्धुजी के साथ पण्डितजी ने अपना महनीय योगदान प्रदान किया।

अपनी शारीरिक असमर्थता एव समाज के विशेष आग्रह पर मै शाहगढ (सागर) आया जाया करती थी और दो–दो, चार–चार माह वहा रहकर समाज को ज्ञान लाभ कराती थी। मार्च 1991 मे जब मैं शाहगढ

मे थी, अचानक पण्डितजी के खराब स्वास्थ्य का समाचार मिला। पण्डितजी प्राय आश्रम मे ही रहते थे लेकिन इस बार परिवार वाले सेवा परिचर्या के उद्देश्य से पण्डितजी को घर ले आये। मैने पण्डितजी के खराब स्वास्थ्य का समाचार सुना, पण्डितजी को देखने के लिए जाने का विचार किया। मुझे यह समाचार चैत्र शुक्ल 7 शनिवार को मिला । अगले दिन अष्टमी का व्रत था अत. नवमीं को प्रात आहार कर शाहगढ से चलकर 12 बजे द्रोणगिरि पहुची। स्वास्थ्य की जानकारी ली मैंनें पण्डितजी की शारीरिक दुर्बलता को देखा और सोचा कि पण्डितजी अब अधिक समय तक हम लोगो के बीच रहने वाले नहीं है। मैंने पण्डितजी से कहा मैं आ गई। पण्डितजी ने डबडबी आखो से देखा और कहा, अच्छा किया। मैने पण्डितजी से पूछा कि आपने मुझे पहिचाना "बाईजी है" पण्डितजी ने उत्तर दिया। मुझे बहुत अधिक सतोष हुआ कि पण्डितजी अभी पूर्ण सचेत है और उन्होने मुझे पहिचान लिया। मैने पण्डितजी से कहा अब मै आ गयी हूँ और आपकी परिचर्या मे ही रहूगी। तब से बराबर प जी की परिचर्या मे रही यद्यपि शारीरिक दुर्बलता के होते हुए भी पण्डितजी पूर्ण सावधान थे और चिन्तन मनन करते रहते थे। ज्ञानी तो थे ही इससे अपने मे दृढ भी रहे।

चैत्र शुक्ल 9 वीं को जब मे आयी थी पण्डितजी का आहार पपीता और दूध मात्र था। वह भी नियम के अनुसार ग्रहण करने के बाद शाम तक के लिए त्याग और शाम को आहार लेने के बाद सुबह तक को त्याग कर देते थे। शारीरिक दुर्बलता बढते जाने के कारण पण्डितजी की इच्छा के अनुसार 3 दिन पूर्व बिस्तर का त्याग करा दिया। पण्डितजी पूर्ण सचेत है यह जानने के लिए जब पण्डितजी के ज्येष्ठ पुत्र अजितकुमारजी ने यदा कदा पण्डितजी से आहार दूध पानी लेने को कहा तो कह दिया कि बाईजी ने शाम 4 बजे तक का त्याग कराया है उन्हीं के आने पर लेगे। जब मै आती थी तभी पण्डितजी आहार ग्रहण करते थे और आहार लेने के बाद त्याग कर देते थे। इसके साथ ही परिवार वाले हमेशा पण्डितजी के पास ही रहते रहे, णमोकार मत्र का पाठ बराबर चलता रहा। स्वर्गवास के अन्तिम दिन चैत्र शुक्ल 14, दिनाक 29 3 91 को मैने प्रात पण्डितजी साहब की इच्छा न होते हुए भी पानी दिया और अगले समय तक के लिए त्याग करा दिया। दिन भर परिवार से पण्डितजी घिरे रहे और णमोकार मत्र का पाठ चलता रहा पण्डितजी भी अपनी परिवार की तरफ निर्मोही दृष्टि से देखते रहे और आत्म चिन्तन करते रहे। जब कभी पण्डितजी से कहा णमोकार मत्र पढो उन्होने इशारा किया मैं सजग हूँ और सुन रहा हूँ। शाम 5 बजे मै पण्डितजी के पास से नित्यकर्म करने उठी कि 6 बजे खबर आयी कि पण्डितजी का स्वास्थ्य गिर रहा है मै दौडी–दौडी आयी और पण्डितजी की नाडी देखी गिर रही थी, श्वॉस धीमी हो गई थी। मैने कान मे जोर–जोर से णमोकार मत्र पढा और 5 मिनिट के अन्दर ही पण्डितजी मेरे समक्ष ही देहत्याग स्वर्गवासी हो गए। मुझे लगा कि जैसे पण्डितजी मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे और मेरे आते ही हमेशा–हमेशा के लिए विदा हो गए। मुझे सतोष हुआ कि पण्डितजी के अन्त समय मे मै उनकी कुछ परिचर्या कर सकी।

पण्डितजी जैसे ज्ञानी, दृढ श्रद्धानी, परोपकारी, निष्परिग्रही, सरल स्वभावी विद्वान् के स्वर्गवास से निश्चित रूप से अपूरणीय क्षति हुई है और हम जैसे तत्त्वाभ्यासी मानो दिशाहीन हो गए है।

□□□

सात्त्विक विद्वान्

— डॉ. दरबारीलाल कोठिया

सात्त्विक प्रवृत्ति के विद्वान् पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि मे जब अध्यापक थे, तब मैं पपौराजी से और वे द्रोणगिरि से हटा (टीकमगढ) के एक धार्मिक आयोजन मे सम्मिलित हुए। इस समय अन्य कई विद्वान् भी आये हुए थे। उस समय विधानोपरान्त पक्ति भोज देने की प्रथा थी। जिन महानुभाव ने पक्ति भोज दिया था, उन्होने अपने मकान को छोड़कर, गली मे पानी छिड़ककर सबको बैठाया था। सभी ने आनन्दपूर्वक भोजन किया। रात्रि मे मैंनें प्रवचन करते हुए स्थानीय लोगो से प्रश्न किया कि मकान के भीतर दहलान, अटारी आदि स्थानो को छोडकर गली मे भोजन क्यो कराया। लोगो ने उत्तर दिया कि हमारे यहा ऐसी परम्परा है। मेरे प्रश्न का समर्थन पण्डित गोरेलालजी ने भी किया। मुझे ओर पण्डित गोरेलालजी को उनका यह उत्तर समाधानकारक उचित प्रतीत नहीं हुआ। मैंने कहा गली मे भोजन देने का कारण यह है कि प्राचीन समय से समाज मे इतना प्रेम था कि एक भी आदमी छूट न पाये ओर मिलकर सब भोजन करे। उसके घर मे इतनी जगह नहीं थी अतएव पंचो ने निर्णय लिया कि हम सभी भीतर ओर बाहर बेठ जायेगे। कालान्तर मे भीतर का बैठना छूट गया ओर वाहर का वैठना जारी रहा।

सामाजिक प्रेम का यह एक उदाहरण है पण्डितजी गोरेलालजी ही नहीं अन्य सभी विद्वान् मेरे समाधान से सहमत थे। पण्डितजी मे कई गुण थे जो सराहनीय थे। वे बडे विनम्र, मधुरभाषी, सरल स्वभावी, मितव्ययी, सक्षेपप्रिय थे। अनेक लोग छोटी सी बात को बड़ा बनाकर कहते हैं, किन्तु पण्डितजी सक्षेप रूप मे भी गाव की, घर बाहर की सब समस्याओ का समाधान कर देते थे।

पण्डितजी का संयम गुण भी उल्लेखनीय था। यही कारण है कि वे जीवन के अन्त मे उदासीन आश्रम मे रहने लगे थे। आज वे नहीं है किन्तु उनके गुणो की सुगन्धी आज भी है।

हम उन्हे श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं।

• बीना (मध्यप्रदेश)

□□□

विनम्र श्रद्धान्जलि

— साहित्याचार्य डॉ. पं. पन्नालाल जैन

दो नदियो के बीच मे विद्यमान द्रोणगिरि क्षेत्र जहॉ प्राकृतिक सुषमा का अद्भुत स्थान है वहा नागरिक वातावरण से दूर रहने के कारण शान्ति का भी स्थान है। पूंज्य वर्णीजी इसे लघु सम्मेद शिखरजी कहते थे और इसीलिए वे वहा कुछ दिनो तक अपना प्रवास स्थान बना लेते थे। वर्णीजी का सम्पर्क रहने से जैन जाति भूषण सिघई श्री कुन्दनलालजी तथा श्री बालचन्दजी मलैया आदि का भी सम्पर्क क्षेत्र से जुड गया था और इन सबके निकटस्थ होने से मैं भी क्षेत्र के सम्पर्क मे आ गया। फलत क्षेत्र पर पचकल्याणक प्रतिष्ठा, गजरथ महोत्सव व अन्य कोई विशिष्ट विधान होते थे तो मुझे भी उनमे सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त होता था।

पण्डित श्री गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि के ही रहने वाले थे और वर्णीजी द्वारा स्थापित वहा की जैन पाठशाला के प्रधानाध्यापक थे। पण्डितजी अल्प वेतन मे ही रहकर पाठशाला का सचालन करते थे।

समीपवर्ती ग्रामो मे पण्डितजी का अच्छा सम्मान था। वे अपने पास पढने वाले होनहार बालकों को विशेष अध्ययन के लिए हमारे पास सागर भेजा करते थे। कई बालक आये पर उनमे लक्ष्मणप्रसादजी प्रशान्त और नरेन्द्रकुमारजी विद्यार्थी का नाम मै भूल नहीं सकूँगा। इन्होने सागर और वाराणसी मे अध्ययन कर अच्छी योग्यता प्राप्त की थी।

एक बार वर्णीजी ने ग्रीष्म ऋतु मे अपना प्रवास स्थान द्रोणगिरि को बनाया। मैं भी ग्रीष्मावकाश होने के कारण द्रोणगिरि चला गया और लगभग एक माह रहा। वर्णीजी पास मे ही स्थित "सिद्धो की झिरिया" नाम से प्रसिद्ध स्थान पर जाते थे। पण्डित श्री गोरेलालजी उनके साथ जाते थे और मै भी साथ रहता था, वहीं स्नान आदि से निवृत्त होकर मन्दिर आते थे, पूजा करते थे, उसके बाद वर्णीजी का शास्त्र प्रवचन होता था। वर्णीजी बहुत कुशल व्यावहारिक पुरुष थे, उन्होनें अपने व्यवहार से उन जैनेतर बन्धुओ को अनुकूल बना लिया था जो वहा की जैन पाठशाला के सचालक और कर्मचारियो से शत्रुता रखते थे। जब मैं द्रोणगिरि पहुचा तो साथ मे श्री सुन्दरलालजी मलैया के द्वारा दी हुई कुछ साग सब्जी वर्णीजी को देने के लिए ले गया था वर्णीजी ने कुछ साग सब्जी का उपयोग कर वहा के दीवान साहिब के घर भिजवा दी। यही क्रम उनके प्रवास मे चलता रहा, फल यह हुआ कि सब विरोधी पानी-पानी हो गए और निर्विघ्न रूप से चौबीसी के मन्दिर और उदासीन आश्रम के भवन का निर्माण हो गया। पास मे ही बडामलहरा ग्राम मे पहाडी पर जनता हाई स्कूल का दर्शनीय भवन बन गया जिसमे सैकडो जैन अजैन बालक अध्ययन करने लगे।

जब मैं वर्णीजी के पास द्रोणगिरि मे रहता था तब प गोरेलालजी दोपहरी मे हमारे पास राजवार्तिक लगाया करते थे। इनका धर्मशास्त्र का ज्ञान अच्छा था और आस पास मे होने वाले धार्मिक अनुष्ठानो का वे अच्छी तरह सचालन करते थे। ब्र श्री चिदानन्दजी जो दरगुवा के रहने वाले थे, इनके सहयोगी रहते थे। उसके फलस्वरूप धार्मिक अनुष्ठान सदा अच्छी तरह सम्पन्न होते थे। पण्डितजी स्वय विद्वान् थे अपनी सन्तान को सुशिक्षा के द्वारा उन्नतिशील बनाना चाहते रहे। प कमलकुमारजी छतरपुर इन्हीं के सुपुत्र है। ये भी धार्मिक, सामाजिक कार्यों मे अपने पिता के समान ही सहयोग करते हैं।

उनके प्रति मैं अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हुआ हर्ष का अनुभव करता हूँ।

• वर्णी गुरुकुल
पिसनहारी की मढिया, जबलपुर (म प्र)

□□□

आदर्श व्यक्तित्व

– संहितासूरि पं. नाथूलाल शास्त्री

श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री मेरे समय 1925 ई मे सर सेठ हुकमचन्द दिगम्बर जैन बोर्डिंग महाविद्यालय के सस्कृत विभाग मे अध्ययन करते थे। उनका सादा और पवित्र जीवन तथा उच्च विचार जैसे विद्यार्थी अवस्था मे थे उसीप्रकार अन्त तक रहे, यह उनके जीवन की विशेषता है। शुभ्र परिधान, सादगी, सरलता, शान्त व सौम्य स्वभाव, त्यागमूर्ति, वात्सल्य भाव, सेवा परायणता इन मानवीय सद्‌गुणो का आदर्श व्यक्तित्व उनका परिचय ही जो पीछे भी मैने द्रोणगिरि क्षेत्र के आश्रम मे उनसे मिलकर अनुभव

किया। उनके प्रति आम बन्धुओ का आकर्षण एव उनकी सेवा परायणता के प्रति कृतज्ञता का भाव होगा तभी आप उन्हे श्रद्धापूर्वक स्मरण कर रहे हैं। मेरा भी श्रद्धाभाव उनके प्रति है।

• पूर्व प्राचार्य हुकमचन्द दि जैन सस्कृत महाविद्यालय
इन्दौर (मध्यप्रदेश)

□□□

सेवा का व्यापक क्षेत्र

— यशपाल जैन

पण्डित गोरेलालजी की सेवाओ का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। उन्होनें शिक्षा, समाज, साहित्य, सस्कृत आदि प्राय सभी क्षेत्रो मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया हे। अपने साहित्य के द्वारा उन्होनें जहां अनगिनत पाठको की चेतना को प्रबुद्ध किया, वहॉ समाज मे व्याप्त अनेक रूढियो ओर कुरीतियो पर भी प्रहार किया।

उनका जीवन मूल्यपरक था। उनके सामने एक ऊँचा ध्येय था। इसीलिए वह अपने जीवन काल मे इतना कार्य कर सके।

वह सादगी तथा सात्विक जीवन जीते रहे और बिना किसी आडम्बर के समाज के कल्याणकारी कार्यों मे सलग्न रहे। जैसा उनका जीवन था, वैसा ही उनका अन्त था। उनका निधन सल्लेखनापूर्ण हुआ।

मैं इन सदाशयी तथा सत्कर्मी बन्धु को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ और आशा करता हूँ कि उनकी गौरव गाथा पाठको के लिए प्रेरणाप्रद होगी।

• सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

□□□

आर्ष परम्परा के आदर्श पण्डित

— महेन्द्रकुमार 'मानव'

पण्डित गोरेलालजी शास्त्री सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के प्रबन्धक और आराधक रहे है। द्रोणगिरि मे वे पाठशाला चलाते थे और जैन–अजैन विद्यार्थियो को जैनधर्म एव सस्कृत की शिक्षा देते थे। भारत के तीर्थ, चाहे वे हिन्दू हो, जैन हो या बौद्ध हो या तो नदियो के किनारे या पर्वतो के शिखरो या वनो के बीच मिलते है। इसका कारण यह है कि साधु सन्त एकान्त, प्राकृतिक, निर्जन स्थानो को तपस्या और स्वाध्याय के लिए चुनते थे। आजकल वैसे साधु सन्त नहीं रह गए है। आज के साधु सन्त माया के जाल मे फसे हुए हैं और समृद्ध समाज के बीच रहना पसद करते है। कहा गया है कि "जैसा खाय अन्न वैसा होय मन्न" आज के गृहस्थ भ्रष्टाचार से धन अर्जित करते हैं और इसप्रकार से अर्जित किए हुए अन्न को साधुओ को खिलाते हैं फिर भला साधुओ की भी बुद्धि कैसे शुद्ध हो सकती है। आज जो लोग भारतीय सस्कृति की बात करते हैं उनके उपदेशो को सुनकर हसी आती है। समय बदल गया है। इस उपभोक्ता सस्कृति से गृहस्थ या साधु कैसे अछूता रह सकता है। आज तो समाज के सारे वर्ग पैसे के पीछे पागल हैं। सब मायादास हैं, सब अर्द्ध पिशाच हैं और धन के बल पर ही अपने तीर्थों, विद्यालयो एव चिकित्सालयो की रक्षा करना चाहते हैं जो सभव नहीं है। लेकिन याद रखिए आज जो तीर्थ, सस्थाए जीवित है, वे त्याग के बल पर ही जीवित हैं। सग्रह

के बल पर नहीं। आज पुरानी परम्परा के न पण्डित हैं न पुजारी हैं, न वैद्य है। केवल पैसे की चमक–दमक दिखाकर धर्म की रक्षा नहीं हो सकती। इसीलिए कहा जा सकता है कि पण्डित गोरेलालजी शास्त्री आर्ष परम्परा के पण्डित, आदर्श शिक्षक और लेखक थे। जिन्होने तीर्थ के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धा से तीर्थ की रक्षा कर अपने विद्यार्थियो मे जैन दर्शन की नींव इतनी मजबूती से रखी कि वे आगे चलकर जैन विद्या के प्रकाण्ड विद्वान् बने और उनमे आज के भ्रष्ट युग मे कुछ धार्मिक सस्कार शेष है। पण्डितजी से मेरा परिचय दीर्घकालीन रहा है। जब–जब मै द्रोणगिरि गया मुझे पण्डितजी का आतिथ्य–सत्कार प्राप्त हुआ। इन्हीं शब्दो के द्वारा पण्डितजी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता हूँ।

• पूर्व शिक्षा एव समाज सेवा मत्री
छतरपुर (मध्यप्रदेश)

□□□

मेरे संस्कार गुरु

– पं. गोविन्ददास कोठिया

श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि जो अब हमारे बीच नहीं है, उनकी स्मृतिया मात्र हैं, कुछ सस्मरणो का उल्लेख कर श्रद्धेय पण्डितजी के प्रति अपना श्रद्धाभाव व्यक्त कर रहा हूँ।

श्रद्धेय पण्डितजी के बारे मे मुझे सम्भवत सन् 1922–23 मे श्री प नन्हेलालजी "माली" जो उस समय की जैन पाठशाला मे अध्यापन का कार्य करते थे, के द्वारा सस्कृत के प्रौढ विद्वान् गोरेलालजी द्रोणगिरि की जानकारी प्राप्त हुई थी। तभी से मै पूज्य पण्डितजी के दर्शन का अभिलाषी रहा। जब मैं सन् 1928 या 29 मे श्री वीर दि जैन विद्यालय पपौरा मे प्रविष्ट हुआ, श्री पं मोहनलालजी बरायठा वाले मेरे सस्कृत पढाने वाले गुरु बने, मुझे धनञ्जय नाममाला, हितोपदेश, ऋजु व्याकरण पढाया गया। उस समय मेरे अन्दर छुपी भावना के भगवान् श्री गोरेलालजी का पुन स्मरण आया। श्री प मोहनलालजी रैनवाल चले गए, हमारी पढाई अधर मे रह गई। चूकि मै प्रवेशिका प्रथम खण्ड का छात्र था, जिस किसी प्रकार से 2 वर्ष बिताये। अब मैं प्रवेशिका की तृतीय श्रेणी मे पहुँच गया, वाराणसी विश्वविद्यालय जो उस समय क्वीन्स कॉलेज नाम से था, उसकी प्रथमा की तैयारी हम 10 छात्र कर रहे थे, सोलापुर परीक्षालय की प्रवेशिका के तृतीय खण्ड मे मुझे जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, परीक्षामुख (न्याय), क्षत्र चूडामणि तथा प्रथमा के पूरे विषय दिए गए। परन्तु पढाने वाले के अभाव मे हम परेशान रहे। पूर्व की स्मृति ने सचेत किया कि श्री पं गोरेलालजी साहब द्रोणगिरि की शरण मे चला जाए। हम 8 छात्र (दो छात्र छुट्टी पर थे) प मोतीलालजी वर्णी के घोड़े से द्रोणगिरि के लिए चल दिए। रास्ता देखा नहीं था, सोचा वर्णीजी द्रोणगिरि हमेशा ही जाते हैं, अत उनके घोडे को तो रास्ता मालूम होगा ही और सचमुच 8 छात्र घोड़े के पीछे–पीछे चल दिए। सिमरिया मे दिन को 10 बजे पहुँचे, एक पेड के नीचे ठहर गए, भोजन किया, तुरन्त रवाना हो गए, मई के दिन थे, धूप की परवाह नहीं की। आगे–आगे घोड़ा और पीछे हम छात्रगण। घोडे के सहारे हम लोग द्रोणगिरि 11 बजे रात्रि मे पहुँचे। घोड़ा श्री पं. नन्हेलालजी "माली" के दरवाजे पर खड़ा हो गया।, तब हम लोगो ने आवाज दी, तुरन्त ही श्री नन्हेलालजी बाहर आये। मुझे वे पहिचानते थे, अत बोले इस समय तुम यहा कैसे? मैने कहा कि देखिए सिर्फ मैं ही नहीं हूँ, मेरे साथी लोग भी आपके द्वारा बताये गये गुरु की खोज मे आये हैं। वे हम लोगो को मन्दिरजी की बडी धर्मशाला ले गये, हमारी पूर्ण व्यवस्था बना दी परन्तु श्री गुरुजी जिनके दर्शन की

थी, पूरी नहीं हुई। मालूम हुआ कि पण्डितजी किसी कार्यवश बाजना गये है, दोपहर मे लौटेगे। हमे सन्तोष हुआ, हम लोग स्नान आदि से निपटकर पहाड़ पर दर्शनार्थ चले गये। वहा से आकर भोजन तैयार कर भोजन कर रहे थे, उसी समय श्रद्धेय पण्डितजी बहुत ही सादी पोशाक बनयान, ऊपर से आधी धोती, हाथ मे बेत। जब लोगो ने बताया यही है आपके गुरुजी।

हम लोग हक्के बक्के रह गये। कुछ शरमाये भी। लोकाचार के अनुसार हम लोगो ने पण्डितजी से भोजन करने का आग्रह किया। पण्डितजी मुस्कराते हुए बोले – अजी यह जरासी खिचड़ी तो मात्र हमारे लिए ही नहीं हो पावेगी क्योकि हम तो मथुरिया पण्डित हैं, फिर तुम क्या खाओगे? हम लोग सहम गये तब पण्डितजी बोले चलो सब लोग हमारे घर चलो वहीं भोजन करना। खिचड़ी कच्ची है, कैसे पेट भरेगा आदि। परन्तु हम लोगो ने विनय के साथ अपने बनाये भोजन को करने की आज्ञा ले ली।

तपती दुपरिया मे हम लोग खेल कूद रहे थे, सस्कृत के वाक्य बोल रहे थे, कुछ न्याय की पंक्तिया भी कुछ सप्तभगी के विषय मे भी बाते कर रहे थे तब पण्डितजी चुपके से हमारे कक्ष मे आकर खड़े हो गये, हम लोग सहम गये, चुप हो गये तब पण्डितजी ने हमसे पूछा कि किस कक्षा के छात्र हो तुम। हम लोगो ने अपनी बात पूरी कह दी। कहा कि हम सस्कृत पढना चाहते है बनारस की प्रथमा की तैयारी करनी है। अगर आपके चरणो का सान्निध्य मिल जाता तो मनोरथ सिद्ध हो जाता। पण्डितजी तुरन्त बोले – बीच मे ही विद्यालय को न छोड़ो। मै श्री बाबू ठाकुरदासजी मत्री पपौरा को पत्र लिखे देता हूँ, वो सस्कृत का अध्यापक बुला देवेगे। अगर नहीं बुलावेगे तो हम जुलाई मे तुम्हे यहा बुला लेवेगे।

बाद मे हम पण्डितजी का आशीर्वाद लेकर पपौराजी आये। पूरे रास्ते पण्डितजी का गुणगान करते आये। ग्रीष्मावकाश मे हम लोग छुट्टियो मे घर चले गये।

जुलाई के प्रथम सप्ताह मे हमे पण्डितजी का पत्र मिला कि तुम लोगो की पपौरा मे ही व्यवस्था बन गई है। श्री राजधरलालजी व्याकरणाचार्य की नियुक्ति हो गई है। अस्तु हम पपौरा ही चले गये। पूज्य पण्डितजी का आशीर्वाद हमे मिला।

सन् 1932 के आस–पास जैन मित्र मे प्रकाशित सूचना जो पण्डितजी की ईमानदारी की छाप उनके छात्र नरेन्द्र विद्यार्थी से सम्बन्धित थी पढी। श्री विद्यार्थीजी द्रोणगिरि के बाद स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस मे पढते थे उन्हे पर्यटन के समय 500 रुपये रास्ते मे पड़े मिल गये, विद्यार्थीजी ने आस पास रुपया वाले की खोज की जब पता नहीं चला तब रुपया पण्डितजी कैलाशचन्दजी के चरणो मे रख सारी बात कह दी, रुपयो की बात दूर रही श्री पण्डित कैलाशचन्दजी ने लिखा धन्य उन गुरुओ को जिनने सस्कारित कर श्री नरेन्द्र जैन जैसे ईमानदार छात्र दिये।

उपरोक्त लेख ने मुझे श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न कर दी। तब से मैं प्रत्यक्ष व परोक्ष मे भी उन्हे अपना सस्कार गुरु मानता रहा। इसके बाद पण्डितजी के दर्शन मुझे कई बार मिलते रहे। मैं पण्डितजी के चरणो मे झुक जाता, परन्तु पण्डितजी मेरा हाथ पकड़कर कहते कि आप तो अब पण्डित हो गये है, मेरे से कई गुने बडे हैं, बडी–बड़ी उपाधिया प्राप्त कर लीं, अब मेरे पैर छूना अच्छा नहीं लगता, मै कह देता हूँ कि सस्कार गुरु जीवन मे हमेशा ही बडा रहता है। परम श्रद्धेय उन पण्डितजी के प्रति मेरा शत शत प्रणाम।

• आहार क्षेत्र, (मध्यप्रदेश)

❑❑❑

बुन्देलखण्ड का जैन समाज ऋणी रहेगा

— दशरथ जैन

श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी शास्त्री से मेरा निकट का सम्पर्क रहा है और उनकी जीवन शैली को मुझे बहुत पास से देखने का अवसर प्राप्त हुआ ह। पण्डित गोरेलालजी विद्वानो की उस पीढी के सदस्य थे जिसमे पण्डित डॉ पन्नालालजी साहित्याचार्य, पण्डित जगन्मोहनलालजी सिद्धान्तशास्त्री, डॉ दरबारीलाल जी कोठिया, पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री इत्यादि विद्वान् हुए है। जिनके कारण सारे देश की जैन समाज मे ज्ञान गगा का पुनरावतरण होकर वह प्रत्येक परिवार मे पहुच चुकी है और उसने समाज का कायाकल्प करने मे अहम् भूमिका अदा की है।

पण्डित गोरेलालजी का जन्म जिस समय हुआ और जो आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितिया उस काल की थीं उनको ध्यान मे रखते हुए यदि उनकी विद्याध्ययन सम्बन्धी सफलताओ का मूल्याकन किया जावे तो हमे बहुत कुछ ऐसा लगेगा कि उनमे गजब की प्रतिभा थी। उन्होनें 1908 मे द्रोणगिरि के एक साधारण मध्यमवर्गीय जैन परिवार मे जन्म लेकर पहले साढूमल मे तदुपरान्त ललितपुर मे और अन्त मे इन्दौर मे विद्याध्ययन किया और बड़ी ही योग्यतापूर्वक शास्त्री उपाधि प्राप्त की। यद्यपि उनकी नियुक्ति इन्दौर के श्री हुकमचन्द दिगम्बर जैन सस्कृत महाविद्यालय मे हो गई थी परन्तु समाज एव मित्रो के आग्रह के कारण तथा भूमिपुत्र होने के कारण अपने जनपद की सेवा करने के भाव से उन्होने 1928 मे श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला द्रोणगिरि मे प्रधानाध्यापक के रूप मे कार्य करना अधिक उचित समझा और वहीं जम गये। उन्होने लगभग चार दशको तक इस कार्य को परिश्रम और लगन के साथ कुशलता पूर्वक सम्पन्न किया। उनके इस सेवा कार्य का ही सुफल था कि समस्त द्रोणप्रान्त मे अनेक जैन विद्वान् उत्पन्न हुए और उन्होने धर्म एव समाज की अच्छी सेवा की और कर रहे है।

श्री पण्डित गोरेलालजी मात्र विद्वान् ही नहीं अपितु सही अर्थों मे पण्डित थे और उनमे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का अच्छा सयोग था। उनके चारित्रिक गुणो मे अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन 5 व्रतो की साधना तो सम्मिलित है ही, नियम पालन की दृढता, जीवदया, समता भाव इत्यादि अनेक नैतिक गुणो का प्रभाव भी उनके शिष्यो पर पडा और उनको ज्ञान के साथ-साथ चारित्र भी अपने गुण से प्राप्त हुआ। इस दृष्टि से देखने पर उनके द्वारा किया गया योगदान अत्यन्त स्तुत्य है तथा वह इस दृष्टि से सदा के लिए वन्दनीय है।

पण्डित गोरेलालजी न केवल एक शिक्षक थे अपितु एक सफल रचनाकार भी थे। उन्होने सुमति के नाते जैन भजन सग्रह, जैन गारी सग्रह, बारह भावना, सुमन सचय इत्यादि के रूप मे जिन रचनाओं का सृजन किया था वे अत्यन्त प्रभावशाली हैं। भाषा, व्याकरण एव छन्दोबद्धता की दृष्टि से तो वे रचनाये निर्दोष हैं ही भाव प्रवाह की दृष्टि से भी उनका अपना विशेष स्थान है। एक ऐसे समय मे जबकि जैन समाज मे शिक्षा का प्रतिशत बहुत कम था और समाज में साहित्य सृजन का कोई वातावरण नहीं था। उस समय द्रोणगिरि जैसे निर्जन और भयाक्रान्त तथा यातायात के साधनो से लगभग शून्य स्थान मे बैठकर इन रचनाओ को प्रस्तुत करना न केवल उल्लेखनीय है अपितु प्रशसनीय है।

पण्डित गोरेलालजी द्रोणगिरि क्षेत्र पर जो कुछ घटित होता था और क्षेत्र के विकास की जो भी योजनाये क्रियान्वित की जाती थीं उसमे भरपूर योगदान दिया करते थे। एक अच्छे शिक्षक होने के कारण जैन अजैन सभी लोग उनका बहुत आदर किया करते थे और जो स्थानीय समस्याये उठ खड़ी होती थीं उनकी सहायता से उनका निराकरण भी अन्ततोगत्वा कर लिया जाता था। इस दृष्टि से देखने पर उनके द्वारा की गई तीर्थक्षेत्र की सेवाये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

पण्डित गोरेलालजी शास्त्री की समाज के सभी वर्गों मे अच्छी पैठ थी। वे युवा शक्ति को सगठित कर उसका उपयोग जन सेवा के लिए कैसे किया जाये – इसके अच्छे ज्ञाता व पारखी थे। द्रोण प्रान्तीय सेवा परिषद् एव द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ की गतिविधियो मे वे बराबर भाग लिया करते थे और युवको का पथ प्रदर्शन किया करते थे। अनेक ऐसे अवसर आये जबकि मुझे उनके साथ नवयुवको के अधिवेशनो मे भाग लेने का मौका मिला। मै उनकी सूझबूझ और दूरदर्शिता से सदैव प्रभावित रहा हूँ। उनकी दृष्टि रचनात्मक होती थी और वे विध्वस करने के बजाए सृजन करने मे अधिक रुचि लेते थे। उनके निर्देशन मे द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ ने ठोस रचनात्मक कार्य किए ओर समाज को दिशा बोध दिया। इस अवसर पर मुझे एक घटना का स्मरण हो आता है। द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ के एक अधिवेशन के मुख्य अतिथि के रूप मे बोलते–बोलते युवकोचित अधिक उत्साह के फलस्वरूप मैंनें कह दिया कि जैन समाज मे वर्तमान मे ज्ञान और चारित्र दोनो की अवमानना हो रही है। तथा धन का प्रभाव ही सर्वत्र पड गया है। अपरिग्रह को सबसे अधिक महत्व देने वाला और अपरिग्रह महाव्रती को दिगम्बर रखने वाला धर्म बडे–बडे पूजीपतियो, उद्योगपतियो ओर सेठ साहूकारो के चगुल मे जा पहुँचा है। जिसका परिणाम यह हुआ कि जैनधर्म की मूल भावना विलुप्त होती जा रही है। जिनधर्म मे चरित्र को सबसे अधिक प्रधानता दी जानी चाहिए और चारित्र के धनी श्रावको एव साधुओ का सबसे अधिक सम्मान किया जाना चाहिए उसमे सर्वाधिक सम्मान के पात्र वे धनवान् व्यक्ति बन बैठे हैं जो सबसे अधिक बोली लगाकर किसी भी धार्मिक कार्य को सम्पन्न करने की पात्रता प्राप्त कर लेते हैं। यह तो वैसे ही हुआ कि जैसे पैरो मे पहिनाई जाने वाली जूती को सिर पर टोपी के स्थान पर रख दी जाए और सिर पर रखी जाने वाली टोपी को पैरो मे जूती का काम करने को विवश किया जाए। यह बडी भयावह स्थिति है जिसका निराकरण यदि शीघ्र नहीं किया गया तो समाज अवनति के गर्त मे चला जायेगा। बोलते–बोलते भावावेश मे मै सब कह तो गया परन्तु मुझे भी लगा कि मैंने अति कर दी है और यह बहुत अच्छा नहीं हुआ। पण्डित गोरेलालजी अध्यक्ष थे वे बोलने के लिए खड़े हुए तो उन्होनें बड़ी ही दृढतापूर्वक परन्तु अत्यधिक शालीनता के साथ मेरी इस बात का उत्तर देते हुए कहा कि स्थिति इतनी और ऐसी नहीं है जितनी की बतलाई गई है और जो श्रद्धा के पात्र होते हैं उनको श्रद्धा स्वयमेव ही मिल जाती है कोई किसी को श्रद्धा देता–लेता नहीं है। जिसको मोक्षमार्ग की साधना करनी है उसके लिए रास्ता साफ है। मोक्षमार्ग के साधको को समाज से बहुत अधिक लेना देना नहीं होता। जो लोग धन का त्याग करते हैं चाहे वह किसी भी रूप मे क्यो न हो समाज को ऐसे लोगो का आदर करना होता है पर ऐसा करना अनुचित भी नहीं मुझे उनका उत्तर सुनकर अपनी बात कटते हुए देखकर भी अत्यन्त हर्ष हुआ और मुझे ऐसा लगा कि मेरी बात से जो समाज मे उत्तेजना हो सकती थी वह पैदा होने से रुक गई। मैंने उन्हे अनेक बार कविता पाठ करते हुए, प्रवचन करते हुए तथा समाज के

अन्यान्य कार्यों मे सहभागिता करते हुए देखा है। उनकी दृढता, सहजता एव साधन शुद्धि के प्रयासो ने मुझे सदैव उनकी ओर आकर्षित किया। साधारण धोती कुर्ता गॉधी टोपी और साधारण शुद्ध भोजन आदि के कारण वे "सादा जीवन और उच्च विचार" के मूर्तरूप जीवन भर रहे और उन्होने धर्म मे अडिग रहकर उदासीनाश्रम द्रोणगिरि के भव्य वातावरण मे आत्म कल्याण करते हुए समाधिस्थ होकर अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त किया। उनके जीवन पर पूज्य वर्णीजी का सही रूप मे अत्यधिक प्रभाव था और उनका भी प्रभाव वर्णीजी पर कम न था। वर्णीजी भी उनके पाण्डित्य उनकी कार्यकुशलता एव उनकी चारित्रिक प्रामाणिकता से भलीभाति अवगत थे और उनका स्नेह और आशीर्वाद उन्हे सदैव प्राप्त रहा।

श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी शास्त्री आज हमारे बीच मे नहीं है पर उनका स्मरण हमे शक्ति व सामर्थ्य प्रदान करता है। वे अत्यन्त प्रेरणास्पद व्यक्ति थे। एक आदर्श शिक्षक एव समाजसेवी के रूप मे उन्होनें जो कार्य किया बुन्देलखण्ड का जैन समाज उसके लिए सदा उनका ऋणी रहेगा। ऐसे पण्डित प्रवर को हमारा कोटि–कोटि नमन।

• पूर्व मत्री, मध्यप्रदेश शासन
छतरपुर (मध्यप्रदेश)

□□□

आदर्श छात्र

– पं अमृतलाल जैन शास्त्री

प्रतिभामूर्ति स्व प गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि को मैंनें अपने बाल्यकाल मे साढूमल (ललितपुर) क्षेत्र मे देखा था, जहा वे श्री महावीर दिगम्बर जैन पाठशाला, जो अब सस्कृत महाविद्यालय है, अध्ययन कर रहे थे।

श्रीमान् प गोरेलालजी अत्यन्त मेधावी छात्र थे आप केवल एक बार पढकर ही अपने पाठ को कठस्थ कर लेते थे। फलत लघु कौमुदी, मोक्षशास्त्र और परीक्षामुख के सूत्रो को स्वप्न मे दोहराया करते थे। उक्त सस्था मे एक बार प्रतियोगिता हुई थी उसमे यह निर्णय हुआ था कि जो छात्र आधा घटे से अधिक समय तक अपने पठित ग्रन्थो के सूत्र बिना पुस्तक देखे धाराप्रवाह सुना देगा उसे प्रथम पुरस्कार दिया जायेगा। और जो आधा घटे तक बिना अटके पठित सूत्रो को मौखिक सुना देगा उसे द्वितीय पुरस्कार दिया जायेगा।

इस प्रतियोगिता मे गोरेलालजी को प्रथम पुरस्कार दिया गया था। उसी दिन से सभी छात्र गोरेलालजी को आदर्श छात्र शब्द से सम्बोधित करने लगे थे। ऐसे मेधावी दिवगत विद्वान् को मै हार्दिक श्रद्धाजलि समर्पित करता हू।

• साहित्याचार्य
वाराणसी

□□□

बुन्देलखण्ड की विलक्षण प्रतिभा

— डॉ. नन्दलाल जैन

छतरपुर जिले के द्रोणगिरि क्षेत्रवासी प गोरेलालजी शास्त्री मेरे साक्षात् गुरु तो नहीं रहे, पर मैंनें उन्हे सदैव गुरुवत् माना है। मै आज भी उनकी चमकीली आखो से भरी मुस्कान का स्मरण कर रोमाचित हो उठता हू।

छतरपुर मण्डल पिछले 300 वर्षों से विविध कोटि के प्रान्तीय राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानो की जन्मस्थली रहा है। यहा के विद्वानो ने जैन इतिहास, पुरातत्व, साहित्य और विज्ञान के क्षेत्रो को उद्धरित कर जैन तत्र को विश्व समुदाय मे सवर्धित किया है। इसका विवरण कमलकुमार जैन ने 1988 मे प्रकाशित किया था। प गोरेलालजी इसी विद्वत् परम्परा की एक जाज्वल्यमान कड़ी थे। जिन्होने धार्मिक अध्ययन मे प्रतिमान बनाया आपने पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी के सम्पर्क मे आकर नवयुग के नये विद्वान् की चेतना पाई और गुरुदत्त दिगम्बर जैन विद्यालय को अपना प्रमुख एव आदर्श कर्मक्षेत्र बनाया। आज बुन्देलखण्ड क्षेत्र के अधिकाश विद्वान् उनके साक्षात् या पारम्परिक शिष्य हैं और उनके प्रति आदरभाव रखते हैं।

आपने अध्यापन क्षेत्र के अतिरिक्त सामाजिक एव साहित्यिक क्षेत्र मे भी प्रतिष्ठा पाई। अनेक सामाजिक कुरूढियो को दूर करने का अभियान चलाया और द्रोण प्रान्तीय सेवा परिषद् के माध्यम से समाज को मार्गदर्शन दिया। इस हेतु आपने आधे दर्जन से अधिक साहित्यिक लोकप्रिय रचनाये भी लिखीं। जो आज तक स्मरण की जाती हैं। आपने मौलिक लेखन के साथ अनेक ग्रन्थो एव पत्रिकाओ का सम्पादन भी किया।

1964 मे जैन विद्यालय से निवृत्त होने के बाद आप द्रोणगिरि मे ही व्रती आश्रम मे व्रतियो एव धर्माराधको को धार्मिक शिक्षा देते हुए स्वय भी अध्यात्म मार्ग के पथिक बने और उसी रूप मे उनका जीवन बीता।

आपके सभी पुत्र और पुत्रिया जीवन मे धार्मिक एव समाज सेवा वृत्ति अपनाये हुए है। फलत परिवार की दृष्टि से वे सौभाग्यशाली हैं।

पण्डितजी बुन्देलखण्ड क्षेत्र की यशस्वी प्रतिभा के प्रतीक हैं। मेरे ऊपर उनका अत्यन्त स्नेह रहा। यदा—कदा मेरी उनसे धार्मिक चर्चाये भी होती थीं जिनमे उनकी अगाध विद्वत्ता प्रगट होती थी। कभी—कभी उनकी मीठी—मीठी डाट भी मुझे आनन्दमयी ही लगती थी। उनके चरणो मे मेरा सादर नमन।

• बजरगनगर
रीवा (म प्र)

□□□

सरल व्यक्तित्व के धनी

—प्रो डॉ. भागचन्द जैन "भास्कर"

श्रद्धेय पण्डित श्री गोरेलालजी से मेरा सम्पर्क कदाचित् सन् 1959 मे हुआ जब मैं द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र के दर्शनार्थ वहा पहुचा। सादा धोती पर बाहनुमा कपड़े की बनियान (बडी) घुटी हुई मूछो से साफ सुथरा चेहरा और छोटे—छोटे बालो से भरा टोपी से अधढका शिर आज भी याद आ रहा है। इस सीधे सादे

लिबास मे उनकी अगाध विद्वत्ता, सरलता और सहृदयता झाकती सी बाहर आ रही थी।

मेरी उम्र उस समय लगभग 20 वर्ष की रही होगी। जबकि वे मुझसे तिगुने वसन्त देख चुके होगे। पर वार्तालाप के बीच मुझे अवस्थागत इतने विराट अन्तर का अनुभव नहीं हुआ। मै उस समय स्याद्वाद विद्यालय वाराणसी का छात्र था। पण्डितजी द्रोणगिरि सस्कृत विद्यालय के प्राचार्य थे। दोनो सस्थाओ के सस्थापक पूज्य वर्णीजी थे और फिर मुझे द्रोण प्रान्तीय बम्हौरी (छतरपुर) का निवासी होने का भी सौभाग्य मिला था। इन सभी कारणो से पण्डितजी ने मेरे साथ बडी आत्मीयता का व्यवहार किया। इस व्यवहार मे सघनता तब और अधिक आई जब उनके अनन्यतम सुपुत्र श्री कमलकुमार शास्त्री हमारे ही साथ वाराणसी मे पढने लगे।

द्रोणगिरि पाठशाला ने काफी अच्छे–अच्छे विद्वान् समाज को दिए है। ये छात्र प्राय इर्द गिर्द गावो से यहा आया करते थे ओर पण्डितजी के चरणो मे बैठकर नये–नये जीवन सूत्र ग्रहण किया करते थे। पण्डितजी की अध्यापन शैली मे गुरुत्व तो था ही, सरक्षकत्व भी कूट–कूट कर भरा हुआ था। इसलिए न तो छात्रो को किसी बात की चिन्ता रहा करती थी और न ही उनके माता–पिताओ को। कपकपाती ठड हो या चिलचिलाती धूप पण्डितजी का अध्यापन कभी बन्द नहीं होता था।

पण्डितजी को अपने हर शिष्य की चिन्ता भी बनी रहती थी। उनके व्यक्तित्व का विकास कैसे हो और किसप्रकार समाज सेवा करने लायक बन जाये, इसकी चिन्ता उन्हे हमेशा बनी रहती थी। जब भी उनसे मेरी बात हुई, उन्होने यह अवश्य कहा कि तुम आस–पास के लडको को यहा भेजो ताकि वे सस्कृत और धर्म पढकर अपने जीवन का निर्माण कर सके। समाज की विपन्नता ने पाठशाला को हरा–भरा रखने मे सहयोग किया भी।

द्रोणगिरि क्षेत्र के विकास मे वस्तुत पण्डितजी का अविस्मरणीय योगदान रहा है। आज जब पण्डितजी के अभिनन्दन ग्रन्थ ने रेगते हुए स्मृति ग्रन्थ का रूप ले लिया तो उनके विषय मे बहुत सारी स्मृतिया स्मृतिपटल पर उभरने लगीं। उन स्मृतियो मे पण्डितजी की आध्यात्मिकता, गार्हस्थिकता उदारता, समाजसेवावृत्ति निरहकारिता आदि गुणो का आकलन बडी सरलता से किया जा सकता है। यही आकलन कर मै उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाजलि व्यक्त करता हूँ।

• अध्यक्ष, पाली प्राकृत विभाग
नागपुर विश्वविद्यालय, न्यू एक्सटेशन एरिया
सदर, नागपुर –440001

□□□

द्रोणगिरि के विकास के लिए समर्पित

– निर्मल जैन

अपने हृदय रोग की जाच/चिकित्सा के लिए एक सप्ताह बम्बई रहकर मै 9 अप्रेल को सतना वापिस लौटा था। रात बिस्तर पर विश्राम करते हुए इधर 10–15 दिन के समाचार मित्रो से सुन रहा था, तभी ज्ञात हुआ कि पण्डित गोरेलालजी की समाधि हो गई है।

बहुत रात तब स्मृति पटल पर चित्र उभरते रहे। द्रोणगिरि के विद्यालय और उदासीन आश्रम के पर्यायवाची के रूप मे तो पण्डित गोरेलालजी का स्मरण आया ही, उनका सौम्य स्नेहिल स्वभाव, क्षेत्र के

विकास के लिए उनकी चिन्ता, प्रदर्शन रहित पाण्डित्य और पाण्डित्य के अनुरूप व्रत नियम युक्त सदाचारी जीवन के उनके अनेक रूप स्मरण मे आये।

स्मृति ने बहुत पीछे जाकर भी कुछ चित्र उकेरे, जब मै 16—17 वर्ष का बालक था, आयु कम थी परन्तु सघर्षों ने असमय मे ही प्रौढ बना दिया था। सागर का पद्माकर प्रिंटिग प्रेस मेरी कार्यस्थली था। शिक्षा के अभाव मे भी सस्कारो के कारण धर्म, साहित्य, समाज सेवा के प्रति रुचि थी। अपने अग्रज श्री नीरज जैन और उनके समवयस्क साथियो के साथ सागर की सामाजिक सस्था भ्रातृ सघ की गतिविधियो मे एक स्वय सेवक के रूप मे सम्मिलित होता था, उसकी नियमित साप्ताहिक गोष्ठियो मे भी जाता था।

ऐसी एक गोष्ठी के प्रारम्भ मे चार पक्तिया सुनाने का अवसर मिला। एक अपरिचित अतिथि से बहुत प्रशसा मिली, बाद मे उन्हीं अतिथि ने एक कापी मे से बारह भावना का सस्वर पाठ किया। सभी ने तालिया बजाई, परन्तु मै तो कुछ समझ नहीं पा रहा था, बारह भावना के रूप मे "राजा राणा छत्रपति" ही मुझे स्मरण था, मै समझा यह भी किसी शास्त्र मे की बारह भावना उन्होने पढी है। बाद मे जब पद्माकर प्रेस मे वही बारह भावना छापने का अवसर मिला तब उन अतिथि जिन्होने चार पक्तियो के लिए मेरी प्रशसा की थी का कवि के रूप मे परिचय मिला, जाना कि वे अतिथि थे पण्डित गोरेलालजी शास्त्री जिन्होनें शिक्षा के लिए अपना जीवन समर्पित किया हुआ था और तभी से मैं उनके वात्सल्य का अधिकारी बन गया। सरल तो वे थे ही, प्रेस मे बैठकर ही उनसे और कुछ भी सुनने को मिला।

उनके रहते द्रोणगिरि की वन्दना करने जब भी गया, प्रसाद रूप मे उनसे कुछ सुनने को मिलता और बिल्कुल सादा किन्तु स्नेहपूर्वक आश्रम का स्वादिष्ट भोजन भी अवश्य मिलता।

उस दिन अपनी अस्वस्थता का क्षोभ हुआ, जिसके कारण न तो उनके अन्तिम दर्शन कर सका, न उनकी अर्थी को काधा दे सका और न ही परिजनो को सान्त्वना के दो शब्द ही दे सका। बस एक ही भावना उस रात मन मे आती रही कि मेरी पर्याय का अवसान भी इसीप्रकार सल्लेखनापूर्वक हो।

● सुषमा प्रेस
सतना (म प्र)

□□□

उदासीन साधक

— नीरज जैन

उदासीन का अर्थ बहुधा उदासवृत्ति से लगा लिया जाता है, जबकि इस शब्द का तात्पर्य उत् + आसीन = उदासीन के अनुसार ऊपर उठना, या ऊपर जा बैठना होता है। सचमुच जो परिग्रह—परिवार और राग—द्वेष के पक से ऊपर जा बैठे वही उदासीन है। ब्र पण्डित गोरेलालजी एक ऐसे ही साधक थे जिन्होने अपनी आसक्ति तोडकर अपने आप को अपने परिकर से कुछ ऊँचा उठा लिया था। उनकी वृत्ति मे उदासीन शब्द सार्थक लगता था।

पण्डित गोरेलालजी से मेरा अधिक सम्पर्क नहीं रहा। द्रोणगिरि की वन्दना के लिए हम लोग प्राय जाते रहते थे और उसी समय उनसे मिलना होता रहता था। हमने सदा उन्हे ज्ञान की आराधना मे ही लीन

पाया। एक दो बार ऐसा भी अवसर आया जब उनके सामने ही किसी की आलोचना या निन्दा का प्रकरण चल पडा तो ऐसी स्थिति मे उन्होनें अविलम्ब उस चर्चा को समाप्त कर बात को दूसरी ओर मोड दिया या कोई ओर ही प्रकरण छेड़ दिया। परनिन्दा जो आज के लोगो का प्रिय विषय है, पण्डितजी को प्रिय नहीं थी। वे सदा उससे बचने का ही प्रयास करते थे।

बुन्देलखण्ड की धरती वैसे ही ज्ञान ध्यान की भूमि है। उस पर जन्म लेकर और उसी मे पल पुसकर जैन श्रावक के सस्कार ही कुछ ऐसे बन जाते हैं कि वह परिग्रह मे डूबता नहीं है। समय पर तैरकर उस धारा मे से बाहर निकल जाता है। फिर गोरेलालजी को तो पूज्य वर्णी गणेशप्रसादजी का साक्षात् सम्पर्क एव आशीर्वाद प्राप्त रहा है। उनके जीवन मे यदि ऐसा उत्कर्ष व्यक्त हुआ तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं।

• सुषमा प्रेस
सतना (म. प्र)

□□□

मृदुभाषी

— प्रकाश हितैषी

आदरणीय पण्डित गोरेलालजी शास्त्री से मेरा सम्पर्क अनुमानत 35 वर्ष पुराना रहा है। जब तक मे बुन्देलखण्ड मे रहा उनसे बराबर मिलने जाता रहा हू। उनसे मिलकर अपूर्व आनन्द आता था। वे अत्यन्त सरल, मृदुभाषी एवं बुन्देलखण्ड क्षेत्र मे ख्याति प्राप्त विद्वान् थे। बुन्देलखण्ड मे शिक्षा के प्रचारक, ब्र चिदानन्दजी का हम दोनो पर वरदहस्त था। उनके सत्सग मे ही हम दोनो का शास्त्रीय ज्ञान एव जैनाचार के सुसस्कार प्राप्त किये थे। पण्डितजी कुछ समय से पारिवारिक सबध तोडकर उदासीन आश्रम मे रहकर आत्म साधना मे संलग्न हो गये। उनके कारण ही द्रोणगिरि क्षेत्र का अभूतपूर्व विकास हुआ है। उन्होनें मुझे आश्रम मे रहकर आत्मसाधना की प्रेरणा दी थी। उनका शास्त्रज्ञान ओर प्रवचनशैली प्रभावक थी। आत्म साधना के समय देखा गया कि व्रताचार की चर्या आगमानुकूल एव प्रेरक थी। उनके प्रति मेरा शत शत नमन।

• सम्पादक – सन्मति सन्देश
देहली

□□□

यशः शरीरेण जीवत्येव

— ज्योतिर्विद पं हरगोविन्द पाण्डेय

मेरे जीवन के बुझते दीपक को प्रकाश देने वाले ग्राम सेधपा में श्रीमान् पूज्य प. गोरेलालजी शास्त्री के अलावा और कोई नहीं था। हम दोनो भाईयो (मै तथा बालमुकुन्द) के माता पिता का स्वर्गवास हो गया तथा हम दोनो अनाथ हो गए। अपने काकाजी इन्द्रजीत पाण्डेय के पास रहते थे। जो स्वभाव से अत्यन्त क्रूर थे। पूज्य पण्डितजी ने हमे द्रोणगिरि पाठशाला मे रखवा लिया तथा पूज्य वर्णीजी को मेरी परिस्थिति

से परिचित कराया। पूज्य वर्णीजी ने प्रभावित होकर मुझे आर्थिक सहयोग दिलवा दिया तथा द्रोणगिरि एव सागर विद्यालय मे रहने की सुविधा प्रदान कर दी। मुझे परम पूज्य ब्रह्मचारी बाद मे क्षुल्लक श्री चिदानन्दजी महाराज का तेजस्वी स्वरूप एव ओजस्वी वाणी अभी भी भूलती नहीं है।

मैं तो सड़क के एक पत्थर की तरह था जिसे अनादर ही अनादर प्राप्त होता है सहारा कोई नहीं देता। मुझे पूज्य पण्डितजी ने सभाला, सहारा दिया और आदर के योग्य बनाने मे मदद की। पूज्य पण्डितजी ने मुझे अपना पॉचवा पुत्र माना और उसी तरह स्नेह दिया। पण्डितजी ने जब अपनी पुत्री की शादी की तो मुझे शोधन करने को बुलाया मैने जब पण्डितजी से निवेदन किया कि आप मेरे गुरु हैं मुझसे अधिक जानते हैं तब पण्डितजी ने मुझसे निम्न शब्द कहे– "मुझे ब्रह्म वाक्य चाहिए" मैं गुरुजी द्वारा दिए गए सम्मान से नत मस्तक हुआ। गुरु से शिष्य को इससे बडा और क्या सम्मान चाहिए, आदर चाहिए। मेरा श्रद्धा से चरणो मे मस्तक झुक गया। ग्राम मे जब भी मै डगमगाया तब मुझे पण्डितजी ने ही सहारा दिया।

कुछ ग्राम के मेरे विद्वेषी जब मेरे प्रति ईर्ष्या करने लगे तब मुझे लगा कि अब इस ग्राम मे मेरा रहना ठीक नहीं। पूज्य पण्डितजी से चर्चा की, गाव छोडने की मशा जताई और मैनें ग्राम सेधपा – अपनी जन्मभूमि छोडने का निर्णय किया। जन्मभूमि का मोह यद्यपि मुझे छोडने के लिए हतोत्साहित करता रहा फिर भी मैने जो सकल्प किया वह दृढ था। मैं जगल के मार्ग से सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पर्वत के पीछे से चला और जन्मभूमि की सीमा समाप्त होने पर जमीन को नमस्कार किया। मिट्टी को माथे पर लगाया और आगे बढ गया। सडवा पहुचकर सीधा मार्ग पाया और बस मे बैठकर सागर पहुचा, वहा से ट्रेन से उज्जैन आ गया मेरे साथ मेरी पत्नी एव भाई बालमुकुन्द थे। उज्जैन मे धर्मशाला मे रुका। भूतभावन महाकाल के दर्शन किए, प्रार्थना की और अपने ग्राम के पास के ही सहयोगी परशराम मेमार का स्मरण आया उनके पास गया। आप बीती सुनाई उन्होने मुझे सहयोग दिया। उनके प्रयास से हीरा मिल्स उज्जैन मे कार्य करने लगा। मैनें अपनी जानकारी पूज्य पण्डितजी को दी उन्होने मुझे उज्जैन वासी होने का आशीर्वाद दिया और आगे पढते रहने की प्रेरणा दी। उनकी प्रेरणा से ही मैने काम के साथ पढना प्रारम्भ किया तथा अनेको समस्याओ का सामना किया।

मैंने यहा आकर शास्त्री, साहित्याचार्य, एम ए, बी एड कर कन्या उ मा विद्यालय मे शिक्षण कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। तथा वेद विद्या के लिए गगाधर वेद विद्या प्रतिष्ठान की स्थापना कर छात्रो को शुक्ल यजुर्वेद की शिक्षा भी देने लगा। मैं ज्योतिष और क्रियाकाण्ड मे सिद्धहस्त हूँ। वर्तमान मे यहा एक मोनी बाबा के सम्पर्क मे रहने के कारण मेरा सम्बन्ध हिन्दुस्तान की बड़ी–बडी हस्तियो से है। मई 1977 मे पत्नी का स्वर्गवास हो गया। एक बच्ची है जो कॉलेज मे प्रोफेसर के पद पर कार्य कर रही है। राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित है। दामादजी कॉलेज मे प्रोफेसर है मेरे साथ ही रहते हैं इससे जीवन आनन्द मे व्यतीत हो रहा है। मै अपने इस जीवन के उत्कर्ष के लिए पण्डितजी का ही श्रेय मानता हूँ। मैं पूज्य गुरुदेव के प्रति अत्यन्त विनम्र भाव से श्रद्धा के साथ नत हूँ। मैं अभी भी यह मानता हूँ कि पण्डितजी का स्वर्गवास ही कहा हुआ है वे तो आज भी यश शरीरेण जीते ही है।

• श्री निवास,
128, विद्या नगर, साकेत रोड, उज्जैन (म प्र)

□□□

निःस्वार्थ सेवक

— डॉ. नेमीचन्द जैन, प्राचार्य

दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के ग्राम सेधपा मे जन्मे प गोरेलालजी शास्त्री एक बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी थे। आप बचपन से ही प्रतिभा सम्पन्न थे।

विद्वत्ता के धनी स्व श्री गोरेलालजी शास्त्री अगर चाहते तो शासकीय विद्यालयो मे शिक्षकीय कार्य करते परन्तु पूज्य 105 गणेशप्रसादजी वर्णी की आज्ञा एव "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की भावना से प्रेरित आपने अपनी माँ की सेवा के समान ही जन्मभूमि द्रोणगिरि की सेवा करना उचित समझा। गुरुदत्तादि मुनिवरो की निर्वाणभूमि के पाद मूल मे एक सस्कृत विद्यालय स्थापित कर बुन्देलखण्ड के निर्धन एव साधन विहीन छात्रो को ज्ञानदान दिया।

ब्रह्मचर्याश्रम मे लगे प्राचार्य परम्परा के श्रेष्ठ विद्वानो की परम्परा के एक आधार स्तम्भ, मूक सेवक, नि·स्वार्थ एव निश्छल कार्यकर्ता, धुन के धनी, सतोषी, सस्कृत भाषा एव साहित्य के श्रेष्ठ विद्वान् पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि को मै सादर विनयाजलि अर्पित करता हूँ।

• श्री पार्श्वनाथ गुरुकुल, खुरई

□□□

पं. गोरेलाल शास्त्री : जैसा मैंनें उन्हें उस दिन जाना

— वीरेन्द्र शर्मा "कौशिक"

"सर क्या आपने सुना ?"

"नहीं तो, क्या? किस विषय मे ?"

"जैन साहब के पिताजी पण्डित गोरेलालजी शास्त्री नहीं रहे।"

"कब ? कैसे ? क्या हुआ था उन्हे ? पहले सुना जरूर था कि वे काफी बीमार रहे थे पर ठीक भी तो हो गये थे।"

"हा ! ठीक कह रहे है, सर, आप। वे ठीक हो गये थे पर काफी कमजोर तो थे ही। इस पर भी निरन्तर सत साधना और समाज सेवा के कार्यों मे 86 वर्ष आयु के वृद्ध हो जाने पर भी अपने जीवन के अन्तकाल तक वे सदा लगे रहे। उनकी यही श्रम साधना उन्हे हमारे बीच से अचानक उठा ले गई। बडे भले आदमी थे वे। उनकी आत्मा को शान्ति मिले।"

30 मार्च सन् 1991 की सध्या बेला थी वह, जब मुझे यह दुखद सूचना हमारे एक सहवर्णी साथी श्री सी पी खरे ने मेरे घर आकर दी थी, जो उक्त वार्तालाप से आप सब तक पहुच रही है। मैने उनसे कहा — "ठीक है भाई, जानहार को भला कब कौन रोक पाया है ? फिर उनकी तो उम्र भी काफी हो गई थी। चिकित्सा उपचार मे भी श्री जैन (श्री कमलकुमार जैन) और उनके परिवार ने कोई कोर कसर नहीं उठा रखी थी। अच्छा हो हम सब कल अपनी सस्था मे एक शोक—श्रद्धाञ्जलि सभा का आयोजन करे और तब

फिर उनके गाव चलकर शोक संवेदना व्यक्त करे किन्तु हा ! यह तो बताओ – सुना है गोलोकवासी प गोरेलालजी विविध शास्त्रो के ज्ञाता, समाज सेवक और जन–जन मे बड़े लोकप्रिय थे।"

"हा, सर, बिल्कुल ठीक सुना आपने। पण्डितजी जैन समाज के अग्रणी समाज सेवक, प्रतिभाशाली विद्वान्, आध्यात्मिक–धार्मिक गुरु, शिक्षा और साहित्य के विशिष्ठ जानकार थे। उन्हे अपने क्षेत्र मे सद्गुरु की श्रद्धा–प्रतिष्ठा प्राप्त थी। पण्डितजी श्री वर्णीजी के परमप्रिय शिष्य थे वे ओर पूज्य गुरुजी की सञ्ज्ञा से सदा विभूषित किए जाते थे। जैन समाज मे ही नहीं वरन् बुन्देलखण्ड भर मे उन्हे सुकीर्ति मिली थी। सर्वत्र उन्हे पूज्य माना जाता था।"

अभी हमारी यह चर्चा शायद कुछ देर और भी चलती पर तभी हमारी पत्रकार श्रीमती राजेश्वरीदेवी शर्मा बीच मे आ टपकीं – "अपने नानाजी भी तो जैन मतावलम्बी हो गए थे और आन्ध्र प्रदेश हैदराबाद मे प देवेन्द्रसागर नाम से सुविख्यात थे। कितना सम्मान था उनका हैदराबाद मे। वहा तो ज्यातर जैन लोग श्वेताम्बर मत के अनुयायी थे। क्या जैन साहब के पिताजी भी श्वेताम्बर जैन थे ?"

"नहीं वे दिगम्बर जैन थे। बुन्देलखण्ड मे ज्यादातर दिगम्बर और दक्षिण, पश्चिम भारत मे श्वेताम्बर जैन धर्मावलम्बियो का बाहुल्य है, हालाकि देश के सभी अचलो मे दोनो मतावलम्बी बसे पाये जाते हैं।" स्व पण्डित गोरेलालजी शास्त्री दिगम्बर जैन मतावलम्बी थे, जिनके बारे मे श्री खरे बता रहे थे। बस ! यहीं हमारी वार्ता मे विराम लग गया और श्री खरे हमसे विदा लेकर चले गए।

दूसरे दिन हम सबने अपने स्कूल शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, अनगौर मे स्व प गोरेलालजी शास्त्री को एक शोक–श्रद्धाजलि सभा मे अपने–अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए और शोक सवेदना पत्र देने द्रोणगिरि ग्राम पहुचे, जहा पहले से ही बहुत लोग श्री कमलकुमार जैन को सान्त्वना–सवेदना सदेश देने आये हुये थे। हमे शोकपूर्ण प्रश्नात्मक मुद्रा मे अपनी ओर देखकर श्री जैन अपनी उदास शोकाकुल वाणी मे कहने लगे – "सर ! पिताजी वैसे तो लम्बी बीमारी झेलकर भी पूर्ण नहीं तो आशिक रूप से स्वस्थ थे पर हम यह नहीं जानते थे कि उनका साया इतनी जल्दी हमारे सिर से उठ जायेगा, जो हमे अब अचानक ही असहाय–निराश्रित सा बना रहा है।"

"नहीं, नहीं भाई ! ऐसा कभी न सोचना। जिस महापुरुष की याद मे यह सारा गाव ही नहीं, सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड शोकमग्न हो, उसका पुत्र भला असहाय, दीन कैसे हो सकता है? आप तो धन्य हैं, बडे सौभाग्यशाली हैं जो ऐसे जन–जन हितैषी समाजसेवी महापुरुष के सुपुत्र हैं। क्या आप मुझे बतावेगे कि उनका जन्म कब और कहा हुआ था ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर मे श्री कमलकुमारजी ने बताया – पिताजी का जन्म द्रोणगिरि ग्राम मे सन् 1905 ई को हुआ। हमारे दादा स्वर्गीय भूरेलाल जैन दादी मॉ श्रीमती रूपाबाई थीं।"

"सक्षिप्त पारिवारिक परिचय भी दे।" मेरे यह कहते ही वे आगे बताने लगे – "हमारे पिताजी तीन भाईयो मे सबसे छोटे थे। उनके दोनो बड़े भाईयो के नाम क्रमश बिहारीलाल और बलदेवप्रसाद थे। हमारी मॉ का नाम पूनाबाई है जो धार्मिक प्रवृत्ति की है। जिनकी हम 5 सताने (4 पुत्र और 1 पुत्री) हैं। हम सबको सद्गृहस्थ ओर सुखी समृद्ध देख वे सदा सतुष्ट और प्रसन्न रहते थे।"

"क्या आप बतायेगे कि अपने ग्राम और क्षेत्र के लिए उनका मुख्य योगदान क्या रहा ?" मेरे इस

प्रश्न का जबाब वहा उपस्थित साफ सुथरे लिवास मे बैठे एक सज्जन ने देते हुए कहा — "साहब ! पण्डितजी बहुत ही सीधे, सज्जन, सरल स्वभाव के मृदुभाषी व्यक्ति थे। इस क्षेत्र को उनकी देन अविस्मरणीय है। क्षेत्र मे फैले अज्ञानान्धकार को ज्ञान के प्रकाश से भर देने हेतु उन्होनें क्या कुछ नहीं किया। शास्त्री तक की सामान्य परीक्षा पाये हुए इस महापुरुष ने अपने दीक्षा गुरु श्री वर्णीजी के सत्प्रयासो से सस्थापित दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय द्रोणगिरि मे स्थापना से लगभग 40 वर्ष तक इस विद्यालय का सुचारु सचालन और प्रबन्ध प्रधानाध्यापक के रूप मे किया। सन् 1928 मे स्थापित अपने इस विद्यालय की देखभाल वह सन् 1964 तक सफलतापूर्वक करते रहे। उनके ही मार्गदर्शन मे इस विद्यालय के हजारो शिष्य देश के प्रख्यात पण्डित बने, जो आज भी जगह—जगह पण्डितजी के बताये आदर्शों का प्रचार—प्रसार कर रहे हैं। साहित्य सृजन मे भी उनको कम रुचि न थी, जिससे अपनी लेखनी द्वारा उन्होने साहित्य सृजन किया। बारह भावना, सुमन सचय, जैन गारी भाग 1 व 2, द्रोणगिरि पूजन, जैन भजन सग्रह , नाममाला, रामविलास मार्तण्ड तथा क्षुल्लक चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ आदि अनेक पुस्तको का सृजन एव सम्पादन उन्होने किया जिनमे से अन्तिम पुस्तक तो महत्वपूर्ण सदर्भ ग्रन्थ के रूप मे सुविख्यात हुई। इन सब कृतियों के माध्यम से पण्डितजी ने अपने शिष्यो ओर अनुयायियो को सही, सच्चे अहिसा परमोधर्मः के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इस तरह उनकी शिक्षाओ से इस क्षेत्र मे फैली अनेक कुरीतियो, विसगतियो तथा पारस्परिक मनोमालिन्य को मिटाने मे बडी सहायता मिली। समाज द्वारा देव दर्शन, पूजन आदि धार्मिक कृत्यो से वंचित व्यक्तियो को धार्मिक अधिकारो को दिलाने और अपने कर्तव्यो का पालन करने की सत्प्रेरणा देने के महत्वपूर्ण कार्य भी पण्डितजी ने समय—समय पर किए। उनकी मृत्यु से अपूरणीय क्षति को पूरा कर पाना तो हमारे वश मे नहीं है किन्तु इतना तो हम कर ही सकते है कि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन कर एक स्मृति ग्रथ इस क्षेत्र के वासियो को प्रकाशित कराकर दे जिससे सार्वजनिंक हित के लिए वे सत्प्रेरणा पाते रहे। यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि होगी।"

इस स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन की कार्यान्विति पर भला हम सब क्यो न प्रसन्न होकर स्मृति शेष स्व. गोरेलालजी शास्त्री के चरणो मे विनम्र श्रद्धासुमन समर्पित कर अपने आपको उपकृत माने।

• सेवा निवृत्त प्राचार्य
"स्मृति" 143, कुरेचाना का मोहल्ला
मऊरानीपुर , झासी – 284204 (उ प्र)

❑❑❑

जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता

— सेठ डालचन्द जैन

आदरणीय पण्डित गोरेलालजी शास्त्री हमारे बुन्देलखण्ड के महान् विद्वान् थे। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त सौम्य एव सादगीपूर्ण था। जो सराहनीय एव अनुकरणीय है। पण्डितजी ने बुन्देलखण्ड समाज के लिए जो कार्य किया, वह भुलाया नहीं जा सकता है।

• पूर्व सासद
सागर (म प्र)

❑❑❑

साधुवृत्ति के पर्याय

— वीरेन्द्र इटोरया

सन् 1970 की अप्रेल की प्रथम तारीख हमारे परिवार पर वज्रपात करने आयी जब रात्रि 8.30 बजे हमारे बडे भाई श्री विजयकुमारजी इटोरया को दुर्दान्त डाकू मूरतसिह द्वारा अपहृत कर लिया गया। कई दिवस तक कोई पता नहीं लगा अचानक किसी सज्जन ने पण्डितजी के वारे मे जानकारी दी कि डाकू मूरतसिह सेधपा ग्राम का निवासी है व पूज्य पण्डितजी को पूरी श्रद्धा से देखता है। मैं फौरन दमोह से मलहरा व मलहरा से सेधपा पहुचा।

उदासीन आश्रम मे पूज्य पण्डितजी से मिला, कहाँ सरलता, सादगी एवं साधु गुणों से पूर्ण पडितजी और कहाँ दुर्दान्त हत्यारे डाकू उन पर पण्डितजी के प्रभाव की कोई कल्पना भी नहीं हो सकती थी। पूज्य पण्डितजी ने हमे पूर्ण सान्त्वना दी, धैर्य धारण कराया व भगवान जिनेन्द्र देव की शरण लेने का उपदेश दिया। दूसरे दिवस छोटे शिखरजी द्रोणगिरि के दर्शन का सोभाग्य प्राप्त किया। पण्डितजी के बड़े सुपुत्र श्री अजितकुमारजी हमारे साथ थे। वे सरल हृदय सद्गृहस्थ पुरुष हैं। वन्दना कर पुन: पण्डितजी के पास पहुचा उन्होने सन्देश भिजवाया। एक माह से अधिक मुझे आश्रम मे रहने का अवसर मिला। बीच–बीच मे दमोह आता रहा।

पूज्य पण्डितजी पूरे समय धर्म ध्यान के लिए प्रेरित करते रहते थे। आश्रम के वातावरण को प्रात 4 बजे से रात्रि 9 बजे तक सम्पूर्ण धर्ममय एव अनुशासित रखते हुए सम्यक् मैत्री भाव सभी के प्रति उनका रहता था। उनके सद्प्रयासो से 29 मई 70 को मे अपने भाई को सेधपा के जगल से वापिस ला सका। उनके द्वारा दी हुई शिक्षा शुभाशुभ परिणामो की व्याख्या ने जो आत्मशक्ति बढाई, उसने मेरे जीवन मे आगे बढने के मार्ग प्रशस्त किए। मेरे पूज्य पिता स्व श्री भागचन्दजी इटोरया एव पूरा परिवार उनके सहयोग एव मार्गदर्शन के लिए उनके कृतज्ञ थे, है और रहेगे।

ऐसे महामना पण्डित प्रवर स्व श्री गोरेलालजी शास्त्री के पावन चरणो मे हम शत–शत श्रद्धा सुमन समर्पित करते हैं।

• इटोरया वाटिका
दमोह (म प्र)

□□□

प्रेरणास्रोत

— सुरेश जैन

श्रद्धेय पण्डितजी ने अत्यधिक विपरीत परिस्थितियो मे डकैती प्रभावित क्षेत्र के छोटे से ग्राम सेधपा (द्रोणगिरि) मे रहकर सतत रूप से धर्म, तीर्थ, समाज एव जिनवाणी की अनुकरणीय सेवा की है। मेरे पिता स्व सिंघई सतीशचन्द जैन एव माता श्रीमती केशरदेवी का उनसे सतत जीवन्त सम्पर्क रहा है। पण्डितजी के जीवन से मेरे माता, पिता तथा हम लोगो ने सदैव प्रेरणा ली है।

द्रोणगिरि की यात्रा के समय 1990 मे मै पण्डितजी से मिला और उन्हे बताया कि आपके शैक्षणिक अवदान के कारण नैनागिरि मे माध्यमिक शाला स्थापित हो सकी है। यह जानकर वे अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होने कहा कि भैया! नैनागिरि जैसे स्थान पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय भी चल सकता है। इस विद्यालय से समीपस्थ ग्रामीण पिछडे क्षेत्र के छात्र अध्ययन का अवसर प्राप्त करेगे। पण्डितजी की इसी प्रेरणा से नैनागिरि मे सन् 1993 मे सिघई सतीशचन्द्र केशरदेवी जैन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की स्थापना की गई। वर्तमान मे यह विद्यालय सफलतापूर्वक चल रहा है।

जैन समाज मे शताधिक वर्षो से प्रचलित प्रौढ शिक्षा के क्षेत्र मे पण्डितजी ने अप्रतिम योगदान दिया है। मैने अपने बाल्यकाल से प्रौढावस्था तक पण्डितजी को पढाते हुए, क्षेत्र तथा आश्रम के कार्य मे पूर्ण रुचि लेते एव परिश्रम करते हुए देखा है। यदि हम उनके चरण चिन्हो पर आगे बढकर समाज कल्याण कर सके तो यह हमारी उपलब्धि होगी।

• आई ए एस
30, निशात कॉलोनी, भोपाल (म प्र)

❑❑❑

समाज को समर्पित मनीषी

— मोतीलाल जैन

बुन्देलखण्ड के आद्य गुरु गुरुदत्त दि जैन सस्कृत विद्यालय के प्रथम प्रधानाध्यापक, श्री दि जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के विकास मे निरन्तर योगदान देने वाले श्रीमान् प गोरेलालजी शास्त्री समाज के लिए समर्पित व्यक्तित्व रहे है।

छात्रो के प्रति आत्मीय भाव पण्डितजी की ही विशेषता थी, उनका अनुशासन छात्रो के भविष्य निर्माण के लिए उपयोगी सिद्ध होता था। अध्ययन कराने का प जी का तरीका सरल, सुबोध था। छात्र एक बार मे ही अध्ययन कर विषय को हृदयग्राही कर लेता था। पण्डितजी का हर क्षेत्र मे समर्पण भाव से कार्य करने का प्रभाव मेरे जीवन पर पडा और पण्डितजी की प्रेरणा से समाज सेवा के क्षेत्र मे मेरा प्रवेश हुआ।

क्षेत्र के विकास मे प जी के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। क्षत्रीय समाज मे आपका गौरवपूर्ण स्थान रहा है। समाज की कैसी भी समस्या हो, मन्दिर सम्बन्धी विषय हो, पण्डितजी बडी सूझबूझ से उसे निपटाते थे और आपका निर्णय सभी लोग ब्रह्मवाक्य मानकर स्वीकार करते थे। समाज मे फैली कुरीतियो, कुरूढियो के निराकरण मे पण्डितजी का बहुत बडा योगदान रहा है। मै ऐसे समर्पित व्यक्तित्व को शत शत नमन करता हूँ।

• प्रधानाध्यापक (से नि)
भगवा, छतरपुर (म प्र)

❑❑❑

बुन्देली सौंधी माटी की अनोखी बानगी : श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी

— प्रोफेसर डॉ भागचन्द जैन 'भागेन्दु'

श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि बुन्देलखण्ड की सौंधी माटी की अनोखी बानगी थे। सादा जीवन उच्च विचार को आत्मसात् कर अपने क्रियाकलापो से उन्हे यावज्जीवन चरितार्थ करने वाले माननीय पण्डितजी से हमारी पहली भेट हमारे पूज्य पिता श्रीमान् सवाई सिघई अनन्तरामजी रीठी के साथ सन् 1952 मे सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि सेधपा तीर्थ वन्दना के क्रम मे हुई। उस समय मैं गवर्नमेन्ट क्वीन्स कॉलेज काशी की सस्कृत प्रथमा परीक्षा का छात्र था। द्रोणगिरि मे श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय उन दिनो अपनी तरुणाई पर था और पण्डितजी उसके प्रधानाध्यापक थे। तब तीर्थ क्षेत्रों पर पहुँचे यात्री तीन–तीन वन्दनाओ के बिना अपनी यात्राये अधूरी मानते थे, इन पावन तीर्थ भूमियो के कण–कण से परिचित होने, उनकी विशेषताओ को समझने तथा वहाँ के रजकणो को अपने माथे पर लगाकर नमन करने मे गौरव की अनुभूति करते थे। परम पूज्य सन्त प्रवर गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज द्वारा सस्थापित सागर के श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन सस्कृत महाविद्यालय का छात्र होने के नाते तथा द्रोणगिरि का यह विद्यालय भी पूज्य वर्णीजी द्वारा सस्थापित होने के कारण दोनो की पठन–पाठन व्यवस्था, छात्रावासीय सुविधा, विद्यार्थियो की अभिरुचियो आदि का तुलनात्मक परिचय प्राप्त करने की जिज्ञासा मेरे मन मे सहज ही घर किये थी। तीन दिवसीय इस यात्रा प्रसग की स्मृतियाँ आज भी मेरे मानस–पटल पर ज्यो की त्यो बनीं हैं और उनमे द्रोणगिरि विद्यालय के प्रधानाध्यापक माननीय पण्डित गोरेलालजी शास्त्री की सहजता, सर्वदा सुलभता, निष्कामवृत्ति, सरल सुबोध वैज्ञानिक अध्यापन शैली, विनोद प्रियता, छात्रो को शिक्षा के साथ सुसस्कृत नागरिक बनाने की उदात्त भावना और अभ्यागतो/यात्रियो के प्रति उदार वात्सल्य भाव आदि गुण मुझे बहुत प्रभावित कर गये।

द्रोणगिरि क्षेत्र पर्वतराज पर निर्माण/जीर्णोद्धार आदि के कार्यों पर नियत्रण और अध्यापन कार्य एक साथ होता रहे एतदर्थ पण्डितजी पर्वतराज पर भी कक्षायें लगाते थे। पूज्य सन्त वर्णीजी महाराज के शब्दो मे "लघु सम्मेद शिखर" इस द्रोणगिरि क्षेत्र के सम्पूर्ण प्रान्त मे पण्डितजी सर्वमान्य व्यक्ति थे। उनकी शिष्य सम्पदा मे जैन और जैनेतर सभी वर्गों के व्यक्ति सम्मिलित हैं। धार्मिक अनुष्ठान/विधि–विधान/मेला–महोत्सव/पर्व प्रवचन एव सामाजिक विवादो के निवटारा कराने हेतु द्रोण प्रान्त मे वे आमन्त्रित होकर जाते थे और अपने प्रौढ अनुभवो तथा युक्ति आगम एव तर्क सम्मत विश्लेषणो से यशोमण्डित होते थे। पूज्य वर्णीजी महाराज के द्रोण प्रान्तीय प्रवास मे वे अहोरात्र उनके साथ होते थे।

हमे भली भाति याद है कि पण्डितजी अत्यन्त नियमित, अनुशासनप्रिय सफल शिक्षक, कुशल सस्था सचालक, निपुण व्यवस्थापक, सभा चतुर विद्वान् और सामाजिक कार्यकर्ता थे। पूरे द्रोण प्रान्त मे उनकी उज्ज्वल छबि थी। तीर्थ पर आने वाला यात्री पण्डितजी से भेट करने को उत्सुक होता था और वह अपने ग्राम/नगर/सस्था आदि की सामाजिक/धार्मिक/पारिवारिक समस्याओ की चर्चा करके उनसे समुचित दिशा निर्देश प्राप्त करके सतुष्ट होकर लौटता था।

माननीय पण्डितजी से 1952 के बाद अनेक बार भेंट करने का सुयोग विभिन्न आयोजनो/समारोहो

सम्मेलनो/महोत्सवो आदि मे मिलता रहा और हमने अपनी उक्त अवधारणाओ को और अधिक सपुष्ट होते हुए अनुभव किया। यद्यपि वे हमारे साक्षात् गुरु नहीं थे किन्तु उनकी सादगी, सदाचार–प्रवण उदात्त जीवन शैली, परिष्कृत आगम–ज्ञान और तपोनिष्ठा के साथ सस्कृत–प्राकृत भाषाओ के प्रसार एव संस्कृति सरक्षण हेतु विहित कार्यों से वे सदैव हमारे प्रणाम के अधिकारी बने।

उनके सान्निध्य के अनेक सस्मरणो मे से केवल दो ही यहाॅ प्रस्तुत है –

निःस्पृह प्रतिष्ठाचार्य से भेंट

मार्च 1978 मे दमोह जिले के सदगुवॉ ग्राम मे वहॉ के सेठ बलदेवप्रसादजी (जो उस समय वहॉ के शासकीय विद्यालय मे प्रधानाध्यापक भी थे) के भाव श्री 1008 सिद्धचक्र महामण्डल विधान एवं विश्व शान्ति महायज्ञ कराने के हुए। सद्गुवॉ मे कुल 8–10 घर की जैन समाज थी। कुर्मी और क्षत्रियो का ग्राम मे बाहुल्य था। आयोजन सार्वजनीन और प्रभावक भी बने, इसके लिए दमोह तथा निकटवर्ती प्रमुख स्थानो के प्रभावशाली प्रमुख लोगो को जोडकर एक समिति बनी। इस समिति मे हमे महामत्री का दायित्व सौंपा गया। इस समिति मे दमोह के अनेक कर्मठ महानुभाव सम्मिलित थे। कुछ के नाम इसप्रकार हैं – सर्वश्री बाबूलाल पलन्दी (स्वतन्त्रता सग्राम सेनानी एव महामत्री जिला काग्रेस कमेटी), श्री ताराचन्द सिघई (प्रबन्ध सचालक केन्द्रीय सहकारी बैक) (अब दोनो स्वर्गस्थ), श्री वीरेन्द्रकुमार इटोरया (तत्कालीन मत्री जैन पचायत), श्री निर्मल इटोरया, श्री सुरेश चौधरी , लक्ष्मीचन्द सेठ, सेठ धर्मचन्द, डॉ ज्ञानचन्द चौधरी (अब स्वर्गस्थ) आदि।

माननीय पण्डित गोरेलालजी शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य के रूप मे जैन मित्र सूरत (साप्ताहिक पत्र) के सहायक सम्पादक पण्डित ज्ञानचन्दजी "स्वतत्र" सहयोगी प्रतिष्ठाचार्य के रूप मे आमन्त्रित होकर पधारे थे। वहॉ अष्ट दिवसीय विविध कार्यक्रमो मे मैनासुदरी नाटक का मचन, अहिसा सम्मेलन, कवि सम्मेलन, शाकाहार रैली, महिला सम्मेलन क्षेत्रीय युवक सम्मेलन आदि प्रमुखता से सम्पन्न हुए। हजारो की संख्या मे जैनेतर समुदाय प्रतिदिन कार्यक्रमो मे सम्मिलित होता था। पण्डितजी की विधि–विधान कराने की पद्धति और प्रवचन शैली बहुत प्रभावोत्पादक थी।

अनुष्ठान की समाप्ति पर समागत विद्वानो एव कार्यकर्ताओ के सम्मान का आयोजन था। प्रतिष्ठाचार्य माननीय पण्डित गोरेलालजी को सम्मान निधि 7001/– रुपए, अगवस्त्राभरण आदि समर्पित किये जाने हेतु प्रस्तुत किये गये थे। पण्डितजी ने कुछ भी स्वीकार नहीं करने के संकल्प की जानकारी दी। सभी के बहुत अनुरोध करने पर उन्होने केवल एक रुपया, श्री फल और अग वस्त्र मात्र स्वीकार किये। पण्डितजी की सहज जीवन पद्धति, हृदयावर्जक अनुष्ठान प्रक्रिया और नि स्पृह वृत्ति ने सभी को बहुत प्रभावित किया। पूरे परिक्षेत्र के जैन–जैनेतर सभी अब भी उन्हे अत्यन्त गौरव पूर्वक स्मरण करते हैं वस्तुत. वैसे नि स्पृह प्रतिष्ठाचार्य अब कहॉ है ?

यह सयोग की ही बात है कि माननीय पण्डितजी के सुपुत्र सर्वश्री पण्डित अजितकुमारजी (द्रोणगिरि) एव पण्डित कमलकुमारजी (छतरपुर) न केवल प्रतिष्ठित विद्वान् और यशस्वी सामाजिक कार्यकर्ता तथा विभिन्न सस्थाओ के सफल पदाधिकारी हैं बल्कि पण्डितजी जैसी नि स्पृहवृत्ति के धनी भी हैं।

आचार्यरत्न देशभूषण मुनि महाराज की बुन्देलखण्ड तीर्थयात्रा के सन्दर्भ में

सन् 1983 मे मार्च मास मे परम पूज्य आचार्यरत्न देशभूषण मुनि महाराज का विशाल चतुर्विध सघ बुन्देलखण्ड तीर्थयात्रा के सन्दर्भ से तीन दिन के लिए द्रोणगिरि के श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम मे ठहरा। पण्डित गोरेलालजी अब इसी आश्रम मे प्रमुख व्रती थे। उक्त सघ की तीर्थयात्रा का सयोजक होने के नाते इसी आश्रम परिसर मे हमारा भी आवास था। इस अवसर पर मैंने वयोवृद्ध पण्डितजी को वैयावृत्ति, स्वाध्याय, शास्त्र प्रवचन, साधु सघ तथा श्रावको की जिज्ञासाओ के मनोयोग पूर्वक समाधान करने के कार्य मे निरन्तर निरत तो देखा ही, सघ के श्रावक-श्राविकाओ की विधिवत् सोत्साह सम्हाल मे भी दत्तचित्त पाया। मैंने यह अनुभव किया कि पण्डितजी का वार्धक्य, पद प्रतिष्ठा आदि चतुर्विध संघ की सम्हाल मे तनिक भी बाधक नहीं है, साधक ही है।

पण्डितजी का अन्तिम सान्निध्य

1990 के अन्तिम दशक मे श्री द्रोणगिरि क्षेत्र का मेला प्रसिद्ध समाजसेवी श्री जयकुमार इटोरया दमोह के सभापतित्व मे सम्पन्न हुआ। विशेष आमन्त्रण पर मै भी मेला महोत्सव मे सम्मिलित हुआ। इस समय भी पण्डितजी की दिनचर्या पूर्ववत् नियमित थी। इस समय उनमे आत्मालोचन और आत्माराधन की वृत्ति सविशेष देखी। उन्हे व्रतियो और श्रावको के मध्य विभिन्न आयोजनो मे सामाजिक कुरूढियो तथा जड़ताओ के उन्मूलन की प्रेरणाये प्रदान करते देखा। पूज्य सन्त गणेशप्रसाद वर्णीजी के योगदान का पल–पल बखान करते देखा। माननीय पण्डितजी की ऐसी अभिराम प्रवृत्तियाँ मेरे जीवन मे प्रेरक तत्त्व के रूप मे कार्य कर रहीं हैं।

अन्त में

जैन सिद्धान्तो पर गहरी आस्था के धनी और आगम सम्मत ज्ञान के विकास के लिए यावज्जीवन सचेष्ट श्रद्धेय ब्र पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का स्वर्गारोहण पूर्ण सल्लेखनापूर्वक दिनाक 29 3 91 को हुआ किन्तु तीर्थंकर प्रणीत वाणी के प्रकाश मे प्राणिमात्र के लिए विशेषतया समग्र मानवता के लिए उनका प्रशस्य अवदान, उनकी श्रुतसेवा, कुरूढियो के उन्मूलन की दिशा मे विहित कार्य और सहस्रो छात्रो को विद्यादान सुदीर्घ काल तक उन्हे अमर बनाये रखेगे।

बुन्देलखण्ड जैसे साधनहीन, पिछड़े, अशिक्षा–अज्ञान और कुरूढियो से ग्रस्त प्रान्त मे सम्यक् श्रद्धा, समीचीन ज्ञान और सदाचार की पावन त्रिवेणी प्रवाहित करने वाले इस निरभिमानी मनीषी को उनकी प्रेरणाप्रद स्मृतियो को हमारे कोटि–कोटि नमन, कोटि–कोटि प्रणाम।

• निदेशक
राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एव सशोधन सस्थान
श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)

□□□

छात्र-मनोविज्ञान के यशस्वी प्रयोक्ता

— धर्मचन्द मोदी साहित्याचार्य

श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र एवं वहां के विद्यालय को व्यवस्थित व विकसित करने मे सम्पूर्ण निष्ठा एव परिश्रम के साथ समर्पण की भावना से आगे आने वालो में किसी का नाम लिया जा सकता है तो वह है आदरणीय गुरुवर्य प गोरेलालजी शास्त्री। जिनके कार्यकलापो की छाप आज भी द्रोणगिरि के चप्पे--चप्पे मे चस्पा है। साधनो के अभाव मे एव विपरीत परिस्थितियो मे भी क्षेत्र के विकास को नई दिशा प्रदान करने मे आदरणीय गुरुदेव का अपराजेय व्यक्तित्व बडा ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

आदरणीय पण्डितजी के व्यक्तित्व को केवल शिक्षण के शिकजे मे कसकर हम उनके अधूरे व्यक्तित्व को ही उजागर कर सकते हैं, उनका व्यक्तित्व तो व्यापक सामाजिक परिवेश को भी समेटे था। वस्तुत अध्ययन के अतिरिक्त श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र की व्यवस्था का दारोमदार उनके कन्धो पर ही था। विपरीत परिस्थितियो मे इस चुनौतीपूर्ण जिम्मेदारी का निर्वाह उन्होने जिस धैर्य व बुद्धिमत्ता से किया वह निश्चित ही प्रशसनीय कार्य था। जागीरदारो की उच्छृखल मनोवृत्ति एव शोषणपूर्ण प्रवृत्ति के वातावरण मे भी क्षेत्र के साधनो का बडी ही बुद्धिमत्तापूर्ण ढग से प्रयोग करने के उनके बौद्धिक व्यायाम को शायद ही कोई समझ पाता।

जहा तक शिक्षा प्रसार का प्रश्न है बुन्देलखण्ड के इस पिछडे क्षेत्र मे पूज्य वर्णीजी यदि शिक्षा प्रसार के लिए प्रेरणास्रोत थे तो आदरणीय पण्डितजी उस प्रेरणा के सर्वाधिक सशक्त सवाहको मे से एक थे। श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला के तो वे प्राण ही थे। उनके पुरुषार्थ का मूर्तरूप ही मानो श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला के रूप मे प्रकट हुआ था। अपने रक्त और पसीना से सींचकर उन्होने जिस विद्याकल्पतरु को खडा किया था उसका पराभव भी उनके उस सस्था से सेवानिवृत्ति लेने पर हो गया। सन्1964 मे आपने सस्था छोडी तो मानो उसके बद होने की नौबत ही आ गई।

पण्डितजी की शिक्षा--दीक्षा धार्मिक व सास्कृतिक वातावरण से भरपूर सर सेठ श्री हुकमचन्दजी द्वारा स्थापित इन्दौर विद्यालय मे सम्पन्न हुई थी। विरासत मे ही उन्हे धार्मिक वातावरण मिला था जिसमें अन्तिम क्षणो तक उनका जीवन सरावोर रहा। बडी ही त्यागमयी वृत्ति के धनी पण्डितजी ने द्रोणगिरि को ही अपनी कर्मस्थली बनाया, तो आजीवन वहीं के होकर रह गए। बडे से बडा प्रलोभन उनको द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र की सेवा से विरत नहीं कर सका। प्राचीन पद्धति से शिक्षण व्यवस्था के पुरोधा पण्डितजी शिष्यो को जिस आत्मीय भाव से पढाते थे तथा उनके सुख दुख का ध्यान रखते थे सहज ही गुरु एवं शिष्यो के बीच पारिवारिक वातावरण का सृजन हो उठता था। छात्रो के स्वास्थ्य एव अध्ययन के प्रति निरन्तर सावधानी एव प्रेरणा के कारण यहा के विद्यार्थी अच्छी श्रेणी मे उत्तीर्ण होते थे। वे स्वय प्रात 4 बजे उठते थे तथा विद्यार्थियो को भी 4 बजे जगा देते थे जो पिछले दिन पढाये गये पाठो का अभ्यास करते थे। आदरणीय पण्डितजी का एक भी क्षण व्यर्थ नहीं जाता था। प्रात उठते ही वे स्तोत्रो का पाठ प्रारम्भ कर देते थे। विद्यार्थी प्राय उनके स्तोत्र पाठ को सुनकर ही जाग जाते थे। झालर आदि बजाने की औपचारिकता तब भी पूर्ण की जाती थी। छात्र अपने विषय मे पारगत हो यह उत्कट भावना उन्हे सदैव सजग बनाये रखती थी।

उनके छात्र समुदाय मे पण्डित विषय की सूक्ष्म विवेचना की सहज प्रतिभा जागृत हो जाती थी।

छात्रो के प्रति पितृवत् व्यवहार, उनके सुख दुख मे सहज सहानुभूति परक रुख तथा वर्जनाओ से मुक्त वातावरण मे विद्यार्थी सदैव अपनेपन से अभिभूत होकर अध्ययन के प्रति रुचि प्रदर्शित करता था। छात्रो की सुविधा के लिए सदैव तत्परता से आगे आने मे उन्हे संकोच नहीं था। पुत्रवत् प्रेम की यह गरिमामय मूक भाषा उनके मुख पर सदैव विकीर्ण रहती थी। छात्रो के मनोविज्ञान के वे गहरे जानकार थे। समय–समय पर उनके लिए मौसमी फलो की व्यवस्था वे सदैव श्री हीरालालजी पुजारी सतवारा वालो के माध्यम से करते थे। एक निश्चित अन्तराल के बाद विद्यार्थियो को पक्का भोजन दिया जाता था जो बड़ा ही रुचिकर हुआ करता था। श्री हीरालालजी पुजारी हलुआ बनाने मे दक्ष थे। सुस्वादु हलुवा पक्के भोजन का अभिन्न अग रहता था। आदरणीय पण्डितजी का ध्येय नौकरी करना नहीं अपितु ज्ञान के प्रसार की उनकी उत्कट आकाक्षा थी, जो उन्हे द्रोण प्रान्त के प्रतिष्ठित एव श्रद्धेय जनो की श्रेणी मे खड़ा करने मे समर्थ हुई। शिक्षा सस्थाओ को सभालने एव शिक्षा के प्रसार–प्रचार का उनका तरीका निश्चित रूप से बड़ा ही अनूठा था। अनुशासन को बनाये रखना पढ़ाई मे न ढ़ील देना तथा छात्र असतोष को न पनपने देना जैसी कई विशेषताये आदरणीय पण्डितजी मे थीं, जिसके कारण संस्था तीव्रगति से ख्याति प्राप्त कर लेती थी। श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला द्रोणगिरि के प्रधानाध्यापक का पद सभालने के एक वर्ष के भीतर ही उन्होने सस्था के अधिकारियो को विस्मयजनक प्रगति से अभिभूत कर दिया था। स्व सिंघई कुन्दनलालजी तो इतने प्रसन्न हुए कि उन्होने सस्था को 5 हजार रुपए के दान की घोषणा की थी। एक वर्ष के अन्दर ही सस्था को जीवन्त सस्था का रूप देकर पण्डितजी ने अपनी प्रशासनिक क्षमता का परिचय दिया था। इन्हीं सब कारणो से सस्था को सहज ही खर्च चलाने के लिए राशि प्राप्त होती रहती थी।

द्रोण प्रान्त एव आस पास रहने वाली जैन समाज आदरणीय पण्डितजी की सदैव ऋणी बनी रहेगी, क्योकि उनके त्याग एव समर्पण तथा सामाजिक न्याय की धारणा के प्रति लोगो के दिल मे अटूट श्रद्धा थी, अब भी है। समाज के लिए पण्डितजी का अवदान कितना मूल्यवान् था इसका आकलन आज सहज नहीं है। द्रोणगिरि उस प्रान्त की समाज के विवादो को निपटाने के लिए चबूतरे अर्थात् केन्द्र के रूप मे विख्यात था। तथा ऐसे विवादो को निपटाने का अहम् भार पण्डितजी पर ही रहता था। वे गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला के तो प्राण थे ही समाज सुधार के क्षेत्र मे भी नेतृत्व प्रदान करते थे। रूढियो एव समाज विरोधी परम्पराओ को ध्वस्त करने में भी उन्होने योगदान किया था। त्यागमयी वृत्ति के धनी पण्डितजी दिखावा से दूर रहकर नेतृत्व प्रदान कर महानायक के रूप मे भले ही सामने न आये हो पर उनका इस क्षेत्र मे किया गया महनीय योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा। आज ऐसा कोई व्यक्तित्व नहीं जो इस क्षेत्र की भावनाओ के साथ एकात्म भाव स्थापित कर विकास मे सहायक हो। उनके सुयोग्य पुत्र कमलकुमारजी आंशिक रूप से इसकी पूर्ति करे ऐसी हमारी भावना है। उनका ही एक विनम्र शिष्य उनके चरणो मे श्रद्धा सुमन समर्पित करता हुआ उनके हृदय मे घनीभूत क्षेत्र के विकास की कल्पना को साकार करने की मनो–कामना व्यक्त करता है।

● छतरपुर (म प्र)

□□□

शत-शत वन्दन

— बाबूलाल जैन शास्त्री

पूज्य गुरुदेव पण्डित ब्र. गोरेलालजी शास्त्री के देहावसान को करीब 7 वर्ष व्यतीत हो रहे है लेकिन ऐसा लग रहा है मानो अभी कल ही की बात हो, जब द्रोणगिरि के उदासीन आश्रम मे प्रवेश करते हैं तो आश्रम का हृदय मौनवाणी में हाहाकार कर रहा प्रतीत होता है। आज यहां ऐसी अनुभूति हो रही है मानों करुणा से भरी शून्यता की वाणी इसमे उठ रही हो। अपना सर्वस्व गमा देने वाला व्यक्ति जिसप्रकार की मर्म बोधिनी दृष्टि से देखता है उसीप्रकार नहीं समझ मे आने वाली मूक करुण कथा जिस शून्य में उठकर इस आश्रम को करुणतम बना रही है। पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के सम्बन्ध मे संस्मरण लिखूँ और कैसे लिखूँ उनका स्मरण आते ही आखे छलछला आतीं हैं, कलम रुक जाती है। मै जानता हूँ कि मेरी अल्पज्ञता है पर उनकी वाणी मेरे हृदय मे स्थित है, उनके साथ जीवन के जो क्षण व्यतीत किए उसकी कोई बात मैंनें खोई नहीं, कोई बात विस्मृत नहीं की है।

गुरुजी के व्यक्तित्व को शब्दो के चौखटे मे आबद्ध नहीं किया जा सकता। उनकी साधारण वेश–भूषा, धोती, बनियान, दुपट्टा से वेष्टित कचन– काया, ऊँचा कद, गेहुआ रग, दमकती हुईं आंखे, मधुर मुस्कान से दमदमाता हुआ मुखमण्डल, चमकता हुआ चेहरा, उनका गम्भीर दार्शनिक एव धार्मिक प्रवृत्ति का द्योतक था।

श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री को श्रद्धावश जनता पण्डितजी कहा करती थी। यह शब्द उनके नाम का पर्याय बन गया था। उनके व्यक्तित्व से विद्या की सुगध उड़ा करती थी। वे सच्चे अर्थों मे गुरु थे। इसलिए सभी श्रद्धा से उन्हे पण्डितजी शब्द से सम्बोधित करते थे। जो कोई भी उनके निकट सम्पर्क मे आता था वह उनके पाण्डित्य से अत्यधिक अभिभूत हो श्रद्धावनत हो जाता था।

बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध डाकू मूरतसिह, पूजा बब्बा, चालीराजा आदि को पण्डितजी पर अटूट श्रद्धा थी। इसी कारण पण्डितजी के उपदेशो से प्रभावित होकर आत्म समर्पण भी किया था। आपमे चुम्बकीय आकर्षण था, लोगो को अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे, सबके श्रद्धा के पात्र हो जाते थे। पण्डितजी विलक्षण पुरुष थे, परिचय के प्रथम क्षण मे ही वे किसी के सम्माननीय बन जाते थे। वस्तुत उनके व्यक्तित्व के इस चुम्बकीय आकर्षण के पीछे उनकी गरिमा, उनका बड़प्पन था। विशाल वटवृक्ष जितना आकाश मे फैला हुआ दिखाई पड़ता है, उतना ही वह जमीन मे भी दृढता से गढा और फैला हुआ रहता है अन्यथा सन्तुलन के अभाव मे वह टिका नहीं रह पाता। पण्डितजी के साथ भी यही बात थी। उनकी लोकप्रियता की जडे विद्या, सयम एव गरिमा की जमीन मे जमी हुईं थीं। विद्यालय के सभी छात्र अनुशासित थे। पण्डितजी अकेले ही विद्यालय के छात्रो को अनुशासन मे रखते थे। गुरुदत्तादि मुनिवरो की साधना एवं निर्वाण भूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि, श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन विद्यालय एव गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम इन तीनो सस्थाओ को पण्डितजी ने बडी ही सफलता के साथ सचालित किया।

आपकी अध्यापन शैली इतनी सरल, सुबोध थी कि छात्रो को आपने जो पढा दिया वह स्थायी हो गया, यही कारण है कि मुझ जैसे जडबुद्धि छात्र को भी उन्होने "लघु सिद्धान्त कौमुदी" जैसे व्याकरण ग्रन्थ

को पढा दिया। प्रात काल से लेकर रात्रि के 10 बजे तक वे सरस्वती की साधना मे लीन रहते थे। उनका सारा समय अध्ययन अध्यापन मे ही व्यतीत होता था।

शिक्षा के क्षेत्र मे कार्यरत होते हुए भी इस क्षेत्र की सामाजिक समस्याओ का निराकरण आपके द्वारा होता रहा। समाज मे व्याप्त कुरीतियो, बालवृद्ध विवाह, मरण–भोज, दाजनी प्रथा, दहेज आदि के निवारणार्थ आपने सघर्ष भी किया था।

जो भी छात्र आपके सम्पर्क मे आया आपके प्रति श्रद्धावान् हो गया तथा पण्डितजी के उपकारो को वह कभी नहीं भुला सका। प्रत्येक छात्र से आपका विशेष स्नेह रहता था। वे छात्रो की देखरेख उनकी प्रगति एव बाधा को देख कर करते थे। उसकी गरीब परिस्थितियो मे अपने परिवार का ध्यान न रखते हुए भी उस गरीब छात्र का सहयोग करते थे। उन्हीं की कृपा से मैं उच्च शिक्षा प्राप्त कर आज इस योग्य बन सका। उनके उपकारो को मै कभी भी नहीं भुला सकता हूँ। मेरे गुरु नि सन्देह छात्रो के लिए कल्पवृक्ष थे।

गुरुदेव ने "गेही पे गृह मे न रचे ज्यो जलतै भिन्न कमल है" उक्ति के अनुसार गृहस्थावस्था का निर्वाह किया। गृहस्थी के बीच मे रहते हुए युवावस्था मे ही उदासीन, निस्पृहवृत्ति से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। भरपूर गृहस्थी एव परिवार से निर्मोही होकर सयम को धारण करते हुए उदासीन आश्रम द्रोणगिरि मे साधना करते हुए अन्त मे सावधान की स्थिति मे सल्लेखनापूर्वक पचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुए इस भौतिक शरीर को छोडा। ऐसे गुरु के चरणो मे शत–शत वन्दन, शत–शत वन्दन।

• सेवा निवृत्त शिक्षक
शास्त्री सदन, बड़ामलहरा,

□□□

शलाका पुरुष

– डॉ भवानीदीन

बुन्देल भूमि ऋषियो की तपोभूमि रही है। अमरकटक के कपिल, ग्वालियर के गालब, पन्ना के दधीचि, चित्रकूट के अज्ञेय गौतम, भगवान् दत्तात्रेय एव जबलपुर के जाबालि की जहा जन्मभूमि के रूप मे यह धरा लोक विश्रुत है, वहीं बुन्देल भूभाग के छतरपुर जनपद मे अवस्थित द्रोण भूमि तीर्थराज के रूप मे विख्यात है। इस पावन धाम को प्राकृतिक वैभव एव श्यामरी जैसी पुण्य सलिला का सलिल जहा द्रोणगिरि के चरण पखारता है वहीं इस सिद्धक्षेत्र को वन्दनीय वर्णीजी, क्षुल्लक चिदानन्दजी जैसे सन्तो का प्रेरणा स्थल होने का गौरव भी प्राप्त हुआ है यह द्रोणभूमि गुरुदत्तादि मुनिराजो की निर्वाण भूमि तो है ही।

प्रकृति के सुरम्य परिधानो से सजे, सवरे एव सुथरे इस सिद्धक्षेत्र मे 28 जिनालय है। प्राकृतिक सुषमा की धनी इस धरा को मुनिराजो के मुक्ति धाम होने के कारण प्रणम्य वर्णीजी ने लघु सम्मेद शिखर के नाम से अभिहित किया था। द्रोणगिरि के खण्ड काव्य मे इसका कुछ उल्लेख इसप्रकार है,–

इसके चरण पखार रही है सरिता काठिन,
और चन्द्रभागा चमकीला जिसका आनन।
वर्णीजी का लघु सम्मेद शिखर यह अपना,
मुक्ति मत्र साकार स्वय करता है सपना।।

द्रोणगिरि की इस पुण्य भूमि मे श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का जन्म हुआ। पूज्य वर्णीजी की

प्रेरणा से ही 1928 मे श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला की स्थापना हुई। पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के अन्तस् मे बचपन से ही अपने क्षेत्र के उन्नयन का अनुराग था, जिसे उन्होनें जैन पाठशाला मे अपनी शैक्षिक सेवाओ को देनें के साथ शुरु किया।

समाजोत्थान के अग्रदूत

बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रो को पिछडने के मूल मे वहा प्रमुख कारण शिक्षा का अभाव रहा है। कुशिक्षा की कोख से कुरीतियो का जन्म होता है, परिणामस्वरूप बुन्देल भूमि बाल विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय एव मृत्यु भोज जैसी अनेक मूढ मान्यताओ के मकड़जाल मे फसी हुई थी। प गोरेलालजी शास्त्री समाज की इस व्यथा से व्यथित रहते थे। शास्त्रीजी अपनी समाज साधना के मिशन मे पूरे मनोयोग से जुट गये। उन्होने लोकसेवा का अहर्निश दौर शुरु किया। शास्त्रीजी ने द्रोणगिरि के परिक्षेत्र के परिव्राजक बन गाव–गाव का सघन भ्रमण किया। पण्डितजी बाल विवाह के घोर विरोधी थे। वे 9 वर्ष की बालिका के विवाह से इतने व्यथित एव क्रोधित हुए कि इस अन्याय के विरोध मे 60–70 छन्दो का एक गीत काव्य ही लिख डाला।

समाज की समस्याओ के निराकरण मे जैन समाज का महती योगदान रहा है। पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के सामाजिक लगाव ने उन्हे समाज के अग्रदूत के रूप मे जनश्रुत कर दिया था। शास्त्रीजी को हर जगह पचायत मे बुलाया जाता था। वे समस्या के समाधान को गभीरता से लेते थे। उनका निर्णय निष्पक्ष रहता था।

पाण्डित्य पुरोधा

पण्डित गोरेलालजी शास्त्री विद्यावारिधी थे। जैनागम के अनुशीलन मे उनका कोई सानी नहीं था। शास्त्रीजी ने राजवार्तिक , प्रवचनसार, समयसार, पचास्तिकाय जैसे महनीय जैन ग्रन्थो का गहन अध्ययन किया था। स्वाध्याय पण्डितजी की दिनचर्या का एक प्रमुख अग था। उन्होने जिनवाणी के जिज्ञासुओ के लिए आवश्यक जमीन तैयार की। उनका साहित्य शिल्प उत्कृष्ट कोटि का था। अत यदि उन्हे पाण्डित्य पुरोधा कहा जाय तो इसमे कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

निस्पृह व्यक्तित्व

पण्डित गोरेलालजी शास्त्री मे सहज भाव से आकृष्ट करने की अद्भुत क्षमता थी। उनका विवक्षित जीवन दूसरो के लिए सदैव प्रेरणास्पद रहा। शास्त्रीजी का जीवन बहुत ही सरल एव सादा था। अहकार से उनके व्यक्तित्व का दूर–दूर तक रिश्ता नहीं था। उनकी कथनी करनी मे सदव समन्वय रहता था। उनकी वाणी से हमेशा नम्रता टपकती थी। वे जीवन मे जितने सीधे सादे थे, उतने ही वाणी मे सरल थे। सौम्यता, सरलता एव सादगी उनके जीवन की आचरण निधि थी।

पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के चार दशको के योगदान से द्रोणगिरि विद्यालय के विकास को नया आयाम मिला है। द्रोण शैल के परिक्षेत्र के विकास मे पण्डितजी की अहम् भूमिका रही है।

साहित्य शिल्प

पण्डित गोरेलालजी शास्त्री साहित्य सर्जना, आशु–प्रतिभा परायण थे। अध्यापन काल मे शास्त्रीजी की आशु रचनाओ ने छात्रो के बीच उन्हे एक पहचान प्रदान की। पण्डित गोरेलालजी शास्त्री ने तीर्थराज मे पधारे तीर्थ यात्रियो के स्वागत सम्मान मे स्वागत गीतो की रचना कर उनसे विद्यालय विकास हेतु यथेष्ट सहयोग प्राप्त करने मे सदैव सफलता प्राप्त की। इससे उनकी रचना– धर्मिता के रचनात्मक रुझान का

परिचय भी मिलता है। पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का साहित्य शिल्प उत्तम कोटि का रहा है। द्रोणगिरि पूजन, बारह भावना, जैन गारी सग्रह, भक्ति पीयूष एव सुमन सचय उनकी उत्कृष्ट कृतिया हैं।

क्षुल्लक चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ, राम विलास नाममाला एव मार्तण्ड जैसे ग्रन्थो स्मारिकाओ के सफल सम्पादन मे शास्त्रीजी का महान् योगदान रहा है। शास्त्रीजी की कृतियो मे बारह भावना का एक अलग महत्व है।

पण्डित गोरेलालजी शास्त्री की प्रासंगिकता

पण्डित गोरेलालजी शास्त्री एक नाम नहीं अपितु वह शब्द चित्र है, जिसमे साहित्य, समाज, शिक्षा एव अध्यात्म के क्षेत्र मे उनके बहु आयामी योगदान को देखा जा सकता है। शास्त्रीजी इस पुण्य मही के वह ममीरा रहे है, जिसे यहा हर आने वाले आगन्तुक ने अपनी आखो मे आजा है। यहा के कण–कण मे उनका समाजधर्मी आचरण अन्तर्निहित है।

आज के बदलते परिवेश पर दृष्टिपात करने से सहसा यह विश्वास नहीं होता कि क्या यह देश राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी एव गाधीजी का ही है या नहीं? सन्तो एव मुनियो की इस मेदिनी से मंहिरावणी सस्कृति के प्रचार–प्रसार ने आज भारत की विश्व विश्रुत सस्कृति को प्रश्नचिन्हित कर दिया है। तप पूतो एव सपूतो की इस धरा को कषायकल्मष करने के कलुषित प्रयासो ने आज चिन्ता की चादर का जो तनोबा ताना है उसके अन्दर बैठे आज के हर इन्सान के चेहरे पर चिन्ता की नयी रेखाये उभरी हैं, जो भविष्य के लिए शुभ सूचक नहीं है। आज की दिशाहीन पीढी ने महापुरुषो के आदर्शों एव सिद्धान्तो को तिलाजलि दे जिस पाश्चात्य धर्मी आचरण को अपने जीवन मे उतारा है, उससे देश का सिर्फ बेडा गर्क हुआ है, गौरवान्वित नहीं।

आज की इन्द्रधनुषी भौतिकवादी सभ्यता के साये मे जी रही युवा पीढी को मात्र सन्तो एव मुनियो का साहित्य सलिल ही नवोन्मेष प्रदान कर सकता है। सन्तो एव महन्तो की इस बुन्देल मही मे पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का उदारचिन्तन एव लोकधर्मी नया सबल प्रदान कर सकता है। शास्त्रीजी आज भी उतने ही प्रासगिक है, जितने तत्कालीन थे। वे सचमुच द्रोणभूमि के शलाका पुरुष के रूप मे अनुमन्य हैं।

• प्रवक्ता राजनीति विज्ञान
राजकीय महाविद्यालय, चरखारी, महोबा (उ प्र)

□□□

पूज्य वर्णीजी के शिक्षा-मिशन के पुरस्कर्ता पण्डित गोरेलालजी शास्त्री

— रतनचन्द जैन

ऊषा, आशा, स्वाति, सुमति, सेवक, सुषमा, आनन्द, अशोक आदि नामो का लेखा जोखा नगरपालिकाये रखतीं है, परन्तु कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनके जन्म का लेखा जोखा देश, समाज, जाति एव परिवार के इतिहास मे सुरक्षित रहता है। पूज्य पण्डित गोरेलालजी शास्त्री बुन्देलखण्ड के ऐसे ही ऐतिहासिक दिव्य रत्न थे। उन्होनें गुरुदत्तादि मुनियो की निर्वाण भूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि को अपनी कर्मभूमि बनाया और लगातार 40 वर्षों तक इस क्षेत्र की तन–मन–धन से सेवा की। पूज्य पण्डितजी महान् सन्त गणेशप्रसादजी वर्णी के प्रथम शिष्य थे। उन्होने वर्णीजी द्वारा चलाये जा रहे "शिक्षा मिशन" को अपने अथक

परिश्रम और समर्पण भाव से सचालित करते हुए इस पिछडे प्रान्त की एक मात्र सस्था "श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय द्रोणगिरि" मे प्रधानाध्यापक के रूप मे वर्षों कार्य किया। आपके ममतामय व्यवहार, त्यागमय सादे जीवन और सरल मिलनसार स्वभाव के कारण सस्था मे रहने वाले छात्र घर से दूर रहकर भी अपने परिवार जैसा वात्सल्य व स्नेहिल वातावरण और पितृतुल्य आत्मीयता पाकर अनुशासन मे रहकर निर्भीक होकर विद्याध्ययन करते थे।

मै एव मेरे बडे भाई साहब डॉ नरेन्द्र विद्यार्थी (पूर्व विधायक तथा वर्णीजी के अनन्य भक्त) इसी सस्था मे रहकर विद्याध्ययन करते रहे। पण्डितजी का जो पितृतुल्य अगाध स्नेह हम दोनो भाईयो को मिला, वह चिरकाल तक अविस्मरणीय रहेगा। सरस्वती के वरद पुत्र पूज्य पण्डितजी के मार्गदर्शन मे ही हमने अपने सरल साधनामय जीवन मे न्यायपूर्वक धन कमाने की प्रतिज्ञा ली थी। जिसका निर्वाह हम दोनो भाईयो ने आजीवन किया और धर्म का पालन करते हुए अपने गृहस्थ जीवन मे पूर्ण सफलता प्राप्त की। हमे पण्डितजी का यह दोहा हर क्षण याद रहता है –

धरम करत ससार सुख, धरम करत निर्वाण।
धरम पंथ साधे बिना, नर तिर्यञ्च समान।।

वस्तुत मानवीय सृष्टि मे यदि कोई वस्तु स्थायी मूल्य रखती है और मनुष्य के बुझे हुए मन को पुन –पुन उत्साह और आनन्द से भर सकती है तो वह मनुष्य के दैवीय गुण ही है, जो सुन्दर विचार और सुन्दर चरित्र के रूप मे हमारे चारो ओर नित्य नया ताना बाना बुनते रहते है। ज्ञान और चारित्र इन दोनो का मूल ही जीवन की समस्या का सच्चा समाधान है। इन्हीं भावो से भरा स्वरचित भजन पण्डितजी हमे सस्वर सुनाते और अपने दुर्लभ मनुष्य जीवन को सफल बनाने का सदेश देते –

कुछ करो स्वपर कल्याण, मनुष गति पाई।
नरभव का पाना जग मे अति कठिनाई।।

जब कभी हम पण्डितजी से प्रश्न करते कि आपका घर तो द्रोणगिरि ग्राम मे मन्दिर के बिल्कुल पास मे है फिर क्यो आप घर की सारी सुविधाये छोडकर द्रोणगिरि आश्रम मे रहते है। तब पण्डितजी श्री ज्ञानभूषण भट्टारक द्वारा लिखी "तत्त्वज्ञान तरगिणी" का निम्न श्लोक सुनाकर हमारा समाधान करते तथा उसका सार समझाकर अन्त चक्षु खोल देते –

कीर्तिं वा पररजन स्वविषय केचिन्निजजीवित,
सतान च परिग्रहं भयमपि ज्ञानं तथा दर्शनं।
अन्यस्याखिलवरतनो· सगयुतिं तद्धेतुमुद्दिश्य च,
कुर्यु: कर्मविमोहिनो हि सुधियश्चिद्रूपलब्धये पर।।

भावार्थ – इस ससार मे बहुत से मोही पुरुष कीर्ति के लिए काम करते है, अनेक दूसरो को रजायमान करने के लिए, बहुत से इन्द्रियो के विषयो की प्राप्ति के लिए तो कुछ अपने जीवन की रक्षा के लिए, कोई सतान व परिग्रह प्राप्ति के लिए एव कोई भय मिटाने, कोई ज्ञान दर्शन पाने के लिए और कोई रोग मिटाने के लिए काम करते है परन्तु कुछ विरले बुद्धिमान ही ऐसे है, जो शुद्ध चिद्रूप आत्मा की प्राप्ति के लिए उपाय करते है। यह संसारी जीव अहर्निश आरम्भ, परिग्रह मे दत्तचित्त होकर संचयवृत्ति के कारण

अगाध दुखो को एव अशुभ कर्मो को भोगता है।

बचपन के मेरे गुरु प्रात स्मरणीय शास्त्रीजी उन अविवेकी विषय के कपास मे लवलीन मिथ्यादृष्टि जीवो को समझाते हुए कहते हैं कि हे प्राणी जीवन अमूल्य है, अत एक भी क्षण व्यर्थ न गॅवाओ। अपने वीतराग प्रभु की भक्ति मे पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय करो –

जो इन कर्मो का बन्धन तोडना होवे,
तो लाला पडा क्यो समय व्यर्थ ही खोवे।
शुभ कर्तव्यो से कर्म कालिमा धोवे,
तो समय प्राप्त कर मुक्ति रमा को जोवे।।
जिन किया यत्न, उन दिये कर्म सब मारे।
जिन भक्ति करो, निज दिये करम सब जारे।।

और वे जब से घर छोडकर आश्रम मे रहने लगे तभी से यह प्रार्थना प्रभु के सामने तन्मय होकर करते –

इतना तो नाथ कीजे, जब पाऊँ देह तजकर।
हो भावना हमारी, अति शाति रूप रुचिकर।।
अति शाति रूप मूरति, हो सामने तुम्हारी।
दिल भरके देख लू मै, उसमे निमग्न होकर।।
होवे समीप मेरे, यतिगण सुबोध दाता।
विचलित न ध्यान होवे, निज आत्म बोध पाकर।।

मेरे लिए यह हार्दिक प्रसन्नता की बात है कि मेरे पूज्य गुरुदेव की अन्तिम इच्छा पूरी हुई और उनका सराहनीय समाधिमरण सम्पन्न हुआ।

• श्री महावीर मोटर ट्रान्सपोर्ट कम्पनी
कानपुर (उ प्र)

□□□

मूक सेवक : पण्डित गोरेलालजी शास्त्री

– *बाबूलाल 'आकुल'*

द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर 1008 श्री पचकल्याणक प्रतिष्ठा गजरथ महोत्सव, जो सन् 1955 मे आयोजित हुआ था, मे दानवीर श्री बालचन्दजी मलैया सागर अध्यक्ष और मैं मत्री रहा। जैन भ्रातृ सघ की शाखाए जहा तहा स्थापित करने के सिलसिले मे श्री प गोरेलालजी शास्त्री से सम्पर्क तो मेरा पहिले से ही था, परन्तु पचकल्याणक गजरथ महोत्सव के माध्यम से उनसे मेरा निकट सम्पर्क बना। उन्हे पहिचानने, समझने के अवसर मुझे तभी मिले।

वे रहन सहन मे सीधे सादे, भोले एव भद्रपरिणामी थे। ज्यादा बहस करने की उनकी आदत नहीं थी। कई मौको पर जहॉ हम लोग विपरीत विचार वालो को तर्क–वितर्क से समझा नहीं पाते पण्डितजी

अपनी सरल–सरस भाषा मे उन्हे सहज ही अपने अनुकूल बना लेते थे। 1955 के पचकल्याणक मे जापान के प्रोफेसर नाकामुरा और कलकत्ता के डॉ कालीदास नाग को बुलाने का प्रस्ताव अध्यक्ष महोदय का था। इस प्रस्ताव पर बहुत मतभेद था। अध्यक्ष महोदय से प्रत्यक्ष किसी का कहने का साहस नहीं था। पण्डितजी को साथ लेकर अध्यक्षजी से सदस्यो ने इन विद्वानो पर समारोह समिति के मतभेद की बात कही। श्री मलैयाजी ने प्रोफेसर और डॉ साहब के जैनत्व पर गहरे अध्ययन की बात करते हुए बताया कि ऐसे विद्वानो द्वारा जो भी जैनत्व का विवेचन होगा वह प्रभावना की दृष्टि से हमारे आयोजन के लिए एक स्वर्ण कलश सिद्ध होगा। पण्डितजी समझ गये , बाद मे मुझे भी समझाया। इसप्रकार मैने देखा कि इस विद्वान् मे नवीनता को ग्रहण करने एव सामञ्जस्य बनाने की कैसी विलक्षण प्रतिभा है।

द्रोण क्षेत्र मे पण्डितजी का अप्रतिम प्रभाव था। जहा–जहा हम लोग दान राशिया प्राप्त करने जाते। हमारी इच्छानुसार कोई देता नहीं था। पण्डितजी ऐसी मध्यस्थता करते कि दाता भी मान जाता और हम भी सन्तुष्ट हो जाते । दोनो आयोजनों मे समस्त भारत से लाख से ऊपर समागत साधर्मी समाज के आवास हेतु आगरा आदि से डेरे तम्बू मॅगवाना पडते थे। उन्हे खडा करने के लिए समतल और निकटस्थ मैदान चाहिए। पानी पास हो, मण्डप पास हो। ऐसे स्थान किसानो की खडी फसल के खेत ही थे। इन्हे तय करने मे पण्डितजी का प्रभाव तथा उस क्षेत्र मे उनकी सबसे आत्मीयता बडे काम आती रही।

सन् 1955 के मेले के समय की बात है। सागर से श्री मलैयाजी का ट्रक महोत्सव के लिए कुछ भारी बजनी सामान लेकर मलहरा से द्रोणगिरि जा रहा था। सडक कच्ची थी आगे एक बैलगाडी मे पत्थर की फर्शी लिए एक युवक गाडी हाक रहा था। ट्रक चालक ने हाक लगाई "ये लडके गाडी बाजू कर" लडके का जबाब था "तू अपना ट्रक बाजू से ले जा" तू तू मे मे हो गई ट्रक चालक ने उतर कर लडके को एक चाटा मार दिया तभी द्रोणगिरि के ही दो तीन आदमी मौके पर आ गए। मै ट्रक मे था मुझे बताया यह तो अनर्थ हो गया। वह लडका मूरतसिह के परिवार का है। अब हो लिया आपका पचकल्याणक। उन्हीं लोगो ने ट्रक को बाजू करके निकलवाया। युवक का गुस्सा कुछ ठडा किया। मैं बहुत चिंतित हो गया क्योकि मूरतसिह उस समय दुर्दान्त डाकुओ मे एक थे। यद्यपि वे द्रोणगिरि के ही निवासी थे। मैने आकर पण्डितजी को सब हाल सुनाया। वे चिंतित हुए। विचार किया कि खुद चलकर मूरतसिह से मिले। पण्डितजी के साथ मै जहा मूरतसिह मिल सकते थे, गये। लडके ने हम लोगो के पहुचने के पहिले ही घटना बढा चढाकर सुना ही दी थी। पण्डितजी ने राजा साहिब को अभिवादन किया, मैने भी प्रणाम किया। राजा साहिब ने अत्यन्त विनय से पण्डितजी की अगवानी की, आदर से बैठाकर कहा, मुझे सब मालूम है। ट्रक चालक ने जो किया अन्जानें मे किया। आप लोग अपना काम प्रसन्न्ता से करो लड़के को हम डाट देगे। किसी को कोई तकलीफ नहीं होगी। पण्डितजी की भद्रता, नम्रता और प्रभावशीलता से यह समस्या सहज ही सुलझ गई। खूखार डाकू पर पण्डितजी का प्रभाव होने के कारण उस समय उन्होने पूर्ण सुरक्षा की यहा तक कि उस समय किसी मन चले चोरो ने समय का लाभ उठाते हुए किसी यात्री को लूट लिया इसकी जानकारी जब मूरतसिह को मिली तो उन्होने उन चोरो से यथास्थान लूट का सारा सामान तो वापिस कराया ही उन चोरो का भी अस्तित्व समाप्त कर दिया।

द्रोण प्रान्त मे न रेल मार्ग, न कोई भारी उद्योग और न कोई उच्च शिक्षा के साधन रहे। स्थानीय

दुकानदारी और बन्जी ही गुजर बसर का एकमात्र साधन था। शिक्षा के प्रति समाज का रुझान कम था। उस समय पण्डित गोरेलालजी ने पूज्य वर्णीजी द्वारा स्थापित विद्यालय को सचालित कर शिक्षा प्रसार का महान् कार्य किया। द्रोण प्रान्तीय समाज, द्रोण प्रान्तीय सेवा परिषद् के माध्यम से जन जागरण का कार्य किया। परिषद् की स्थापना मे पण्डितजी की अहम् भूमिका थी। बुन्देलखण्ड (द्रोणप्रान्त) मे शिक्षा के केन्द्र द्रोणगिरि विद्यालय के माध्यम से जो लाभ समाज को मिला आज उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वान्, कार्यकर्ता और प्रगतिशील समाज पण्डितजी की ही देन है।

मुझे अनेक बार पण्डितजी के प्रवचन सुनने के अवसर मिले, अध्ययन गहरा था। प्रवचन सरल–सरस और मार्मिक होते थे। सबसे बडी एक बात थी कि वे ज्ञानी के साथ चारित्रधारी भी थे इससे जो कहते थे वह स्वय आचरण मे भी होने के कारण उनके प्रवचन का प्रभाव समाज पर पड़ता था। ज्ञान और चारित्र के धनी होने पर भी किसी प्रकार हठाग्रह नहीं था, अभिमान नहीं था। सादा शुद्ध भोजन, सामायिक, व्रत–नियम, भक्ति, स्वाध्याय सभी मे उन्हे सहज रुचि थी।

ऐसे यशस्वी विद्वान् के प्रति मेरा बारम्बार नमस्कार।

● *शिक्षक कॉलोनी*
दुर्ग (म प्र)

□□□

पण्डित श्री गोरेलाल शास्त्री : सादा एवं समर्पित व्यक्तित्व

— राजकुमार जैनदर्शनाचार्य

बुन्देलखण्ड यशस्वी त्यागियो व विद्वानो का जनक रहा है। जहा इस भूमि पर बड़े वर्णीजी जैसे त्यागी एव समाज सुधारक हुए है वहीं प हीरालालजी, प पन्नालालजी आदि यशस्वी विद्वान् भी हुए हैं। इसी कडी मे द्रोणगिरि के पण्डित गोरेलालजी शास्त्री बहुप्रतिभा सम्पन्न, सादा जीवन, समर्पित भावना, निस्वार्थ सेवा से युक्त व्यक्तित्व के धनी थे।

पण्डितजी के द्वारा जहा ज्ञानदान जीवन पर्यन्त किया गया वहीं उन्होने अपनी भूमि दान करके धर्मशाला आदि के निर्माण मे सहयोग किया। वे जीवन पर्यन्त क्षेत्र के विकास हेतु श्रमदान एव मार्ग निर्देशन करते रहे।

पण्डितजी को मैने बाल्यकाल मे ही विशेषरूप से देखा है। किशोर होने पर मै जयपुर आ गया और नजदीकी परिचय नहीं बन सका तथा युवा होने तक उनका वियोग हो गया। अत सीधे उनसे विशेष उपलब्धि तो नहीं हो सकी परन्तु बचपन मे ही उनका सादगी से भरा हुआ जीवन (हमेशा ही धोती का आधा हिस्सा एव बनियान, सामान्य सी चप्पल) देखा। मुझे जबसे याद है लगभग 1975 से उन्हे उदासीन आश्रम मे ही देखा है जबकि उनका भरा पूरा परिवार गाव मे ही रहता था यह उनकी उदासीनवृत्ति का ही परिचायक है। वह प्रतिदिन ही सायकाल आश्रम से गाव के जिनमिन्दर के दर्शनार्थ आते, धर्मशाला/पाठशाला का निरीक्षण करते एव उचित मार्गदर्शन भी देकर जाते।

मै और उनका पोता महेन्द्रकुमार (जो मेरा अभिन्न मित्र है) कभी घूमते–घूमते आश्रम पहुचते तो

पण्डितजी कभी भक्तामर, कभी बाल बोध भाग आदि पढने--याद करने की प्रेरणा देते। उन्होने हमे लगभग 12 वर्ष की उम्र मे ही ब्र नित्यानन्दजी के साथ पपौरा शिविर मे भेजा जहा आदरणीय बाबूभाई एव डॉ भारिल्ल जैसे विद्वानो का परिचय प्राप्त हुआ। वहा का सस्कार ही मुझे सन् 1982 मे पण्डित टोडरमल स्मारक भवन आने मे सहायक हुआ।

पण्डितजी सदा अपने सस्कारो से बधे रहे। सन् 1982 मे ही आपके पोते महेन्द्रकुमार को रूस जाकर इन्जीनियरिंग के अध्ययन करने का सुयोग प्राप्त हुआ एव स्वय की इच्छा एव परिवार के सहयोग से वह वॅहा अध्ययनार्थ गया भी। परन्तु पण्डितजी ने इस बात का विरोध किया, क्योंकि वहा जाकर अपने सस्कारो से वचित होना पडता।

इस तरह पण्डित गोरेलालजी द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र के अविस्मरणीय व्यक्तित्व है। जिनके ज्ञान दान, श्रम दान एव निर्देशन के लिये क्षेत्र एव उनके अनेकानेक शिष्य सदैव ही ऋणी रहेगे।

• 232, हिरणकगरी सेक्टर--1
उदयपुर

❑❑❑

द्रोणगिरि विद्यालय के सफल साधक

– कुन्दनलाल जैन

बीसवीं सदी के मध्य भाग मे जैन समाज को एक ऐसा प्रतिभाशाली, ओजस्वी एव दैदीप्यमान प्रखरज्योति स्वरूप सूर्य मिला था जिसने बुन्देलखण्ड के अज्ञानान्धकार से ग्रसित, रूढिवादी व पिछडे जैन समाज को ज्ञान की ज्योति से चकाचौध कर डाला था। वे भटके हुए जैन समाज को प्रकाश स्तम्भ (Light House) सिद्ध हुए। आज हम इक्कीसवीं सदी को छूने वाले है, ज्ञान की गरिमा से विभूषित विद्वज्जन जैनी जिनके प्रति श्रद्धा से विनयावनत है वे थे पूज्यपाद गणेशप्रसादजी वर्णी।

सेधपा मे प्रान्त के लोगो ने पूज्यपाद वर्णीजी से द्रोणगिरि मे पाठशाला की स्थापना की प्रार्थना की तो वर्णीजी को बात जॅच गई पर वहा कोई धनिक वर्ग न था जो विद्यालय को अर्थ की व्यवस्था करता, पर पूज्य वर्णीजी का सद्भाव हर कार्य को सरल बना देता था तभी घुवारा मे जल विहार था। पूज्य वर्णीजी की अपील पर कुछ चदा हुआ। इस तरह वैशाखवदी सप्तमी स 1985 (सन् 1928 ई) मे द्रोणगिरि मे पाठशाला की स्थापना हुई और पण्डित गोरेलालजी शास्त्री को यहा अध्यापक नियुक्त कर दिया। स्व पण्डितजी के अथक परिश्रम और निस्वार्थ सेवा से पाठशाला तेजी से प्रगति पथ पर दौडने लगी जहा स्थापना के समय 5 ही विद्यार्थी थे वहा साल भर मे ही 20 विद्यार्थी हो गये। आर्थिक समस्या भी धीरे--धीरे हल हो गई। स्व सिघई कुन्दनलालजी सागर पूज्य वर्णीजी के परम भक्त थे उनका सकेत पाते ही हजारो रुपया दान कर दिया करते थे। पूज्य वर्णीजी की कृपा से जो ज्ञान कल्पतरु अवतरित हुए थे वे समय के साथ खूब फले फूले और उन्नति के शिखर पर पहुचे पर काल दोष के कारण सभी की दशा क्षीण सी हो रही है।

मै सन् 1942--45 मे सागर विद्यालय का विद्यार्थी था द्रोणगिरि पाठशाला से प्रतिवर्ष कई छात्र सागर विद्यालय मे दाखिल होते थे, उनसे स्व पण्डितजी की गौरव गाथाये सुनकर मन बडा आल्हादित होता था, उनकी उदारता, छात्रप्रेम, अनुशासन प्रियता तथा विद्यालय की निस्वार्थ सेवा आज भी मस्तिष्क के किसी कोने मे विद्यमान है। ऐसे सफल, सच्चे साधक के प्रति विनयॉजलि प्रस्तुत करते हुए मै गौररवान्वित हो रहा हू। उनकी यशोगाथा दिग्दिगन्त में व्याप्त हो, ऐसी कामना है।

• पूर्व प्राचार्य
केन्द्रीय विद्यालय नई दिल्ली

मेरे प्रथम गुरु : पं. गोरेलालजी शास्त्री

— सिघई जवाहरलाल, जैन

सम्वत् 1985 द्रोणगिरि मे वार्षिक मेला पर जल विहार आम के पेड के नीचे हो रहा था उस समय पूज्य वर्णीजी एव श्रीमान् सिघई कुन्दनलालजी सागर आदि तथा सकल समाज उपस्थित थी। उस समय उपस्थित समाज से वर्णीजी ने कहा कि भैया यहा पर पाठशाला हो जाए तो बहुत अच्छा होगा। क्षेत्र के लडके धर्म का अध्ययन करेगे, धर्म का भी प्रचार होगा। तथा वे अपने को समझकर सन्मार्ग मे लगेगे जिससे उनका भी कल्याण होगा।

यह बात सकल समाज को जच गई तत्काल कुछ चन्दा लिखा गया, वहीं पर श्री पण्डित गोरेलालजी बैठे थे, उन्हीं को अध्यापक चुन लिया गया, उसी समय मुहूर्त सुध गया ओर दूसरे दिन ही उद्घाटन का निश्चय हो गया। वहीं पर हम व बाबूलाल मोदी बैठे थे। हमारे पिताजी ने व मोदी के पिताजी ने पढने की स्वीकृति दे दी।

प्रात से ही उद्घाटन की तैयारी हुई, शुभबेला मे उद्घाटन हुआ। उस समय हम दोनो वहीं पर थे। वर्णीजी ने हम दोनो को पुष्प दिए और कहा कि तुम भी पुष्प छेपो हम दोनो ने पुष्प छेपकर पढने का सकल्प किया।

पूज्य गुरुदेव ने जन हित, समाज हित देखकर अल्प पारिश्रमिक (पन्द्रह रुपए मासिक) पर पढाने की स्वीकृति दे दी, पाठशाला चालू हो गई। प्रान्त से विद्यार्थी आने लगे। एक साल के अन्दर 30–40 विद्यार्थी हो गए। गुरुदेव ने बडे श्रम से पढाया, छात्र प्रतिवर्ष पास होते गए। यहा के पढे छात्र आगे पढने के लिए सागर, बनारस जैसी बड़ी जगह पढने को तैयार होने लगे। पूज्य पण्डितजी सुबह 4 बजे से रात्रि 10 बजे तक पढाने मे ही लीन रहते थे। आपके ही पढाये हुए सैंकडो छात्र राज्य मे, समाज मे सम्मान को प्राप्त कर रहे हैं। आपने इस प्रान्त मे ज्ञान का दीप जलाकर अज्ञान अधकार को दूर किया। पहिले कोई भी तत्त्वार्थसूत्रजी का पाठ करने वाला नहीं था आज आपके अथक परिश्रम से सैकड़ो विद्वान् समाज की सेवा मे समर्पित हैं। मेरे जीवन का निर्माण पूज्य गुरुदेव के द्वारा ही हुआ है। जो भी धार्मिक सस्कार मुझमे है। उसमे पूज्य गुरुदेव का ही महत्वपूर्ण योगदान है। पूज्य गुरुदेव को शत–शत बार नमन।

• ट्रस्टी सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि
- बडामलहरा

□□□

पूज्य पण्डितजी से उपकृत हूँ

— बाबूलाल मोदी

विक्रम सवत् 1985 मे श्री सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि मे पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी ने प्रान्त मे व्याप्त अशिक्षा को मिटाने के उद्देश्य से श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला की स्थापना की और पण्डित गोरेलालजी शास्त्री पाठशाला के प्रथम अध्यापक हुए। प्रवेश लेने वाले छात्रो मे मै भी एक सौभाग्यशाली छात्र था। पूज्य पण्डितजी ने जैनधर्म की शिक्षा से प्रारम्भ किया।

पण्डितजी के पढाने का तरीका अत्यन्त सरल, रोचक था जिसके कारण पण्डितजी द्वारा पढाया जाने वाला विषय आसानी से हमको याद हो जाता था। सभी छात्र भी रुचिपूर्वक पढते थे। वर्णीजी पाठशाला को समय–समय पर देखते रहते थे। पण्डितजी का कार्य अत्यन्त सन्तोषप्रद होने के कारण वर्णीजी को बहुत सन्तोष रहता था।

पण्डितजी विद्यालय का सचालन अच्छे ढंग से करते थे। जैन छात्रो के अलावा ग्राम तथा ग्राम के आस पास के अन्य धर्मावलम्बी छात्र भी जैनधर्म की शिक्षा के साथ ही लौकिक शिक्षा भी ग्रहण करते थे। परीक्षाफल शत प्रतिशत रहता था। हमारे समय विद्यालय प्रगति पर था।

हमारे अध्ययन काल मे परम पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराज ससघ क्षेत्र के दर्शन हेतु आए थे। पूज्य पण्डितजी ने छात्रो के साथ आचार्यश्री का अभिनन्दन किया। आचार्यश्री पण्डितजी की प्रतिभा से प्रभावित थे।

पाठशाला मे अध्ययन के पश्चात् मुझे बहुत समय तक क्षेत्र एव विद्यालय की प्रबन्ध व्यवस्था देखने का सौभाग्य भी मिला। उस समय पण्डितजी का श्रम और समर्पण भाव से कार्य देख लगा कि पण्डितजी ने अपने श्रम कणो से इस क्षेत्र एव विद्यालय को सींचा, सवारा और पल्लवित किया है। वर्तमान मे पुराने जो भी विद्वान् है, उनमे अधिकाशत इस विद्यालय और पूज्य पण्डितजी के शिष्य है। पण्डितजी के कई शिष्य विद्वान् बनकर सामाजिक, सार्वजनिक, राजनेता, साहित्यकार, कवि, उद्योगपति और व्यापारी है। वर्तमान मे मेरे पास जो भी धार्मिक सस्कार है वे सब पण्डितजी की ही देन है। मै पूज्य पण्डितजी के उपकारो से उपकृत हूँ। उनके प्रति नमन।

बडामलहरा, छतरपुर (म प्र)

□□□

जिन्होंनें क्षेत्र का हित ही सर्वोपरि माना

– पन्नालाल जैन

द्रोणगिरि विद्यालय मे पूज्य गुरुवर पण्डित गोरेलालजी शास्त्री के चरण सान्निध्य मे मुझे सन् 1936–37 मे पढने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यद्यपि मै बहुत समय तक अध्ययन नहीं कर सका। एक वर्ष से भी कम समय मे पण्डितजी के सान्निध्य मे रहा और उनसे बालबोध चारो भाग, छहढाला का अध्ययन कर पाया जो मेरे जीवन का सहारा बना।

मैने अपने अध्ययनकाल मे पण्डितजी की कार्यक्षमता देखी। क्षेत्र एव पाठशाला की व्यवस्था हेतु जो अदम्य उत्साह उनमे था वह बाद मे निरन्तर बढता ही गया क्योकि अध्ययन के बाद भी मेरा पण्डितजी से बहुत अधिक सम्बन्ध रहा है।

प्रान्त मे व्याप्त अज्ञान अधकार को दूर करने मे जो कार्य पण्डितजी ने किया वह इतिहास बन गया। क्षेत्र का विकास व सामाजिक सुधार के क्षेत्र मे आज भी पण्डितजी की यशोगाथा गाई जाती है।

पण्डितजी की एक बात मुझे बार–बार स्मरण आती है व्यक्तिगत हित नहीं क्षेत्र के हित की ही बात सर्वोपरि होनी चाहिये। बात उस समय की है जब श्यामरी नदी के पास वाली जगह जहॉ अब चौबीसी

जिनालय बना हुआ है और रेवती की जमीन है, बहुत बडा मैदान पहले सेधपा निवासी श्री मोतीलालजी पाण्डेय का था, उसी मैदान मे प्रतिवर्ष क्षेत्र का वार्षिक मेला लगता था, बिक रही थी। पाण्डेयजी ने जमीन बेचने की चर्चा की, मुझे भी उस चर्चा का आभास हुआ। मै पण्डितजी के पास गया और उनसे निवेदन किया कि सुना है पाण्डेयजी अपनी जमीन जिसमे वार्षिक मेला लगता है बेच रहे है। वह जमीन हम और आप ले ले तो सम्मिलित मे खेती करेगे। पण्डितजी ने बडे ही सहज होकर सरलता से कहा भैया जमीन अपनी अपेक्षा क्षेत्र के लिए ही अधिक उपयोगी है। इस जमीन के ले लेने पर क्षेत्र के विमान के लिए बहुत सुविधा रहेगी। इससे हम वह जमीन क्षेत्र को ही खरीद रहे है और उन्होने वह जमीन व्यक्तिगत न खरीदकर कम कीमत मे क्षेत्र को ही खरीद ली।

इसीप्रकार एक खेती की सुन्दर जगह जो इसी भूमि से लगीं थी और श्यामरी नदी तक जाती है वह भी ठाकुर देवसिह की थी उन्हे पैसा की आवश्यकता थी जिससे वह जमीन भी बिक रही थी ठाकुर साहब ने पण्डितजी से स्वय लेने को कहा लेकिन पण्डितजी ने उस जमीन को न तो किसी को लेने दिया और न स्वय ही लिया। क्षेत्र को उपयोगी होने के कारण क्षेत्र के लिए ही उस जमीन को भी खरीद लिया और जो कीमत वह दूसरो से ले रहे थे पण्डितजी ने उससे भी कम कीमत मे खरीदी। आज उसी भूमि पर कृषि हो रही है। पण्डितजी के ऐसे अनेको कार्य है जो क्षेत्र के हित मे ही किए गये। उन्होने व्यक्तिगत हित कभी नहीं देखा।

पण्डितजी ने सन् 1928 से 1964 तक क्षेत्रीय सेवा मे रहते हुए क्षेत्र का जो विकास अकेले ही किया है वह उल्लेखनीय है। जिस कार्य को बहुत समय तक पण्डितजी ने अकेले रहते हुए किया वही कार्य आज हम देखते है कि बीसो कर्मचारी भी उतनी अच्छी तरह से नही कर पा रहे है।

पण्डितजी कठोर अनुशासनप्रिय थे। उनके समय मे छात्रो ने जिस अनुशासन मे रहकर शिक्षा प्राप्त की है, सदाचरण की शिक्षा ग्रहण की है वही आज उनके जीवन का आधार बना है। हम जैसे छात्र तो आज भी उनकी शिक्षा से, उनके आचरण से, उनके अनुशासन के बल पर ही अपना सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। पण्डितजी ने जब क्षेत्र और विद्यालय से कार्य छोडा तो मात्र नियमित रहकर कार्य न करने का ही छोडा। उदासीनाश्रम मे रहते हुए क्षेत्र के विकास मे अपना योगदान एव समाज को मार्गदर्शन देते रहे। उदासीन आश्रम के विकास मे उनकी भागीदारी तो स्वाभाविक ही रही थी।

आज हमारे सामने पण्डितजी नहीं हैं लेकिन उनके कार्य, उनकी प्रेरणा हम सभी के लिए प्रेरणास्रोत है। मै पण्डितजी के उपकारो से उपकृत हूँ और हूँ उनके चरणो मे विनत।

बड़ामलहरा

□□□

गुरुवर की छत्रछाया में मेरा जीवन

— रतनचन्द जैन

"अध्वनि अध्वनि तरव पथि पथि पथिकैरुपास्यते छाया।
विरलः स कोऽपि विटपो, यमध्वगो गृहगतः स्मरति।।"

पथिक को यात्रा मे सहस्रों सघन, शीतल और सुखद छायादार वृक्ष मिलते है लेकिन वह कोई, अनोखा ही वृक्ष होता है जिसे घर पहुंचकर पथिक भलीभाति स्मरण करता है। मै भी अपनी जीवन यात्रा में शीतल तरुवर को सदा ही याद करता हू, जिसने मुझे सुखद और सुसस्कृत जीवन दान दिया। वह तरुवर है श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय द्रोणगिरि के प्रधानाचार्य गुरुवर पण्डित गोरेलालजी शास्त्री।

दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पूज्य क्षु गणेशप्रसादजी वर्णी का "लघु सम्मेद शिखर है।" पुण्यतोया काठन और श्यामरी नदियो से घिरा, उत्तुग पर्वत शिखर, जहा अत्यन्त प्राचीन 28 भव्य शिखरबन्द जिन मन्दिर है। तलहटी मे बसे ग्राम सेधपा मे अत्यन्त आकर्षक दो शिखरबन्द मन्दिर तथा नव निर्मित चौबीसी, दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय तथा सुविधासम्पन्न दिगम्बर जैन धर्मशाला स्थित है। इन सस्थाओ को जिन्होने विस्तार दिया, भव्य आकर्षक रूप सौन्दर्य आदि सभी सुविधाये प्रदान कीं एव उन्हे स्थायित्व प्रदान किया वे थे सस्थाओ के जनक तथा दूसरे पितारूप मे मेरे भी जनक गुरुवर पण्डित गोरेलालजी शास्त्री। जिनके द्वारा प्रदत्त सस्कार और अध्यात्म के बीज अकुरित, पल्लवित और फलित होकर आज मेरे अस्तित्व के रूप मे दिखाई दे रहे है।

पूज्यनीय गुरुवर पण्डित गोरेलालजी शास्त्री, द्रोणगिरि के देहावसान को सुनकर मै स्तब्ध रह गया। मैने कुछ माह पहले ही उनके आवास पर तथा द्रोणगिरि की चौबीसी (जिनालय) मे दर्शन किए। चरण स्पर्श कर जब मै भाव विह्वल सा, आखो मे आंसू भरे खड़ा था, पण्डितजी कह रहे थे— रतनचन्द यही ससार का परिवर्तन है। तुम क्या समझते हो कि मै अब स्वस्थ रहूँगा ? शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण होना है, शरीर की क्षीणता पर दुख नहीं करना चाहिए। मै तुम्हे आवाज से ही पहचान सका , प्रसन्नता इस बात की है कि तुम एक अच्छे . । मैने पुन चरण स्पर्श किए तो कहने लगे कि अब के बिछुडे हम तुम कब मिलेगे मिलना मुश्किल है। गुरुजी के अन्तिम दर्शन और उनके अन्तिम शिक्षाप्रद वचन अब भी हदय मे समाये है।

मैंने सदा ही अनुभव किया कि मेरे जीवन वृक्ष की हरियाली का मुख्य आधार है — दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय द्रोणगिरि मे लगातार तीन वर्ष तक प गोरेलालजी शास्त्री के चरणो मे बैठकर शिक्षा और सस्कारो को प्राप्त करना। प्रधानाध्यापक, उदासीन आश्रम द्रोणगिरि के प्रवचनकर्ता प्रमुख विद्वान् तथा सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के प्रबन्धक बडे पण्डितजी के रूप मे मान्य थे। पूज्य पण्डितजी के विषय मे जितना भी कहा जाये और लिखा जाये वह कम ही है। मैने उनसे मोक्षशास्त्र, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय तथा गोम्मटसार जीवकाण्ड जैसे महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन किया। मैने पूज्य पण्डितजी को जितना जाना, समझा और अनुभव किया उस सबको वाणी कैसे दूँ, मैं स्वय समझ नहीं पा रहा हूँ।

पूज्य पण्डितजी के हदय में असीम स्नेह था। हम सब छात्रो के तो वे साक्षात् माता—पिता थे

प्रात काल ही लगभग 4 बजे नियमित रूप से स्तोत्र पाठ करते हुए तथा — "नम समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते" पढते हुए अपने निवास से आते और हम सबको जगाकर पढने बैठा देते। "हूँ स्वतत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता दृष्टा आतमराम" वाला भजन साथ मे बोलना, स्मरण कराना और तब अध्ययन के लिए तैयार करना, यह उनका नियमित कार्य था। जब कभी मौका मिलता हँसते हुए हमारी छात्रावासीय व्यवस्था और घर परिवार के विषय मे जानकारी लेते। किसी त्यौहार पर अथवा विशेष उत्सव और आयोजन मे उनके पितृवत् प्रेम से हम अपने माता–पिता और घर परिवार को भी भूल जाते। माता–पिता जैसी सुख सुविधा और आराम का ध्यान रखते। तब छात्र यही अनुभव करते कि पण्डितजी हमसे बहुत अधिक प्यार स्नेह करते, हमसे बहुत पूँछते। प्राय हम लोगो के भोजनोपरान्त ही वे भोजन करने जाते। जिस किसी सामान की आवश्यकता होती, हम पण्डितजी के घर से ही लाते। यह सब उनके वात्सल्य भाव व हृदयस्थ स्नेह का ही प्रतीक था।

प्रतिदिन निश्चित समय पर निश्चित कार्य होना ही है — पण्डितजी के अपने जीवन मे और हम छात्रो की दिनचर्या मे भी। प्रात 4 बजे जागना, स्वाध्याय, सामायिक के बाद अध्ययन और अध्यापन। छात्रो के साथ नदी स्नान, पूजन, प्रवचन तदुपरान्त पुन अध्ययन और अध्यापन— यह सब नियमित रूप से उनके जीवन के अनिवार्य कार्य थे। सायकाल मे बारह भावना, मेरी भावना का पाठ, कभी कभी — "तेरी प्रतिमा मन मन्दिर मे, तेरा ही गीत अधर मे हो" प्रार्थना उसके बाद मन्दिर मे — *"सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन। सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि रज–रहस विहीन"* — स्तुति। गुरुजी की उपस्थिति और सरक्षण मे हम सब मिलकर अनुशासित होकर पढते, यह थी हमारी दिनचर्या, जो पण्डितजी के अनुशासन से शासित थी।

पण्डितजी का सम्पूर्ण जीवन सदाचारमय था। मैंने आचार्य कुन्दकुन्द तथा उनकी समत्वपूर्ण रचना समयसार का नाम और महत्व पण्डितजी से ही जाना। प्रतिदिन प्रात वे समयसार का स्वाध्याय करते और कन्ठस्थ करते। समयसार का मगलाचरण गुरुजी से ही सुनकर मुझे याद हो गया। प्रतिदिन मन्दिर मे पूजन और विशेषत सिद्धपूजा वे नियमित रूप से करते। पूजन स्वय करना, छात्रो को पक्तिबद्ध खड़ाकर पूजन की एक–एक पक्ति शुद्ध उच्चारण के साथ बोलना ओर छात्रो से पढवाना तथा सावधानी पूर्वक सुनना यह गुरुजी का भी और हम सबका भी नियम सा था। प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को एक बार भोजन करना, व्रत करना, प्रतिदिन पूजन, प्रवचन और स्वाध्याय पण्डितजी के जीवन के अग थे।

मै आज भी याद करता हू और अनुभव करता हू कि पूज्य पण्डितजी मे जीवन निर्माण की कला थी। कठोर अनुशासन के साथ पढाना और पठित पाठ को याद कराना तथा पूँछना यह प्रतिदिन का कार्य था। उनके हृदय का स्नेह और बाह्य जीवन का कठोर अनुशासन आज भी मेरा मार्गदर्शक है। सच्चे अर्थों मे वे हमारे गुरु और हम उनके शिष्य कबीर की निम्नाकित साखी जैसे थे —

"गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है, गढ गढ काढै खोट।
अन्तर हाथ सहार दे, बाहर बाढै चोट।।"

काठन नदी मे स्नान करने हम सबको ले जाते। नदी मे तैरना सिखाते, नदी मे जब बाढ आती तब

हम सबको निर्भयतापूर्वक गहरे पानी मे तैरना सिखाते, नदी पार कर दूसरे किनारे ले जाते। इतना ही नहीं, नीचे के घाट पर खड़े होकर ऊपर के घाट से तैरकर आने को कहते, डूबते और भयभीत छात्रो को साहस बंधाते। लोकविद्या और आत्मविद्या दोनो का उनमे अपूर्व समागम था। जैन–धर्म–दर्शन–न्याय और साहित्य का अद्भुत मिलन था उनमे, जो उनके दैनिक जीवन से एव व्यवहार से प्रकट होता था। मानो खेल–खेल मे सहज ही में वे हमे जीने की कला सिखाते और पढाते। मन्दिर मे प्रवचन के लिए बडे छात्रो को शास्त्र सभा की गद्दी पर बैठालते, प्रवचन कराते और कठिन स्थलो को स्वय समझाते।

पूज्य पण्डितजी अपने प्रान्त के प्रतिष्ठित और प्रभावी विद्वान् थे। निरन्तर पण्डितजी के प्रवचन मे उदासीन आश्रम के व्रती सयमी और ज्ञानी जनो का समागम निरन्तर बना रहता। पण्डितजी मे शास्त्रो और सिद्धान्त के आगम ग्रन्थो का असीम ज्ञान, धर्म मे रुचि, जिनवाणी मे पूर्ण विश्वास और दैनिक जीवन के कार्यों और व्यवहार मे सदाचरण समाया हुआ था। शिक्षा और संस्कारो का जो आधार मुझे द्रोणगिरि विद्यालय मे पण्डितजी से प्राप्त हुआ, उसी बुनियाद पर मेरे जीवन का निर्माण हुआ। पूज्य पण्डितजी धर्म एव दर्शन के श्रेष्ठ विद्वानो मे एक थे। सादा जीवन और उच्च विचार के तो वे आदर्श पुरुष थे। बुन्देलखण्ड मे द्रोण प्रान्त की शान के रूप मे थे पण्डित गोरेलालजी शास्त्री।

उन्होने द्रोणगिरि विद्यालय को जो गरिमा, क्षेत्र को जो भव्य रूप दिया, उससे द्रोणगिरि और पण्डितजी एक दूसरे के पर्याय बन गए। बुन्देलखण्ड के मुझ जैसे सहस्रो छात्रो को आगे बढाया, आत्म निर्भर बनाया, ज्ञान के आलोक से आलोकित किया। उन पर हम सबको गर्व है।

द्रोणगिरि विद्यालय और पण्डितजी के ज्ञान और सदाचार की शिक्षा मेरे लिए बहुत बडी देन है। पण्डितजी की शिष्यता ही मेरे जीवन के लिए सब कुछ है। विद्वानो का कथन – "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि, तथा नारिकेलसमाकारा सज्जना भवन्ति।" सम्भवत ये वाक्य पूज्य पण्डित गोरेलालजी शास्त्री जैसे वात्सल्य के धनी और कठोर अनुशासनप्रिय विद्वानो– गुरुजनो के लिए ही है।

लगभग 40 वर्षो के बाद आज भी पण्डितजी मेरे हृदय मे बसे हुए है। वे मेरे ऐसे सत्गुरु रहे, जिन्होने मुझे "हिये की आख" प्रदान की। "लोचन अनन्त उघाडिया, अनन्त दिखावण हार।" ऐसे गुरु ऋण से शिष्य कभी मुक्त नहीं हो सकता। गुरु के बताये मार्ग पर चलकर, उस दिव्य ज्ञान की मशाल से भटकते हुए जिज्ञासुओ को आलोकित कर दिव्यदृष्टि का प्रचार और प्रसार करके ही हम गुरुचरणो मे सच्ची श्रद्धाञ्जलि प्रकट कर सकते हैं। गुरु के ज्ञान और सदाचारमय जीवन के अमिट प्रभाव को इस सस्मरण मे कैसे बॉधा जा सकता है। यह तो मात्र श्रद्धाञ्जलि ही है।

• एम ए साहित्याचार्य

प्रवक्ता हिन्दी

दिगम्बर जैन इन्टर कॉलेज

14, इन्दिरा कॉलोनी, कानपुर (उ प्र)

□□□

उपकारी विद्वान्

— बालचन्द जैन

श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी अपने जीवन काल मे अनेको बार जब भी समाज ने बुलाया, बम्हौरी पधारे और उन्होने मधुर वाणी मे सरल भाषा में दिए गए प्रवचनो से समाज को लाभान्वित किया। आपने अपने ज्ञान एव आचरण से समाज को प्रभावित किया।

आप समाज के बिखराव को भी कभी स्वीकार नहीं करते थे। जहा भी जब भी किसी कार्यक्रम मे आप जाते सबसे पहले वहा समाज के एकीकरण की बात करते। इस सम्बन्ध मे आपका एक सस्मरण उल्लेखनीय है।

दमोह जिले के बरौदा कलॉ मे आप सिद्धचक्र महामण्डल विधान कराने गये थे। विधानकर्ता श्री चौधरी नन्दकिशोरजी थे। इनके बडे भाई चौधरी गिरधारीलालजी, जिनकी उम्र 80 वर्ष की थी, से आपसी विरोध था। जिसके कारण आना जाना, खान पान सभी बन्द था। समाज से भी नहीं बनती थी। यह स्थिति पण्डितजी को अच्छी नहीं लगी ओर उन्होने इस बात का प्रयास किया कि भाई–भाई आपस मे एक हो समाज मे किसी भी प्रकार का विरोध न हो। पण्डितजी के प्रभाव से दोनो भाईयो का आपसी वैमनस्य दूर हुआ और 30 वर्ष से जो आना जाना नहीं था वह प्रारम्भ हुआ। समाज भी आपस मे एक हुए और आगे किसी भी प्रकार का विरोध न दोनो भाईयो मे रहा और न समाज मे ही। गाव वालो ने तथा आस पास की जैन समाज ने पण्डितजी के इस प्रयास की सराहना की। विधान भी प्रभावना के साथ सम्पन्न हुआ और पण्डितज़ी के सारगर्भित प्रवचनो से उपस्थित समाज ने लाभ लिया। ऐसे उपकारी विद्वान् के प्रति मेरा शतश नमन है।

• बम्हौरी (म प्र)

□□□

उस रात्रि का सत्संग

— मगनलाल गोइल

किसी की चार दिन की जिन्दगी सौ काम करती है।
किसी की सौ वर्ष की जिन्दगी से कुछ नही होता।।

श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का प्रथम परिच्चय एक ऐसे अवाछनीय प्रसग मे हुआ, जिसका श्रद्धेय पण्डितजी के प्रयास से सुकात भाग सबको आनन्दित कर गया।

लगभग 25 वर्ष पूर्व की घटना है कि टीकमगढ जिले के एक समुन्नत कस्वा खरगापुर मे जहा पर्याप्त जैन समाज है और सभी भगवद् भक्त, श्रद्धालु, दयावन्त और व्रती श्रावकगण है। पता नहीं किन परिस्थितियो मे मन्दिर जी के तत्कालीन व्यवस्थापको और अन्य श्रावकजनो के मध्य किसी व्यवस्था प्रसग को लेकर तनातनी की घटना से वहा इतना क्षोभ बढा कि पर्यूषण के मध्य मे ही व्यवस्थापको ने स्थानीय जैन मन्दिर पर ताला जड दिया, तब उस आपसी विवाद के निर्णयार्थ टीकमगढ के पचो और छतरपुर के पचो को तत्काल आहूत किया गया। हम कुछ लोग टीकमगढ से और कुछ लोग छतरपुर से खरगापुर तत्काल पहुचे। छतरपुर से पहुचने वालो मे प्रमुख थे पण्डित गोरेलालजी शास्त्री। मन्दिरजी मे पहुचने पर उनसे प्रवचन करने का आग्रह किया गया और शास्त्रीजी ने गद्दी पर बैठकर धर्म के शाश्वत स्वरूप का सटीक वर्णन प्रारम्भ किया। तत्कालीन परिस्थितियो को लक्ष्य कर, पण्डितजी ने जो प्रवचन दिया, वह आज

भी भुलाया नहीं जा सका। उक्त प्रवचन समस्या के समाधान मे सफल और सार्थक सिद्ध हुआ।

जिस मार्मिक रीति से पण्डितजी ने समझाया वह उपस्थित दोनो पक्षो के हृदयो पर अकित हुआ। पण्डितजी के ये वचन हम सब भी नहीं भूले।

भाईयो! आप सब इन मन्दिरो के उच्च शिखरो को देखो और अपने जीवन को इन ऊँचाईयो का स्पर्श होने दो। इस मन्दिर मे गर्भ गृह को देखो और अपने अन्तर मे प्रवेश करो, तभी हम सब के जैन होने की सार्थकता है। मन्दिरजी की ये ध्वजा सभी प्राणियो को अहिसा धर्म के झण्डे के नीचे एकत्रित होने को प्राणीमात्र को आमत्रण दे रही है और हम सब आपसी विवाद मे इस समय को चूक रहे है।

भौतिक वस्तुओ के परिवर्तन को परिलक्षित और उसके परिणामो का जो विश्लेषण करे वह विज्ञान है और मात्र विज्ञान से जीवन का समाधान नहीं होता। अन्तर्तम की गहराईयो मे बैठने की और वहा छिपे हुए मणि मुक्ताओ की, जिसने खोज कर ली उसका ही नि·श्रेयस सिद्ध हो गया और यही धर्म है। धर्म साध्य है। इस साध्य के लिए विज्ञान साधन बन सकता है। इन दशलक्षण व्रतो के दिनो मे यदि हम सबने अपने अन्दर बैठकर अपनी खोज नहीं की तो जीवन व्यर्थ है। क्षण–क्षण अमूल्य है, चाहे वह हम झगडो मे बिता दे अथवा अपनी खोज मे व्यतीत करे, फैसला आपके हाथ मे है। इसके बाद पण्डितजी ने बारह भावनाओ का स्वरूप सटीक वर्णन किया और ससार शरीर भोगो की निस्सारता को जिस हार्दिक भाव से प्रतिपादित किया, उससे उपस्थित सभी लोगो के दिल पिघल गए। जिनवाणी स्तुति के बाद पचायत बैठी ओर चर्चा प्रारम्भ हुई तो लोगो ने पुरानी बातो को कुरेद कुरेद कर यो ही बखान प्रारम्भ किया तो पण्डितजी ने टोका और कहा कि अब प्याज को छीलोगे तो सिवा छिलको के कुछ भी नहीं निकलेगा और दुर्गन्ध से आगन व्यर्थ मे भर जायेगा। इस उदाहरण ने जादू का काम किया और तथ्यो पर चर्चा प्रारम्भ हो गई, फिर चर्चा बडी शान्ति और शालीनता से हुई। समस्त मतभेदो को समेटने ओर उनका सक्षिप्तीकरण कर उन्हे उखाड फेकने की भव्य कला का जो प्रदर्शन उस दिन पण्डितजी ने किया तो ऐसा लगा कि ऐसी व्यावहारिक सूझबूझ के यदि इस जैन समाज को 100 व्यक्ति भी मिल जायें तो देश से इस समाज के सारे विवाद समाप्त हो सकते हैं।

उस रात लगभग 3 घटा चर्चा चली। चर्चा मे एकदम शान्ति रही। सहिष्णुता का वातावरण तो पण्डितजी ने शास्त्र प्रवचन मे ही बना दिया था। वह अन्त तक कायम रहा और मध्यरात्रि के बाद सभी ने अपने मतभेदो को भूलने की प्रतिज्ञा की। जय–जयकार पूर्वक सभा विसर्जन कर हम सब विदा हुए। उस दिन पण्डितजी की सूझ–बूझ, उनकी सूक्ष्म पारदर्शिना तथा उनके उदाहरणो, मुहावरो के प्रयोगो ने हम सबका ऐसा शिक्षण किया जो जीवन भर स्मरण रहेगा। इसके बाद तो अनेको बार श्री सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पर सभा सम्मेलनो मे उनका दर्शन, हसमुख व्यक्तित्व, उदार मन, सदाशयतापूर्ण और कल्याण कामनाओ से भरी बातचीत सुनने का कई बार अवसर मिला। ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि प्रख्यात विद्वानो के पुत्रो का आचरण धर्म विरुद्ध और लोक विरुद्ध है, लेकिन इस विद्वान् का जीवन अन्तर और बाहर से एक था। इसलिए उनका पूरा असर उनके पुत्र आदरणीय कमलकुमारजी पर पडा। पण्डित कमलकुमारजी जिस सामाजिक काम को उठा लेते है, उसकी व्यवस्था और कार्य के प्रति निष्ठा के उदाहरण मिलना आज कठिन हो गया है। पण्डित कमलकुमारजी ने श्रद्धेय पण्डितजी का व्यक्तित्व और कृतित्व उभारा हे। विद्वानो की धन सम्पत्ति के वारिस तो उनके पुत्र होते ही है, पर पण्डित कमलकुमारजी श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी की कीर्ति, कर्मठता और विचारशीलता के वारिस है। मेरी श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी को विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित है।

• पूर्व विधायक एव स्वतंत्रता सेनानी
टीकमगढ़ (म. प्र)

मेरे परम उपकारी गुरु

— प्रेमचन्द जैन

1945 मे जब मेरी आयु 8—10 वर्ष की रही होगी द्रोणगिरि पाठशाला मे पढने गया। मेरे प्रथम और अन्तिम गुरु पण्डित 'गोरेलालजी शास्त्री ही हैं। इनसे मैंने जैनधर्म की प्रारम्भिक शिक्षा छहढाला तक प्राप्त की। गुरुवर पण्डितजी का पढाने का तरीका बहुत सरल था, छात्रो को आसानी से समझ मे आता था। अनुशासन भी अच्छा था। पण्डितजी छात्रो से पुत्रवत् स्नेह करते थे। मुझे पण्डितजी से पढने का लगभग 6 माह ही समय मिला।

मेरे जीवन मे जो कुछ भी आज है वह प जी की ही देन है। धार्मिक शिक्षा, धार्मिक वातावरण और सदाचरण की उनके द्वारा दी गई शिक्षा मेरे जीवन का आधार है।

पण्डितजी प्रान्त की विभूति थे। उनके पढाये सहस्रो विद्वान् हैं। प जी ने द्रोणगिरि क्षेत्र का विकास किया और प्रान्त मे सामाजिक चेतना जगाई। ऐसे परम उपकारी गुरुवर के प्रति मैं शत शत नमन करता हूँ, प्रणाम करता हूँ।

• कोलोनाईजर
पन्ना नाका (छतरपुर)

□□□

अनुकरणीय रहेंगे

— डॉ. उदयचन्द जैन

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि श्रीमान् पण्डित गोरेलालजी शास्त्री स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है।

पण्डितजी मे प्रौढ विद्वत्ता, आध्यात्मिकता, धार्मिकता, साहित्य सृजनता, सामाजिक कुरीति निवारण कला, आकर्षक अध्यापन शैली आदि अनेक ऐसे गुण विद्यमान थे जिनके कारण वे हम लोगो के लिए सदैव स्मरणीय रहेगे।

उन्होनें सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पर चिरकाल तक अनेक सस्थाओ का सचालन सुचारुरूप से किया है। उनके द्वारा जैन समाज का और विशेषरूप से द्रोण प्रान्त की समाज का बहुत उपकार हुआ है। मैं सन् 1970 मे मेला के अवसर पर द्रोणगिरि गया था। उस समय पूज्य पण्डितजी के दर्शनो का सौभाग्य तो मिला ही था, साथ ही उनकी विद्वत्ता, धार्मिकता, प्रवचन शैली आदि से मै बहुत प्रभावित हुआ था।

इस पुनीत अवसर पर मैं पूज्य पण्डितजी के चरणो मे अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

• सर्वदर्शनाचार्य, वाराणसी

□□□

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

– डॉ. सुन्दरलाल जैन

पूज्य स्व. पण्डित गोरेलालजी शास्त्री, द्रोणगिरि जहां अध्यात्म के उच्चकोटि के विद्वान् थे, वहीं संस्कृत साहित्य, हिन्दी काव्य, छन्द शास्त्र, संगीत शास्त्र के भी निष्णात विद्वान् थे। वे सामाजिक कार्यों तथा ग्रामीण विवादो का निपटारा करने मे भी सिद्धहस्त थे। सेधपा एवं निकटवर्ती ग्रामो के लोग पूज्य पण्डितजी के निर्णयो को सहर्ष सर्वमान्य करते थे। पण्डितजी ने सामाजिक कुरीतियो के विरुद्ध पूज्य पाद वर्णीजी की पावन प्रेरणा से सम्पूर्ण प्रान्त मे जन जागरण का कार्य किया था, युवा काल मे उन्होने युवको की द्रोण प्रान्तीय सेवा परिषद् बनाकर और बाद मे वृद्धावस्था मे द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा सघ के सरक्षक के रूप मे युवको को प्रेरणा देकर समाज सेवा के लिए सतत प्रोत्साहित किया।

मुझे पूज्य पण्डितजी साहब से पढने का संयोग तो प्राप्त नहीं हो सका परन्तु पण्डितजी के सेवा निवृत्त होने पर द्रोणगिरि कार्यकाल मे 3 वर्ष पूज्यश्री द्वारा शिष्यवत् पुत्रवत् स्नेह एव मार्गदर्शन मिलता रहा है। मै पण्डितजी का चिर कृतज्ञ हूँ और उनके प्रति अपनी विनम्र एव भावपूर्ण श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ।

□□□

वात्सल्य

– डॉ. लालचन्द जैन

याद आता है वह व्यक्तित्व जो प्रात 6 बजे हाथ मे गमछा एव लगोटी दबाये हुये काठन नदी की ओर बच्चो के साथ स्नान करने जाता था। उस व्यक्तित्व का प्रभाव आज भी मेरे मस्तिष्क पर अमिट है। मे 1963 मे कक्षा पांचवीं मे अध्ययनरत था। 35 वर्ष बाद आज भी वह दृश्य आखो के सामने आज की घटना के समान घूमने लगता है। उच्चकोटि के विद्वान् होते हुए भी अपने विद्यार्थियो से इतना लगाव था कि वे विद्यार्थियो के साथ उठते-बैठते, स्नान-ध्यान करते, साथ मे एक-एक विद्यार्थी पर ध्यान रखते हुए स्वय पूजन करते तथा बच्चो को पूजन करना सिखाते।

वास्तव मे प्राचीनकाल के आश्रम का वातावरण प्रात स्मरणीय पूज्य गुरुदेव पं गोरेलालजी के मार्गदर्शन मे चलने वाले छात्रावास मे था। वहा न कोई भय था न ही कठिनाई। ऐसे लगता था जेसे एक वड़ा परिवार अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए कार्यकर्ता तैयार कर रहा है। पण्डितजी प्रत्येक विद्यार्थी के सुख दुख मे सम्मिलित रहते थे। यदि कोई छात्र बीमार हो गया तो उसका इलाज एवं सुश्रुषा का पूरा–पूरा ध्यान रखते थे। पण्डितजी अपने बालको के लिए वात्सल्य की मूर्ति थे।

• उप सचालक शिक्षा
21, शिक्षक नगर, देवास (म प्र)

□□□

आदर्श प्रेरणा स्रोत

— चन्द्रभान जैन, एडवोकेट

स्व पूज्य पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र के एक गौरव थे। व्यक्ति का महत्व न तो कागज के टुकडो से है न स्वर्ण रजत आभूषणो से और न गगनचुम्बी उन्नत अट्टालिकाओ से। व्यक्ति का वास्तविक महत्त्व तो उसके ज्ञान, परोपकार, समाज सेवा से होता है। वह अपने त्याग व परिश्रम से समाज के कल्याण का कार्य आत्मोन्नति के साथ करते है। पण्डितजी ऐसे ही द्रोणगिरि के गौरव थे। जिन्होने अपने अथक परिश्रम, त्याग एव परोपकार की भावना स निस्वार्थ क्षेत्र की जीवन पर्यन्त सेवा ही नहीं की बल्कि उसकी रक्षा, सवर्धन, परिवर्धन एव विकास मे भी पूरा–पूरा योगदान दिया।

वह एक कर्मयोगी थे जिन्होने अज्ञानान्धकार मे उस क्षेत्र के विद्यार्थियो को जैनधर्म की शिक्षा देकर उनमे ऐसे सस्कारो का प्रत्यारोपण किया कि वे आगे चलकर समाज के अच्छे विद्वान् होने के साथ–साथ शासन या समाज के उच्च पदो पर पदस्थ हुए। उन्होने जो नैतिक मूल्यो का प्रत्यारोपण उन छात्रो मे किया वह अभी भी स्पष्ट अपनी पहिचान के रूप मे देखा जा सकता है।

पूज्य पण्डितजी से मेरा परिचय गत करीब 50 वर्ष से रहा है। हमारे चाचा श्री मधिचन्दजी द्रोणगिरि क्षेत्र की कमेटी के सदस्य थे उनके साथ मुझे द्रोणगिरि जाने का अवसर सन् 1948 से प्राप्त रहा तब मैनें पण्डितजी के दर्शन किए। उस समय पण्डितजी ही शायद द्रोणगिरि की व्यवस्था सॅभालते थे और उनकी ही आज्ञा का पालन लोग करते थे। यदि ऐसा कहा जावे कि उनकी प्रेरणा से ही इस गरीब अपढ क्षेत्र के छात्र शिक्षा प्राप्त कर उन्नति कर सके तो यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनका प्रत्येक शिष्य चाहे वह आचार्य, प्रोफेसर या उच्च पदाधिकारी के पद पर आसीन हो गया हो या आर्थिक सफलता के सोपानो को पा गया हो परन्तु जब भी उनके समक्ष पहुचता था तो उसका मान उस प्रकार गल जाता था जैसे कि मानस्तम्भ के सामने पहुचने पर गणधर का मान गल गया था, वह नत मस्तक उनके चरण छुये बगैर नहीं रहता था, उनका घर सबको खुला था। छात्र उनके घर पर जीवन पर्यन्त ऐसी आत्मीयता पाते रहे जैसे कि वह अपने माता पिता से अपने घर मे पाते हैं। नि सकोच कोई भी उनके यहाँ से खाने पीने की सामग्री प्राप्त कर सकता था।

जब मै सन् 49 मे बडा मलहरा गुरुकुल मे पढने के लिए गया उस समय पण्डितजी अध्यापन कार्य करते थे। उस समय उनका नियत्रण, अनुशासन व छात्रो के प्रति स्नेह देखते ही बनता था। प्रात कालीन व सायकालीन प्रार्थना मे छात्रो की उपस्थिति बिना किसी बहाने के सुनिश्चित थी। उनके शरीर पर धारण किए गए जनेऊ मे बधी चाबी के गुच्छे की आवाज को फायर बिग्रेड के आने की सूचना माना जाता था। वह अनुशासन के हामी थे। एक तो किसी छात्र को अनुशासन भग करने की हिम्मत ही नहीं होती थी यदि भूल से अनुशासन भग हो गया तो उसे उनके कोप का भाजन होना पडता था। और बिना दण्ड पाये उसे नहीं छोडा जाता था। चाहे वह किसी का भी पुत्र हो। आश्चर्य की बात तो तब हुई जब उन्होनें मुझे मोक्षशास्त्र की परीक्षा मे बैठने के लिए कहा मैने उनसे निवेदन किया कि मुझे तो कुछ भी नहीं आता फिर इस महान् ग्रन्थ की परीक्षा मे मै कैसे बैठ सकता हूँ। उन्होने कहा प्रयत्न करो। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उन्होने मुझे परीक्षा के एक दिन पूर्व मोक्षशास्त्र के सम्बन्ध मे इतने सुन्दर ढग से प्रेम विभोर होकर समझाया कि मैं दूसरे दिन परीक्षा मे सम्मिलित हुआ ओर आशीर्वाद ऐसा रहा कि मैं परीक्षा मे बोर्ड से उत्तीर्ण हो गया।

दुर्दान्त दस्युओं पर भी जिनका प्रभाव था

— शाह नन्दकिशोर जैन

पूज्य प गोरेलालजी अपने समाज मे प्रभावशाली रहे है । बुन्देलखण्ड डाकुओ से ग्रसित रहा है— जहा के देवीसिह, मूरतसिह, पूजा बब्बा जैसे दुर्दान्त डाकुओ से मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश भयाक्रान्त था। सुरक्षित से सुरक्षित स्थान मे रहने वाले धनाढ्य व्यक्ति भी उनके चगुल मे आसानी से आ जाते और बहुत बडी राशि की वापिसी के बाद ही मुक्त हो पाते थे। ऐसे डाकू लोग भी पण्डितजी को आदर सम्मान देते थे और कभी सामना न हो जाये इसका ध्यान रखते थे। इसका कारण भी था ये सभी दस्यु द्रोणगिरि के आस पास के थे जो बचपन मे पण्डितजी के सम्पर्क मे रहने से भी उनके प्रभावी व्यक्तित्व से प्रभावित रहे। मूरतसिह तो पण्डितजी के छात्र भी रहे है।

द्रोणगिरि मे आस पास मे जब भी कोई बडा धार्मिक उत्सव हुआ और पण्डितजी की उपस्थिति का पता चला तो समझिये उस उत्सव की समस्त सुरक्षा व्यवस्था इन्हीं लोगो के द्वारा हो गई। किसी धन सम्पन्न सामाजिक व्यक्ति का अपहरण हुआ और उनकी पहुँच पण्डितजी तक हो पाई तो बिना किसी लेन देन के ही पण्डितजी का सम्पर्क सुनते ही व्यक्ति को छोडना पडता था। 1955 मे जब द्रोणगिरि मे पचकल्याणक प्रतिष्ठा गजरथ महोत्सव करने का आयोजन प्रारम्भ हुआ। पण्डितजी ने मूरतसिह, पूजा बब्बा से चर्चा की तो उन्होने तुरन्त सुरक्षा का आश्वासन दिया और कार्यक्रम को भव्यता के साथ करने मे अपने सहयोग का वचन दिया।

1949 मे पण्डितजी ने प्रयास कर देवीसिह, मूरतसिह को हाजिर करा दिया और उन्हे सम्मान के साथ जीवन जीने देने के लिए शासन से माग की लेकिन शासन ने जब अपने आश्वासन को पूर्ण नहीं किया तो वे जेल से भाग आये। 1972 मे प्रकाशचन्दजी सेठी जब मध्यप्रदेश के मुख्यमत्री थे तब पुन एक प्रयास डाकुओ के आत्म समर्पण का हुआ। पण्डितजी ने पुन समझाया और अपना प्रभाव डालकर इन भयानक हिसात्मक कार्यों से बचने के लिये उन्हे सुरक्षित ससम्मान जीवन जीने की प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप हाजिर हो गए। इसप्रकार पण्डितजी ने प्रान्त को डाकुओ के भय से मुक्त कराने मे सहयोग किया।

अनेको बार ऐसे प्रसग आये कि पण्डितजी जा रहे हैं उसी समय इन डाकुओ का निकलना हुआ। पण्डितजी को देखा और बिना किसी हल्ला गुल्ला के चुपचाप किनारा काटकर निकल गए। इन लोगो ने कभी भी पण्डितजी का सामना करने का साहस नहीं किया। पण्डितजी का उन पर यह अचिन्त्य प्रभाव रहा है। समाज का तो ऐसा कोई व्यक्ति न था जो पण्डितजी का विरोध करने का साहस करता या उनकी किसी भी बात को न मानने का प्रयास करता।

निश्चित रूप से पण्डितजी अपने समय मे प्रभावी व्यक्तित्व के धनी रहे है। यही कारण है कि उनके अभाव मे समाज आज भी उनका आदर-सम्मान से स्मरण करती है।

• सन्मति वस्त्रालय
बडा मलहरा, छतरपुर (म प्र)

मेरा सौ-सौ बार नमन

— पन्नालाल जैन

सन् 1938 के लगभग का समय था जब मेरी आयु 10—12 वर्ष की रही होगी, मेरे पिताजी मुझे सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि की वन्दना हेतु लाये थे। उस समय वहा श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला मे 30—35 छात्रो को पूज्य पण्डितजी (स्व. श्री गोरेलालजी) पढा रहे थे। पिताजी और मै तीर्थवन्दना कर लौटे और पढते हुए छात्रो को देख उत्सुकतावश मै पूज्य पण्डितजी के पास खडा हो गया। पण्डितजी ने मेरी ओर देखा और पूछा कहा से आये हो ? मैने उत्तर दिया फुटवारी ग्राम से। किस उद्देश्य से आये ? तीर्थ वन्दना के लिए। मैने पूज्य पण्डितजी को सहज भाव से उत्तर दिया, पुन पण्डितजी ने पूँछा कुछ पढे लिखे हो ? मैने उत्तर दिया नहीं ग्राम मे पढने का साधन नहीं। प जी ने पुन प्रश्न किया क्या तुम पढना चाहते हो ? मैने उत्तर दिया जी हा इसी उद्देश्य से ही आपके समीप छात्रो को पढते देख मेरी भी जिज्ञासा कुछ सीखने की हुई है। पण्डितजी ने मेरे पिताजी से कहा कि इस बालक को यहा भरती कर दो। कुछ पढ लिख जावेगा, अपना जीवन सुधारेगा और समाज के काम आवेगा। पिताजी ने कहा हमारी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। इससे कैसे पढा सकेगे।

पण्डितजी ने मेरी तरफ आशाभरी दृष्टि से देखा और पिताजी से कहा कि तुम इसे हमारे पास छोड दो, कोई खर्च नहीं लगेगा। इसे हम पढावेंगे। पण्डितजी की यह बात मुझे जम गई और मैने अपने पिताजी से भरती करने का आग्रह किया। पिताजी ने पण्डितजी के आग्रह पर मुझे भर्ती करा दिया।

मुझे सहारा मिला पूज्य गुरुदेव का और उन्होने मुझे बडे ही स्नेह से विद्यालय मे रखा। अक्षरज्ञान कराया, जैनधर्म के चारो भागो को, स्तोत्रो को पढाया। मैने मनोयोग से अध्ययन किया। पण्डितजी से मुझे पिता से भी अधिक स्नेह मिला। जिस कारण मै अपना जन्म घर भूल सा गया और पूज्य पण्डितजी का घर ही मेरा घर बन गया। मैंने तीन—चार वर्ष द्रोणगिरि मे अध्ययन किया इसके बाद अपने घर पहुचकर पिताजी का सहयोग करने लगा।

मेरा जो कुछ भी ज्ञान है, आचरण है और सामाजिक सस्थाओ मे कार्य करने की लगन है, समाज सेवा के क्षेत्र मे मैने जो कुछ भी किया है, वह पूज्य पण्डितजी के ही आशीर्वाद और कृपा का ही फल है। अध्ययन के समय से जो स्नेह मुझे पण्डितजी से मिला वह जीवनभर मिलता रहा है। जब भी द्रोणगिरि आया। पूज्य गुरुदेव की चरण वन्दना के बिना नहीं गया। घर मे बाईजी का अपार स्नेह मिला उन्होने मुझे भोजन के बिना नहीं जाने दिया। मैने न तब और न अब पण्डितजी के घर को दूसरे का घर माना, में उस घर का एक सदस्य ही बना रहा और अब भी बना हूँ।

मेरा यह सौभाग्य रहा है कि मुझे पूज्य गुरुदेव की उनके अन्तिम समय मे सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। अन्तिम अवस्था मे जब पूज्य पण्डितजी अस्वस्थ थे। मैं द्रोणगिरि मे ही रहा और बराबर परिचर्या करता रहा। णमोकार मत्र का पाठ करता रहा। पूज्य पण्डितजी के स्वर्गवास से समाज मे, प्रान्त मे जो रिक्तता आयी उसकी पूर्ति सहज होने वाली नहीं है। मेरे जैसे सैंकडो साधनहीन छात्रो का पण्डितजी ने जीवन निर्माण किया और उन्हे समाज के लिए उपयोगी बनाया। आज पूज्य पण्डितजी नहीं है तो उनका वह विद्यालय भी नहीं है। जिसके द्वारा सहस्रो छात्रो का जीवन बना, विद्वान् बने, समाज सेवी बने और प्रान्त मे उन्होने ज्ञान ज्योति प्रकाशित की। मै पूज्य पण्डितजी के अनन्त उपकारो से उपकृत हुआ उनके चरणो मे सौ—सौ बार नमन करता हूँ, वन्दन करता हूँ।

• भगवा, छतरपुर (म प्र)

□□□

ज्ञान और सार्थक चारित्र के धनी

– डॉ. हेमचन्द जैन "फणीन्द्र"

विद्वत् समाज के मूर्धन्य विद्वान् एवं त्यागी व्रती समुदाय के उत्कृष्ट ब्रह्मचारी श्रीमान् स्व ब्र प गोरेलालजी शास्त्री, द्रोणगिरि भारतवर्षीय जैन समाज के जाने माने विद्वान् तो थे ही जैनेतर समाज मे भी ख्याति प्राप्त पूज्यनीय मनीषी थे।

आपने पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी की प्रेरणा से श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि मे श्री गुरुदत्त दि जैन विद्यालय मे 40 वर्ष अध्यापन कार्य कुशलतापूर्वक किया। आपके द्वारा पढाये हुये छात्र इस समय उच्च पदो पर आसीन हैं। 1967 से उदासीन होकर श्री गुरुदत्त दि जैन उदासीनाश्रम द्रोणगिरि मे रहने का निश्चय कर जीवन के अन्तिम समय तक आत्म साधना करते रहे तथा अनेक लोगो को आत्म कल्याण करने का सदुपदेश देकर आत्म साधना मे लगाया आपका आध्यात्मिक उपदेश सरल तथा आकर्षित होता था। आपके समय मे उदासीनाश्रम मे 25–30 व्रती त्यागी ब्रह्मचारी साधनारत रहते थे।

उदासीनाश्रम मे आपका आध्यात्मिक प्रवचन प्रतिदिन 3 बार निरन्तर होता था। आपके प्रवचन की शैली इतनी सरल थी कि कठिन से कठिन विषय को भी आप अत्यन्त सरल शैली मे दृष्टान्तो द्वारा समझाते थे। इसलिए जन साधारण आपके प्रवचन सुनने को लालायित रहता था।

ज्ञान होना उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना कि ज्ञानवान् होकर विवेकशील चारित्र का होना है, सचमुच यही ज्ञान का फल है पण्डितजी महान् ज्ञानी होने के साथ–साथ चारित्र के धनी थे।

पण्डितजी अपने नियमो के पक्के थे। अस्वस्थ होने पर भी आप नियमो के पालन करने मे शिथिलता नहीं बरतते थे और अधिक सतर्कता से अपनी क्रियाये पूर्ण करते थे।

पूज्य वर्णीजी के प्रवचन से ही पण्डितजी मे ज्ञान के साथ–साथ चारित्र का भी समुज्जवल प्रकाश हुआ था। ऐसे ज्ञानी और चारित्र के धनी विद्वान् के प्रति मेरी विनम्र श्रद्धाजलि।

• बड़ामलहरा, छतरपुर (म प्र)

□□□

ते गुरु मेरे उर बसे

– प सरमनलाल दिवाकर, शास्त्री

बुन्देलखण्ड निरन्तर ऋषि, मुनियो, गुणियो, बुद्धिजीवियो, सयमी चरित्रवालो की पावन भूमि रही है। इसी श्रृखला मे छतरपुर जिला के सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि की पावन भूमि पर पूज्य गुरुवर पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का जन्म हुआ। आप सिद्धान्त मर्मज्ञ, सुयोग्य शिक्षक, सस्कृत प्राकृत तथा हिन्दी के ज्ञाता विद्वान् थे।

मुझे यह लिखते हुए गर्व का अनुभव होता है कि मै भी उन सौभाग्यशाली व्यक्तियो मे से हूँ जिन्हे पूज्य गुरुवर के चरणो मे बैठकर ज्ञानार्जन कर अपने जीवन निर्माण का सुयोग प्राप्त हुआ है मुझे कुछ धुधली सी यादे है जब मेरे जन्म ग्राम ऐरोरा (टीकमगढ) मे प्रात स्मरणीय पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी का पदार्पण हुआ। उस समय मेरी आयु 6–7 वर्ष की रही होगी मेरे पिताजी से पूज्य वर्णीजी ने मुझे द्रोणगिरि

विद्यालय मे भरती कराने को कहा। वर्णीजी ने यह बताया कि वहा प गोरेलालजी शास्त्री बड़े प्यार और स्नेह से छात्रो को रखते है और मेहनत से अध्ययन कराते है। मेरे पिताजी ने मुझे द्रोणगिरि विद्यालय मे भरती करवा दिया।

बचपन मे शरारती, उद्दण्ड तो था ही पढने मे भी लापरवाह था जिसके कारण पूज्य पण्डितजी का विशेष ध्यान मेरे ऊपर रहता था। बडे प्रेम से मुझे समझाते थे और पढाते थे जिसके फलस्वरूप मैने 1958 मे वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय की प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण कर ली तथा गुरुजी का आशीर्वाद प्राप्त कर अपने जीवन पथ पर आगे बढ़ने के लिए विद्यालय से विदा ली। विदा लेते समय पूज्य गुरुवर ने मुझे जीवन मे उत्तरोत्तर प्रगति करने का आशीर्वाद दिया।

मैं 1960 मे सरधना (मेरठ) पहुचा और वहा जैन नर्सरी विद्या मन्दिर मे शिक्षण कार्य करते हुए उसमे प्रधानाध्यापक की जिम्मेदारी को वहन किया। कुछ समय उत्तर प्रान्तीय दिगम्बर जैन गुरुकुल हस्तिनापुर मे प्राचार्य के दायित्व का निर्वाह किया।

भगवान् महावीर 2500वा निर्वाण महोत्सव वर्ष मे धर्मचक्र का सचालन भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के हीरक जयन्ती वर्ष मे तीर्थ वन्दना रथ के सचालन के माध्यम से सम्पूर्ण देश मे सत्य अहिसा का सन्देश जन–जन तक पहुचाया। वीर साप्ताहिक पत्र एव अर्हत् वाणी का सम्पादन एव रचनाओ का सृजन पूज्य पण्डितजी द्वारा दिए गए ज्ञान और सस्कारो के माध्यम से ही सफल हो सका है।

ऐसे परम उपकारी गुरुवर को मैं शत शत नमन करता हूँ।

□□□

मेरे पिता तुल्य थे

– श्रीमती प्रमोद जैन

श्री प गोरेलालजी शास्त्री, द्रोणगिरि जिन्हे मै पिता तुल्य मानती थी उनसे मुझे पुत्रीवत् स्नेह मिला है। मुझे अनेको बार उनसे मिलने का सौभाग्य मिला। छतरपुर मे भी जब कभी वे आते थे उनसे मै मिलती थी। उनके सौम्य शान्त स्वभाव, त्यागमय जीवन, विद्वत्ता आदि से मै प्रभावित रही हू। उनके स्वर्गवास से समाज मे जो रिक्तता आई है उसकी पूर्ति हो पाना कठिन है। मै उनके प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त करती हू।

• सचालिका, सन्मति विद्या मन्दिर, छतरपुर

□□□

सतपारा का अविस्मरणीय प्रसंग

– प्रशान्त जैन

पूज्य गुरुदेव पण्डित गोरेलालजी अत्यन्त लगनशील एवं कर्तव्यनिष्ठ विद्वान् थे। वे अपने धुन के पक्के एव समय के पाबन्द थे। प्राय दैनिक चर्या से निवृत्त होकर नदी मे स्नान कर सहस्रनाम की ध्वनि करते हुए जब लौटते तो सभी विद्यार्थी चौकन्ने होकर उनके मुख कमल से बिखरे भक्ति प्रसून बडे चाव से सुनने लगते थे। बिना किसी की प्रेरणा के मन्दिर मे पूजनार्थ स्वय उपस्थित हो जाते। यह क्रम निर्बाध चलता रहता था।

पण्डितजी केवल विद्वान् ही नहीं थे अपितु समाज सुधारक एवं सहृदय व्यक्ति थे। रूढिवादी

। ं . र्जा शास्त्री शिक्षण कार्य कराते थे, जिनसे हमारा घर जैसा सम्बन्ध था।

मै जब पिताजी के साथ द्रोणगिरि अध्ययन हेतु आया उस समय विद्यालय मे छोटी अवस्था के छात्र ही अध्ययन करते थे मै ही सबसे बडी उम्र का छात्र था। मैंनें पूज्य पण्डितजी साहब के पास पहुचकर चरण स्पर्श किया और अपने पढने की इच्छा प्रगट की। पण्डितजी मुझसे प्रभावित हुए ओर इतनी अधिक उम्र मे पढने-की रुचि देखकर प्रसन्नता से मुझे आशीर्वाद देते हुए पढने के लिए भरती कर लिया और कहा कि अमरचन्द यहा तुम अपना घर ही समझो। यहा रहकर मन लगाकर अध्ययन करो मुझे प्रसन्नता हुई और मैं पण्डितजी के घर को अपना घर मानकर अध्ययन करने लगा।

मैं पढाई मे रुचि होने के कारण खूब मन लगाकर अध्ययन करने लगा और अपने विषयो मे आगे हो गया। पण्डितजी इससे प्रसन्न हुए और उन्होने मुझे सस्कृत प्रथमा की परीक्षा दिलाने की तैयारी प्रारम्भ की। पण्डितजी ने खूब प्रयत्न किया और मुझे प्रथमा परीक्षा देने के लिए तैयार कर दिया। मैने प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की फिर मध्यमा परीक्षा देने की सोची लेकिन छात्र सख्या कम होने के कारण द्रोणगिरि से नियमित परीक्षा फार्म नहीं भर पाने के कारण मुझे श्री गोपाल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, मोरेना मे प्रवेश करा दिया। वहा मैने अध्ययन किया और सस्कृत तथा धर्म की शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा प्राप्त करने के बाद 1967 मे मैंने दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो मे कार्य करना प्रारम्भ किया। मेरी रुचि धर्म शास्त्रो के अध्ययन मे रहने के कारण मै सतत अध्ययन करता रहा और शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त किया। चूकि मेरे पिताजी प्रतिष्ठाचार्य थे इससे उनकी इच्छा के अनुसार मैंने पूजा-पाठ, विधान, प्रतिष्ठा पाठ सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया और यह कार्य भी करने लगा। इस बीच जब भी मैं अपने पूज्य गुरुजी से मिला उन्हे बहुत सतोष हुआ मेरी प्रगति से। उन्नति का कारण पूज्य गुरुदेव प गोरेलालजी शास्त्री ही हैं। जिन्होने मुझे अपार स्नेह देकर स्वय पढाया और आगे पढाने के लिए मार्ग प्रोत्साहित ही नहीं किया साधन भी जुटाये। आज जो कुछ भी मैं हू गुरुदेव की कृपा का फल है। निश्चित रूप से उन्होनें मुझे अधकार से निकालकर प्रकाश की ओर अग्रसारित किया और मेरे उज्ज्वल भविष्य का निर्माण किया।

मै अपने पूज्य गुरुदेव के उपकारो से बहुत अधिक उपकृत हू और उनके चरणो मे सदैव विनत रहा हू। यद्यपि आज गुरुदेव नहीं हैं लेकिन उनकी जो छत्रछाया मेरे ऊपर रही है मै उसे कभी नहीं भूल सकता हूॅ, मेरे अनन्त प्रणाम है उन्हे।

• सेवा पुरी, खजुराहो (म प्र)

□□□

समस्या का निदान गुरुजी के पास ही पाया

— सेठ बाबूलाल दिवाकर

पूज्य प गोरेलालजी शास्त्री से मेरा परिचय पुराना रहा है जब मै अपनी जन्मभूमि पिडरुआ से द्रोणगिरि क्षेत्र की वन्दनार्थ जाया करता था। पूज्य पण्डितजी के सान्निध्य मे बैठकर, बातचीत कर, धर्मचर्चा कर परम शान्ति का अनुभव करता था। यद्यपि मुझे पण्डितजी के सान्निध्य मे उनके श्रीमुख से शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य तो प्राप्त नहीं हुआ। लेकिन जब भी द्रोणगिरि जाता उनके उपदेशो को सुनने का अवसर

अवश्य प्राप्त होता जिनके कारण मै बहुत प्रभावित रहा हू। हमारे चाचा श्री सेठ राजारामजी ने भी द्रोणगिरि मे रहकर कुछ समय तक आश्रम मे धर्मसाधना की, पण्डितजी के सद्उपदेशो को सुना इससे भी मेरा द्रोणगिरि से सम्पर्क बना रहा।

मुझे जब भी कोई समस्या हुई और उसका समाधान नहीं निकला तो मुझे द्रोणगिरि मे जाकर पूज्य पण्डितजी के सान्निध्य मे बैठकर, चर्चा कर अपनी समस्या का समाधान मिला। कठिन से कठिन समस्या का समाधान पूज्य पण्डितजी सरलता से, सहजभाव से, बडे स्नेह से कर देते थे। पढाई लिखाई सम्बन्धी समस्या के समाधान के तो पण्डितजी पारखी थे ही पारिवारिक समस्या के सुलझाने मे भी प्रभाव रखते थे। जब भी मेरा मन अशान्त हुआ द्रोणगिरि जाकर पण्डितजी के चरणो मे बैठकर अपूर्व शान्ति का अनुभव किया। पण्डितजी का सौम्य स्वभाव, सरलता, क्षमता, विद्वत्ता से मै बहुत प्रभावित रहा हू। सच्चे हितैषी, सच्चे मार्गदर्शक के रूप मे मैने हमेशा पण्डितजी को परखा है और उनसे दिशा प्राप्त की है। मैने अपने जीवन के निर्माण मे पूज्य पण्डितजी का बहुत बडा योगदान पाया है। मै उपकारी गुरु के प्रति अत्यन्त विनम्र भाव से उन सुखद क्षणो का स्मरण करता हुआ अपने श्रद्धा सुमन उन्हे अर्पित करता हू।

• दिवाकर ब्रदर्स
कुरवाई, विदिशा (म प्र)

□□□

अगाध ज्ञान के भण्डार

— पूर्णचन्द "सुमन"

परम आदरणीय श्रीमान् प गोरेलालजी साहिब का नाम तो पहिले भी सुना था पर किसी धार्मिक महोत्सव मे डोगरगाव मे आपके दर्शन हुए। अगाध ज्ञान के भण्डार, साधु स्वभाव, महान् गभीर, सहज सरल वाणी, सादा त्यागी के वेष मे उनकी मूर्ति को देखकर प्रभावित हुआ। जब मै एक आध्यात्मिक गीत प्रवचन के बाद बोल रहा था तो उन्होने कोई गलती को पकडा और सुधरवा दिया। वे महान् करुणामयी थे। उनसे चर्चा मे अधिक आनन्द आता था। ज्ञान की गरिमा के कारण परत दर परत विषय की विवेचना आलौकिक होती थी। ऐसा महान् व्यक्तित्व लिए वे बुन्देलखण्ड ही नहीं पूरे भारत के गौरव थे। आश्रम से आने वाले ब्रह्मचारी जनो से उनके विषय मे जानकारी मिला करती थी। उन्होने महान् पवित्र सिद्धक्षेत्र के गरिमामय विद्यालय मे अनेक शिष्यो का महान् उपकार किया और अपने जीवन की सार्थकता को लक्षकर अपने अत समय मे सगाधि मरण कर आत्मा का उद्धार किया है। ऐसे सत के चरणो मे बारम्बार प्रणाम है। जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है कि सद्गति को प्राप्त वह आत्मा महत्वपूर्ण भवो को प्राप्त कर सन्निकट ही मुक्ति की पात्र बने।

• सुमन कुटीर
जैन मदिर मार्ग, मैथिलपारा, दुर्ग (म प्र)

□□□

पितृवत् वात्सल्य प्रदाता

— भागवती जैन

पूज्यनीय गुरुवर प गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि को भावात्मक श्रद्धासुमन समर्पित करते हुए मुझे अपना स्वर्णिम अतीत याद आ रहा है। जब मैंने जून 1968 मे श्रुतपचमी के एक सादे समारोह मे गुरुवर के शिष्य रतनचन्द जेन के साथ विवाह बन्धन मे बधकर तप पूत सिद्ध भूमि द्रोणगिरि मे वधू के रूप मे जीवनयापन के लिए कदम रखा। तब गुरु गौरव, गुरु गरिमा और गुरु की महानता का मैने अनुभव किया। जब द्रोणगिरि मे रहने के समय तथा अनेक बार द्रोणगिरि पहुँचने पर गुरु और गुरु परम्परा का स्मरण मुझे कराया गया। निरन्तर समय—समय पर पूज्यनीय प कैलाशचन्द शास्त्री, डॉ दरबारीलालजी कोठिया, प्रो उदयचन्दजी जैन वाराणसी, प मक्खनलालजी शास्त्री, न्यायालकार, मोरेना के साथ विशेषरूप से पूज्यनीय गुरुवर पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि के अनेक आशीर्वाद, अपार स्नेह, सतत प्रेरणाओ तथा शुभाकाक्षाओ भरे पत्र अपने अनन्य शिष्य को प्राप्त होते रहे। सदा ही हमे अपने गुरुजन का पितृवत् वात्सल्य और सन्मार्गदर्शन मिलता रहा है। शिष्य को इससे अधिक प्रसन्नता और क्या हो सकती है।

गुरुजनो द्वारा प्रदत्त ज्ञान और निहित सुसस्कारो से ही मनुष्य के भावी जीवन की बुनियाद-नींव रखी जाती है। उस आधार शिला पर ही जीवन के प्रासाद का निर्माण किया जाता है। ऐसा जीवन निर्माण करने वाले गुरुजन पूजनीय पण्डितजी के चरणो मे मै अपने श्रद्धासुमन अर्पित करती हूँ।

□□□

सहृदय पण्डितजी

— चौधरी चूरामन असाटी

पण्डित गोरेलालजी हमसे आयु मे 20 वर्ष अधिक थे लेकिन हमारा और पण्डितजी का सम्बन्ध घनिष्ठ मित्र की तरह था। हमारा सबध पण्डितजी से घर जैसा था। पण्डितजी पढने मे बहुत रुचि रखते थे। इनकी रुचि तैरने मे बहुत थी। गाव के दोनो तरफ नदिया हैं उस समय वर्षा के मौसम मे नदियो मे बाढ आ जाने के कारण गाव का सम्बन्ध अन्य नगरो, प्रान्तो से टूट जाता था पण्डितजी बाढ से उफनती नदियो मे भी तैर जाते थे। बाढ का भय नहीं रहता था। बाढ मे डूबे हुए व्यक्तियो को तैरकर वे बचाते थे। उनमे दया की भावना बहुत अधिक थी। उस समय हमारी आर्थिक स्थिति खराब थी। पण्डितजी विशेष अवसरो पर हमारे घर आवश्यकता की वस्तुओ को भेज देते थे। साथी रहने के कारण पण्डितजी का मुझ पर बहुत उपकार रहता था। उनकीं दयालुता सहृदयता, परोपकार की भावना तो सभी को उपकृत करती थी। मेरे ऊपर उपकार के अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनको मैं कभी नहीं भूल सकता।

(1) मुझे पण्डितजी के बडे भाई बिहारी के कुछ पैसा देना था। बडे भाई बहुत खरे थे और गालियां तो उनके मुह से हमेशा निकलतीं रहतीं थीं। एक दिन बड़े भाई ने मुझसे पैसे मगाये और गाली के साथ ही मेरी गर्दन पकड ली। पण्डितजी उस समय चबूतरे पर बैठे लडको को पढा रहे थे उन्होने यह देखा और कोई अनर्थ न हो जाये इसके पूर्व ही वे दौडे—दौडे आये और कहा कि चूरामन को कुछ हो न जाये ये लो उसे जो पैसा देना है, उसे छोड़ो। पण्डितजी ने अपनी तरफ से पैसे देकर मुझे बचा लिया।

(2) पण्डितजी के पास आटा चक्की थी जिसे वे सजात मे चलाते थे। मेरे बढे भाई गोकुल का स्वर्गवास हो गया। तेरहवीं के लिए गल्ला इधर–उधर से आ गया। पीसने के लिए पण्डितजी ने कह दिया। चक्की पर पिसाई हो गई उठाने के लिए जब घर के आदमी गए तो सजात वाले ने बिना पैसे के उठाने नहीं दिया। काफी वातावरण भी हुआ। यह वातावरण पण्डितजी ने पाठशाला के चबूतरे से सुना वे लड़को को पढा रहे थे। एकाएक उठे और चक्की पर गए तथा सजात वाले से कहा कि पिसा हुआ सामान दे दो और पिसाई हमारे हिस्से मे डाल देना। ऐसे दु ख के मौके पर यह वातावरण उचित नहीं।

ऐसे अनेक अवसरो पर पण्डितजी ने हमारी सहायता की है जब भी कभी कोई चीज की आवश्यकता होती थी पण्डितजी उसकी पूर्ति करते थे।

पण्डितजी ने न केवल हमारी सहायता की बल्कि हम जैसे सैंकडो व्यक्तियो की सहायता की। हमारा पूरा गाव उनकी दयालुता सहृदयता से अभिभूत रहा है। गाव मे और आस पास के गाव मे पण्डितजी की जो पूँछ थी, प्रतिष्ठा थी, सम्मान था वह और किसी का नहीं था। पण्डितजी के बिछुड जाने से हम जैसे सैकडो व्यक्ति असहाय हो गये है।

• सेधपा (म प्र)

□□□

द्रोणगिरि विद्यालय के प्राण

— देवेन्द्रकुमार जैन शास्त्री

बुन्देलखण्ड जैन समाज मे जो कुछ भी धार्मिक ज्ञान की गगा प्रवाहित हो रही है उसका श्रेय पूज्य प्रात· स्मरणीय संत गणेशप्रसादजी वर्णी, पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज और श्रद्धेय प गोरेलालजी शास्त्री को जाता है।

श्री गुरुदत्त दि जैन सस्कृत विद्यालय द्रोणगिरि को उन्नत करने का गुरुतर भार पूज्य प गोरेलालजी ने एव क्षु चिदानन्दजी महाराज ने वहन किया। जहा पण्डितजी ने धार्मिक ज्ञान से छात्रो को संस्कारित किया वहीं क्षुल्लकजी ने सदाचरण का पाठ पढाकर उन्हे आत्म कल्याण की ओर प्रेरित किया।

पण्डितजी विद्यालय के प्राण थे। जब तक पण्डितजी द्रोणगिरि विद्यालय मे कार्यरत रहे, विद्यालय अनवरत रूप से चलता रहा। पण्डितजी के द्वारा सस्कारित छात्र दूसरे विद्यालयो मे अपने आदर्शों से अनुकरणीय रहे तथा कार्यक्षेत्र मे भी प्रतिष्ठित पदो को प्राप्तकर या सद्व्यवसाय करते हुए अपना जीवन सफल बना रहे हैं। मुझे भी पण्डितजी जैसे गुरुचरणो मे बैठकर शिक्षा प्राप्त कर अपना जीवन बनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। विद्यालय के अतिरिक्त पण्डितजी का व्यक्तित्व द्रोण प्रान्तीय जैन समाज मे भी सर्वोत्कृष्ट था, समाज मे व्याप्त आपसी विद्वेष, कुरूढियो एव कुत्सित प्रथाओ को बडी युक्ति और विद्वत्तापूर्ण उपदेशो से वे सहज ही दूर कर देते थे।

काव्य प्रतिभा के क्षेत्र मे भी आप धनी थे। आपके द्वारा रचित आध्यात्मिक पद, बारह भावना एवं द्रोणगिरि पूजन हमे भक्ति और मुक्ति की ओर प्रेरित करते हैं। नीति परक दोहे सामाजिक व्यवहार की शिक्षा देते है। ऐसे पूज्य गुरुवर्य के चरणो मे मेरा श्रद्धा सहित शत–शत नमन है।

• बड़ागाँव

जैनागम के आस्थावान् पुरोधा

— सिघई श्री नन्दनकुमार जैन

माननीय प श्री गोरेलालजी शास्त्री सरल स्वभावी, आध्यात्मिक रुचि सम्पन्न, आर्ष परम्परा के रक्षक, श्रमण संस्कृति के प्रतिभावान् विद्वान् थे। जैनदर्शन और जैनागम के प्रति महान् आस्था, अटल श्रद्धान एव विद्वत्ता की जीवत मूर्ति थे।

आपका जीवन सादगी से भरा था। सादा जीवन उच्च विचार आपका लक्ष्य था। आपकी समाज सेवाये अविस्मरणीय हैं। जितनी आपकी प्रभावकारी वाणी थी उतनी ही प्रभावक लेखनी थी। इनकी ज्ञान, साधना को देखकर ऐसा लगता था कि वे वास्तव मे मॉ सरस्वती के वरद पुत्र थे।

वाणी, लेखनी और रत्नत्रय के धनी होने के कारण आप बुन्देलखण्ड प्रान्त मे ही नहीं बल्कि समूचे भारत मे लोकप्रिय थे। आप जो कुछ कहते थे उसे अपने जीवन मे अनुसरण करते थे। उन्होने सामाजिक कुरीतियो, जॉति पॉति के भेदभाव, आपसी मनमुटाव तथा विसंगतियो को दूर कर समाज को नया मार्गदर्शन दिया। पण्डितजी के चरणो मे श्रद्धाजलि समर्पित करता हुआ मैं विनत हूँ।

● व्याख्याता, श्री महावीर दि जैन सस्कृत महाविद्यालय
सादूमल, ललितपुर (उ प्र)

□□□

दृढ़ संकल्प लिए एक ज्ञानदीप को नमन

— प्रेमचन्द शाह

जिस व्यक्ति मे सभी गुण मौजूद हों और उन गुणो का लाभ वह समाज को देता रहे, लोकहित की सोचता रहे, जनकल्याण को रचता रहे, उपकार के लिए फलता रहे तो ऐसा व्यक्ति सचमुच ही फलदार वृक्ष होता है। स्वय एक सस्था होता है। ऐसे ही श्रीयुत् प. गोरेलालजी शास्त्री विन्ध्याचल के मनीषी विद्वान्, समाज सुधारक, साहित्य सर्जक और सरस्वती सेवक थे।

लक्ष्मी की आभा सूर्य के समान तेज चमकदार होती है। जहा आख टिकती नहीं, चौंधयाती है। परन्तु सरस्वती की आभा सौम्य, साम्य, दीपक की ज्योति की भाति अधकार को हटाने का सार्थक प्रयास करती रहती है और आख को सहज सुहाती मद्धिम प्रकाश ज्योति देती है।

ज्ञान ज्योति का अंतर्नाद नहीं होता। न शोर होता है न कोलाहल। अंतर्प्रकाश होता है। इस युग मे अज्ञान तिमिर हटाने का सकल्प पूज्य प गणेशप्रसादजी वर्णी ने प्रारम्भ किया और इसी मिशन को आगे बढाया पण्डितजी जैसे विद्वानो ने। समाज सर्वत्र जागृत हुई। आगम की पहचान और श्रुत का सम्मान आज इसी का प्रतिफल है।

गुरुदत्तादि मुनियो की निर्वाण भूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि पण्डितजी की कर्मभूमि और साधना स्थली बनी। इस प्रान्त की माटी मे गिरि खण्ड की पाषाण शिलाओ पर श्रम—कर्म की उत्कीर्ण गाथा लिखने वालो को सदैव आदर के साथ स्मृत किया जाता रहेगा।

एक दीपक से दूसरे दीपक को ज्योतित करने का क्रम निरन्तर जारी रहा है और जारी रहेगा। यह सिलसिला बना रहे ऐसी भावना के साथ ऐसे दीयो को जो निरन्तर जलने—जलाने का प्रयास कर प्रकाश करते रहे। ऐसे ज्ञानदीप पण्डित गोरेलालजी शास्त्री को शत—शत नमन।

● अध्यक्ष प्रगतिशील लेखक सघ बीना (म प्र)

दो अनोखे दानी

— विश्वराम जैन

द्रोण प्रान्त उदारता, सहृदयता, विनम्रता मे अग्रणी रहा है। द्रोणगिरि (सेधपा) इसमे पीछे नहीं है। दानशीलता मे सेधपा के श्री गब्दू शाह के सम्बन्ध मे मैने सुना है। जिनका द्रोण प्रान्त मे साहूकारी का धन्धा था। बहुत दूर–दूर तक उनका नाम था और जनता उनसे अपनी–अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए धन लेती थी। फसल आने पर चुका देती थी। अपार अनाज का भण्डार था उनके समय मे देश मे दो बार अकाल पडा सन् 1899 मे एव सन् 1913 मे। ये दोनो भयकर अकाल थे। व्यक्तियो के पास खाने को नहीं था। जनता भूख से तडफ रही थी ऐसी स्थिति देख गब्दू शाह ने अपना अनाज का भण्डार जनता के लिए खोल दिया। द्रोण प्रान्त मे भरपूर गल्ला जनता मे वितरित कर जनता के जीवन की रक्षा की। गब्दू शाह ने बडी उदारता से कार्य किया और न केवल अनाज से ही जनता की रक्षा की बल्कि धन से भी जनता का सहयोग किया। अकाल के समय उनका दान राजाओ, महाराजाओ की तुलना मे महान् था।

द्रोण प्रान्त मे दूसरे दानी, जिसने विद्यादान से प्रान्त मे अज्ञान अन्धकार को दूर करके ज्ञान ज्योति को जलाया और अन्धकार को भगाने का उल्लेखनीय कार्य किया प्रान्त को तमसो मा ज्योतिर्गमय की ओर ले जाने वाले शिक्षा दानी श्रीमान् प गोरेलालजी शास्त्री थे। जिन्होने अज्ञान अन्धकार से ग्रसित जनता को ज्योति प्रदान कर उज्जवल भविष्य का निर्माण किया। 1928 से जब प्रान्त मे एक भी शिक्षण सस्था नहीं थी शासन की ओर से भी कोई स्कूल नहीं था प्राय जनता अनपढ थी ऐसे समय मे पूज्य वर्णीजी ने श्री गुरुदत्त दि जैन पाठशाला की स्थापना की और उसके माध्यम से श्री प गोरेलालजी शास्त्री ने ज्ञानज्योति के द्वारा जनता को प्रकाश दिया। पण्डितजी ने अपने कठोर श्रम से प्रान्त के बच्चो को शिक्षा दी, उन्हे विद्वान् बनाया। आज प्रान्त मे जो विद्वान् है, जो शिक्षा का प्रसार है उसमे पण्डितजी का ही योगदान है। मुझे भी पण्डितजी के चरणो मे बैठकर अध्ययन करने का, अपना जीवन निर्माण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

पण्डितजी द्रोणगिरि के ही निवासी थे और गब्दू शाह भी द्रोणगिरि के निवासी थे। इन दोनो महादानियो ने प्रान्त का मस्तक ऊँचा किया है। जहा अकाल से पीडित जनता की रक्षा मे गब्दू शाह का योगदान नहीं भुलाया जा सकता वहीं शिक्षादान या ज्ञानदान के क्षेत्र मे पण्डितजी का जो महत्वपूर्ण योगदान रहा है उसे कभी नहीं भुलाया जा सकता। ऐसे यशस्वी दानियो से प्रान्त धन्य हो गया।

□□□

द्रोणगिरि के लिए समर्पित

— पं. सुरेशचन्द जैन

आदरणीय प गोरेलालजी शास्त्री पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी के अनन्य सहयोगी रहे हैं। आपने धर्मग्रन्थो का मनन, चिन्तन, स्वाध्याय की एक स्वस्थ परम्परा उदासीन आश्रम मे स्थापित की। पण्डितजी के स्वाध्याय के समय जिज्ञासु साधुवर्ग को अपने प्रश्नो के समाधान प्राप्त होते रहे हैं।

आपने अपना पूरा जीवन द्रोणगिरि के उदासीन आश्रम, विद्यालय एव सिद्धक्षेत्र के लिए समर्पित कर दिया था। इन तीनो का विकसित रूप जो आज है वह आपके श्रम और लगन का ही फल है। द्रोणगिरि विद्यालय ने समाज को कई मूर्धन्य विद्वान् दिए हैं। आपके अनुशासन को, आपके प्रबन्धन की योग्यता को आज भी श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है। ऐसे निरभिमानी भद्र परिणामी, बुन्देलखण्ड के ज्योति स्तम्भ को मै अपनी श्रद्धाजलि अर्पण करता हूँ।

• नवापारा–राजिम रायपुर (म प्र)

हमारा वर्तमान पूज्य पण्डितजी की देन

– गुलाबचन्द जैन, आयुर्वेदाचार्य

मैं 1956 मे पूज्य पण्डित गोरेलालजी के सम्पर्क मे आया जब मेरे पिताजी ने मुझे और मेरे भाई फूलचन्द को द्रोणगिरि विद्यालय मे शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रवेश कराया।

द्रोणगिरि विद्यालय मे जब मैंने प्रधानाध्यापक पूज्य पण्डितजी को देखा तो उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ। उनके द्वारा शिक्षा देने का जो तरीका था उससे जड़ से जड़ छात्रो को भी आसानी से ज्ञान प्राप्त हो जाता था। मैंनें पूज्य पण्डितजी को जहा अत्यन्त सरल देखा वहीं अनुशासन मे कठोर भी पाया। उद्दड से उद्दड छात्र भी पण्डितजी के अनुशासन से भयभीत रहता था। प जी छात्रो से बहुत स्नेह रखते थे उनकी सभी प्रकार की देखभाल का ध्यान रखते थे। दैनिक चर्या द्वारा छात्र पूर्णरूप से अनुशासित रहते थे.।

पण्डितजी की कार्यक्षमता तो इतनी अधिक थी कि हम लोग आश्चर्यचकित रहते थे। जहां छात्रो के अध्यापन कराने मे पूर्ण समय का ध्यान रखते थे, वहीं तीर्थयात्रियो की व्यवस्था, नया निर्माण, जीर्णोद्धार का कार्य भी बडी तत्परता से करते थे। मैने अपने अध्यापन काल मे पण्डितजी को कभी फुरसत मे बैठा नहीं देखा। दिन भर विद्यालय क्षेत्र का कार्य करते देखा तो रात्रि मे समस्त आय व्यय का लेखा जोखा लिखते हुए देखा। पण्डितजी क्षेत्र के पैसे का पूर्ण सदुपयोग करते थे। व्यय किफायत से करते थे।

समाज सेवा के क्षेत्र मे भी पण्डितजी ने बहुत कार्य किया है। सामाजिक कुरीतियो को दूर करने के लिए सामाजिक चेतना जागृत की। सामाजिक चेतना के लिए स्वस्थ साहित्य का सृजन किया। जब हम पूज्य पण्डितजी के समग्र कार्यों का विहगावलोकन करते हैं तो पाते हे कि एक व्यक्ति ने शिक्षा, समाज सेवा, धार्मिक, साहित्य सृजन आदि का जो कार्य किया हे वह कोई विरला ही कर पाता है।

मै पूज्य पण्डितजी के अनन्य उपकारो से उपकृत हूँ और उनके प्रति अत्यन्त विनम्रता से नत हूँ।

• सागर (म प्र)

□□□

आदर्श विद्वान्

– जयकुमार जैन, एम. ए साहित्याचार्य

परम आदरणीय श्रद्धेय व्रती विद्वान् स्व श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री की साहित्य साधना, जिनवाणी सेवा, तीर्थ भक्ति एव समाज सेवा किसी से छिपी नहीं है। उनकी अनेक रचनाओ को देखने का सौभाग्य मिला। प्रत्येक रचना भावपूर्ण हृदयग्राही है। आडम्बर से दूर शान्त, ससार से भयभीत मोक्षमार्ग मे लगे हुए आपने जीवन भर धर्म, समाज एव तीर्थों की सेवा की। श्री सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि के विकास मे आप अग्रगण्य रहे हैं। साधु सन्तो की सेवा करते हुए स्वय व्रती बनकर आत्म साधना मे लीन रहे।

चतुर्मुखी प्रतिभा के धनी ऐसे महान् विद्वान् तीर्थ भक्त पूज्य पण्डितजी को मैं हृदय से नमन कर सविनय श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ।

• प्रधानाचार्य,

श्री महावीर दि जेन सस्कृत विद्यालय, सादूमल

□□□

मेरे प्रेरक गुरु

— जयकुमार जैन

मै श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन पाठशाला द्रोणगिरि मे अध्यापन हेतु 1946 मे पहुचा था। पूज्य पण्डित श्री गोरेलालजी शास्त्री के सान्निध्य मे उनके गुरु चरणो मे बैठकर 4–5 वर्ष तक अध्ययन किया। धार्मिक ज्ञान के साथ सस्कृत प्रथमा तक शिक्षा प्राप्त की। मेरे जीवन मे पूज्य पण्डितजी द्वारा दिए गए सस्कार ही मेरे जीवन के आधार बने और वर्तमान मे मै उन्हीं के दिए सस्कारो से अपना जीवन धार्मिक वातावरण मे व्यतीत कर रहा हूँ।

अध्ययन समय की एक घटना मुझे स्मरण है जब मुझे मोतीझरा हो गया। पूज्य पण्डितजी की देखरेख मे वैद्य नन्हेलालजी मालाकार का देशी उपचार प्रारम्भ हुआ। मेरा भोजन बन्द कर दिया गया परिचर्या के लिए चौबीसो घटे छात्रो की ड्यूटी लगा दी। एक दिन भूख की तीव्र वेदना से पीडित होने के कारण मैने अपने पास रखे सामान मे से कुछ खाने का प्रयास किया ड्यूटी में रहने वाले छात्र ने इसकी जानकारी पण्डितजी को दे दी। पण्डितजी बडे चिन्तित हुए कि कहीं रोग बढ न जाये और मुझे बडे स्नेह से समझाया कि अभी तुम ठीक हो जाओ फिर जो तुम खाना चाहोगे हम खिलावेगे। अभी तो वैद्य के अनुशासन मे रहकर अपना स्वास्थ्य ठीक करो मुझे समझाने के साथ ही पण्डितजी ने मेरी देखरेख के लिए कुछ और छात्रो का पहरा लगा दिया तथा एक व्यक्ति को हमारे घर घिनौची भेजकर पिताजी को बुला लिया। मेरे पिताजी स्वय अच्छे वैद्य थे पण्डितजी ने उनसे कहा कि अपने बच्चे को अपनी देखरेख मे रखकर उसका सही इलाज करो जिससे जल्दी स्वस्थ हो जाये। पिताजी ने अपनी देखरेख मे मेरा इलाज किया और पथ्य देकर मुझे स्वस्थ किया। पिताजी ने पूज्य पण्डितजी की छात्र के प्रति स्नेह और उसकी कुशल परिचर्या की भूरि–भूरि प्रशसा की। पण्डितजी का सभी छात्रो के प्रति पूर्ण वात्सल्य रहता था।

पण्डितजी का छात्रो के प्रति पुत्रवत् स्नेह, विद्यालय की दैनिक चर्या का सचालन, प्रेम से छात्रो को अध्यापन आदि आज भी हमारे लिए प्रेरणादायक है। यद्यपि पूज्य पण्डितजी आज हमारे सामने नहीं हैं फिर भी उनके प्रेरणादायक कार्य सदैव–सदैव के लिए स्मरणीय रहेगे। इसी भावना केसाथ मै पूज्य गुरुदेव को नमन करता हूँ।

• भू पू प्रधानाध्यापक
बड़ामलहरा

□□□

विलक्षण प्रतिभा

— सन्तोषकुमार जैन साहित्याचार्य

पण्डितजी विलक्षण प्रतिभा के धनी, उद्‌भट् विद्वान्, समाज सुधारक, सरल स्वभावी एवं एक गंभीर व्यक्ति थे। आपने जीवन भर समाज एव तीर्थ क्षेत्रो विशेषकर वर्णीजी के लघु सम्मेदशिखर द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र की महनीय सेवा की। मै पूज्य पण्डितजी को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

• श्री महावीर दि जैन सस्कृत महाविद्यालय
सादूमल

□□□

अनोखे प्रतिभावान पण्डितजी

— *श्रीमती मालती जैन*

धर्मदेशना के लिए समर्पित, जिनका तन–मन–धन रहा।
रूढिवादिता और कुरीतियो से जिनका सर्वत्र विरोध रहा।।
सेवा, शिक्षा हेतु जिनका ह्रदय, सदा ही भरा रहा।
ऐसे गुरुवर्य पण्डित गोरेलालजी को शत–शत वन्दन।।

परम पवित्र पुण्य भूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि की पावन रज मे जन्मे श्री गोरेलालजी शास्त्री धीरे–धीरे शैशवावस्था से बढते हुए विकास क्रम मे विद्यार्थी जीवन मे आ गए। यहीं से आपके ह्रदय मे विद्याध्ययन एव कर्मठता का सूत्रपात हुआ। धन्य हो गए आपके माता पिता ओर धन्य हुई मातृभूमि लघु सम्मेदशिखरी तीर्थ।

यह तीर्थ बुन्देलखण्ड की अद्वितीय शोभा मे चार चाद लगाता हुआ प्रतीत होता है, जब हम अतीत काल मे जाते है तो द्रोण प्रान्त की रूढिवादिता, अज्ञानता, अशिक्षा का भान होते हुए बढा आश्चर्य लगता है, परन्तु ऐसी विकट परिस्थिति मे भी एक महान् शिक्षक का दायित्व निभाया प गोरेलालजी शास्त्री ने। जो परम पूज्य राष्ट्र सत गणेशप्रसादजी वर्णी के अनन्य उपासक थे। वि स. 1985 मे द्रोणगिरि क्षेत्र पर श्री गुरुदत्त दि जैन पाठशाला की स्थापना हुई और सर्वप्रथम अध्यापक का कार्य सम्हाला पण्डितजी ने।

आपके निर्देशन मे और अध्यापन कार्यो से प्रभावित होकर छात्र निरन्तर अच्छी योग्यता को धारण किए हुए इस विद्यालय से निकलते रहे। आपने सभी को मत्र दिया – "सादा जीवन उच्च विचार"। जो आपके छात्रो मे अभी भी अक्षरश दिखाई पढता है। आपके उत्कृष्ट कार्यों का वर्णन मुझे अपने पूज्य श्वसुर पिताश्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन, द्रोणगिरि से सुनने को मिला। आप सिर्फ शिक्षण व्यवस्था पर ही ध्यान नहीं देते थे, बल्कि पाठशाला मे रहने वाले छात्रो की दैनिक दिनचर्या पर भी महत्व देते थे।

वे छात्रो मे स्वाबलम्बन, स्वाभिमान, अनुशासन, समय की पाबन्दी, धार्मिक चेतना, समय का सदुपयोग, कुशल वक्ता आदि गुणो को जन्म देते थे। शिक्षक राष्ट्र की सस्कृति के चतुर माली होते हैं। पण्डितजी इसके अपवाद नहीं थे। सचमुच ही उन्होने ऐसे बालको को शिक्षित कर उन्हे राष्ट्र सेवा के योग्य बनाया, जो यदि पण्डितजी से ज्ञान प्राप्त न कर पाते तो अनपढ ही रह जाते। पण्डितजी ने अपनी कर्तव्य निष्ठा, अटल निश्चय, कर्मठता, न्यायबुद्धि से आपने द्रोण प्रान्त को ही नहीं समस्त बुन्देलखण्ड का नाम रोशन किया।

आपका व्यक्तित्व ही अनूठा नहीं था अपितु कृतित्व भी महत्वपूर्ण रहा है। आप एक आशु कवि के रूप मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है। वास्तव मे आपका व्यक्तित्व एक प्रेरणा देने वाला है। कर्मठता का पाठ पढाता है। आत्म शक्ति और अनुशासन को सिखाता है। सदाचारिता की सुगध देता है , समाज सेवा का भाव जगाता है, एक जुझारू शक्ति को आश्रय देता है।

द्रोणगिरि की महान् पवित्र भूमि पर जन्मे, खेले और उसी की पवित्र भूमि पर ज्ञानपयस्विनी प्रवाहित करते हुए उसी मे लीन हो गए। ऐसे परम सचयी, ज्ञानी पण्डित गुरुवर्य गोरेलालजी को मेरा सादर वदन, बारम्बार नमन।

• सेधपा (छतरपुर) म प्र

जिनकी कृपा से मुझे प्रकाश मिला

— प्रेमचन्द जैन

मै द्रोणगिरि से करीब 20 कि मी दूर स्थित देहाती ग्राम ऐरोरा जिला टीकमगढ का निवासी था मेरी पारिवारिक स्थिति खराब थी, अशिक्षा थी। द्रोणगिरि मे पूज्य पण्डितजी के पास आया। बडे स्नेह से मुझे विद्यालय मे रहकर पढने की प्रेरणा दी मुझे पण्डितजी के स्नेहरूपी वातावरण ने आकर्षित किया और मै विद्यालय मे भर्ती हो गया।

सन् 1956 का समय था जब मै द्रोणगिरि विद्यालय मे पढने के लिए आया। पूज्य पण्डितजी छात्रो पर पुत्रवत् स्नेह रखते थे। छात्रो के अध्ययन के अलावा उनके स्वास्थ्य, भोजन, औषधि की हमेशा चिन्ता पण्डितजी को रहती थी।

पण्डितजी ने मुझे बाल बोध चारो भागो का, छहढाला, बारह भावना, मेरी भावना, पूजन विधि सिखाई। धार्मिक सस्कार दिए। आज मै अपने ग्राम से दूर देहरादून (उ प्र) मे सामाजिक सस्था मे कार्य कर रहा हूँ। यह क्षमता मुझे पूज्य पण्डितजी से प्राप्त हुई जिसके आधार पर समाज मे कुशलता से कार्य करता हुआ जहा अपने परिवार का पालन पोषण कर रहा हूँ वहीं अपने जीवन को पूज्य गुरुदेव द्वारा दिए हुए सस्कारो से सफल कर रहा हूँ। पण्डितजी ने ही मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर लाने मे महान् कार्य किया है। पण्डितजी ने जो उपकार मेरे ऊपर किया है वह जीवन भर नहीं भूलूगा।

पूज्य पण्डितजी को ही मेरे जीवन को सुखी बनाने का श्रेय है। यदि मै पूज्य पण्डितजी के सम्पर्क मे न आता तो मै आज इस स्थिति मे न होता। पशु से मनुष्य बनाने मे पूज्य पण्डितजी का विशेष योगदान है। मै पूज्य गुरुवर्य के चरणो मे नत हूँ।

• दिगम्बर जैन धर्मशाला
देहरादून (उ प्र)

□□□

जिनके चरणों में स्वतः मस्तक झुकता था

— भागचन्द जैन इन्दु

सागर छतरपुर मुख्य मार्ग पर गुलगज का शिखरबद जिनालय पूर्व मे यहा सम्पन्न जैन समाज का बोध सहज मे ही कराता है। व्यवसाय की दृष्टि से जब यहा की समाज कोतमा जैतहरी आदि स्थानो पर चली गई तथा पूजन प्रक्षाल के लिए जैन समाज का कोई भी व्यक्ति नहीं रहा तब प्रान्तीय समाज ने मन्दिर का समवसरण सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि भेज दिया और जिन मन्दिर खाली हो गया। मन्दिर का जब कोई अधिकारी नहीं होता तो पास पडोस के लोग उसे अपने उपयोग मे लेने लगते है यही हुआ इस भव्य जिनालय का पडोस मे रहने वाली मालिन गृहस्थी की आवश्यक सामग्री लकडी कण्डा आदि के रखने मे उपयोग करने लगी।

मेरा परिवार भी कोतमा जिला शहडोल मे रहता था। जब मै 10—11 वर्ष का था मेरी धार्मिक रुचि बढी और देवदर्शन करने की प्रवृत्ति हो गई बिना जिनेन्द्रदेव के दर्शन के ऐसा लगने लगा जैसे मैंने कुछ किया ही न हो। इसी बीच मेरा परिवार अपनी जन्मभूमि गुलगज वापिस आया। उस समय मेरी उम्र 17—18 की हो गई होगी। शिक्षा की कोई व्यवस्था न होने के कारण श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि द्वारा

लित उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बड़ामलहरा मे अध्ययन करने लगा। धार्मिक रुचि होने के कारण , ।ब मै गुलगज आता, जिनेन्द्र दर्शन की इच्छा होती लेकिन यहा मन्दिर तो था परन्तु जिनेन्द्र भगवान के बिना वीरान था। सबसे पहले तो मैंनें मन्दिर को देखा, मालिन का सामान हटवाया, साफ सफाई करवाई तथा जिनेन्द्र भगवान की स्थापना करा मन्दिर को मन्दिर के रूप मे प्रतिष्ठित करने का मंने संकल्प किया। लेकिन जब एक बार मन्दिर से जिनेन्द्र देव का समवशरण अन्यत्र चला जाय पुन॰ वापिस लाकर स्थापित करना मुश्किल होता है। फिर पूजन अर्चन के लिए समाज भी तो हो। सिर्फ मेरा मात्र घर था और उसमे मेरी ही धार्मिक रुचि थी बाकी के परिवार मे सभी छोटे थे। मै अध्ययन करता था। धार्मिक पुस्तको का स्वाध्याय भक्तामर आदि का पाठ कर अपना मन भर लेता था लेकिन मन्दिर मे जिनेन्द्र भगवान के समवशरण लाने का सकल्प था ओर उसके लिए प्रयासरत भी था लेकिन समाज मे सहयोगी भी तो चाहिए। जिसके आधार पर मन्दिर बनाया जा सके। क्योकि प्रतिदिन पूजन प्रक्षाल की व्यवस्था तो हो। मेरी लगन थी और सकल्प था मन्दिर का पुन जीर्णोद्धार कराकर स्थापित कराने का। मने समाज के लोगो से, सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि प्रबध समिति के प्रतिनिधियो से इस बाबत चर्चा की लेकिन किसी ने भी मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। मुझे अन्तिम सहारा मिला पूज्य पण्डित श्री गोरेलालजी का, मैंने उनके पास जाकर प्रथम तो उनकी चरण वन्दना की और अपना संकल्प पण्डितजी के समक्ष दुहराया। पण्डितजी बहुत प्रसन्न हुए कि पूजन अर्चना करने की भावना तो है जिसे पण्डितजी प्रान्त भर मे पैदा करना चाहते थे। अध्ययन कराते समय छात्रो मे सबसे पहिले यही सस्कार तो पण्डितजी डालते रहे है। मुझसे पण्डितजी ने कहा कि तुम्हारी भावना तो बहुत अच्छी है लेकिन पूजन की व्यवस्था पर प्रश्न किया क्योकि उस समय गुलगंज मे मै अकेला ही था। मैने पण्डितजी को पूर्ण आश्वासन दिया कि मैं जीवन भर पूजन करूँगा। बिना देवदर्शन पूजन के अन्न जल भी ग्रहण नहीं करूँगा। मन्दिर की पूर्ण व्यवस्था का दायित्व मैं स्वय निभाऊँगा। पण्डितजी को मेरे कथन पर विश्वास हुआ और उन्होने मुझे पूर्ण सहयोग करने का आश्वासन दिया। द्रोण प्रान्त मे तो पण्डितजी को सभी लोग बहुत आदर सम्मान से देखते थे उनके वचनो को अलघनीय मानते थे। पण्डितजी ने पहले मन्दिर के जीर्णोद्धार कराने की चर्चा की लेकिन पैसा कहा से आये उन्होने समाज के लिए अपील निकाली और अधिक से अधिक सहयोग करने के लिए लिखा। मेरा ह्दय गद्‌गद् हो गया, मुझे सहारा मिला जिनेन्द्र भगवान् के दर्शनो की व्यवस्था मे पण्डितजी का। मैने पण्डितजी के चरण स्पर्श कर वहीं से अकेला ही प्रान्त मे समाज से सहयोग लेने हेतु भ्रमण करने का सकल्प लिया पूज्य पण्डितजी द्वारा लिखित समाज के नाम अपील का सहारा था ही। जहा–जहा गया, पूज्य पण्डितजी की अपील पढी और समाज ने उदारता के साथ सहयोग किया। मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया और द्रोणगिरि से यहा का समवशरण पण्डितजी के ही प्रयास से गुलगज लाकर समारोह के साथ स्थापित किया। मेरा मन मयूर जिनेन्द्र भगवान् के समवशरण के दर्शन करके नाच उठा। पूज्य पण्डितजी के अनन्य उपकारो से मैं अनुग्रहीत हूँ जिसके कारण मै पूजन अर्चन का सुयोग्य पा सका।

आज गुलगज मे मन्दिर की व्यवस्था के कारण आस पास की जैन समाज के 30 जैन घर होना पण्डितजी की ही उदारता और सहयोग का ही फल है। पूज्य पण्डितजी का व्यक्तित्व ऐसा रहा है कि उनके पास जाते ही मस्तक चरणो मे अनायास ही झुकला था। ऐसे उपकारी विद्वान् से मैं तो बहुत–बहुत उपकृत हूँ, उनके चरणो मे नत हूँ, विनत हूँ, प्रणत हूँ।

• महावीर ट्रेडर्स
गुलगज, छतरपुर (म प्र)

अभिनन्दन है इनका

— भागचन्द जैन शास्त्री

व्यक्ति का अभिनन्दन उनके द्वारा किए गए सत्कार्यों से होता है। पूज्य पण्डित श्री गोरेलालजी शास्त्री का सारा जीवन ही अध्यापन, समाज सेवा व आत्म साधना मे बीता। वह निश्चित रूप से अभिनन्दनीय है। जिसने जीवन भर समाज को दिया ही दिया हो, अपने कार्यों के माध्यम से समाज को उठाने मे, उसे सन्मार्ग पर लाने मे, अज्ञान अन्धकार को दूर करने मे महनीय योगदान दिया हो, समाज उनके कार्यों से उपकृत हुई हो जिसने कभी प्रतिफल की भावना से कोई कार्य न किया हो और न ही अपने कार्यों का मूल्याकन ही चाहा हो। समाज का प्रबुद्ध वर्ग ऐसे व्यक्तियो का मूल्याकन स्वय ही करता है और पत्र--पुष्प--फल से उनके कार्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है। वास्तव मे ऐसे महापुरुष के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन से उनकी नहीं समाज की ही गरिमा बढती है।

पण्डितजी प्रशसाओ से, सम्मानो से बहुत दूर रहते थे। यशोलिप्सा तो कभी भी नहीं रही। किसी भी समारोहो मे अवसरो के चित्रो का सुलभ न होना तथा पण्डितजी से सम्बन्धित प्राय चित्रो का अभाव प्रचार प्रसार से दूर रहने का द्योतक है।

पण्डितजी ने अभिनन्दन, प्रशसा कभी चाही नहीं लेकिन उनके उपकारो से उपकृत समाज तो अपना कर्तव्य करती ही। समाज ने पण्डितजी का अनेको स्थानो पर अभिनन्दन किया। इस श्रृखला मे कुछ समारोहो का उल्लेख मात्र मै यहा कर रहा हू।

पण्डितजी की कर्मस्थली जन्म से लेकर अत तक द्रोणगिरि ही प्रमुख रूप से रही है। इससे उनका प्रथम सम्मान समारोह द्रोणगिरि मे पण्डितजी के मणिपुर आसाम से वापिस आने पर द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा संघ, स्नातको एव द्रोण प्रान्तीय समाज ने किया। यह समारोह तत्कालीन अखिल भारतवर्षीय विद्वत् परिषद् के अध्यक्ष माननीय प्रवर वशीधरजी व्याकरणाचार्य बीना की अध्यक्षता मे 2 जून 1967 को सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर विशाल समारोह मे सम्मान पत्र समर्पित करते हुए उन्हे विद्याभूषण की उपाधि से अलकृत किया गया।

इस सम्मान के बाद पूज्य पण्डितजी का सम्मान जगह—जगह प्रान्तीय समाज ने किया। वी नि. स 2413 मे घुवारा, सन् 1973 मे वकस्वाहा, वी नि स 2419 मे जैन समाज बडामलहरा ने अभिनन्दन समारोह का आयोजन किया और इस अवसर पर उन्हे व्रती वाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किया।

सन् 1977 को पावन भूमि सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि मे विशाल चौबीसी जिनालय का निर्माण पूर्ण होने पर प्रतिष्ठा का कार्यक्रम आयोजित हुआ इसी अवसर पर श्री गुरुदत्त दि जैन सस्कृत विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती समारोह का आयोजन हुआ। समारोह श्रावक शिरोमणि माननीय साहू शान्तिप्रसादजी देहली के मुख्य आतिथ्य मे मनाया गया। इस अवसर पर स्वर्ण जयन्ती स्मारिका का लोकार्पण भी हुआ। इस समारोह मे गुरुदत्त दि जैन सस्कृत विद्यालय के पद पर श्रीमान् गोरेलालजी शास्त्री का भी उनकी सेवाओ के उपलक्ष मे उपस्थित जन समूह मे समारोह मे अध्यक्ष श्रीमान् समाज भूषण सेठ भगवानदासजी ने अभिनन्दन पत्र समर्पित करते हुए सम्मानित किया। वयोवृद्ध विद्वान् डॉ दरबारीलालजी कोठिया ने पण्डितजी की

सेवाओ का उल्लेख किया। इस अवसर पर विद्यालय के विद्वान् स्नातको ने भी पण्डितजी के प्रति अपनी आदराञ्जलि प्रस्तुत की।

मार्च 1978 के सदगुवा जिला दमोह, कालापानी जिला छतरपुर, वाकल जिला जबलपुर, छतरपुर, नौगाव, बम्हौरी, कोतमा, शाहगढ, जैतहरी, बालाघाट, डोगरगाव आदि जगह की समाजो ने पण्डितजी के प्रवचनो, उपदेशो एव कार्यक्रमो से लाभान्वित होकर अभिनन्दन किया। पण्डितजी द्वारा निस्वार्थभाव से सार्वजनिक हित के लिए जो कार्य किए गए हैं वे कार्य ही पण्डितजी के सम्मान के लिए महत्वपूर्ण हैं। पण्डितजी का सम्पूर्ण जीवन ही परोपकार, ज्ञान प्रचार, धर्म प्रचार के लिए समर्पित रहा है। जो उल्लेखनीय कार्य पण्डितजी ने किए हैं वह विरले व्यक्ति ही कर पाते है। पण्डितजी ने कोई भी कार्य किसी अपेक्षा से नहीं किया स्वत की प्रेरणा से ही किया। इसी कारण पण्डितजी अब जनमानस के स्मृति पटल पर हैं। उनके द्वारा किए कार्य आज की पीढी के लिए दिशा सूचक हैं, मार्गदर्शक है। उनका सच्चा अभिनन्दन तो उनके कार्यो पर चलना, उनके कार्यों को आगे बढाना ही है। हम ऐसे उपकारी की वन्दना करते हैं और मन से नमन करते है।

• प्रधानाध्यापक (सेवानिवृत्त)
बडामलहरा, छतरपुर (म प्र)

□□□

प्रभावशाली व्यक्तित्व

– *कपूरचन्द्र घुवारा* (पूर्व विधायक)

बडामलहरा विधानसभा क्षेत्र मेरा कार्यस्थल होने के कारण मुझे राजनैतिक एव सामाजिक कार्यो से द्रोणगिरि कई बार जाना पड़ता था। अनेक अवसरो पर वहाँ पण्डित गोरेलालजी शास्त्री से मेरी मुलाकात हुई। नि सन्देह वे विद्यालय एव क्षेत्र की उन्नति के लिए समर्पित थे। स्थानीय और प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी उनका क्षेत्रीय जनता पर भी अच्छा प्रभाव था। कुछ दवग किस्म के व्यक्तियो की क्षेत्र के प्रति कुदृष्टि रहती थी, परन्तु जब तक पण्डितजी रहे तब तक वैसे लोगो की दाल नहीं गल सकी। पण्डितजी की सेवाओ के दौरान वह क्षेत्र भीषण डाकुओ की समस्याओ से आक्रान्त था परन्तु पण्डितजी के प्रभाव को अत्यन्त क्रूर डाकू भी जानते थे और उनका सम्मान करते थे। यही कारण है कि उनके रहते द्रोणगिरि क्षेत्र पर दर्शनार्थ आने-जाने वाले तीर्थयात्रियो को डाकुओ से सम्बन्धित समस्याओ को नहीं झेलना पडा।

क्षेत्र और विद्यालय के प्रति जिस निष्ठा और लगन से उन्होने कार्य किया उसका विकल्प भविष्य मे मिलना मुश्किल है। वस्तुत उनकी स्मृति को बनाये रखना ही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

• घुवारा सदन, राजमहल मार्ग
टीकमगढ़ (म प्र)

□□□

बुन्देलखण्ड के गौरव : स्व. पं. गोरेलालजी शास्त्री

— गुलाबचन्द्र पुष्प, प्रतिष्ठाचार्य

स्व पण्डित गोरेलालजी शास्त्री से मेरा परिचय लगभग पचास वर्ष पूर्व हुआ था। द्रोण-प्रान्त मे पहले से ही मैने उनकी ख्याति सुन रखी थी। उस समय सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एव आध्यात्मिक क्षेत्र का कोई भी जैन समाज से जुडा हुआ मुद्दा उनके सहयोग-सलाह के बिना पूर्ण नहीं हुआ करता था। बुन्देलखण्ड मे द्रोण प्रान्त से बाहर भी समाज के विवादग्रस्त मामले निपटाने के लिए उन्हे आहूत किया जाता था। जैनेतर समाज मे भी उनकी जैन समाज के समान ही मान्यता थी। पण्डितजी मे दूसरो को प्रभावित करने की अपूर्व क्षमता थी। देश, काल और पात्र के अनुसार वे मनोवैज्ञानिक ढग से उसका मूल्याकन कर किसी भी समस्या का सहज समाधान ढूढ निकालते थे। पण्डितजी की कथनी और करनी मे अन्तर नहीं था।

पण्डितजी का हृदय नारिकेल के सदृश था। ऊपर से कठोर दिखते हुए भी अदर से अत्यन्त सरल थे। एक बार मै सिदगुवॉ मे सिद्धचक्र विधान करवा रहा था। उस समय पण्डित पन्नालालजी एव पण्डित गोरेलालजी शास्त्री का मुझे सान्निध्य प्राप्त हुआ। वहॉ घटित एक छोटी सी घटना का मुझे स्मरण है। रात्रि मे पण्डितजी ने माचिस की तीली जलाकर दीपक जलाया और अनजाने मे उन्होने जलती हुई तीली जहॉ मै रजाई ओढकर सोया हुआ था, उस ओर फेक दी। रजाई के जलने से उत्पन्न ताप के कारण मेरी नींद टूट गई। जब आग लगने के कारण की खोज की गई तब पण्डितजी का ध्यान मेरी ओर आकर्षित हुआ और उन्हे बहुत पश्चाताप हुआ। प्रमाद से उत्पन्न घटना के लिए उन्होने प्रायश्चित किया और जब भी मै उनसे मिलता वे इस घटना के लिए विनम्र भाव से खेद अवश्य प्रकट करते।

धार्मिक, आध्यात्मिक आदि प्रसगो पर अनेक बार उनसे चर्चा करने का अवसर मिला। सैद्धान्तिक शैली मे जो उनसे परामर्श मिला वह मेरे मानस पटल पर अब भी अकित है। वर्णीजी द्वारा ख्याति प्राप्त लघु सम्मेदशिखर द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर रहकर उन्होने क्षेत्र एवं विद्यालय को समर्पित भाव से समुन्नत एव समृद्ध बनाया। निश्चितरूप से वे बुन्देलखण्ड के गौरव थे।

• पुष्प भवन
टीकमगढ़ (म प्र)

□□□

श्रद्धाञ्जलि पुष्प

— वैद्य फूलचन्द जैन

श्रद्धेय गुरुवर्य पण्डित श्री गोरेलालजी शास्त्री की छत्रछाया पाकर उनके सान्निध्य मे मैने विद्या अध्ययन का शुभारम्भ किया था। मुझे उस समय जो ज्ञान व संस्कार श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन विद्यालय द्रोणगिरि मे प्राप्त हुये वे आज भी मेरे जीवन निर्माण मे नींव के पत्थर का काम कर रहे है। श्रद्धेय गुरुवर्य जैनदर्शन, न्याय सस्कृत साहित्य एव व्याकरण के उद्‌भट विद्वान् थे। उनमे शास्त्र बोध की अद्‌भुत प्रतिभा

थी। छात्रो को पढाते समय भी विषय को इतनी सरलता व सहजता से समझाते थे कि विद्यार्थी उकताते नहीं थे। जिस किसी भी विषय का ज्ञान वे छात्रो को कराते थे उसमे शका की किचित्मात्र भी गुजाइश नहीं रहती थी। सिद्धक्षेत्र सम्बन्धी एव सामाजिक अनेक उत्तरदायित्वो का निर्वाह करके भी वे स्वाध्याय मे प्रमाद नहीं करते थे। मानो उन्हे अध्ययन–अध्यापन, स्वाधीन स्वाध्याय, सामायिक आदि का व्यसन था। जिनवाणी की आराधना, चारित्र का पालन और नित्यप्रति जिनेन्द्र पूजन आदि करना उन्हे अत्यन्त प्रिय था। जैन सिद्धान्तो मे इनकी अत्यधिक दृढ श्रद्धा थी। नित्य नियमो का पालन वे अत्यधिक कठोरता से करते व कराते थे।

पूज्य पण्डितजी की विद्वत्ता बुन्देलखण्ड मे ही नहीं पूरे हिन्दुस्तान मे प्रसिद्ध थी। उनके अनेको शिष्य पूरे प्रान्त व देश मे मौजूद है जो सन्मार्ग पर आरूढ होते हुये आज भी समाज व राष्ट्र की सेवा मे लगे हुये है।

अनेको प्रतिभाओ को तराशने वाले, उदासीनवृत्ति के धारी, त्यागी–तपस्वी एव प्रतिभावान् दार्शनिक विद्वान् पण्डितजी अद्वितीय साहस के धनी थे उनके आदेश को प्रायः सभी बिना किसी सकोच के सहजता से मान लेते थे ऐसे अपने गुरुवर्य को शतश नमन करते हुये मै उन्हे श्रद्धाञ्जलि पुष्प समर्पित करता हूँ यद्यपि गुरु की महानता को ऑक पाना मेरे वश की बात नहीं है केवल सूरज को दीपक दिखाने जैसा प्रयास है। तथापि श्रद्धा सुमन समर्पण की भावना को रोक पाना मेरे वश मे नहीं हैं। अत अपने हृदय के उद्‌गार ही श्रद्धाञ्जलि पुष्प समझकर उनके चरणो मे समर्पित कर रहा हूँ।

विद्यार्थिवन्द्य करुणैकसिन्धो व्याख्यानवाचस्पतिनामधारिन्।
श्रीमन् मदीयपूज्य श्रद्धाञ्जलिमह ते समर्पयामि॥

• प्रधान चिकित्सक
श्री दिगम्बार जैन औषधालय
पण्डित चैनसुखदास मार्ग (बोरडी का रास्ता)
जयपुर–3

❑❑❑

बुन्देलखण्ड के गौरव थे पण्डित गोरेलालजी

— अखिल बसल

श्रद्धेय पण्डित गोरेलालजी आज हमारे बीच नहीं है परन्तु उनके द्वारा स्थापित गुरुदत्त विद्यालय एव उदासीन आश्रम का परिकर उनकी स्मृतियो को सजोये आज भी हमे उनकी याद दिलाता है। सेधपा द्रोणगिरि को अपना कार्यक्षेत्र चुनकर पण्डितजी ने बुन्देलखण्ड की पवित्र भूमि का गौरव बढाया है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी पण्डितजी का सादगीपूर्ण जीवन, धर्म के प्रति अटूट आस्था और शिक्षा के प्रति सर्वस्व समर्पण एक मिशाल थी। क्षेत्र के दुर्दान्त दस्यु भी उनके प्रति श्रद्धा भाव से नत मस्तक रहते थे। उन्होने अपनी शिष्य परम्परा मे अनेक बहुमूल्य रत्न समाज को दिये है। उनके इस उपकार को युगो–युगो तक याद किया जायेगा। ऐसे विरल व्यक्तित्व को मेरी कोटिश श्रद्धाञ्जलि।

• सम्पादक समन्वय वाणी
स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयुपर (राज)

❑❑❑

काव्यांजलि

ज्योतिर्मय को शत शत प्रणाम

– प्रशान्त जैन

अब भी दिखता है मुझे,
तग गलियो मे फैला अधकार।
जिसके नीचे पल रहा मनुज का,
मत्सर कुत्सित अंहकार।।

श्रम किया तोड़ने का जिसने,
अज्ञान तिमिर की दीवारे।
आलोकित करने घर घर मे,
भेजी प्रकाश की मनुहारें।।

कुत्सित कुरीतियो पर समाज की,
जिसने सबल प्रहार किया।
भूले भटके अनपढ अनगढ को,
करुणा का उपहार दिया।।

मन का कालुष्य हटा, बुझते
जीवन में ज्योति नई डाली।
मुरझाये आनन पर जिसने,
चमका दी गौरव की लाली।।

हम उस महान् मानव के उपकारो
के प्रति है नत मस्तक।
निर्लोभ और अतिशय पवित्र,
थी जिसका जीवन इक पुस्तक।।

हम भूल नहीं पाते उनकी,
उस तप्त स्वर्ण की काया को।
सन्तप्त ह्रदय पा जाते,
शीतल सुनीर सी छाया को।।

निश्चल मन को जिसने उन्नति के,
पथ पर चढना सिखलाया।

बाधाओ मे विपदाओ मे,
जो नहीं तनिक भी घबराया।।
जलती मशाल जो थमा गया,
हम सबके दुर्बल हाथो मे।
हम उसे जलाते रहे सदा,
जीवन के लघु फुटपाथो मे।।

जिसकी श्रद्धा विश्वास अडिग,
हम लिये राह पर बढ आये।
जीवन का जान सके रहस्य,
अनुभंव की भाषा पढ आये।।

जिसने कुरीतियो के ककर,
पत्थर उखाडकर दूर किये।
मद मत्सर माया के बधन,
समता ममता से चूर किये।।

हर घर मे होते लाल बाल,
पर ऐसा कोई लाल नहीं।
जैसे थे गोरेलाल, लाल
विरले मिलते हैं कभी कहीं।।

है गर्व हमे उन पर जिनने,
कुछ लालो को चमकाया है।
जिनने समाज की गरिमा को,
गौरव को और बढाया है।।

उस लाल बिना घर का ऑगन,
मन करता सूना सूना है।
यह उमडी यादे भर देतीं,.
अब भी मन मे साहस दूना।।
गोविन्द और गुरु दोनो मे,
जो घुल मिलकर रहता अनाम।
अनबुझ प्रशान्त उस दीपक को,
ज्योतिर्मय को शत शत प्रणाम।।
□□□

गुरुवर पण्डित गोरेलालजी शास्त्री

— श्री विजयकुमार शास्त्री

सरस्वती के वरद पुत्र पण्डित श्री गोरेलाल,
प्रान्तिक जैन जगत् के जीवन शास्त्री गोरेलाल।
व्रती ब्रह्मचारी, त्यागी विद्वद्वर गोरेलाल,
सिद्धभूमि द्रोणगिरि के उन्नायक गोरेलाल।।

यह है पुण्य नाम वह जिसने विद्या दीप जलाया,
प्रतिभा बीजो को श्रम जल से, सींचा और उगाया।
नयी चेतना भर समाज को जिसने सदा जगाया,
गिरे हुओ को नयी दिशा दे, आगे सदा बढाया।।

जीवन के प्रात मे जिसने अपना मार्ग बनाया,
यौवन मे सोत्साह सरस्वती को आराध्य बनाया।
अन्धकार मे दीपक बन, जिसने प्रकाश फैलाया,
तत्त्वज्ञान की दिशा प्राप्त कर निज को स्वय जलाया।।

गुरुदत्त जैन विद्यालय के वे अतिशय जीवन दाता,
जो कुरीतियॉ थीं समाज मे उनके बने प्रधाता।
पुण्य धरा श्री द्रोणगिरि के वे सर्वांग विकासी,
गुरुवर गोरेलाल शास्त्री निज चारित्र विकासी।।

बाधाये क्यो बनती बाधक, रहे सदा जब साधक,
हॅस हॅस सब कुछ झेला तुम तो थे निजात्म आराधक।
सरस्वती जिनवाणी मॉ पूजन मे जीवन बीता,
कुछ भी कारुण्य—कलश जीवन मे कभी रहा न रीता।।

कितने ॲधियारो को तुमने नव प्रकाश था बॉटा,
मलहम लगा सहानुभूति की औरो का दुख बॉटा।
देकर के अपनत्व परायो को आत्मीय बनाया,
जगा—जगा सोयो मे तुमने नव उत्साह जगाया।।

समय शिला पर जिसने अपना नाम अमिट कर डाला,
भावुक हृदय जिन्होने सत्साहित्य सुरुचि लिख डाला।
उदासीन जीवन अपनाकर जिनवाणी को छाना,
जिसका जीवन लक्ष्य रहा, श्रुत का अमृत पी जाना।।

काया तो नश्वर है सबकी कर्म अमर रहते हैं,
देह नहीं सत्कार्यों से ही पुरुष अमर, रहते हैं।
महापुरुष तुम सदा अमर हो, सम्यग्ज्ञान विकासी,
आत्मा के अमरत्व पान मे सदा रहे विश्वासी।।

धरा–धाम को छोड़ चुके, अब स्वर्गधाम विश्रामी,
लक्ष्य लिए अमरत्व प्राप्ति का चिन्तन मे अविरामी।
यहा अकामी रहे वहा फिर कैसे भव सुख वामी,
है विश्वास वहा पर भी तुम हो स्वतत्व विश्रामी।।

दीपक ज्यो जल–जल कर सबको नव प्रकाश देता है,
पर हित मे ही निज जीवन सब यो ही खो देता है।
निज समाज व धर्म उसी के लिये जिये जीवन भर,
अपने को नि शेष कर दिया, नहीं रखा कुछ निज पर।।

अब तो मात्र परोक्ष सदा ही श्रद्धा नमन तुम्हे है,
श्रद्धा सुमन चढाने भर का ही अधिकार हमे है।
भक्ति पीठ पर ही अब तुमको हंम बैठा पावेगे,
हे गुरुवर अब तुम्हे सुमन मे ही हम भर पावेगे।।

• श्री महावीरजी (राजस्थान)

□□□

स्व. पूज्य पं. गोरेलालजी शास्त्री, द्रोणगिरि
के चिर वियोग में श्रद्धांजलि

— पं. धरणेन्द्रकुमार शास्त्री

द्रोण प्रान्त के लाल "लाल" ने, ऐसा अलख जगाया।
गुणवत्ता के द्वारा मानो, ज्ञान का दीप जलाया।।

फिर उनने विद्यालय द्वारा, जग जागृति करवाई।
अन्धकार मे ज्ञान किरण बन, ज्ञान की ज्योति जलाई।।

फिर क्या था हो गया अस्त, अज्ञान अध का घेरा।
ज्ञान किरण की आभा द्वारा, हटा तिमिर का फेरा।।

रूढिवाद हट गया शीघ्र था, विधवाओ का क्रन्दन।
बाल वृद्ध अनमेल ब्याह पर, लगा दिया था बन्धन।।

गिरते स्तर को सभालने, पुन प्रयत्न कीना था।
मानव के कल्याण हेतु, यह सत्प्रयत्न कीना था।।

गॉव–गॉव अभियान चलाया, अत्याचार हटेगा।
दीन हीन पर मनमानी का, अब नहीं जोर चलेगा।।

गुरुवर ने जितना कुछ कीना, क्या हम भूल सकेगे।
उपकारी के उपकारो को, कैसे चुका सकेगे।।

किन्तु काल कितना कठोर हे, करता है मनमानी।
आज हमारी आशाओ पर, फेर दिया है पानी।।

● हटा, दमोह (म प्र)

□□□

आज नहीं तुम, किन्तु शेष है ...

— किशोरीलाल जैन "किशोर"

आज नहीं तुम, किन्तु शेष है, यश की अमर कहानी।
मध्यांचल मे गूँजी, विकसी, कृति, व्यक्तित्व प्रणामी।।

तुम चमके धवलित मयक से, हरा निशा अंधियारा।
शान्ति सुधा देने समाज को, तुमने हाथ पसारा।।

पाण्डित्य का सूर उगाया, निज पौरुष के द्वारा।
स्वातम रस ले, पिया, पिलाया, कुन्दकुन्द रस धारा।।

कर्तव्यो के दिशा बोध से, दिया मरु थल पानी।
आज नहीं तुम, किन्तु शेष है, यश की अमर कहानी।।

सौम्य, सरलता, सदाचार के, तुम थे मूर्त्त पुजारी।
झूठ, फरेबी, मायाचारी, घात लगाकर हारी।।

तुम थे "गोरेलाल शास्त्री" जन्मजात अवतारी।
कमल उगाया तुमने ऐसा, अनुकृति का भण्डारी।।

गत स्मृतिया सकल बाटती, फोटू बनकर दानी।
आज नहीं तुम, किन्तु शेष है, यश की अमर कहानी।।

● बकस्वाहा
छतरपुर (म प्र)

□□□

तीर्थ धरा के गौरव

– आशु कवि गौकुलचन्द जैन "मधुर"

वाणी मृदुल सयमी जीवन, मन के बडे विशाल।
तीर्थ धरा के गौरव पण्डित श्रीमन् गोरेलाल।।

मध्यप्रदेश देश भारत मे, जिला छतरपुर आता।
बड़ामलहरा से सीधा ये, रोड द्रोणगिरि जाता।।
सिद्धक्षेत्र जग जाहिर, लघु सम्मेदशिखर कहलाता।
गुरुदत्तादि मुनीशो की, युग युग से याद दिलाता।।
वर्णीजी बाबा ने रक्खा सदा यहां का ख्याल।
तीर्थ धरा के गौरव पण्डित श्रीमन् गोरेलाल।।

इसी मही की माटी ने, ये लाल अनूठा पाया।
भारत भर मे कीर्तिमान्, जिसने अपना फहराया।।
थे उद्भट विद्वान् आपने, चमत्कार दिखलाया।
निज कौशल से कई छात्रो को है विद्वान् बनाया।।
जिनवाणी के सच्चे साधक, जीवन किया निहाल।
तीर्थधरा के गौरव पण्डित, श्रीमन् गोरेलाल।।

निर्भय होकर सब कुरीतियो पर निज कलम चलाई।
धर्माडम्बर व कुप्रथाये, किंचित् रास न आई।।
श्री गुरुदत्त महाविद्यालय मे अध्यापन कीना।
दृढ विचार, आदर्श पुरुष की भूले याद कभी ना।।
सत् कार्यों मे बिता दिया है, पूरा जीवन काल।
तीर्थ धरा के गौरव पण्डित श्रीमन् गोरेलाल।।

पण्डितजी का पावन जीवन, उज्जवल और खरा है।
रची अनेको काव्य पुस्तके, जिनमे सार भरा है।।
अपने बीच नहीं हैं अब वो, पर स्मृति है शेष।
पर है जीवित अभी आपके, कार्य और उद्देश्य।।
श्रद्धा सुमन समर्पित तुमको, "मधुर" नमाता भाल।
तीर्थ धरा के गौरव पण्डित श्रीमन् गोरेलाल।।

• हटा, टीकमगढ़ (म प्र)

□□□

हे साधक

— बाबूलाल गुप्त "गुप्तेश"

तुम सा साधक द्रोणभूमि ने पाया पहली बार।
तुम्हे साधना की धरती का वन्दन बारम्बार।।

अन्तर्ज्ञान, साधना, सयम आत्मशुद्धि के द्वारा।
सद्‌गृहस्थ से मुक्तिमार्ग पर,' मोडी जीवनधारा।।
करामलकवत् मुक्ति दिखायी हे जिनेन्द्र अनुगामी।
यदि चाहे तो हर मानव है स्वय मुक्ति का स्वामी।।
खोल दिये आत्मा ने तुमको सभी मुक्ति के द्वार।
तुम्हे साधना की धरती का वन्दन बारम्बार।।

बूँद बूँद कर सयम साधा, शुद्धाचरण सँभारा।
तीर श्यामरी ने काठन की रज को तभी पुकारा।।
उदासीन आश्रम, की धरती सकुचाई सकुचाई।
याचक बनकर द्वार तुम्हारे तुम्हे मॉगने आई।।
वर्णीजी के शुद्ध ह्रदय का तुम्हे मिला था प्यार।
तुम्हे साधना की धरती का वन्दन बारम्बार।।

निश्छल, सरल, सौम्य शुचि जीवन सुनकर जिन की वाणी।
आत्मतोष से भर उठता था जग का पीडित प्राणी।।
जल मे कमल पुष्प सा जीवन कहने को थी माया।
राग–रोग मन के विराग को कभी नहीं छू पाया।।
धर्म भाव से रहे समर्पित जिनके उच्च विचार।
तुम्हे साधना की धरती का वन्दन बारम्बार।।

पण्डित गोरेलाल नाम की शुचि सज्ञा को पाकर।
मण्डित रहे कीर्ति से हरदम थे विचार रत्नाकर।।
खडा द्रोणगिरि जब तक इस धरती पर धर्म रहेगा।
गाथा अमर तुम्हारे यश की तब तक सदा कहेगा।।
भुला सकेगी नहीं तुम्हारा ये धरती उपकार।
तुम्हे साधना की धरती का वन्दन बारम्बार।।

• सेवा निवृत्त प्रधान अध्यापक
बडामलहरा (म प्र)

□□□

बुन्देलखण्ड के प्रख्यात पण्डित श्रीमान् गोरेलालजी शास्त्री को जो थे अम्बर सहित दिगम्बर को सादर श्रद्धाञ्जलि समर्पित

— हास्य कवि हजारीलाल जैन

जैन धर्म को किया जिन्होने सारा जीवन अर्पित।
गोरेलाल शास्त्रीजी को श्रद्धाञ्जलि समर्पित।।

सरस्वती का भण्डार भर दिया, ऐसी कलम चलाई।
कई कृतियो का सम्पादन कर, विद्वत्ता दिखलाई।।
जिन्हे देखकर आज सभी विद्वान् हो रहे हर्षित।
गोरेलाल शास्त्रीजी को श्रद्धाञ्जलि समर्पित।।

छत्तिस वर्ष प्रधानाध्यापक रह ज्ञानामृत वर्षाया।
जिसे पान कर अगणित छात्रो ने नवजीवन पाया।।
पण्डित बनकर आज वही हो रहे विश्व मे चर्चित।
गोरेलाल शास्त्रीजी को श्रद्धाञ्जलि समर्पित।।

सामाजिक कुरीतियो मे इनने पूरा जोर लगाया।
बाल, वृद्ध, अनमेल विवाह का करते रहे सफाया।।
इसीलिये "काका" इनकी करनी पर है जग गर्वित।
गोरेलाल शास्त्रीजी को श्रद्धाञ्जलि समर्पित।।

साधु, व्रतियो और त्यागियो को अध्ययन करवाया।
अत समय समाधि धारण कर नर भव सफल बनाया।।
ऐसे गृहस्थ तपस्वी को, मेरे है दृग बिन्दु समर्पित।
गोरेलाल शास्त्रीजी को श्रद्धाञ्जलि समर्पित।।

• सकरार, झान्सी (उ प्र)

❑❑❑

स्व. श्री पण्डित गोरेलालजी शास्त्री द्रोणगिरि

— दामोदर चन्द्र

द्रोणगिरि सस्कृत विद्यालय के थे आद्यगुरु विद्वत्।
शास्त्री गोरेलाल गुरु को, श्रद्धा सुमन समर्पित।।

पूज्य श्री वर्णी गणेश कथ, द्रोणगिरि लघु भाई शिखर।
सन् उन्नीस सौ तेरासी मे, खोला विद्यालय हितकर।।
जहॉ गोरेलाल शास्त्री गुरु, थे धर्मात्मा, कवि, व्रती, विद्वान्।
गुरुदत्त दिगम्बर विद्यालय, जिन रखी द्रोणगिरि क्षेत्र शान।।
क्षेत्रीय विद्यालय धर्मालय, कृषि भूमि सभी तुम सस्थापित।
शास्त्री गोरेलाल गुरु को, श्रद्धा सुमन समर्पित।।

सम्वत् विशति सौ सैतालीस, तक प्रधान गुरु तुम रहकर।
जिनके शिष्य हजार डाक्टर, न्यायतीर्थ शास्त्री बनकर।।
क्षेत्र भूमि तुम ले, बनवाई, रहे द्रोणगिरि चिर सरपच।
सज्जन, सरल, न्यायी मृदु वक्ता, क्षेत्र जाति हित सौं टच।।
द्रोणप्रान्त पुर रत्न सेधपा, "हीरा" तुम बिन सभी दुखित।
शास्त्री गोरेलाल गुरु को, श्रद्धा सुमन समर्पित।।

उदासीन आश्रम सरक्षक, त्यागी ब्रह्मचारी शिक्षक।
वर्ष पचासी वय उन्तिस मार्च इक्यानवे को जब।।
समाधिमरण शान्ति परिणामो से लही आपने सद्गति थान।
चौगुणि पुत्र मातु था साहस, आप काव्य यश गाय जहान।।
क्षेत्र समाज धर्म हित्त जिनने, कीना निज सब अर्पित।
शास्त्री गोरेलाल गुरु को, श्रद्धा सुमन समर्पित।।

द्रोणगिरि सस्कृत विद्यालय के थे आद्यगुरु विद्वत्।
शास्त्री गोरेलाल गुरु को, श्रद्धा सुमन समर्पित।।

• घुवारा, छतरपुर (म प्र)

□□□

वे श्री पण्डित गोरेलाल

— सिंघई पवनकुमार जैन शास्त्री "दीवान"

वन्दनीय व्यक्तित्व

इस जगती पर जन्म से लेकर, उन्नत कर जिनधर्म का भाल।
वन्दन है अभिनन्दन उनको, जो श्री पण्डित गोरेलाल।।
सिद्धक्षेत्र श्री द्रोणगिरिजी, मध्यप्रान्त में परम पवित्र।
ऐसे तीर्थ को रहे समर्पित, तन–मन–धन से हो सयुक्त।।
जन–जन द्वारा पूजित थे, श्री गणेशप्रसाद वर्णी महाराज।
उनकी ही जो शिष्य श्रृंखला, तिनमाहि अग्रणी गोरेलाल।।
अज्ञान तिमिर को नाश करन मे, ज्ञानसूर्य ही मात्र निमित्त।
यही लक्ष्य साकार करन को किया शुभारभ विद्यालय गुरुदत्त।।

अभिनन्दनीय कृतित्व

स्थापना काल सन् अट्ठाईस से लेकर सन् चौसठ तक रहे प्रधान।
मुख्य अध्यापक श्री गोरेलालजी, किया सचालन बने महान्।।
सतत सेवा ही चार दशक तक, सिद्धक्षेत्र को करी प्रधान।
अथक परिश्रम पूर्ण समर्पण, याद रखेगा हिन्दुस्तान।।

समाजोत्थान

समाज बीच मे व्याप्त रही जो, विषम भावना कुत्सित भाव।
तिन सबके ही दूर करन को, लिया है लोहा ले चित चाव।।
बाल, वृद्ध, अनमेल विवाह होय ना, बेटी शिक्षा होय समाज।
मृत्यु भोज भी बद करो सब, सुख शाति फैले साम्राज्य।।
और एक जिन किया है कारज, विशाल हृदय का जो प्रारूप।
रहे जो वचित साधर्मीजन हैं, धार्मिक कार्य जो विविध स्वरूप।।
होत जगत मे भूल मनुज से, ऐसी भूल पर डालो धूल।
करो क्षमा तुम करे क्षमा हम, जैनदर्शन का सार है मूल।।

साहित्य सृजन

साहित्य सृजन के पुण्य क्षेत्र मे, जिनवाणी सेव[1] से हुए अमर।
परम आध्यात्मिक, स्वपर उपकारक, रचीं हैं कृतियां जीवनभर।।
बारह भावना, सुमन सचय, अरु जैन गारी भाग दो एक।
द्रोणगिरि पूजन, मंगलमय है, भजन सग्रह है पूर्ण विवेक।।

---

1 जिनवाणी सेवक 2. जिनवाणी की सेवा

रामविलास मार्तण्ड , नाममाला का किया सम्पादन सार स्वरूप।
क्षुल्लक चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ मे, खूब भरा है आत्म स्वरूप।।
मुनि आर्यिका त्यागीजनो को सदा पढाते चितचाव मनोज्ञ।
सिद्धान्त ग्रन्थो के पठन पाठ मे, सदा लगाते मन वच योग।।

स्तुत्य क्षयोपशम

समयसार क्या, नियमसार क्या, गोमट्टसार क्या प्रवचनसार।
मोक्षमार्ग प्रकाशक, श्रावकाचारादि, रहे जो उनको कठाहार।।
ग्रन्थ ना देखे पेज ना खोले, किन्तु ग्रन्थ को रहे पढाय।
ऐसा पाया था ज्ञान जिन्होनें, नहीं आज वे गोरेलाल।।

सफलीभूत जीवनान्त

भौतिक तन तो आज नहीं है, किन्तु कीर्ति तन रहा विराज।
विद्वद्वर्य श्री पूज्य पण्डितजी का, रहे ऋणी सब जैन समाज।।
नर तन का सब सार यही है, सल्लेखनापूर्ण गर होय मरण।
उन्तीस मार्च सन् इक्यानवे देखो, हुआ इनका भी समाधिमरण।।
गौरवशाली हम सभी आज हैं, कभी न होगे पूर्ण उऋण।
इसीलिये तो किया प्रकाशित, गोरेलालजी स्मृति ग्रन्थ।।
देखा नहीं मै चर्मचक्षु से, ज्ञानवन्त वह दिव्य प्रकाश।
फिर भी मन मे आज समाया, उनके प्रति हर्ष उल्लास।।

अन्तिम वन्दन

करूँ समर्पण तब क्या चरणा, मात्र एक विनयॉजलि हार।
"दीवान पवन" का शत शत वन्दन, होय मेरा भी बेडा पार।।

● अधीक्षक, श्री आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास,
सागानेर, जयपुर (राज)

विनत श्रद्धांजलि

—प्रेमचन्द शाह

एक दिया
रात भर जलता रहा।
अधेरा दूर करने का,
दृढ संकल्प लिए।
सुबह होते ही
सूरज की किरण ने
खिड़की से झांका
दिया अभी भी जल रहा है।
पूछा दीये से सूरज ने
कहो भाई!
अभी भी अंधेरा भगा रहे हो?
दिये ने विनत उत्तर दिया
"मेरे गृहस्वामी ने
आपके आगमन तक
जलते रहने का
कर्तव्य भार सौंपा था।
सो जल रहा हूँ।
अॅधेरा तो स्वयं भाग जाता है"
विद्वान् भी समाज के दिया है
जो जलते हैं तो उनके ज्ञान का प्रकाश
समाज को जगा देता है।
अंध विश्वास, रूढियों और कुरीतियो से
समाज को बचा लेता है।
ऐसे ही एक दिया थे
प गोरेलालजी शास्त्री
जिन्हे समर्पित है
अब विनत श्रद्धाञ्जलि।

• अध्यक्ष प्रगतिशील लेखक सघ
बीना (म प्र)

□□□

स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन सहयोग

संस्थायें

प्रबन्ध समिति, श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र ट्रस्ट द्रोणगिरि, सेधपा	5001=00
एस डी जे एम मेनेजिंग कमेटी, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)	5001=00
सन्मति विद्या मन्दिर, छतरपुर	5001=00
श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन उदासीनाश्रम ट्रस्ट, द्रोणगिरि	1001=00
श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला ट्रस्ट, घुवारा	1001=00
श्री भागचन्द इटौरया सार्वजनिक न्यास, दमोह	1001=00
डॉ नरेन्द्र विद्यार्थी चेरिटेबिल ट्रस्ट, छतरपुर	1001=00

परिवारजन एवं रिश्तेदार

श्री सेठ लखमीचन्द मुन्नालालजी, सिमरिया	1501=00
श्री नेमीचन्द सतोषकुमारजी मलैया, सागर	1111=00
श्री अजितकुमारजी, द्रोणगिरि	1001=00
श्री कमलकुमारजी, छतरपुर	1001=00
श्री गुलाबचन्दजी अखिलेशकुमारजी, बालाघाट	1001=00
श्री भैयालालजी, सिमरिया	1001=00
श्री पण्डित गुलाबचन्दजी पुष्प प्रतिष्ठाचार्य, टीकमगढ	1000=00
श्रीमती कुसुम धर्मपत्नी श्री महेश बड़कुल दमोह	1000=00
श्रीमती प्रमिला सिघई धर्मपत्नी डॉ श्रीयाशकुमारजी, जयपुर	1001=00
श्री नारायणदास राजेन्द्रकुमारजी, बड़ामलहरा	1001=00
श्री पटुवारी शान्तकुमारजी, घुवारा	1001=00
श्री गोकुलचन्द माणिकचन्द गुलाबचन्दजी, बराज	1001=00
श्री छोटेलाल प्रमोदकुमारजी पाटनी, बडामलहरा	501=00
श्री शाह नन्दकिशोर दिनेशकुमारजी, मडदेवरा	501=00
श्री शाह दयाचन्दजी, मड़देवरा	501=00
श्री शाह गनेशीलाल जिनेशकुमारजी, मडदेवरा	501=00
श्री शाह कपूरचन्दजी, मड़देवरा	501=00
श्री शाह धनप्रसाद शिवप्रसाद दुर्गाप्रसादजी, शाहगढ	501=00
श्री नेमीचन्द ललितकुमारजी	501=00
श्री डॉ नारायणदासजी	501=00

श्री डॉ सतोषकुमारजी फौजदार	251=00
श्री बृजलाल राजकुमारजी, भगवॉ	251=00
श्री पदमचन्द अशोककुमारजी, सादूमल	251=00
श्री पटुवारी सेवकचन्दजी, बडामलहरा	251=00
श्री बालचन्द देवेन्द्रकुमारजी, बम्होरी	201=00
श्री सेठ खूबचन्द दरबारीलालजी, बडामलहरा	151=00

शिष्य समुदाय

श्री प्रेमचन्दजी कुपी वाले, पन्ना नाका, छतरपुर	11001=00
श्री प हरगोविन्दजी पाण्डेय साहित्याचार्य, उज्जैन	1100=00
श्री डॉ नरेन्द्रकुमारजी श्रावस्ती	1021=00
श्री डॉ उत्तमचन्दजी, छिन्दवाडा	1001=00
श्री प विजयकुमारजी साहित्याचार्य, श्री महावीरजी	1001=00
श्री लक्ष्मणप्रसाद चन्द्रशेखरजी, बडामलहरा	1001=00
श्री पं. धरणेन्द्रकुमारजी शास्त्री, हटा	1001=00
श्री रतनचन्दजी, कानपुर	1001=00
श्री पण्डित अमरचन्दजी शास्त्री, खजुराहो	502=00
श्री रतनचन्दजी साहित्याचार्य, रामपुर	501=00
श्री सिघई जवाहरलालजी, बडामलहरा	501=00
श्री मोदी धर्मचन्दजी शास्त्री, छतरपुर	501=00
श्री बाबूलालजी शास्त्री, बडामलहरा	501=00
श्री शीलचन्दजी, द्रोणगिरि, बडामलहरा	501=00
श्री कपूरचन्दजी प्राचार्य, भगवॉ	501=00
श्री डॉ महेन्द्रकुमार सुरेन्द्रकुमारजी, भगवॉ	501=00
श्री भागचन्दजी शास्त्री, बडामलहरा	501=00
श्री पण्डित सरमनलालजी दिवाकर, सरधना	501=00
श्री शाह पन्नालाल हुकुमचन्दजी, मडदेवरा	501=00
श्री लखमीचन्द लालचन्दजी, मडदेवरा	501=00
श्री पण्डित राजकुमारजी जैनदर्शनाचार्य, उदयपुर	501=00
श्री भागचन्दजी इन्दु, गुलगज	501=00
श्री पण्डित बालचन्दजी सुरेशचन्दजी, नवापारा राजिम	501=00
श्री डॉ गुलाबचन्दजी, विनेका (सागर)	251=00
श्री प. प्रेमचन्दजी, देहरादून	251=00

श्री रतनचन्दजी देवरान वाले, बड़ामलहरा	251=00
श्री डॉ शीतलप्रसाद प्रद्युम्नकुमारजी फौजदार, बड़ामलहरा	251=00
श्री मोतीलालजी, भगवा	251=00
श्री कपूरचन्दजी फौजदार, भगवा	251=00
श्री नरेन्द्रकुमारजी शिक्षार्थी, बडामलहरा	251=00
श्री रमेशचन्दजी व्याख्याता, बडामलहरा	251=00
श्री सिघई नाथूरामजी सिद्धार्थ प्रेस, बड़ामलहरा	251=00
श्री परमेष्ठीदासजी श्रीयाशकुमारजी फौजदार, बड़ामलहरा	251=00
श्री चन्द्रभानजी एडवोकेट, छतरपुर	251=00
श्री शाह छक्कीलालजी, मडदेवरा	251=00
श्री उदयचन्दजी बालाघाट	251=00
श्री पण्डित खुशालचन्दजी शास्त्री, बड़ामलहरा	251=00
श्री मोहनलाल रमेशकुमारजी सुदर्शी, बडामलहरा	251=00
श्री जयकुमारजी, बडामलहरा	101=00
श्री शिखरचन्दजी, बड़ामलहरा	101=00
श्री पण्डित देवेन्द्रकुमारजी, बड़ागाव	51=00

सुपरिचितजन

श्री धनप्रसाद शेखरचन्दजी, बालाघाट	501=00
श्री चन्द्रभान अशोककुमारजी, घुवारा	501=00
श्री डॉ लखमीचन्दजी सिघई, नागपुर	501=00
श्री डॉ ज्ञानचन्दजी, घुवारा	501=00
श्री बजाज बाबूलाल शोभालालजी, घुवारा	251=00
श्री चौ कमलापत भागचन्दजी, घुवारा	251=00
श्री सेठ बाबूलालजी दिवाकर, कुरवाई	251=00
श्री चौ. वीरचन्दजी, भगवॉ	101=00
श्री सुरेशचन्दजी, बमनौरा भगवॉ	101=00
श्री सुमतिकुमारजी प्राचार्य, बडामलहरा	51=00

□□□